THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186290

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
Call No. H349.545/V19R Accession No. G.H. 1811
Vol. VI
Author वाल्मीकि |
Title रामायण महाकाव्य : सुन्दर काण्ड |
This book should be returned on or before the date last marked below.

महर्षि आदिकवि श्रीवाल्मीकिविरचित

श्रीरामायण महाकाव्य

[छठा भाग]

(६)

सुन्दर-काण्ड

(हिन्दी भाषा में अनुवाद एवं निरीक्षणसहित)

सम्पादक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, औंध

(जि० सातारा)

प्रथम संस्करण।

शालिवाहन शक १८६४, विक्रम संवत् १९९९,

ईसवी सन १९४२

मूल्य ३) रु०

मुद्रक और प्रकाशक
वसन्त श्रीपाद सातवळेकर, B. A.
भारतमुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा)

सुन्दर-काण्ड ।

श्री महाकवि वाल्मीकिविरचित रामायण नामक महाकाव्य का जो विभागशः प्रकाशन स्वाध्याय-मंण्डल की ओर से हो रहा है, उसी का यह छठा भाग है। इस विभाग में समूचे सुन्दरकाण्ड की समाप्ति हुई है और अन्त में उपसंहार के तौर से अनेक विषयों की चर्चा भी की गयी है। आशा है कि, पूर्वप्रकाशन के समान ही यह विभाग भी पाठकों को मनोरंजक तथा दिलचस्प प्रतीत होगा।

समूचा उपसंहार श्री० पं० श्री० दा० सातवलेकरजीने मराठी में लिखा था और श्री० द० ग० पारेश्वर, बी. ए. सहसंपादक 'वैदिक धर्म,' ने हिन्दी भाषा में उस का अनुवाद किया है।

स्वाध्याय-मंडल,
औंध
२१।९।४२

प्रकाशक

श्रीवाल्मीकि रामायणान्तर्गत

सुन्दरकाण्ड की विषयानुक्रमणिका।

सर्ग १, पृ० १-२८

बृहदाकार शरीर धारण करता हुआ, हनुमान् रावण की अपहृत सीता का अन्वेषण करनेके लिए दक्षिण दिशा की ओर चला जाता है (१-११)। हनुमान् ऊँची उडान लेनेके लिए कटिबद्ध हुआ, अतः पर्वत और उसपर रहनेवाले जन्तु अतीव भयभीत हो उठते हैं, तथा गन्धर्व भी सहम जाते हैं (१२-२२)। विद्याधर अपनी रमणियों सहित मारे डर के पानभूमि में सभी चीजें इधर उधर बिखेरकर भागने लगते हैं और हनुमान् की उडान का समाचार पाते हैं (२३-२९)। हनुमान् उडान लेता है और उस का बखान (३०-६१)। समुद्र का उल्लंघन (६२-८४)। समुद्र सोचता है कि, हनुमान् की सहायता अवश्य करनी चाहिए (८५-८८)। इसलिए वह छिप कर रहनेवाले मैनाकको सूचना देता है कि, वह ऊपर उठकर हनुमान् की थकावट दूर करे (८९-९३)। ऊपर उठ जानेपर मैनाक का वर्णन (९४-९९)। हनुमान् उसे अपनी राह में रोडा समझता है और दोनों में वार्तालाप होता है (१००-१२५)। हनुमान् आगे बढता है और उसकी सराहना होती है (१२६-१३१)। इन्द्र सन्तुष्ट हो मैनाकको अभयप्रदान करता है (१३२-१३६)। देवतागण सुरसासे हनुमान् के बल की जाँच करने के लिए कहते हैं (१३८-१४१)। डरावना रूप धारण करके सुरसा हनुमान् के सामने उठ खडी होती है, तथा दोनों के मध्य बातचीत होती है (१४२-१५४)। हनुमान् उससे छुटकारा पाने में सफल हो जाता है (१५५-१५९)। सुरसा और अन्य देव उसकी सराहना करते हैं (१६०-१६२)। हनुमान् वायुपथ से आगे बढता चला जाता है (१६३-१७४)। सिंहिका उसे देखकर उस की छाँह पकड लेनेकी चेष्टा करती है और हनुमान् से मुठभेड होती है, जिस में वह राक्षसी मर जाती है (१७५-१८९)। हनुमान् के पराक्रमको देख सभी उसकी प्रशंसा करते हैं (१९०-१९३)।

समुद्रलंघन पूरा हो जाता है और वह लंका के तटपर आ जाता है, तथा उस नगरी के तटप्रदेश का वर्णन (१९४-२०४)।

सर्ग १, पृ० २८-३५

इतनी मंजिल तै करनेपर भी हनुमान् को थकावट नहीं प्रतीत होती है (१-४)। हनुमान् के सामने जो रमणीय दृश्य फैला था, उसका वर्णन (५-१३)। लंकानगरी का आश्चर्यजनक स्वरूप (१४-२१)। उसकी चातुर्यपूर्ण व्यवस्था देखकर हनुमान् बड़े चिंतित हो उठते हैं। खूब सोचने लगते हैं (२२-४५)। सायंकाल होते ही वह गुप्त रूप से नगरी में घुस जाता है। लंकानगरी का वर्णन और चन्द्रमा का उदय (४६-५६)।

सर्ग ३, पृ० ३५-४१

सतर्क बनकर हनुमान् रात्री का सूत्रपात होते ही वैभवसंपन्न लंका में प्रवेश करता है (१-१२)। लंका का ऐश्वर्य देखकर वह फिर सोचमें पडता है (१३-१९)। लंकाकी अधिष्ठात्री देवी उसे घुसते हुए देखकर रोकनेकी चेष्टा करती है, दोनोंके मध्य कुछ बहस हो जाती है, हनुमान् उसपर हावी बनकर उसकी अनुमति पाता है और लंका में घुस जाता है (२०-५१)।

सर्ग ४, पृ० ४१-४५

विजयी हनुमान् बायाँ पैर आगे रखकर लंकामें प्रविष्ट होता है (१-४)। राजमार्ग पर से संचार करता हुआ वह लंका का असीम वैभव एवं आलीशान मकान देखता है (५-९)। मनोहर गायन एवं अध्ययन का शब्द सुनाई देता है (१०-१३)। भाँतिभाँति के रूप धारण करनेवाले राक्षस उसे दीख पडते हैं (१४-२२)। अत्यन्त ऐश्वर्यसंपन्न रावण का मकान वह देखता है (२३-३०)।

सर्ग ५, पृ० ४५-४९

चन्द्रमा का चेतोहर बखान (१-७)। स्वच्छ चाँदनी में लंकानिवासी जनताका विलासितामय जीवन (८-१६)। वहाँकी महिलाएँ (१७-२२)। पर सीता का दर्शन न होनेसे हनुमान् चिंतित होता है (२३-२७)।

सर्ग ६, पृ० ४९-५४

लंका में घूमता हुआ हनुमान् रावण के राजसी ठाटबाट एवं सजधज से पूर्ण महल को देखता है (१-१४) । बादमें वह विभिन्न राक्षस--नेताओंके महलों को देखता हुआ घूमता है (१५-२६) । रावण के गृहका वर्णन (२७-४५) ।

सर्ग ७, पृ० ५४-५७

हनुमान् लंका की चेतोहर सुषमा एवं विभवसंपन्नता देख लेता है, लेकिन सीता को न पाकर बडा दुःखी होता है (१-१७) ।

सर्ग ८, पृ० ५७-५८

पुष्पक विमान का वर्णन (१-८) ।

सर्ग ९, पृ० ५८-६७

रावण का प्रासादतुल्य भवन और पुष्पकविमान (१-१८) । रावण के वैभव से हनुमान् चकित होता है (१९-३२) । सोई हुई नारियों का वर्णन (३३-६७) । वे स्त्रियाँ रावण पर मुग्ध हुई थीं (६८-७१) । हनुमान् सीता के बारे में सोचता है (७२-७३) ।

सर्ग १०, पृ० ६८-७४

रावण का शयनागार एवं छत्र (१-४) । सोये हुए रावण का वर्णन- (५-२९) । रावणकी स्त्रियों का वर्णन (३०-४९) । सोयी हुई मन्दोदरीको देख वह उसे सीता समझ कर प्रसन्न होता है (५०-५४) ।

सर्ग ११, पृ० ७४-८०

तनिक सोचने पर हनुमान् की सीताविषयक भ्रांति हट जाती है और वह फिर ढूँढने लगता है, तथा सुन्दर स्त्रियों एवं पानभूमि का दर्शन पाता है (१-३६) । हनुमान् के मन में धार्मिक संशय पैदा होता है, पर शुद्ध मनके कारण निश्चिन्त हो, पुनः खोजने लगता है (३७-४९) ।

सर्ग १२, पृ० ८१-८४

लंका में सब कुछ प्रेक्षणीय दृश्य देखनेपर भी सीता का कुछ भी पता मिलने में बराबर असफल होनेके कारण हनुमान् अत्यन्त चिन्तित हो

उठता है (१-१४)। ठान लेता है कि बराबर ढूँढता रहूँगा, नहीं तो भला उसकी क्या दशा होगी ? अथक चेष्टा करनेपर भी सीता का दर्शन नहीं, इसलिए बहुत दुःख तथा चिन्ता (१५-२६)।

सर्ग १३, पृ० ८४-९१

हर जगह खोज करनेपर भी सीता की जानकारी न मिलने से हनुमान् के दिल में तरह तरह की आशंकाएँ उठ खडी होती हैं (१-३५)। हनुमान् ठान लेता है कि, बिना सीताको देखे वह लौट नहीं जायगा, भले ही उसे अन्नजलका त्याग करना पडे (३६-४५)। कुछ कालतक विचार करके वह देवताओंके प्रणामपूर्वक अशोकवन ढूँढने लगता है (४६-६८)।

सर्ग १४, पृ० ९२-९८

वृक्षराजियों से परिपूर्ण वाटिका में वह खोजने लगता है (१-१२)। उस उपवन में खूब खलबली होती है (१३-२१)। बगीचे की सुषमा का वर्णन (२२-३६)। सुवर्णमय वृक्षों के निकट वह पहुँच जाता है (३७-४०)। उसे विश्वास होता है कि, सीता का दर्शन इस जगह हो ही जायगा (४१-५२)।

सर्ग १५, पृ० ९९-१०५

वह सुन्दर अशोकवनिका पर तथा वहाँ के पर्वत पर अपनी निगाह दौडाता है (१-१५)। वहाँ के एक महान् महल में दुःखिनी और राक्षसियों से घिरी हुई शोकाकुल सीता उसे दीख पडती है (१६-३७)। सोचविचारने के पश्चात् हनुमान् का निश्चय होता है कि, वही सीता है (३८-५४)।

सर्ग १६, पृ० १०६-१०९

सीता की दयनीय दशा देखकर हनुमान् कुछ काल तक उधेड बुन में पडा रहता है (१-३२)।

सर्ग १७, पृ० ११०-११३

चन्द्रमा का उदय होता है (१-२)। विचित्र रूपवाली राक्षसियोंसे घिरी सीताको वह देखता है (३-१८)। सीता का वर्णन (१९-२९)।

हनुमान् को उसके दर्शन से आनन्द होता है (३०-३२)।

सर्ग १८, पृ० ११३-११७

हनुमान् के देखते देखते प्रातःकाल की वेला समीप आ पहुँचती है और उधर रावण की नींद टूट जाती है (१-३)। जाग जानेपर रावण के दिलमें सीता के ही विचार आते हैं और वह अशोकवन की ओर अपने पैर बढाता है (४-९)। उस के पीछे बहुतसी सुन्दर स्त्रियाँ चलने लगती हैं (१०-१८)। हनुमान् अब मतवाले तथा नारियों के साथ आनेवाले रावणको देखने पाता है (१९-३०)। हनुमान् छिप जाता है और रावण सीता के समीप आता है (३१-३३)।

सर्ग १९, पृ० ११७-१२०

सीता रावणको समीप आते देख मारे शोक के काँप उठती है (१-३)। शोकावेग से पीडित सीता का हृदयद्रावक वर्णन (४-२२)।

सर्ग २०, पृ० १२०-१२५

रावण धीरे धीरे सीता के मन को अपनी ओर खींचने के लिए उससे बातचीत छेडता है और तरह तरह के प्रलोभन दे देता है (१-३६)।

सर्ग २१, पृ० १२५-१२९

रावण को प्रत्युत्तर देनेके लिए सीता अपना अटल निश्चय प्रकट करती हुई, उसे ठीक तरह से समझाने की चेष्टा करती है, उसे उलहने देती है, घोर प्रतिवाद करती है (१-३४)।

सर्ग २२, पृ० १२९-१३६

मारे क्रोध के रावण सीता को धौंस देने लगता है (१-९)। देव-गन्धर्वों की कन्याएँ सीता को सांत्वना देती हैं (९-१२)। सीता फिर एक बार कडा जवाब देती है (१३-२२)। रावण झल्लाकर सीताकी ओर देखता है, उसका स्वरूप भीषण है (३-२२)। डाँटडपट देता है (३०-३१)। बदसूरत राक्षसियों को सूचना देता है (३२-३९)। धान्य-मालिनी रावणको शांत करानेकी चेष्टा करती है (४०-४४)। स्त्रियोंके साथ रावण लौट जाता है (४५-४७)।

सर्ग २३, पृ० १३६–१३८

राक्षसियाँ सीता को धमकियाँ देती हैं (१–२१)।

सर्ग २४, पृ० १३८–१४४

राक्षसियाँ सीता को रावण की पत्नी बनने के लिए उपदेश देती हैं (१–५)। सीता राम के प्रति अपना अटल प्रेम व्यक्त करती है (६–१३)। कुरूप राक्षस महिलाएँ खूब डाँटने लगती हैं; सीता वृक्ष के नीचे जा खड़ी होती है, फिर प्रलोभन देती हैं, आनाकानी करनेपर मार-कर खा जाने की भीति सामने रखी जाती है और सीता बिलखने लगती है (१४–४८)।

सर्ग २५, पृ० १४४–१४७

सीता का विलाप तथा प्रतिवाद (१–२०)।

सर्ग २६, पृ० १४७–१५३

सीता का शोक और उसकी दयनीय दशा (१–१७)। लंकाको अभिशाप (१८–२८)। शोक तथा राम और लक्ष्मणकी याद (२९–४७)।

सर्ग २७, पृ० १५३– १५९

रामचन्द्र की उन्नति और रावण का अधःपतन की चेतावना देनेवाला स्वप्न त्रिजटा कहती है और सीताको अच्छे सगुन होते हैं (१–४८)।

सर्ग २८, पृ० १५९–१६२

तीव्र शोकावेग के मारे सीता अपने प्राणतक त्यागने की तैयारी में रहती है, राम के बारेमें भी सन्देह होता है, पर अच्छे शकुन दीखने के कारण वह रुक जाती है (१–१९)।

सर्ग २९, पृ० १६२–१६३

अच्छे सगुन प्रकट होने लगते हैं, अतः सीता का शोक हट जाता है और मुँह खिल जाता है (१–८)।

सर्ग ३०, पृ० १६४–१६९

सब कुछ देख तथा सुन लेनेपर हनुमान् सोचने लगता है कि अब किस तरह कार्यवाही शुरु करनी चाहिए (१–३९)। हनुमान् का यह निर्धार कि

रामचंद्रजी का सारा वृत्तान्त सीता को सुना देना चाहिए (४०-४४)।

सर्ग ३१, पृ० १६९-१७१

हनुमान् संक्षेप में पूर्व घटनाओं का ब्यौरा सुना देता है (१-१४)। सीता बड़े अचम्भे में आकर इधर उधर देखती है, ऊपर आँख उठाने पर हनुमान् का दर्शन होता है (१५-१८)।

सर्ग ३२, पृ० १७२-१७४

हनुमान् को देखते ही पहलेपहल सीता साश्चर्य भय में पड़ जाती है, आँखों से अश्रुधारा बह निकलती है (१-१५)।

सर्ग ३३, पृ० १७४-१७८

हनुमान् विनम्र ढंगसे नीचे उतरकर सीताके सामने खड़े होकर उसकी पूछताछ करता है (१-१३)। सीता प्रत्युत्तर के रूप में अपना सारा हाल उससे कह देती है (१४-३१)।

सर्ग ३४, पृ० १७८-१८३

हनुमान् तथा सीता के मध्य विना किसी शिक्षक के वार्तालाप होने लगता है (१-७)। पर जब वह उस के समीप जानेकी चेष्टा करता है, सीता उसे रावण समझ कर डर जाती है, उसकी ओर देखती नहीं और अपना सन्देह तथा आशय व्यक्त करती है (८-२६)। हनुमान् उसकी शंका दूर करने का प्रयत्न करता है (२७-४०)।

सर्ग ३५, पृ० १८४-१९६

सीता उससे राम तथा लक्ष्मण का वर्णन करने को कहती है (१-४)। हनुमान् रामचंद्रजी का पूरापूरा वर्णन करता है (५-२१)। राम तथा लक्ष्मण घूमते घूमते किस तरह सुग्रीवके मित्र बने तथा पश्चात् क्या हुआ, सो सब और पिछला सारा इतिहास हनुमान् उसे बतलाता है (२२-७२)। हनुमान् अपनी सफलता पर हर्ष प्रकट करता है और सीता का समाधान करता है (७३-८४)। सीता प्रसन्न हो उठती है और हनुमान् उससे सवाल पूछता है (८५-९०)।

सर्ग ३६, पृ० १९६-२०२

संतुष्ट सीता को हनुमान् अँगूठी देता है (१-५)। प्रसन्न होकर वह

हनुमान् की सराहना करती है (९–११)। दोनों के बीच वार्तालाप होता है (१२–४७)।

सर्ग ३७, पृ० २०३–२१२

सीता उससे और भी प्रश्न पूछती है (१–१८)। हनुमान् उसे स्वयं ही पीठ पर लेकर चलने की तैयारी दर्शाता है (१९–२९)। सीता शंका प्रकट करती है और हनुमान् उसके सन्देह को हटाने के लिए बृहदाकार शरीर धारण करता है (३०–४०)। हनुमान् की शक्ति को मान्यता देकर भी उसके साथ जाना ठीक नहीं, ऐसा सीताका अभिप्राय है (४१-५६)। राम ही इधर आ जाए, तो ठीक होगा (५७–६८)।

सर्ग ३८, पृ० २१२–२२०

खुश होकर हनुमान् सीताके कथन को ठीक समझता है और अभिज्ञान की कोई वस्तु उससे माँगता है (१–१०)। चित्रकूट पर घटित घटना सीता उससे कह देती है (११–३६)। राम के बारेमें सीता प्रश्न पूछती है (३७–४६)। हनुमान् उसको ढाढस देता है (४७–५२)। राम एवं लक्ष्मण के बारे में अपना मत कहकर सीता रत्न उसे देती है (५३–६६)। उसे लेकर हनुमान् जानेकी तैयारी करता है (६७–७०)।

सर्ग ३९, पृ० २२१–२२७

सीता हनुमान् से अपना अंतिम कथन कहती है (१–१२)। राम के पराक्रम का वर्णन (१३–१७)। दोनों के मध्य आगे की कार्यवाही के सम्बन्ध में वार्तालाप हुआ करता है (१८–५४)।

सर्ग ४०, पृ० २२७–२३१

सीता फिर हनुमान् से कहती है (१–१०)। हनुमान् उसे तसल्ली देता है और कुछ काल बातें करके निकल जाता है (११–२५)।

सर्ग ४१, पृ० २३१–२३४

हनुमान् सोचता है अब क्या किया जाय (१–९)। बगीचा विध्वस्त करनेका निश्चय करता है (१०–१३)। उपवन उध्वस्त हो जाता है (१४–२१)।

सर्ग ४२, पृ० २३४–२३९

राक्षसियाँ सीतासे उस के बारे में पूछताछ करती हैं पर वह साफसाफ

जवाब देकर कहती है कि वह वेशधारी राक्षसही है (१–१०)। राक्षसियाँ दौडकर रावण से सारा हाल कह देती हैं (११–२१)। रावण क्रुद्ध होकर किंकरों को भेज देता है (२२–२६)। वे हनुमान् के सामने आ जाते हैं और वह घोर गर्जना करता है (२७–३६)। लडाई में वे राक्षस मारे जाते हैं और रावण प्रहस्तके पुत्रको भेज देता है (३७-४४)।

सर्ग ४३, पृ० २४०–२४३

हनुमान् की भीषण गर्जना और चैत्यप्रासाद का भंग [१–१२]। हनुमान् का पराक्रम [१३–२६]।

सर्ग ४४, पृ० २४३–२४५

जम्बूमाली से मुठभेड और उसका वध तथा रावण अमात्यपुत्रों को भेज देता है [१–२०]।

सर्ग ४५, पृ० २४५–२४८

हनुमान् की अप्रतिम वीरता के सामने वे ठहर नहीं सकते [१–१७]।

सर्ग ४६, पृ० २४८–२५३

दुर्धर, विरूपाक्ष, यूपाक्ष, प्रघस, भासकर्ण, आदि वीरोंको अच्छी सूचना और उनका वध [१–४२]।

सर्ग ४७, पृ० २५३–२५८

रावण के पुत्र अक्षका आगमन और हनुमान् से युद्ध [१–२३]। हनुमान् कुछ देर सोचकर उस का वध कर देता है [२४–३८]।

सर्ग ४८, पृ० २५९–२६७

अब रावण इन्द्रजित् को आज्ञा तथा उपदेश देता है [१–१५]। उस का हनुमान् से युद्ध, ब्रह्मास्त्र का पाश और उस की मुक्तता [१६–५०]। बँधी हुई दशा में हनुमान् रावण के सामने आ जाता है [५१–६२]।

सर्ग ४९, पृ० २६७–२७०

हनुमान् चकित हो रावण के वैभव को देखता है [१–२०]।

सर्ग ५०, पृ० २७०–२७२

रावण प्रहस्त के जरिये हनुमान् की पूछताछ कराता है और हनुमान् प्रश्नों का उत्तर देना शुरु करता है [१–१९]।

सर्ग ५१, पृ० २७३–२७८

हनुमान् भरसक रावण को समझाने की चेष्टा करता है, पर रावण आपे से बाहर हो, उसे मृत्युदण्ड देने की आज्ञा देता है [१–४६]।

सर्ग, ५२, पृ० २७९–२८२

रावण की घोर आज्ञा सुन बिभीषण उसे समझाकर दूतवध की अनुचितता जतलाता है [१-९]। रावण फिर भी अपना निश्चय नहीं बदलता है, सो देखकर बिभीषण फिर उसे ठीक तरह समझाता है, तब रावण उसे मानता है [१०--२५]।

सर्ग ५३, पृ० २८२--२८७

रावण अब पूँछ को जला देने की आज्ञा देता है [१-५]। राक्षस हनुमान् को घुमाने लगते हैं और पुच्छ में आग लगा देते हैं, पर वह कुछ भी विरोध नहीं करता है, क्योंकि समूची लंका देखने मिलती है [६-२२]। सीता को यह समाचार मिलता है और वह अपनी सामर्थ्य से शीतलता पैदा करने के लिए प्रार्थना करती है [२३-२७]। हनुमान् आश्चर्यचकित होता है और राक्षसों से छुटकारा पाता है [२८-४१]।

सर्ग ५४, पृ० २८७-२९४

हनुमान् ठान लेता है कि, लंका को आग लगा देनी चाहिए और तदनुसार सभी प्रसिद्ध घरों में आग धधकने लगती है [१-२१]। लंका में भारी तहलका मच जाता है, भीषण दृश्य दीख पड़ता है [२२-४२]। हनुमान् तथा सभी देवतागण प्रसन्न हो उठते हैं [४३-५०]।

सर्ग ५५, पृ० २९४-२९८

धधकती हुई लंकानगरी को देख हनुमान् के दिल में भारी संशय और घृणा के भाव पैदा हो जाते हैं [१–२०]। पर अन्त में मन शांत हो जाता है और सीताका कुशल समाचार पाकर प्रसन्न हो, वहाँ से निकलना चाहता है [२१--३५]।

सर्ग ५६, पृ० २९९--३०६

सीता से हनुमान् का वार्तालाप [१--२१]। हनुमान् प्रस्थान करना

चाहता है [२२--२५]। पर्वत का वर्णन [२६--३७]। समुद्र का दर्शन और लंबी उडान [३८--५१]।

सर्ग ५७, पृ० ३०६--३१३

आकाश का वर्णन [१-४]। हनुमान् का आकाशमार्ग से गमन [५-१८]। हनुमान् की गर्जना सुन और आशान्वित बन वानर हर्षित होते हैं [१९-२९]। हनुमान् वानरोंमें मिल जाता है, जो बहुत खुश हो जाते हैं [३०-४४]। अंगद हनुमान् की सराहना करता है [४५-४९]। सभी वानर चट्टानोंपर बैठ जाते हैं [५०-५४]

सर्ग ५८, पृ० ३१३-३३४

जांबूवान् की पूछताछ करनेपर हनुमान् समूची बीती घटनाएँ उन्हें ठीक तरह बतला देता है [१-१६९]

सर्ग ५९, पृ० ३३५-३३८

हनुमान् अन्य वानरों से विचारविनिमय करता है [१-३३]।

सर्ग ६०, पृ० ३३९-३४१

अंगद का गर्वभरा भाषण और जांबवान् का उन्हें समझाना [१-२०]।

सर्ग ६१, पृ० ३४२-३४५

सभी वानर रामचंद्रजी तथा सुग्रीवके निकट चलने लगते हैं [१-७]। बीच में मधुवन में ठहरते हैं और खूब मौज उडाने लगते हैं जब कि दधिमुख एवं अन्य संरक्षक वानरों से झगडा मोल लेना पडता है [८-२४]।

सर्ग ६२, पृ० ३४५-३५०

हनुमान् और अंगद की आज्ञा से वानरों को मधुका सेवन करने में स्वतंत्रता मिलती है [१-७]। वानरोंकी दशा का वर्णन [८-१६]। दधिमुख उन्हें रोकने का प्रयत्न करता है, पर झगडे में घायल हो उठता है [१७-२८]। तब वह सुग्रीव के निकट चला जाता है [२९-३९]।

सर्ग ६३, पृ० ३५०-३५४

सुग्रीवके सामने दधिमुख पूरा हाल बता देता है [१-१२]। लक्ष्मणके पूछनेपर सुग्रीव शुभ समाचार सुना देता है [१३-२७]। सभी प्रसन्न होते हैं [२८-३३]।

सर्ग ६४, पृ० ३५५-३६०

दधिमुख लौटकर उन सफलितप्रयत्न वानरों से क्षमाकी याचना करता है [१-११]। अंगद वानरोंसे परामर्श करता है [१२-१७]। सभी वानर प्रसन्नचित्त हो गर्जना करते हुए राम एवं सुग्रीव के समीप जा पहुंचते हैं [१८-२६]। सुग्रीव राम की सान्त्वना करता है [२७-३६]। हनुमान् आदि वानर राम के समीप पहुँचते हैं और रामचंद्रजी खुश हो जाते हैं [३७-४५]।

सर्ग ६५, पृ० ३६०-३६४

राम को सीता का पूरा समाचार मिलता है [१-५]। हनुमान् भी पूर्वेतिहास बतलाता है, तथा रत्न दे देता है [६-२८]।

सर्ग ६६, पृ० ३६४-३६६

रत्न पानेसे रामका शोक बढ जाता है और वह हनुमान् से अधिक वृत्तान्त पूछता है [१-१६]।

सर्ग ६७, पृ० ३६६--३७३

राम की आज्ञा पाकर हनुमान् सीता का कथन उससे कह देता है, अपना सारा वार्तालाप सुनाता है [१-४४]।

सर्ग ६८, पृ० ३७३-३७८

हनुमान् सीतासे जो बातचीत हुई, सो रामको सुना देता है [१-२९]।

सुन्दरकाण्ड के निरीक्षण की अनुक्रमणिका।

रावण की लंका पृ० ३७९

सिलोन-लंका [३७९], आस्ट्रेलिया-लंका [३८०], सुन्दरकाण्डके 'सुन्दर' शब्दका अभिप्राय। सुन्दरकाण्ड अथवा सुन्दकाण्ड ? [३८४], पिछली बातों का अवलोकन [३८५], सुरसा कौन है ? [३८८], सिंहिका [३९०], हनुमान् का वायुपथ [३९२], लंका नगरी कहाँ है ? [३९३], समालोचना [३९७], विद्याधरों में खलबली [४०१], रामेश्वरम् और लंका [४०२], सिंहिका राक्षसीका वध [४०४], अथक यात्रा करनेकी क्षमता

[४०५], लंकानगरी [४०५], भेस बदलकर नगरीमें घुस जाना [४०७], निशाचर [४११], रात्रीके समय लंका नगरी का वर्णन [४११], अपथसे नगरी में प्रवेश [४१६], लंका के गृह [४१६], लंकामें वेद-घोष प्रचलित था [४१७], चौराहों पर राक्षस गण [४१९], रावणका शयन-गृह [४१९], रावणका बगीचा [४२०], रावणकी स्त्रियाँ [४२१], रावण का छत्र [४२३], एक धार्मिक सन्देह का आविर्भाव [४२५], क्या सीता अब इस संसार में नहीं रहीं? [४२६], कड़ा सैनिक अनुशासन [४२६], सीता की क्या दशा हुई होगी? [४२७], सन्ध्योपासना के लिए सीता आयेगी [४२८], उत्साह की बुनियाद पर यशोमन्दिर खड़ा किया जाता है [४२८], सीता कैसे दीख पड़ी? [४२९], चक्रवाकी [४३१], एक वेणी [४३१], राक्षसोंका धर्म [४३२], सीता को समझाने की चेष्टा [४३४], रावण को सीता का प्रत्युत्तर [४३६], निकुम्भिलादेवी [४४०], सीता का अंतिम उत्तर [४४०], रावण सीता को मारने दौड़ता है [४४१], स्वप्न पर विश्वास [४४३], सीता प्राणों का त्याग करने तैयार हो जाती है [४४६], अच्छे शकुन [४४६], हनुमान् के विचार [४४७], भाषाका प्रश्न [४४८], दूत-कार्य [४४९], हनुमान् के कार्य का प्रारम्भ [४५०], रामचन्द्रजी का वर्णन [४५२], हनुमान् का परिचय [४५३], राजनैतिक समस्याएँ [४५३], रामचन्द्रजी आभिषभोजी नहीं थे [४५६], बिभीषण का प्रयत्न [४५७], हनुमान् की तैयारी [४६१], सीता का सन्देश [४६१], कुछ न कुछ पराक्रम कर दिखलाना चाहिए [४६२], बगीचा विध्वस्त हो जाता है [४६३], रावण के मन में शंका के लिए स्थान था [४७२], हनुमान् का रावण से मिलना तथा बात चीत करना [४७२], हनुमान् का अभिभाषण [४७३], दूत का वध करना ठीक नहीं [४७७], लंकादहन [४७८], कुछ धारणाएँ [४८१], पाँच मुँहवाले सर्प [४८२], नारियोंके अंगों तथा अवयवोंका वर्णन [४८२], वाल्मीकि के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य बातें [४९१]।

हनुमान् का उड्डान। (सुंदर स. १ श्लो. ८१)

श्रीमहामुनि--वाल्मीकि--प्रणीतं

श्री रा मा य ण म् ।

सुन्दरकाण्डम् ।

ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्षणः ।
इत्येष पदमन्वेषुं चारणाचरिते पथि १
दुष्करं निष्प्रतिद्वन्द्वं चिकीर्षन्कर्म वानरः ।
समुदग्रशिरोग्रीवो गवां पतिरिवाबभौ २
अथ वैदूर्यवर्णेषु शाद्वलेषु महाबलः ।
धीरः सलिलकल्पेषु विचचार यथासुखम् ३
द्विजान्वित्रासयन्धीमानुरसा पादपान्हरन् ।
मृगांश्च सुबहून्निघ्नन्प्रवृद्ध इव केसरी ४
नीललोहितमाञ्जिष्ठपद्मवर्णैः सितासितैः ।
स्वभावसिद्धैर्विमलैर्धातुभिः समलंकृतम् ५

अब जाम्बवान् के उत्साहित करने पर हनुमान् ने आकाशमार्गद्वारा रावणद्वारा हरी गई सीता के स्थान के अन्वेषण की इच्छा की। अद्वितीय दुष्कर कर्म करने की इच्छा करता हुआ, उन्नतशिर तथा ग्रीवावाला वानर हनुमान् वृषभ के समान प्रकटित हुआ। इसके बाद महाबली धीर वह वैदूर्य वर्णवाली सलिलसदृश घास में सुखपूर्वक विचरने लगा। बुद्धिमान् हनुमान् पक्षियों को भयभीत करता हुआ, छातीसे वृक्षों को उखाडता हुआ और बहुत से मृगों को मारता हुआ, सिंह के समान शोभित हुआ। नील, रक्त और मंजीठ के रंग के तथा सफेद और काले रंग के पत्तों के

कामरूपिभिराविष्टमभीक्ष्णं सपरिच्छदैः।
यक्षकिंनरगन्धर्वैर्देवकल्पैः सपन्नगैः ६
स तस्य गिरिवर्यस्य तले नागवरायुते।
तिष्ठन्कपिवरस्तत्र ह्रदे नाग इवाबभौ ७
स सूर्याय महेन्द्राय पवनाय स्वयंभुवे।
भूतेभ्यश्चाञ्जलिं कृत्वा चकार गमने मतिम् ८
अञ्जलिं प्राङ्मुखं कुर्वन्पवनायात्मयोनये।
ततो हि ववृधे गन्तुं दक्षिणो दक्षिणां दिशम् ९
प्लवंगप्रवरैर्दृष्टः प्लवने कृतनिश्चयः।
ववृधे रामवृद्ध्यर्थं समुद्र इव पर्वसु १०
निष्प्रमाणशरीरः संलिलङ्घयिषुरर्णवम्।
बाहुभ्यां पीडयामास चरणाभ्यां च पर्वतम् ११
स चचालाचलश्चाशु मुहूर्तं कपिपीडितः।
तरूणां पुष्पिताग्राणां सर्वं पुष्पमशातयत् १२

समान वर्णवाली स्वतःसिद्ध धातुओंसे भूषित तथा परिच्छेदों से युक्त, देवतों के तुल्य, इच्छानुकूलरूपधारी यक्ष, किन्नर, गन्धर्व और पन्नगों से अतिशय पूर्ण जो तल उस श्रेष्ठ पर्वत का था, श्रेष्ठ कपि हनुमान् श्रेष्ठ नागों से युक्त उसमें स्थित हुआ और कुण्ड में स्थित नाग के समान प्रकटित हुआ। (१–७)

हनुमान् ने सूर्य, महेन्द्र, पवन, स्वयम्भू तथा अन्य प्राणियों को हाथ जोडकर चलने की बुद्धि की। पूर्व को मुख किये हनुमान् अपने कारणरूप पवन को हाथ जोड कर वहां से दक्षिण दिशा को चलने को बढा अर्थात् चलने का उद्योग किया। श्रेष्ठ वानरों से अवलोकित तथा कूदने में निश्चय किये हुए हनुमान् राम के प्रयोजन के लिये बढने लगा, जैसे पर्वदिनों में समुद्र बढता है। (८–१०)

निष्प्रमाण शरीरवाला, समुद्र को लांघने की इच्छावाला तथा लङ्का के सम्मुख स्थित हनुमान् ने बाहुओं को ऊपर को उठाकर बाहुओं तथा पैरों से पर्वत को पीडन किया। कपिद्वारा पीडित वह पर्वत अचल भी चलाय-

तेन पादपमुक्तेन पुष्पौघेण सुगन्धिना ।
सर्वतः स वृतः शैलो बभौ पुष्पमयो यथा १३
तेन चोत्तमवीर्येण पीड्यमानः स पर्वतः ।
सलिलं संप्रसुस्राव मदमत्त इव द्विपः १४
पीड्यमानस्तु बलिना महेन्द्रस्तेन पर्वतः ।
रीतीर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः १५
मुमोच च शिलाः शैलो विशालाः समनःशिलाः ।
मध्यमेनार्चिषा जुष्टो धूमराजिरिवानलः १६
हरिणा पीड्यमानेन पीड्यमानानि सर्वतः ।
गुहाविष्टानि सत्त्वानि विनेदुर्विकृतैः स्वरैः १७
स महान्सत्त्वसंनादः शैलपीडानिमित्तजः ।
पृथिवीं पूरयामास दिशश्चोपवनानि च १८
शिरोभिः पृथुभिर्नागा व्यक्तस्वस्तिकलक्षणैः ।
वमन्तः पावकं घोरं ददंशुर्दशनैः शिलाः १९

मान हो गया और फूले हुए वृक्षों के समस्त फूलों को गिरा दिया । वृक्षों से गिरे हुए सुगन्धवाले उस फूलों के समूह से सब ओर से आवृत वह पर्वत प्रकाशित होने लगा । मानों फूलोंका बना हुआ था । उत्तम पराक्रमवाले उस कपि से पीडित वह पर्वत जल को टपकाने लगा, जैसे मत्त हाथी मद को । उस बली से पीडित वह महेन्द्रपर्वत काञ्चन, अञ्जन तथा रजत गर्भवाली रेखाओं को उत्पन्न करने लगा । (११-१५)

और मनःशिलायुक्त बडी बडी शिलाओं को छोडने लगा, जैसे मध्यम लपटों से युक्त अग्नि धूम्रसमूह को छोडता है । पीडित होते गिरी से पीडित होते हुए गुहा के रहनेवाले जीव सब ओर से भयंकर स्वर से गर्जने लगे । शैल की पीडा के कारण उत्पन्न हुए बडे बडे प्राणियों के उस गर्जनने पृथिवी, दिशा तथा वन को पूरित कर दिया । बडे बडे शिरों से युक्त प्रकटित स्वास्तिकलक्षण (फण पर जो अर्धचन्द्र का चिह्न होता है) से युक्त सर्प बडे तीव्र अग्नि को उगलते हुए डंकों से शिलाओं को डसने

तास्तदा सविषैर्दष्टाः कुपितैस्तैर्महाशिलाः।
जज्वलुः पावकोद्दीप्ता विभिदुश्च सहस्रधा २०
यानि त्वौषधजालानि तस्मिञ्जातानि पर्वते।
विषघ्नान्यपि नागानां न शेकुः शमितुं विषम् २१
भिद्यतेऽयं गिरिर्भूतैरिति मत्वा तपस्विनः।
त्रस्ता विद्याधरास्तस्मादुत्पेतुः स्त्रीगणैः सह २२
पानभूमिगतं हित्वा हैममासनभाजनम्।
पात्राणि च महार्हाणि करकांश्च हिरण्मयान् २३
लेह्यानुच्चावचान्भक्ष्यान्मांसानि विविधानि च।
आर्षभाणि च चर्माणि खड्गांश्च कनकत्सरून् २४
कृतकण्ठगुणाः क्षौमा रक्तमाल्यानुलेपनाः।
रक्ताक्षाः पुष्कराक्षाश्च गगनं प्रतिपेदिरे २५
हारनूपुरकेयूरपरिहार्यधराः स्त्रियः।
विस्मिताः सस्मितास्तस्थुराकाशे रमणैः सह २६

लगे। तब कुपित हुए विषवाले सर्पों से डंक मारी हुई वे शिला अग्नि से उद्दीप्त हो जलने लगीं और अनेक अनेक टुकडेवाली हो गई। (१६-२०)

उस पर्वत पर उत्पन्न हुए, जो औषधियों के समूह विष के दूर करनेवाले भी थे, वे सर्पों के विष को शान्त करने को समर्थ नहीं हुए। प्राणियोंद्वारा यह पर्वत भेद को प्राप्त होता है, यह मान कर तपस्वी चल दिये। स्त्रीसमूहों के साथ भयभीत विद्याधर सुवर्ण के आसनपात्र को पानभूमि में छोडकर तथा बहुत कीमती सुवर्ण के भोजपत्र तथा कमण्डलु को छोड कर चल दिये। चटनी आदि उत्तम भक्ष्य पदार्थ और अनेक प्रकार के मांस, ऋषभचर्म से बन्धे हुए सोने की मूठवाले खड्गों को त्याग कर माला पहिने, मत्त, लाल नेत्रोंवाले, कमलसदृश नेत्रवाले, राग माला तथा अनुलेपन से युक्त (विद्याधरादि) आकाश को चल दिये। (२१-२५)

हार, बिछुवे, बाजू और कडे को पहिने हुई अपने पतियों के साथ

एष पर्वतसंकाशो हनूमान्मारुतात्मजः ।
तितीर्षति महावेगः समुद्रं वरुणालयम् २७
रामार्थं वानरार्थं च चिकीर्षन्कर्म दुष्करम् ।
समुद्रस्य परं पारं दुष्प्रापं प्राप्तुमिच्छति २८
इति विद्याधरा वाचः श्रुत्वा तेषां तपस्विनाम् ।
तमप्रमेयं ददृशुः पर्वते वानरर्षभम् २९
दुधुवे च स रोमाणि चकम्पे चानलोपमः ।
ननाद च महानादं सुमहानिव तोयदः ३०
आनुपूर्व्या च वृत्तं तल्लाङ्गूलं लोमभिश्चितम् ।
उत्पतिष्यन्विचिक्षेप पक्षिराज इवोरगम् ३१
तस्य लाङ्गूलमाविद्धमतिवेगस्य पृष्ठतः ।
ददृशे गरुडेनेव ह्रियमाणो महोरगः ३२
बाहू संस्तम्भयामास महापरिघसंनिभौ ।
आससाद कपिः कट्यां चरणौ संचुकोच च ३३

मुस्कानयुक्त स्त्रियाँ आकाश में स्थित हो गयीं । श्रेष्ठ विद्याधर महाविद्या को दिखाते हुए आकाश में स्थित हो गये और उस पर्वत को देखने लगे । तब विद्याधरोंने विमल आकाश में स्थित आत्मज्ञानी ऋषियों, चारणों तथा सिद्धों का शब्द सुना । " यह पर्वत के समान दृढ, बडे वेगवाला मारुति मगर आदिकों के स्थान समुद्र को पार करना चाहता है। राम तथा वानर के लिये दुष्कर कर्म को करने की इच्छा करता हुआ यह समुद्र के दूसरे पार को प्राप्त होना चाहता है । " विद्याधरोंने उन महात्माओं का ऐसा वचन सुन कर पर्वत पर स्थित अप्रमेय हनुमान् को देखा । उधर पर्वतोपम हनुमान् ने अपने रोमों को फुलाया और शरीर को कम्पाया, तथा बडे मेघ के तुल्य बडा भारी नाद किया । (२६-३०)

कूदते हुए हनुमान् ने क्रम से गोल, रोमों से पूर्ण पूंछ को इस प्रकार घुमाया जैसे गरुड सांप को । वेगित हनुमान् की पृष्ठ से हिलती हुई पूंछ गरुड से हिलाये सांप के तुल्य दिखलाई दी । कूदने के समय उसने

संहृत्यं च भुजौ श्रीमांस्तथैव च शिरोधराम् ।
तेजः सत्त्वं तथा वीर्यमाविवेश स वीर्यवान् ३४
मार्गमालोकयन्दूरादूर्ध्वप्राणिहितेक्षणः ।
रुरोध हृदये प्राणानाकाशमवलोकयन् ३५
पद्भ्यां दृढमवस्थानं कृत्वा स कपिकुञ्जरः ।
निकुञ्च्य कर्णौ हनुमानुत्पतिष्यन्महाबलः ३६
वानरान्वानरश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ।
यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः ३७
गच्छेत्तद्वद्गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम् ।
न हि द्रक्ष्यामि यदि तां लङ्कायां जनकात्मजाम् ३८
अनेनैव हि वेगेन गमिष्यामि सुरालयम् ।
यदि वा त्रिदिवे सीतां न द्रक्ष्यामि कृतश्रमः ३९
बद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम् ।
सर्वथा कृतकार्योऽहमेष्यामि सह सीतया ४०
आनयिष्यामि वा लङ्कां समुत्पाट्य सरावणाम् ।

परिघसमान बाहुओं को निश्चल कर लिया और शरीर को तथा पैरों को संकुचित कर लिया। भुजाओं को तथा ग्रीवा को सिकोड कर श्रीमान् मारुतिने तेज, पराक्रम तथा बल को प्राप्त किया। ऊपर को दृष्टि लगाये, मार्ग को देखते हुए तथा आकाश को देखते हुए हनुमान् ने हृदय में श्वास को रोक लिया। (३१–३५)

महाबली श्रेष्ठ हनुमान् ने पैरों से दृढ स्थिति करके कानों को सिकोड-कर गमन करते हुए वानरों से यह वचन कहा कि, जैसे श्वासरूपी विक्रमवाला, राघव से छोडा हुआ बाण जावे, उसकी न्याईं मैं रावण से पालित लङ्का को जाऊंगा। यदि मैं लङ्का में सीता को नहीं देखूंगा, तो इसी वेग से सुरालय को जाऊंगा। यदि स्वर्ग में सीता को न देखूंगा, तो अकृतश्रम (निष्फल प्रयोजनवाला) मैं राक्षसों के स्वामी रावण को बांध कर ले आऊंगा। मैं सर्वथा कृतकार्य ही सीतासहित आऊंगा वा रावण-

एवमुक्त्वा तु हनुमान्वानरो वानरोत्तमः ४१
उत्पपाताथ वेगेन वेगवानविचारयन् ।
सुपर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुञ्जरः ४२
समुत्पतति वेगात्तु वेगात्ते नगरोहिणः ।
संहृत्य विटपान्सर्वान्समुत्पेतुः समन्ततः ४३
स मत्तकोयष्टिभकान्पादपान्पुष्पशालिनः ।
उद्वहन्नूरुवेगेन जगाम विमलेऽम्बरे ४४
ऊरुवेगोत्थिता वृक्षा मुहूर्तं कपिमन्वयुः ।
प्रस्थितं दीर्घमध्वानं स्वबन्धुमिव बान्धवाः ४५
तमूरुवेगोन्मथिताः सालाश्चान्ये नगोत्तमाः ।
अनुजग्मुर्हनूमन्तं सैन्या इव महीपतिम् ४६
सुपुष्पिताग्रैर्बहुभिः पादपैरन्वितः कपिः ।
हनूमान्पर्वताकारो बभूवाद्भुतदर्शनः ४७
सारवन्तोऽथ ये वृक्षा न्यमज्जँल्लवणाम्भसि ।
भयादिव महेन्द्रस्य पर्वता वरुणालये ४८

सहित लङ्का को उखाड कर ले आऊगा।" (३६-४१)

वानरश्रेष्ठ हनुमान् वानरों से ऐसा कह कर (क्लेशों का विचार नहीं करता हुआ) उड चला और वह कपिश्रेष्ठ अपने को गरुड के समान समझने लगा। वेग से हनुमान् के चलने पर पर्वतोत्पन्न वृक्ष शाखाओं को संकुचित कर के सब ओर से ऊपर को उछलने लगे। हनुमान् फूलोंवाले छोटे छोटे वृक्षोंको ऊरु वेगसे ले जाता हुआ विमल आकाशमें चल दिया। ऊरु वेग से उठाये हुए वृक्ष क्षणेक हनुमान् के पीछे चले, जैसे कि दीर्घ यात्रा को जाते हुए अपने बन्धु के पीछे बान्धव जाते हैं। (४१-४५)

ऊरुवेग से उन्मथित साल तथा अन्य वृक्ष उस हनुमान् के पीछे ऐसे चले जैसे राजा के पीछे सैनिक। फूलों से युक्त शाखावाले बहुत से वृक्षों से अन्वित कपि हनुमान् पर्वत के समान आकारवाला अद्भुत दर्शनवाला हो गया। स्थिर अशवाले जो वृक्ष थे, वे वरुणालय लवणोदधि में

स नानाकुसुमैः कीर्णः कपिः साङ्कुरकोरकैः।
शुशुभे मेघसंकाशः खद्योतैरिव पर्वतः ४९
विमुक्तास्तस्य वेगेन मुक्त्वा पुष्पाणि ते द्रुमाः।
व्यवशीर्यन्त सलिले निवृत्ताः सुहृदो यथा ५०
लघुत्वेनोपपन्नं तद्विचित्रं सागरेऽपतत्।
द्रुमाणां विविधं पुष्पं कपिवायुसमीरितम् ५१
पुष्पौघेण सुगन्धेन नानावर्णेन वानरः।
बभौ मेघ इवोद्यन्वै विद्युद्गणविभूषितः ५२
तस्य वेगसमुद्धूतैः पुष्पैस्तोयमदृश्यत।
ताराभिरिव रामाभिरुदिताभिरिवाम्बरम् ५३
तस्याम्बरगतौ बाहू ददृशाते प्रसारितौ।
पर्वताग्राद्विनिष्क्रान्ता पञ्चास्याविव पन्नगौ ५४
पिबन्निव बभौ चापि सोर्मिजालं महार्णवम्।
पिपासुरिव चाकाशं ददृशे स महाकपिः ५५

डूब गये, जैसे महेन्द्र के भय से पर्वत। अंकुरयुक्त कलियोंवाले अनेक पुष्पों से व्याप्त मेघतुल्य हनुमान् शोभित हुआ, जैसे रात्रि में खद्योतों (जुगनू) से पर्वत। हनुमान् के वेग से विमुक्त वृक्ष फूलों को त्याग कर सलिल में स्थित हो गये, जैसे निवृत्त हुए सहृद्। (४६-५०)

हलकेपन से युक्त, विचित्रतायुक्त और कपि की वायु से प्रेरित वे अनेक प्रकार के वृक्षकुसुम समुद्र में गिरे। अनेक वर्ण के व्याप्त पुष्पसमूह से हनुमान् इस प्रकार शोभित हुआ, जैसे आकाश में बिजलीसमूह से भूषित मेघ। हनुमान् के वेग से उठाये हुए फूलों से समुद्रजल उत्पन्न हुए मनोहर तारों से युक्त आकाश के समान दीखने लगा। आकाश में व्याप्त फैली हुई हनुमान् की भुजा पर्वत के शिखरसे निकले हुए पांच मुखवाले सर्पों के समान दीखने लगीं। वह हनुमान् लहरीसमूह से युक्त महासमुद्र को पीता हुआसा प्रकाशित हुआ और प्यासे के समान आकाश को देखने लगा। (५१-५५)

तस्य विद्युत्प्रभाकारे वायुमार्गानुसारिणः।
नयने विप्रकाशेते पर्वतस्थाविवानलौ ५६
पिङ्गे पिङ्गाक्षमुख्यस्य बृहती परिमण्डले।
चक्षुषी संप्रकाशेते चन्द्रसूर्याविव स्थितौ ५७
मुखं नासिकया तस्य ताम्रया ताम्रमाबभौ।
संध्यया समभिस्पृष्टं यथा स्यात्सूर्यमण्डलम् ५८
लाङ्गूलं च समाविद्धं प्लवमानस्य शोभते।
अम्बरे वायुपुत्रस्य शक्रध्वज इवोच्छ्रितम् ५९
लाङ्गूलचक्रो हनुमाच्छुक्लदंष्ट्रोनिलात्मजः।
व्यरोचत महाप्राज्ञः परिवेषीव भास्करः ६०
स्फिग्देशेनाताम्रेण रराज स महाकपिः।
महता दारितेनेव गरिणा गैरिकधातुना ६१
तस्य वानरसिंहस्य प्लवमानस्य सागरम्।
कक्षान्तरगतो वायुर्जीमूत इव गर्जति ६२
खे यथा निपतत्युल्का उत्तरान्ताद्विनिःसृता।

वायुमार्ग के अनुगामी उसके बिजली की प्रभा के समान नेत्र पर्वतस्थ अग्नि के समान प्रकाशित होने लगे। कपिमुख्य हनुमान् के पिङ्गलवर्ण, विशाल, मण्डलाकारवाले नेत्र उदित हुए, चन्द्र तथा सूर्य के समान प्रकाशित होने लगे। उसका मुख ताम्रवर्णवाली नासिका से ताम्र प्रकाशित होने लगा, जैसे सन्ध्या से युक्त सन्ध्या के सूर्यमण्डल। कूदते हुए हनुमान् की उठाई हुई पूंछ आकाश में उठे हुए शक्रध्वज के समान दीखने लगी। लांगूलचक्र से शुक्ल दंष्टावाला पवनपुत्र महाप्राज्ञ हनुमान् इस प्रकार प्रकाशित हुआ जैसे कि, मण्डलवाला सूर्य। (५६-६०)

ताम्र रंग के स्फिक् नामक अंग से वह कपि तोडे हुए बडे भारी गैरिक धातु से पर्वत के समान प्रकाशित होने लगा। वानरों में श्रेष्ठ समुद्र को लांघते हुए उस हनुमान् के बगल के बीच को प्राप्त वायु मेघ के समान गर्जता था। जैसे आकाश में उत्तरान्त से निकली गिरती हुई पूंछवाली

दृश्यते सानुबन्धा च तथा स कपिकुञ्जरः　　६३
पतत्पतङ्गसंकाशो व्यायतः शुशुभे कपिः ।
प्रवृद्ध इव मातङ्गः कक्ष्यया बध्यमानया　　६४
उपरिष्टाच्छरीरेण छायया चावगाढया ।
सागरे मारुताविष्टा नौरिवासीत्तदा कपिः　　६५
यं यं देशं समुद्रस्य जगाम स महाकपिः ।
स तु तस्याङ्गवेगेन सोन्माद इव लक्ष्यते　　६६
सागरस्योर्मिजालानामुरसा शैलवर्ष्मणा ।
अभिघ्नंस्तु महावेगः पुप्लुवे स महाकपिः　　६७
कपिवातश्च बलवान्मेघवातश्च निर्गतः ।
सागरं भीमनिर्हादं कम्पयामासतुर्भृशम्　　६८
विकर्षन्नूर्मिजालानि बृहन्ति लवणाम्भसि ।
पुप्लुवे कपिशार्दूलो विकिरन्निव रोदसी　　६९
मेरुमन्दरसंकाशानुद्वहन्सुमहार्णवे ।
अत्यक्रामन्महावेगस्तरङ्गान्गणयन्निव　　७०

उल्का दिखलाई देती है, उसी प्रकार यह कपिश्रेष्ठ दीखने लगा। सूर्य के सदृश, दीर्घ कपि चलता हुआ शोभित हुआ जैसे बन्धी हुई जंजीर से बडा भारी हाथी। उर्ध्वगत शरीर से तथा गाढी परछाई से, हनुमान् सागर में वायु से युक्त नौका के समान दिखलाई दिया। (६१-६५)

वह महाकपि हनुमान् समुद्र के जिस जिस भाग में जाता, वह भाग हनुमान् के ऊरुवेगसे उन्मत्त की न्याई दिखलाई देने लगा। महावेगवाला वह कपि समुद्र के शैलतुल्य लहरीसमूह को छाती से हनन करता हुआ कूदने लगा। कपिवेग से विस्तृत वायु तथा मेघमण्डल से उत्पन्न बढी हुई वायु भयंकर शब्दवाले सागर को अतिशय कम्पाने लगी। कपिश्रेष्ठ हनुमान् समुद्र में उत्पन्न बडे बडे लहरीसमूहों को खेंचते हुए तथा स्वर्ग व पृथिवी को भेदन करते हुए कूदने लगा। बडे वेगवाला वह महार्णव में उत्पन्न मेरुमन्दिर के समान तरङ्गों को गिनता हुआसा कूदने लगा। (६६-७०)

तस्य वेगसमुद्धुष्टं जलं सजलदं तदा ।
अम्बरस्थं विबभ्राजे शरदभ्रमिवाततम् ७१
तिमिनक्रझषाः कूर्मा दृश्यन्ते विवृतास्तदा ।
वस्त्रापकर्षणेनेव शरीराणि शरीरिणाम् ७२
क्रममाणं समीक्ष्याथ भुजगाः सागरंगमाः ।
व्योम्नि तं कपिशार्दूलं सुपर्णमिव मेनिरे ७३
दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता ।
छाया वानरसिंहस्य जवे चारुतराभवत् ७४
श्वेताभ्रघनराजीव वायुपुत्रानुगामिनी ।
तस्य सा शुशुभे छाया पतिता लवणाम्भसि ७५
शुशुभे स महातेजा महाकायो महाकपिः ।
वायुमार्गे निरालम्बे पक्षवानिव पर्वतः ७६
येनासौ याति बलवान्वेगेन कपिकुञ्जरः ।
तेन मार्गेण सहसा द्रोणीकृत इवार्णवः ७७
आपातं पक्षिसङ्घानां पक्षिराज इव व्रजन् ।
हनुमान्मेघजालानि प्रकर्षन्मारुतो यथा ७८

उस समय हनुमान्के वेगसे उद्धूत जल मेघसहित अम्बरस्थ शरत्काल के बडे मेघ के समान प्रकाशमान हुआ । उस समय तिमि (महामत्स्य), ग्राह, मछली और कूर्म जलभेद से साफ दीखने लगे जैसे वस्त्र उतार लेने से मनुष्यों के शरीर । सागरनिवासी सर्प कूदते हुए को देख कर आकाश में उस कपिश्रेष्ठ हनुमान् को गरुड मानने लगे । जल में हनुमान् की छाया दश योजन चौडी और तीस योजन लम्बी दीखने लगी । श्वेत बादलों की पंक्ति के समान, लवणोदधि में पडी हुई, हनुमान की अनुगामिनी छाया शोभित होने लगी । (७१-७५)

बडी कायावाला महातेजस्वी वह कपि निरालम्ब आकाश में पक्षवाले पर्वत के समान शोभित होने लगा । यह श्रेष्ठ वानर वेग से जिस मार्ग से जाता, उस मार्गमें एकदम समुद्र द्रोणी कर दिया । पक्षिसमूहोंके मार्ग

पाण्डुरारुणवर्णानि नीलमञ्जिष्ठकानि च।
कपिनाकृष्यमाणानि महाभ्राणि चकाशिरे ७९
प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः।
प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च चन्द्रमा इव दृश्यते ८०
प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा प्लवगं त्वरितं तदा।
ववृषुस्तत्र पुष्पाणि देवगन्धर्वदानवाः ८१
ततापं न हि तं सूर्यः प्लवन्तं वानरेश्वरम्।
सिषेवे च तदा वायू रामकार्यार्थसिद्धये ८२
ऋषयस्तुष्टुवुश्चैनं प्लवमानं विहायसा।
जगुश्च देवगन्धर्वाः प्रशंसन्तो वनौकसम् ८३
नागाश्च तुष्टुवुर्यक्षा रक्षांसि विविधानि च।
प्रेक्ष्य सर्वे कपिवरं सहसा विगतक्लमम् ८४
तस्मिन्प्लवगशार्दूले प्लवमाने हनूमति।
इक्ष्वाकुकुलमानार्थी चिन्तयामास सागरः ८५

में गरुड के समान जाता हुआ हनुमान् मेघसमूहों को खींचने लगा, जैसे वायु खींचता है। पाण्डुर तथा अरुण वर्णवाले नीले, मञ्जीष्ठ के से रंग-वाले वानर से खींचे हुए बडे बडे बादल प्रकाशित होने लगे। वह अभ्र-समूहों में घुसता और पुनः पुनः निकलता हुआ, छिपते तथा प्रकाशित चन्द्र के समान दीखने लगा। (७६-८०)

तब कूदते हुए उस वानर को देख कर देव, गन्धर्व तथा दानवों ने फूलों की वर्षा की। कूदते हुए उस वानर को सूर्य ने नहीं तपाया, राम के कार्य की सिद्धि के लिये वायु ने उसकी सेवा की। ऋषि आकाश से कूदते हुए उसकी स्तुति करने लगे और बडे पराक्रमवाले उसकी प्रशंसा करते हुए देवगन्धर्व (गीत) गाने लगे। नाग, यक्ष, राक्षस, देवता, पक्षी ये सब विगतक्लमवाले कपिश्रेष्ठ हनुमान् को देखकर स्तुति करने लगे। वानरश्रेष्ठ उस हनुमान् के कूदने पर इक्ष्वाकुकुल की इज्जत चाहने-वाला सागर विचार करने लगा। (८१-८५)

साहाय्यं वानरेन्द्रस्य यदि नाहं हनूमतः ।
करिष्यामि भविष्यामि सर्ववाच्यो विवक्षताम् ८६
अहमिक्ष्वाकुनाथेन सागरेण विवर्धितः ।
इक्ष्वाकुसचिवश्चायं तन्नार्हत्यवसादितुम् ८७
तथा मया विधातव्यं विश्रमेत यथा कपिः ।
शेषं च मयि विश्रान्तः सुखी सोऽतितरिष्यति ८८
इति कृत्वा मतिं साध्वीं समुद्रश्छन्नमम्भसि ।
हिरण्यनाभं मैनाकमुवाच गिरिसत्तमम् ८९
त्वमिहासुरसङ्घानां देवराज्ञा महात्मना ।
पातालनिलयानां हि परिघः संनिवेशितः ९०
त्वमेषां ज्ञातवीर्याणां पुनरेवोत्पतिष्यताम् ।
पातालस्याप्रमेयस्य द्वारमावृत्य तिष्ठसि ९१
तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव शक्तिस्ते शैल वर्धितुम् ।
तस्मात्संचोदयामि त्वामुत्तिष्ठ गिरिसत्तम ९२
स एष कपिशार्दूलस्त्वामुपर्येति वीर्यवान् ।

"यदि मैं वानरेन्द्र हनुमान् की सहायता नहीं करूँगा, तो कहनेवालों को मैं सर्व प्रकार से निन्दनीय हूगा । इक्ष्वाकुनाथ सगर ने मुझे बढाया था, यह इक्ष्वाकुसचिव दुःखित होने के योग्य नहीं है । मुझे वैसा ही करना चाहिये, जिससे यह कपि श्रमरहित हो । मुझ में विश्राम पाया यह शेष (मार्ग) को सुखसे कूद सकेगा ।" इस प्रकार की उत्तम बुद्धि करके समुद्र ने स्वर्णश्रृंगवाले, जल में छिपे हुए और पर्वतों में श्रेष्ठ मैनाक से कहा । (८६-८९)

हे गिरिश्रेष्ठ ! पातालनिवासी असुरसमूहों का अर्गल तुझे इन्द्र ने यहां निवेशित किया था । जातवीर्य और पुनः निकल आनेवाले उन के अप्रमाणवाले पाताल का द्वार रोक कर तू यहां स्थित है । हे शैल ! तिरछे प्रकार, ऊर्ध्व, नीचे को बढने की तेरी शक्ति है । हे गिरिश्रेष्ठ ! इस लिये मैं तुझे प्रेरणा करता हूं कि, रामकार्य के लिये आकाश में प्राप्त,

हनूमान्ग्रामकार्यार्थी भीमकर्मा खमाप्लुतः।
श्रमं च प्लवगेन्द्रस्य समीक्ष्योत्थातुमर्हसि ९३
हिरण्यगर्भो मैनाको निशम्य लवणाम्भसः।
उत्पपात जलात्पूर्णं महाद्रुमलतावृतः ९४
स सागरजलं भित्त्वा बभूवात्युच्छ्रितस्तदा।
यथा जलधरं भित्त्वा दीप्तरश्मिर्दिवाकरः ९५
स महात्मा मुहूर्तेन पर्वतः सलिलावृतः।
दर्शयामास शृङ्गाणि सागरेण नियोजितः
शातकुम्भमयैः शृङ्गैः सकिंनरमहोरगैः।
आदित्योदयसंकाशैरुल्लिखद्भिरिवाम्बरम् ९७
तस्य जाम्बूनदैः शृङ्गैः पर्वतस्य समुत्थितैः।
आकाशं शस्त्रसंकाशमभवत्काञ्चनप्रभम् ९८
जातरूपमयैः शृङ्गैर्भ्राजमानैर्महाप्रभैः।
आदित्यशतसंकाशः सोऽभवद्गिरिसत्तमः ९९
समुत्थितमसङ्गेन हनूमानग्रतः स्थितम्।
मध्ये लवणतोयस्य विघ्नोऽयमिति निश्चितः १००

भयंकर कर्मवाला, पराक्रमी, कपिश्रेष्ठ यह हनुमान् तेरे ऊपर आता है। वानरेन्द्र का श्रम देख तुम उठने को योग्य हो।" सुवर्णनाभ मैनाक लवणोदधि के वचन सुनकर जल से शीघ्र बड़े वृक्षलताओं से युक्त निकला। उस समय वह सागर के जल को भेदन करके उत्पन्न हो गया, जैसे बादलको भेद कर दीप्त किरणोंवाला सूर्य। (९०-९५)

जल से आवृत समुद्र से नियोजित महात्मा वह पर्वत मुहूर्त भर में शृंगों को दिखाने लगा। स्वर्णसदृश, किन्नर और महोरगों से पूर्ण, उदित हुए सूर्य के समान, आकाश चित्रित करते हुए से शृंगोंसे उपलक्षित वह (मैनाक) शृंगों को दिखलाने लगा। तप्तस्वर्ण, उत्पन्न हुए पर्वतशिखरों से नील आकाश स्वर्णप्रभावाला हो गया। प्रकाशित होते हुए, स्वयंप्रभावाले, स्वर्णमय शृंगों से वह श्रेष्ठ पर्वत सौ सूर्यों के समान हो गया।

स तमुच्छ्रितमत्यर्थं महावेगो महाकपिः ।
उरसा पातयामास जीमूतमिव मारुतः १०१
स तदासादितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः ।
बुद्ध्वा तस्य हरेर्वेगं जहर्ष च ननाद च १०२
तमाकाशगतं वीरकामाशे समुपस्थितः ।
प्रीतो हृष्टमना वाक्यमब्रवीत्पर्वतः कपिम् १०३
मानुषं धारयन्रूपमात्मनः शिखरे स्थितः ।
दुष्करं कृतवान्कर्म त्वमिदं वानरोत्तम १०४
निपत्य मम शृङ्गेषु सुखं विश्रम्य गम्यताम् ।
राघवस्य कुले जातैरुदधिः परिवर्धितः १०५
स त्वां रामहिते युक्तं प्रत्यर्चयति सागरः ।
कृते च प्रतिकर्तव्यमेष धर्मः सनातनः १०६
सोऽयं तत्प्रतिकारार्थी त्वत्तः संमानमर्हति ।
त्वन्निमित्तमनेनाहं बहुमानात्प्रचोदितः १०७
योजनानां शतं चापि कपिरेष खमाप्लुतः ।

हनुमान् ने लवणोदधि के मध्य में आगे स्थित उत्पन्न हुए उस (मैनाक) को ' यह विघ्न है, ' ऐसा निश्चित किया । (९६-१००)

बडे वेगवाले महाकपि इसने अत्यन्त उठे हुए उसको छाती से गिरा दिया, जैसे वायु मेघ को । कपि से गिराये उस पर्वतश्रेष्ठ ने उस कपि के वेग को जानकर आश्चर्य और आनन्द को प्राप्त किया। आकाशमें उपस्थित, प्रसन्न हुआ, हृष्टमना, मनुष्य का रूप धारण किये अपने शिखर पर स्थित वह पर्वत आकाशस्थ वीर कपि से कहने लगे- " हे वानरोत्तम ! तूने यह दुष्कर कर्म किया है। मेरे शृंगों पर उतर कर सुखपूर्वक विश्राम कर। राघव के कुल में उत्पन्न हुओं से बढाया हुआ यह सागर रामहित में युक्त तुमको अर्चित करता है । उपकार का प्रतिकार करना चाहिये, यह सनातन धर्म है । (१०१-१०६)

"अतः प्रतिकारार्थी यह समुद्र तुमसे सम्मानको चाहता है । तुम्हारे निमित्त

तव सानुषु विश्रान्तः शेषं प्रक्रमतामिति १०८
तिष्ठ त्वं हरिशार्दूल मयि विश्रम्य गम्यताम् ।
तदिदं गन्धवत्स्वादु कन्दमूलफलं बहु १०९
तदास्वाद्य हरिश्रेष्ठ विश्रान्ताऽथ गमिष्यसि ।
अस्माकमपि संबन्धः कपिमुख्य त्वयास्ति वै ११०
प्रख्यातस्त्रिषु लोकेषु महागुणपरिग्रहः
वेगवन्तः प्लवन्तो ये प्लवगा मारुतात्मज ।
तेषां मुख्यतमं मन्ये त्वामहं कपिकुञ्जर १११
अतिथिः किल पूजार्हः प्राकृतोऽपि विजानता ।
धर्मं जिज्ञासमानेन किं पुनर्यादृशो भवान् ११२
त्वं हि देववरिष्ठस्य मारुतस्य महात्मनः ।
पुत्रस्तस्यैव वेगेन सदृशः कपिकुञ्जर ११३
पूजिते त्वयि धर्मज्ञ पूजां प्राप्नोति मारुतः ।
तस्मात्त्वं पूजनीयो मे शृणु चाप्यत्र कारणम् ११४

इसने बहुत आदरसे मुझे प्रेरित किया था कि, हनुमान् सौ योजन कूदनेके निमित्त आकाश में जाता है, वह तेरे शिखरों पर विश्राम लेता हुआ जावे। अतः हे कपिश्रेष्ठ ! यह सुगन्धियुक्त स्वादु कन्दमूलफल खाकर विश्रान्त हो जाओ। हे कपिमुख्य ! तुम से हमारा भी तीनों लोकों में प्रसिद्ध महा-गुणवाला सम्बन्ध है। (१०७-११०)

" हे मारुतपुत्र ! जो कूदने फांदनेवाले वेगवाले प्लवग हैं, उन सब में हे कपिश्रेष्ठ ! मैं तुम को श्रेष्ठ समझता हूं। धर्म जानने की इच्छावाले विद्वान् को प्राकृत अतिथि पूजनीय है, फिर भला तुम सदृश का कहना ही क्या है ! हे कपिकुञ्जर ! देवों में बडे महात्मा वायु का तू पुत्र है और उसके समान वेगवाला है। हे धर्मज्ञ ! तुम्हारा पूजन करने पर मारुत पूजित होता है, इस से तुम मेरे पूजनीय हो, इस विषय में कारण सुनो। (१११-११५)

पूर्वं कृतयुगे तात पर्वताः पक्षिणोऽभवन् ।
तेऽपि जग्मुर्दिशः सर्वा गरुडा इव वेगिनः ११६
ततस्तेषु प्रयातेषु देवसङ्घाः सहर्षिभिः ।
भूतानि च भयं जग्मुस्तेषां पतनशङ्कया ११७
ततः क्रुद्धः सहस्राक्षः पर्वतानां शतक्रतुः ।
पक्षांश्चिच्छेद वज्रेण ततः शतसहस्रशः ११८
स मामुपगतः क्रुद्धो वज्रमुद्यम्य देवराट् ।
ततोऽहं सहसा क्षिप्तः श्वसनेन महात्मना ११९
अस्मिल्लवणतोये च प्रक्षिप्तः प्लवगोत्तम ।
गुप्तपक्षः समग्रश्च तव पित्राभिरक्षितः १२०
ततोऽहं मानयामि त्वां मान्योऽसि मम मारुते ।
त्वया ममैष संबन्धः कपिमुख्य महागुणः १२१
अस्मिन्नेवंगते कार्ये सागरस्य ममैव च ।
प्रीतिं प्रीतमनाः कर्तुं त्वमर्हसि महामते १२२
श्रमं मोक्षय पूजां च गृहाण हरिसत्तम ।
प्रीतिं च मम मान्यस्य प्रीतोऽस्मि तव दर्शनात् १२३

हे तात ! पुराकाल सत्ययुग में पर्वत पक्षवाले थे, गरुड तथा वायु की गतिवाले थे सब सब दिशाओं को चले। तदनन्तर उनके चलने पर ऋषियोंसहित देवसमुदाय और समस्त प्राणियों को गिरने की शंका से भय उत्पन्न हुआ। इससे क्रुद्ध हुए इन्द्र ने वज्र से पर्वतों के पंख काट डाले। क्रुद्ध देवराज वज्र उठाकर मुझे प्राप्त हुआ, तदनु महात्मा वायु ने मुझे उठा लिया और हे वानरश्रेष्ठ! इस लवणोदधि में फेंक दिया। (इस तरह) रक्षित समग्र पक्षोंवाले मुझे तेरे पिताने बचाया। (११६-१२०)

इस से मैं तुम्हारा मान करता हूं और मारुत मेरा माननीय है। हे कपिश्रेष्ठ! तेरे साथ मेरा यह महागुणवाला सम्बन्ध है। हे महाकपे! इस प्रकार के कार्य प्राप्त होने पर प्रीतमना तुम्हें सागर की तथा मेरी प्रीति करनी चाहिए। हे कपिश्रेष्ठ! श्रम को त्यागो, पूजा को स्वीकार करो

एवमुक्तः कपिश्रेष्ठस्तं नगोत्तममब्रवीत्।
प्रीतोऽस्मि कृतमातिथ्यं मन्युरेषोऽपनीयताम् १२४
त्वरते कार्यकालो मे अहश्चाप्यतिवर्तते।
प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा १२५
इत्युक्त्वा पाणिना शैलमालभ्य हरिपुंगवः।
जगामाकाशमाविश्य वीर्यवान्प्रहसन्निव १२६
स पर्वतसमुद्राभ्यां बहुमानादवेक्षितः।
पूजितश्चोपपन्नाभिराशीर्भिरभिनन्दितः १२७
अथोर्ध्वं दूरमाप्लुत्य हित्वा शैलमहार्णवौ।
पितुः पन्थानमासाद्य जगाम विमलेऽम्बरे १२८
भूयश्चोर्ध्वं गतिं प्राप्य गिरिं तमवलोकयन्।
वायुसूनुर्निरालम्बो जगाम कपिकुञ्जरः १२९
तद्वितीयं हनुमतो दृष्ट्वा कर्म सुदुष्करम्।
प्रशशंसुः सुराः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः १३०

और प्रीति को बहुत मानो, मैं तुम्हारे दर्शन से प्रसन्न हुआ हूं। इस प्रकार बोधित कपिश्रेष्ठ हनुमान् उस श्रेष्ठ पर्वत से बोला कि, तुमने हमारा आतिथ्य किया, इस से मैं प्रसन्न हूं, आप क्रोध को दूर कीजिये। मेरा कार्यकाल जल्दी कराता है, दिन भी बीतता है और मैंने यह प्रतिज्ञा भी की है कि इसके बीच में ठहरना नहीं चाहिये। (१२१-१२५)

हरिश्रेष्ठ वीर्यवान् हनुमान् ऐसा कह कर हाथ से शैल को स्पर्श करके हंसता हुआसा आकाश को चल दिया। पर्वत तथा समुद्र ने बहुत मान से हनुमान् को देखा तथा योग्य आशीर्वादों से पूजित किया। इसके बाद हनुमान् ऊंचा उछल कर पर्वत तथा समुद्र को छोड़ कर पिता (पवन) के मार्ग का आश्रय लेकर विमलाकाश में चल दिया। पुनः ऊर्ध्वगति को पाकर उस पर्वत को देखता हुआ वायुपुत्र निराश्रय निर्मलाकाश में चल दिया। समस्त देवता, सिद्ध और परमर्षि हनुमान् के दुष्कर द्वितीय (पर्वतलंघनरूप) कर्म को देखकर प्रशंसा करने लगे। (१२६-१३०)

देवताश्चाभवन्हृष्टास्तत्रस्थास्तस्य कर्मणा ।
काञ्चनस्य सुनाभस्य सहस्राक्षश्च वासवः १३१
उवाच वचनं धीमान्परितोषात्सगद्गदम् ।
सुनाभं पर्वतश्रेष्ठं स्वयमेव शचीपतिः १३२
हिरण्यनाभ शैलेन्द्र परितुष्टोऽस्मि ते भृशम् ।
अभयं ते प्रयच्छामि गच्छ सौम्य यथासुखम् १३३
साह्यं कृतं ते सुमहद्विश्रान्तस्य हनूमतः ।
क्रमतो योजनशतं निर्भयस्य भये सति १३४
रामस्यैष हितायैव याति दाशरथेः कपिः ।
सत्क्रियां कुर्वता शक्त्या तोषितोऽस्मि दृढं त्वया १३५
स तत्प्रहर्षमलभद्विपुलं पर्वतोत्तमः ।
देवतानां पतिं दृष्ट्वा परितुष्टं शतक्रतुम् १३६
स वै दत्तवरः शैलो बभूवावस्थितस्तदा ।
हनूमांश्च मुहूर्तेन व्यतिचक्राम सागरम् १३७
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अब्रुवन्सूर्यसंकाशां सुरसां नागमातरम् १३८

और वहां के रहनेवाले देवता तथा इन्द्र सुन्दर शिखरवाले मैनाक के कर्म से आनन्दित हुए । बुद्धिमान् इन्द्रने प्रसन्नता से स्वय गद्गद् वाणी से पर्वतश्रेष्ठ मैनाक से कहा, हे स्वर्ण शृगवाले शैलेन्द्र ! मैं तुझ पर अतिशय प्रसन्न हुआ हू, मैं तुझे अभय देता हू, तू सुखपूर्वक स्थिर रहे। हमें भय होने पर तुमने सौ योजन लांघते हुए, निर्भय, विक्रान्त हनुमान् की बडी भारी सहायता की है। यह वानर दशरथपुत्र राम के हितत्व से जाता है, उसका सत्कार करते हुए तुमने मुझे अतिशय प्रसन्न कर दिया । (१३१–१३५)

तदनन्तर पर्वतश्रेष्ठ मैनाक देवपति को प्रसन्न देखकर बडे हर्ष को प्राप्त हुआ । प्राप्तवरवाला वह पर्वत वहां स्थित हो गया और हनुमान् मुहूर्त भर में समुद्र को लांघ गया । तदनन्तर गन्धर्वोंसहित देवता, सिद्ध,

अयं वातात्मजः श्रीमान्प्लवते सागरोपरि।
हनूमान्नाम तस्य त्वं मुहूर्तं विघ्नमाचर १३९
राक्षसं रूपमास्थाय सुघोरं पर्वतोपमम्।
दंष्ट्राकरालं पिङ्गाक्षं वक्त्रं कृत्वा नभःस्पृशम् १४०
बलमिच्छामहे ज्ञातुं भूयश्चास्य पराक्रमम्।
त्वां विजेष्यत्युपायेन विषादं वा गमिष्यति १४१
एवमुक्ता तु सा देवी देवतैराभिसत्कृता।
समुद्रमध्ये सुरसा बिभ्रती राक्षसं वपुः १४२
विकृतं च विरूपं च सर्वस्य च भयावहम्।
प्लवमानं हनूमन्तमावृत्येदमुवाच ह १४३
मम भक्ष्यः प्रदिष्टस्त्वमीश्वरैर्वानरर्षभ।
अहं त्वां भक्षयिष्यामि प्रविशेदं ममाननम् १४४
वर एष पुरा दत्तो मम धात्रेति सत्वरा।
व्यादाय वक्त्रं विपुलं स्थिता सा मारुतेः पुरः १४५

परमर्षि आकाश में उसको जाता हुआ देखकर सूर्य के समान दीप्त नागों की माता सुरसा से कहने लगे, यह वायुपुत्र हनुमान् समुद्र के ऊपर कूदता है। तू पर्वततुल्य घोर राक्षसरूप को धर, कराल दाढ़ोंवाला, पीले नेत्रवाला आकाश के समान मुख को करके मुहूर्त भर उसके गमन में विघ्न कर। (१३६-१४०)

हम इसका बल और पराक्रम जानना चाहते हैं कि, यह उपाय से तुझ को जीतेगा वा दुःख को प्राप्त होवेगा। इस प्रकार बोधित, देवतोंसे पूजित उस देवी सुरसा ने समुद्र के मध्य में राक्षसरूप धारण किया। उसका वह रूप विकृत, विरूप और सब को भय देनेवाला था। सुरसा ने कूदते हुए हनुमान् को रोक कर यह कहा कि हे वानरश्रेष्ठ! देवतों ने तुझ को मेरा भोजन बताया है, मैं तुझको खाऊंगी, इस मेरे मुखमें प्रविष्ट हो। ब्रह्माने मुझे पहिले यह वर दिया था। यह कहकर वह मुंह को अतिशय फैलाकर हनुमान् के आगे खड़ी हो गई। (१४१-१४५)

एवमुक्तः सुरसया प्रहृष्टवदनोऽब्रवीत् ।
रामो दाशरथिर्नाम प्रविष्टो दण्डकावनम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया १४६
अस्य कार्यविषक्तस्य बद्धवैरस्य राक्षसैः ।
तस्य सीता हृता भार्या रावणेन यशस्विनी १४७
तस्याः सकाशं दूतोऽहं गमिष्ये रामशासनात् ।
कर्तुमर्हसि रामस्य साह्यं विषयवासिनि १४८
अथवा मैथिलीं दृष्ट्वा रामं चाक्लिष्टकारिणम् ।
आगमिष्यामि ते वक्त्रं सत्यं प्रतिशृणोमि ते १४९
एवमुक्ता हनुमता सुरसा कामरूपिणी ।
अब्रवीन्नातिवर्तेन्मां कश्चिदेष वरो मम १५०
तं प्रयान्तं समुद्वीक्ष्य सुरसा वाक्यमब्रवीत् ।
बलं जिज्ञासमाना सा नागमाता हनूमतः १५१
निविश्य वदनं मेऽद्य गन्तव्यं वानरोत्तम ।
वर एष पुरा दत्तो मम धात्रेति सत्वरा १५२

सुरसा से इस प्रकार बोधित, प्रसन्नमुख, शोभासम्पन्न हनुमान् हाथ जोड यह वचन बोला– दशरथके पुत्र राम, भार्या सीता, तथा भाई लक्ष्मण के साथ दण्डकवन में आये हैं। मारीच के ग्रहण में आसक्त, राक्षसों से वैरवाले उस राम की यशस्विनी भार्या सीता रावण ने हर ली। राम की आज्ञा से दूत मैं उसके पास जाता हूं, रामराज्य में रहनेवाली तुम्हें भी राम की सहायता करनी चाहिये। अथवा मैथिली तथा सरलकर्मा राम को देख कर मैं तेरे मुख में आ जाऊंगा, मैं यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूं। हनुमान्द्वारा इस प्रकार प्रार्थित कामरूपिणी सुरसा बोली कि, मुझे कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता, यह मेरा वर है। (१४६-१५०)

उस को जाता हुआ देख कर हनुमान् का बल जानने की इच्छावाली नागमाता सुरसा ने कहा, हे वानरश्रेष्ठ! मेरे मुख में प्रवेश करके जाना, पुराकाल में ब्रह्मा ने मुझे यह वर दिया था। यह कह वह मुख को

व्यादाय विपुलं वक्त्रं स्थिता सा मारुतेः पुरः ।
एवमुक्तः सुरसया क्रुद्धो वानरपुंगवः १५३
अब्रवीत्कुरु वै वक्त्रं येन मां विषहिष्यसि ।
इत्युक्त्वा सुरसां क्रुद्धो दशयोजनमायताम् १५४
दशयोजनविस्तारो हनूमानभवत्तदा ।
चकार सुरसाप्यास्यं विंशद्योजनमायतम् १५५
तद् दृष्ट्वा व्यादितं त्वास्यं वायुपुत्रः स बुद्धिमान् ।
दीर्घजिह्वं सुरसया सुभीमं नरकोपमम् १५६
स संक्षिप्यात्मनः कायं जीमूत इव मारुतिः ।
तस्मिन्मुहूर्ते हनुमान्बभूवाङ्गुष्ठमात्रकः १५७
सोऽभिपद्याथ तद्वक्त्रं निष्पत्य च महाबलः
अन्तरिक्षे स्थितः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् १५८
प्रविष्टोऽस्मि हि ते वक्त्रं दाक्षायणि नमोऽस्तु ते ।
गमिष्ये यत्र वैदेही सत्यश्चासीद्वरस्तव १५९
तं दृष्ट्वा वदनान्मुक्तं चन्द्रं राहुमुखादिव ।
अब्रवीत्सुरसा देवी स्वेन रूपेण वानरम् १६०

अतिशय फैला कर हनुमान् के आगे खड़ी हो गई । सुरसा से इस प्रकार बोधित क्रुद्ध हुआ हनुमान् बोला कि, ऐसा मुख करो, जिसमें समा सकूं । सुरसा को ऐसा कह कर क्रोधित हनुमान् दश योजन लम्बा और दश योजन चौड़ा हो गया । (१५१-१५५)

दश योजन लम्बा चौड़ा, मेघसदृश हनुमान् को देखकर सुरसा ने बीस योजन लम्बा मुख कर लिया । तब वायुपुत्र हनुमान् विशेष फैला हुआ, लम्बी जिह्वावाला, सुघोर, नरकतुल्य उस मुख को देख कर अपने शरीर को सक्षेप कर के अंगुष्ठमात्र हो गया और शीघ्र ही उसके मुख में घुसकर और निकल कर महावेगवाले, आकाश में स्थित उसने यह वचन कहा कि– हे दाक्षायणि ! मैं तेरे मुख में प्रविष्ट हुआ हूं, तुझे नमस्कार हो, अब मैं वहां जाऊंगा, जहां वैदेही है । तेरा वर भी सत्य हो गया । अपने रूप से

अर्थसिद्ध्यै हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम् ।
समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना १६१
तत्तृतीयं हनुमतो दृष्ट्वा कर्म सुदुष्करम् ।
साधुसाध्विति भूतानि प्रशशंसुस्तदा हरिम् १६२
स सागरमनाधृष्यमभ्येत्य वरुणालयम् ।
जगामाकाशमाविश्य वेगेन गरुडोपमः १६३
सेविते वारिधारामिः पतगैश्च निषेविते ।
चरिते कैशिकाचार्यैरैरावतनिषेवते १६४
सिंहकुञ्जरशार्दूलपतगोरगवाहनैः ।
विमानैः संपतद्भिश्च विमलैः समलंकृते । १६५
वज्राशनिसमस्पर्शैः पावकैरिव शोभिते ।
कृतपुण्यैर्महाभागैः स्वर्गजिद्भिरधिष्ठिते १६६
घहता हव्यमत्यन्तं सेविते चित्रभानुना ।
ग्रहनक्षत्रचन्द्रार्कतारागणविभूषिते १६७

सुरसा देवीने राहुमुख से मुक्त चन्द्र के समान मुख से निकले हुए वानर से कहा । (१५५-१६०)

हे हरिश्रेष्ठ ! हे सौम्य ! अर्थसिद्धि के लिए सुखपूर्वक जा, महात्मा राम से सीता को मिला । उस समय समस्त प्राणी हनुमान् के उस तीसरे कर्म को देखकर 'साधु ! साधु !' कह प्रशंसा करने लगे । गरुडतुल्य वह अधर्षणीय वरुणालय सागर के ऊपर होकर आकाश में प्राप्त होकर वेग से चलने लगा । जलधाराओं से सेवित, पक्षियोंसे आचरित, तुम्बुरुप्रभृतिओं से सेवित, ऐरावत से सेवित, चलते हुए सिंह, हाथी, व्याघ्र, पक्षी, उरग, वाहनों से तथा विमल विमानों से सज्जित, वज्र तथा अशनि के समान घातवाले अग्नि से शोभित, स्वर्ग के जीतनेवाले पुण्यकर्मा महाभागों से सज्जित, अतिशय हव्य को प्राप्त होते हुए चित्रभानु से सेवित, ग्रह, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य-तारागणों से विभूषित, महर्षिसमूह, गन्धर्व, नाग, यक्षोंसे पूर्ण, विश्वावसु से सेवित, विमल, खाली, व्यापक, इन्द्र के हाथी से आक्रान्त,

महर्षिगणगन्धर्वनागयक्षसमाकुले ।
विविक्ते विमले विश्वे विश्वावसुनिषेविते । १६८
देवराजगजाक्रान्ते चन्द्रसूर्यपथे शिवे ।
विताने जीवलोकस्य विमले ब्रह्मनिर्मिते १६९
बहुशः सेविते वीरैर्विद्याधरगणैर्वृते ।
जगाम वायुमार्गे च गरुत्मानिव मारुतिः १७०
हनुमान्मेघजालानि प्राकर्षन्मारुतो यथा १७१
कालागुरुसवर्णानि रक्तपीतसितानि च ।
कपिना कृष्यमाणानि महाभ्राणि चकाशिरे १७२
प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः ।
प्रावृषीन्दुरिवाभाति निष्पतन्प्रविशंस्तथा १७३
प्रदृश्यमानः सर्वत्र हनूमान्मारुतात्मजः ।
भेजेऽम्बरं निरालम्बं पक्षयुक्त इवाद्रिराट् १७४
प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा सिंहिका नाम राक्षसी ।
मनसा चिन्तयामास प्रवृद्धा कामरूपिणी १७५

चन्द्रसूर्य के मार्ग, कल्याणकारी, जीवलोक का विस्तारयुक्त चन्दोवा तुल्य, ब्रह्मा से निर्मित, वीर विद्याधरसमूहों से अत्यन्त सेवित, आकाशमार्ग में गरुडतुल्य हनुमान् मेघसमूहों को खचता हुआ चला, जैसे वायु चलता है। (१६१-१७१)

काले अगर के समान वर्णवाले लाल, पीले और सफेद कपि से आकृष्ट बडे भारी मेघ प्रकाशित होने लगे। उस समय हनुमान् मेघसमूहों में प्रवेश करता और बार बार बाहर निकलता हुआ प्रवेश करते और निकलते हुए वर्षाऋतु के चन्द्रमा के समान प्रकाशित हुआ। सब जगह दीखते हुए मारुतपुत्र हनुमान् ने निरालम्ब आकाश को सेवन किया, जैसे लम्बे पक्षोंवाला पर्वतराज। कामरूपिणी सिंहिका नाम बडी राक्षसी कूदते हुए हनुमान् को देखकर मन में विचारने लगी। (१७२-१७५)

अद्य दीर्घस्य कालस्य भविष्याम्यहमाशिता ।
इदं मम महासत्त्वं चिरस्य वशमागतम् १७६
इति संचिन्त्य मनसा च्छायामस्य समाक्षिपत् ।
छायायां गृह्यमाणायां चिन्तयामास वानरः १७७
समाक्षिप्तोऽस्मि सहसा पङ्गूकृतपराक्रमः ।
प्रतिलोमेन वातेन महानौरिव सागरे १७८
तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव वीक्षमाणस्तदा कपिः ।
ददर्श स महासत्त्वमुत्थितं लवणाम्भसि १७९
तद् दृष्ट्वा चिन्तयामास मारुतिर्विकृताननाम् ।
कपिराज्ञा यथाख्यातं सत्त्वमद्भुतदर्शनम् १८०
छायाग्राहि महावीर्यं तदिदं नात्र संशयः ।
स तां बुध्वाऽर्थतत्त्वेन सिंहिकां मतिमान्कपिः १८१
व्यवर्धत महाकायः प्रावृषीव बलाहकः ।
तस्य सा कायमुद्वीक्ष्य वर्धमानं महाकपेः १८२
वक्त्रं प्रसारयामास पातालाम्बरसंनिभम् ।
घनराजीव गर्जन्ती वानरं समभिद्रवत् १८३
स ददर्श ततस्तस्या विकृतं सुमहन्मुखम् ।

बहुत समय बीतने पर आज मैं खाऊंगी, क्योंकि बहुत काल बाद यह बडा प्राणी मेरे वश में प्राप्त हुआ है। ऐसा मन में विचार कर उसने हनुमान् की छाया को पकड लिया। छाया के पकडे जाने पर हनुमान् विचार ने लगा। समुद्र में प्रतिकूल वायु से खेंची नौकावत् मैं खैंचा हुआ बलहीन किया गया हूं। ऊपर नीचे देखते हुए हनुमान् ने एक बडा जीव समुद्र में उठता हुआ देखा। (१७६-१८०)

हनुमान् ने उस विकृतमुख को देख कर सोचा और कहा कि बडा विलक्षण जीव है, इसीने मेरी छाया पकडी है। हनुमान् ने उसको सिंहिका जान कर अपना शरीर वर्षा के मेघवत् बढाया। हनुमान् के बढे हुए शरीर को देख कर उसने पातालान्तर के समान मुख फैलाया। मेघवत्

कायमात्रं च मेधावी मर्माणि च महाकपिः १८४
स तस्या विकृते वक्त्रे वज्रसंहननः कपिः।
संक्षिप्य मुहुरात्मानं निपपात महाकपिः १८५
आस्ये तस्या निमज्जन्तं ददृशुः सिद्धचारणाः।
ग्रस्यमानं यथा चन्द्रं पूर्णं पर्वणि राहुणा १८६
ततस्तस्या नखैस्तीक्ष्णैर्मर्माण्युत्कृत्य वानरः।
उत्पपाताथ वेगेन मनःसंपातविक्रमः १८७
तां तु दिष्ट्या च धृत्या च दाक्षिण्येन निपात्य सः।
कपिप्रवीरो वेगेन ववृधे पुनरात्मवान् १८८
हृतहृत्सा हनुमता पपात विधुराम्भसि।
स्वयंभुवैव हनुमान्सृष्टस्तस्या निपातने १८९
तां हतां वानरेणाशु पतितां वीक्ष्य सिंहिकाम्।
भूतान्याकाशचारीणि तमूचुः प्लवगोत्तमम् १९०
भीममद्य कृतं कर्म महत्सत्त्वं त्वया हतम्।
साधयार्थमभिप्रेतमरिष्टं प्लवतां वर १९१
यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव।
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति १९२

गर्जती हुई वह हनुमान् की तरफ दौडी। उसके मुख को फैला हुआ देख कर वज्र के तोडनवाले बुद्धिमान् हनुमान् ने उसके खुले हुए मुख में अपने शरीर को सूक्ष्म करके गिरा दिया। (१८१-१८५)

देवताओंने मुखमें घुसते हुए उसे ऐसा देखा, जैसे पर्वमें राहु चन्द्रमाको पकड लेता है। हनुमान् उसके शरीरको नखोंसे छेदन करके मनके वेगतुल्य बाहर निकला। उसको बुद्धिमानी से गिरा कर हनुमान् ने अपना शरीर बढाया और उसको हृदय से दबाकर समुद्र में डाल दिया। उस राक्षसी को समुद्र में गिरा हुआ देख कर आकाशचारी जीव हनुमान् से कहने लगे। (१८६-१९०)

हे वानर! आज तूने बडे बली जीव को मारा, अब अपने इष्ट कार्य

स तैः संपूजितः पूज्यः प्रतिपन्नप्रयोजनैः ।
जगामाकाशमाविश्य पन्नगाशनवत्कपिः १९३
प्राप्तभूयिष्ठपारस्तु सर्वतः परिलोकयन् ।
योजनानां शतस्यान्ते वनराजीं ददर्श सः १९४
ददर्श च पतन्नेव विविधद्रुमभूषितम् ।
द्वीपं शाखामृगश्रेष्ठो मलयोपवनानि च १९५
सागरं सागरानूपान्सागरानूपजान्द्रुमान् ।
सागरस्य च पत्नीनां मुखान्यपि विलोकयत् १९६
स महामेघसंकाशं समीक्ष्यात्मानमात्मवान् ।
निरुन्धन्तमिवाकाशं चकार मतिमान्मतिम् १९७
कायवृद्धिं प्रवेगं च मम द्रष्टैव राक्षसाः ।
मयि कौतूहलं कुर्युरिति मेने महामतिः १९८
ततः शरीरं संक्षिप्य तन्महीधरसंनिभम् ।
पुनः प्रकृतिमापेदे वीतमोह इवात्मवान् १९९
तद्रूपमतिसंक्षिप्य हनूमान्प्रकृतौ स्थितः ।
त्रिन्क्रमानिव विक्रम्य बलिवीर्यहरो हरिः २००

को कर। हे हनुमान्! धृति, दृष्टि, मति, दाक्षिण्य तेरे समान जिस के पास भी ये चारों गुण हों, वह अपने कामोंमें दुःख नहीं पाता। हनुमान् देवताओं से पूजित अपना कार्य करके गरुडवत् आकाश को चला गया। तीर पर खडे हुए हनुमान् ने सौ योजन तक वन को देखा। (१९१-१९४)

हनुमान् जाते हुए नाना वृक्ष, द्वीप, मलयके उपवन, समुद्र और नादियों के मुख देखते हुए मेघवत् अपने शरीरसे आकाश छूता हुआ चला। राक्षस मेरे बढे हुए शरीर और वेग को देख कर मेरे में आश्चर्य करेंगे, ऐसा उसने समझा। महीधरवत् शरीर को सङ्कुचित करके वीतमोहवत् फिर वैसे ही हो गया। उस रूपको अति संक्षिप्त करके हनुमान् प्रकृतिस्थ हो गया, जैसे तीन पैर से बली के वीर्य को हर कर विष्णु। (१९५-२००)

स चारुनानाविधरूपधारी परं समासाद्य समुद्रतीरम् ।
परैरशक्यं प्रतिपन्नरूपः समीक्षितात्मा समवेक्षितार्थः २०१
ततः स लम्बस्य गिरेः समृद्धे विचित्रकूटे निपपात कूटे ।
सकेतकोद्दालकनारिकेले महाभ्रकूटप्रतिमो महात्मा २०२
ततस्तु संप्राप्य समुद्रतीरं समीक्ष्य लङ्कां गिरिवर्यमूर्ध्नि ।
कपिस्तु तस्मिन्निपपात पर्वते विधूय रूपं व्यथयन्मृगद्विजान् २०३
स सागरं दानवपन्नगायुतं बलेन विक्रम्य महोर्मिमालिनम् ।
निपत्य तीरे च महोदधेस्तदा ददर्श लङ्काममरावतीमिव २०४

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

[२०४]

द्वितीयः सर्गः ।

स सागरमनाधृष्यमतिक्रम्य महाबलः ।
त्रिकूटस्य तटे लङ्कां स्थितः स्वस्थो ददर्श ह १
ततः पादपमुक्तेन पुष्पवर्षेण वीर्यवान् ।
अभिवृष्टस्ततस्तत्र बभौ पुष्पमयो हरिः २
योजनानां शतं श्रीमांस्तीर्त्वाप्युत्तमविक्रमः ।
अनिःश्वसन्कपिस्तत्र न ग्लानिमधिगच्छति ३

वह नाना रूपधारी समुद्र के पार होकर पूर्ववत् हो गया । वह विचित्रकूट पर्वत पर जाकर स्थित हुआ, जो केतक उद्दालक नारियलसे भरा हुआ था। ततः समुद्र के तीर पर जाकर उस पर्वत पर लङ्का को देखा और पूर्वरूप को छोड कर पर्वत पर स्थित हो गया । राक्षस और सर्पोंसे युक्त बडी बडी लहरोंवाले समुद्र को बल से पार हो, तीर पर पहुंच अमरावती सम लङ्का को उसने देखा । (२०१-२०४)

यहाँ प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ।

बलवान् हनुमान् ने उस गम्भीर सागर के पार हो, त्रिकूट पर स्थित लङ्का को देखा । पुष्पवृष्टि से युक्त बली वानर वहां पुष्पमय होकर स्थित हुआ । वह पराक्रमी श्वास न लेता हुआ सौ योजन समुद्र को तैर कर थका

शतान्यहं योजनानां क्रमेयं सुबहून्यपि।
किं पुनः सागरस्यान्तं संख्यातं शतयोजनम् ४
स तु वीर्यवतां श्रेष्ठः प्लवतामपि चोत्तमः।
जगाम वेगवाल्लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् ५
शाद्वलानि च नीलानि गन्धवन्ति वनानि च।
मधुमन्ति च मध्येन जगाम नगवन्ति च ६
शैलांश्च तरुसंच्छन्नान्वनराजीश्च पुष्पिताः।
अभिचक्राम तेजस्वी हनूमान्प्लवगर्षभः ७
स तस्मिन्नचले तिष्ठन्वनान्युपवनानि च।
स नगाग्रे स्थितां लङ्कां ददर्श पवनात्मजः ८
सरलान्कर्णिकारांश्च खर्जूरांश्च सुपुष्पितान्।
प्रियालान्मुचुलिन्दांश्च कुटजान्केतकानपि ९
प्रियङ्गून्गन्धपूर्णांश्च नीपान्सप्तच्छदांस्तथा।
असनान्कोविदारांश्च करवीरांश्च पुष्पितान् १०
पुष्पभारनिबद्धांश्च तथा मुकुलितानपि।
पादपान्विहगाकीर्णान्पवनाधूतमस्तकान् ११
हंसकारण्डवाकीर्णा वापीः पद्मोत्पलावृताः।
आक्रीडान्विविधान्रम्यान्विविधांश्च जलाशयान् १२

नहीं। मैं बहुत से सैकडों योजनों को पार कर सकता हूं, फिर केवल सौ योजनवाले सागरान्त की क्या गिनती करनी? वह वीर्यवानों और कूदनेवालों में श्रेष्ठ सागर को तैर कर लङ्का को प्राप्त हुआ। (१-५)

वह शाद्वल और सुगन्धित वन और पर्वतों को प्राप्त हुआ। वृक्षों से ढके हुए पर्वतों को और पुष्पित वनपंक्तियों को लांघता हुआ चला। वानर ने उस पर्वत पर बैठ कर वन, उपवन और पर्वताग्र में लङ्का को देखा। साल, कनेर, खजूर, नीप, कोविदारादिक वृक्षों को, पुष्पों से भरे हुए और खिले हुए पुष्पयुक्त वृक्षों को देखा। (६-११)

हंसादिक पक्षियों से युक्त जो क्रीडाके योग्य स्थान थे, उन्हें तथा नाना

संततान्विविधैर्वृक्षैः सर्वर्तुफलपुष्पितैः ।
उद्यानानि च रम्याणि ददर्श कपिकुञ्जरः १३
समासाद्य च लक्ष्मीवाँल्लङ्कां रावणपालिताम् ।
परिखाभिः सपद्माभिः सोत्पलाभिरलंकृताम् १४
सीतापहरणात्तेन रावणेन सुरक्षिताम् ।
समन्ताद्विचरद्भिश्च राक्षसैरुग्रधन्वभिः १५
काञ्चनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम् ।
गृहैश्च गिरिसंकाशैः शारदाम्बुदसंनिभैः १६
पाण्डुराभिः प्रतोलीभिरुच्चाभिरभिसंवृताम् ।
अट्टालकशताकीर्णां पताकाध्वजशोभिताम् १७
तोरणैः काञ्चनैर्दिव्यैर्लतापङ्क्तिविराजितैः ।
ददर्श हनुमाँल्लङ्कां देवो देवपुरीमिव १८
गिरिमूर्ध्नि स्थितां लङ्कां पाण्डुरैर्भवनैः शुभैः ।
ददर्श स कपिः श्रीमान्पुरीमाकाशगामिव १९
पालितां राक्षसेन्द्रेण निर्मितां विश्वकर्मणा ।
प्लवमानामिवाकाशे ददर्श हनुमान्कपिः २०

वृक्षों से भरे हुए और ऋतुओं के फलपुष्पों से रम्य बगीचों को देखा । रावणपालित लङ्का को प्राप्त हो, जो पद्म और पुष्पों से भरी हुई थी और जो सीता हरनेवाले रावण से रक्षित और धनुषधारी राक्षसों से युक्त थी, उसे उसने देखा । (११-१५)

स्वर्ण के महलों से भरी हुई और सुन्दर गृहों से युक्त, सुगन्धित द्रव्यों से लिपी हुई, सैकड़ों अटारी और ध्वजाओं से युक्त, तोरण और लताओं से शोभित देवपुरी के समान लङ्का को हनुमान् ने देखा । आकाशस्थित नगर के तुल्य शिखर पर शोभित गृहों से युक्त लङ्का को, ब्रह्मा से बनाई गई, रावण से पालित, आकाश में उड़ती हुई के समान हनुमान् ने देखा । (१६-२०)

वप्रप्राकारजघनां विपुलाम्बुवनाम्बराम् ।
शतघ्नीशूलकेशान्तामट्टालकवतंसकाम् २१
मनसेव कृतां लङ्कां निर्मितां विश्वकर्मणा ।
द्वारमुत्तरमासाद्य चिन्तयामास वानरः २२
कैलासनिलयप्रख्यमालिखन्तमिवाम्बरम् ।
ध्रियमाणमिवाकाशमुच्छ्रितैर्भवनोत्तमैः २३
संपूर्णां राक्षसैर्घोरैर्गुहामाशीविषैरिव ।
तस्याश्च महतीं गुप्तिं सागरं च निरीक्ष्य सः ।
रावणं च रिपुं घोरं चिन्तयामास वानरः २४
आगत्यापीह हरयो भविष्यन्ति निरर्थकाः ।
न हि युद्धेन वै लङ्का शक्या जेतुं सुरैरपि २५
इमां त्वविषमां लङ्कां दुर्गां रावणपालिताम् ।
प्राप्यापि सुमहाबाहुः किं करिष्यति राघवः २६
अवकाशो न साम्नस्तु राक्षसेष्वभिगम्यते ।
न दानस्य न भेदस्य नैव युद्धस्य दृश्यते २७
चतुर्णामेव हि गतिर्वानराणां तरस्विनाम् ।
वालिपुत्रस्य नीलस्य मम राज्ञश्च धीमतः २८

जो शतघ्नी, शूल, पट्टिशादि शस्त्रों से सजी हुई थी और जिसे मानो ब्रह्मा ने मन से ही बनाई थी। लङ्का के उत्तरद्वार पर जाकर हनुमान् सोचने लगा। कैलाश के शिखरसमान ऊंची आकाश को छूती हुई, घोर राक्षस और जागों से युक्त, भोगवती पुरी के तुल्य, अचिंत्य, अच्छी बनी हुई, पूर्व कुबेरद्वारा संरक्षित, बहुत शूर राक्षसों से पालित गुफा के समान उस लङ्का को, सागर को और घोर शत्रु रावण को देखकर हनुमान् सोचने लगा। (२१-२४)

यहां आकर वानर और देवता भी युद्धद्वारा लंका को जय नहीं कर सकेंगे। इस विषम, दुर्ग, रावणपालित लंका को प्राप्त होकर राम भी

यावज्जानामि वैदेहीं यदि जीवति वा न वा।
तत्रैव चिन्तयिष्यामि दृष्ट्वा तां जनकात्मजाम् २९
ततः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः।
गिरेः शृङ्गे स्थितस्तस्मिन् रामस्याभ्युदयं ततः ३०
अनेन रूपेण मया न शक्या रक्षसां पुरी।
प्रवेष्टुं राक्षसैर्गुप्ता क्रूरैर्बलसमन्वितैः ३१
महौजसो महावीर्या बलवन्तश्च राक्षसाः।
वञ्चनीया मया सर्वे जानकीं परिमार्गता ३२
लक्ष्यालक्ष्येण रूपेण रात्रौ लङ्कापुरी मया।
प्राप्तकालं प्रवेष्टुं मे कृत्यं साधयितुं महत् ३३
तां पुरीं तादृशीं दृष्ट्वा दुराधर्षां सुरासुरैः।
हनूमांश्चिन्तयामास विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः ३४
केनोपायेन पश्येयं मैथिलीं जनकात्मजाम्।
अदृष्टो राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ३५
न विनश्येत्कथं कार्यं रामस्य विदितात्मनः।
एकामेकस्तु पश्येयं रहिते जनकात्मजाम् ३६

क्या करेंगे ? राक्षसों में साम, दाम, भेद और युद्ध का अवसर भी नहीं दीखता है। यहां तो अङ्गद, नील, मैं या सुग्रीव इन चारों की ही गति दीखती है। पहले सीता को देखूं कि, वह जीती है या नहीं, पीछे कुछ सोचूंगा। राम के अभ्युदय में रत हनुमान् लङ्का के शिखर पर खडा हुआ मुहूर्त भर सोचता रहा। (२५-३०)

घोर राक्षसों से रक्षित लङ्का में मैं इस रूप से नहीं जा सकता हूं। सीता को देखते हुए मुझे इन घोर राक्षसों को धोखा देना चाहिये। लक्ष्य और अलक्ष्य रूप से रात्रि में मुझ को लङ्का में कार्य को साधित करने के लिये प्रवेश करना चाहिये। बार बार सुर और असुर से अजेय उस लङ्काको देख कर हनुमान् सोचने लगा। (३१-३४)

दुष्ट रावण से छिप कर मैं सीता को कैसे देखूं ? राम का कार्य नष्ट न

भूताश्चार्था विनश्यन्ति देशकालविरोधिताः ।
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ३७
अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते ।
घातयन्तीह कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ३८
न विनश्येत्कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं भवेत् ।
लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न भवेद्वृथा ३९
मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदितात्मनः ।
भवेद्व्यर्थमिदं कार्यं रावणानर्थमिच्छतः ४०
न हि शक्यं क्वचित्स्थातुमविज्ञातेन राक्षसैः ।
अपि राक्षसरूपेण किमुतान्येन केनचित् ४१
वायुरप्यत्र नाज्ञातश्चरेदिति मतिर्मम ।
नह्यत्राविदितं किंचिद्रक्षसां भीमकर्मणाम् ४२
इहाहं यदि तिष्ठामि स्वेन रूपेण संवृतः ।
विनाशमुपयास्यामि भर्तुरर्थश्च हास्यति ४३
तदहं स्वेन रूपेण रजन्यां ह्रस्वतां गतः ।
लङ्कामभिपतिष्यामि राघवस्यार्थसिद्धये ४४

होवे, इस से मैं अकेला ही एकान्त में अकेली सीता को देखूं। अधीर दूत को पाकर, सूर्योदय के समय तमके समान देशकाल से विरोधित, भूत अर्थ नष्ट हो जाते हैं। अर्थ और अनर्थमें निश्चित बुद्धि भी (अधीर दूतको पाकर) नष्ट हो जाती है, मूर्ख दूत कार्यों को बिगाड देते हैं। किसी प्रकार न तो कार्य नष्ट होवे, न अधीरता होवे और न समुद्र का लांघना ही वृथा जावे। मेरे राक्षसों के देख लेने पर रावण को मारनेवाले राम का कार्य व्यर्थ हो जावेगा। (३५-४०)

राक्षसरूप वा और रूपसे छिपकर मैं यहां नहीं रह सकता हूं। राक्षसों से अविदित यहां कुछ नहीं है, वायु भी ज्ञात होने पर यहां नहीं चल सकता, यह मेरी मति है। यदि मैं यहां अपने रूप से ठहरूं, तो मैं तथा स्वामी का कार्य दोनों नष्ट हो जायंगे। अतः मैं छोटा बन कर रात्रि में

रावणस्य पुरीं रात्रौ प्रविश्य सुदुरासदाम्।
प्रविश्य भवनं सर्वं द्रक्ष्यामि जनकात्मजाम् ४५
इति निश्चित्य हनुमान्सूर्यस्यास्तमयं कपिः।
आचकाङ्क्ष तदा वीरो वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ४६
सूर्ये चास्तं गते रात्रौ देहं संक्षप्य मारुतिः।
वृषदंशकमात्रोऽथ बभूवाद्भुतदर्शनः ४७
प्रदोषकाले हनुमांस्तूर्णमुत्पत्य वीर्यवान्।
प्रविवेश पुरीं रम्यां प्रविभक्तमहापथाम् ४८
प्रासादमालावितताम् स्तम्भैः काञ्चनसंनिभैः।
शातकुम्भनिभैर्जालैर्गन्धर्वनगरोपमाम् ४९
सप्तभौमाष्टभौमैश्च स ददर्श महापुरीम् ५०
स्थलैः स्फटिकसंकीर्णैः कार्तस्वरविभूषितैः।
तैस्तैः शुशुभिरे तानि भवनान्यत्र रक्षसाम् ५१
काञ्चनानि विचित्राणि तोरणानि च रक्षसाम्।
लङ्कामुद्योतयामासुः सर्वतः समलंकृताम् ५२
अचिन्त्यामद्भुताकारां दृष्ट्वा लङ्कां महाकपिः।
आसीद्विषण्णो हृष्टश्च वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ५३

राम के कार्य के लिये लंका में घुसूंगा। अधर्षणीय लंका में रात्रि को जाकर सब भवनों को देखता हुआ सीता को ढूंढूंगा। (४१-४५)

सीतादर्शन को उत्सुक हनुमान् रात्रि होने की प्रतीक्षा करने लगा। रात्रि होने पर हनुमान् देह को सूक्ष्म करके बिडाल के बराबर हो गया। सन्ध्या होने पर पराक्रमी हनुमान् कूद कर रमणीक लङ्का में चला गया। हजारों महलों से शोभित, स्वर्णस्तम्भों से युक्त, गन्धर्वपुर की उपमावाली, सत-मञ्जले अठमञ्जले मकानों से युक्त उस महापुरीको उसने देखा, जो स्फटिक आदि से शोभित थी। (४६-५१)

राक्षसों के महलों की भूमि वैडूर्यमणि और मोतियों से जडी हुई थी। चारों ओर विचित्र तोरणों से लंका शोभा पा रही थी। अचिन्त्य शोभा-

स पाण्डुराविद्धविमानमालिनीं महार्हजाम्बूनदजालतोरणाम् ।
यशस्विनीं रावणबाहुपालितां क्षपाचरैर्भीमबलैः सुपालिताम् ५४
चन्द्रोऽपि साचिव्यमिवास्य कुर्वंस्तारागणैर्मध्यगतो विराजन् ।
ज्योत्स्नावितानेन वितत्य लोकानुत्तिष्ठतेऽनेकसहस्ररश्मिः ५५
शङ्खप्रभं क्षीरमृणालवर्णमुद्वहच्छमानं व्यवभासमानम् ।
ददर्श चन्द्रं स कपिप्रवीरः पोप्लूयमानं सरसीव हंसम् ५६

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥२॥

[२६०]

तृतीयः सर्गः ।

स लम्बशिखरे लम्बे लम्बतोयदसंनिभे ।
सत्त्वमास्थाय मेधावी हनुमान्मारुतात्मजः १
निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः ।
रम्यकाननतोयाढ्यां पुरीं रावणपालिताम् २
शारदाम्बुधरप्रख्यैर्भवनैरुपशोभिताम् ।
सागरोपमनिर्घोषां सागरानिलसेविताम् ३
सुपुष्टबलसंपुष्टां यथैव विटपावतीम् ।
चारुतोरणनिर्यूहां पाण्डुरद्वारतोरणाम् ४

वाली उस पुरी को देखकर सीता को देखने की इच्छावाला हनुमान् हर्ष और विषाद को प्राप्त हुआ । सुन्दर विमानों से शोभित, मुक्ताजालों से पूर्ण, राक्षसों से रक्षित, रावण से पालित लंका को उसने देखा । तारागणों के मध्य में स्थित चन्द्रमा भी जिस की सचिवता करता है और सूर्य भी अपने पूर्ण तेजयुक्त नहीं प्रकाशता है (ऐसा वह रावण था) । शंखप्रभायुक्त श्वेत-वर्णवाला हंस जैसे एक कमल से दूसरे पर चला जाता है, ऐसे चन्द्रमा को प्रकाश करते और जाते हुए हनुमान् ने देखा । (५१-५६)

यहाँ द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ ।

बुद्धिमान् हनुमान् ने बादलसम ऊंचे शिखर पर जाकर सत्त्व को पा रावणपालित पुरी में रात्रि में प्रवेश किया । शरत् के मेघतुल्य भवनों से

भुजगाचरितां गुप्तां शुभां भोगवतीमिव।
तां सविद्युद्घनाकीर्णां ज्योतिर्गणनिषेविताम् ५
चण्डमारुतनिर्ह्रादां यथा चाप्यमरावतीम्।
शातकुम्भेन महता प्राकारेणाभिसंवृताम् ६
किङ्किणीजालघोषाभिः पताकाभिरलंकृताम्।
आसाद्य सहसा हृष्टः प्राकारमभिपेदिवान् ७
विस्मयाविष्टहृदयः पुरीमालोक्य सर्वतः।
जाम्बूनदमयैर्द्वारैर्वैदूर्यकृतवेदिकैः ८
मणिस्फटिकमुक्ताभिर्मणिकुट्टिमभूषितैः।
तप्तहाटकनिर्यूहै राजतामलपाण्डुरैः ९
वैदूर्यकृतसोपानैः स्फाटिकान्तरपांसुभिः।
चारुसंजवनोपेतैः खमिवोत्पतितैः शुभैः १०
क्रौञ्चबर्हिणसंघुष्टै राजहंसनिषेवितैः।
तूर्याभरणनिर्घोषैः सर्वतः परिनादिताम् ११
वस्वोकसारप्रतिमां समीक्ष्य नगरीं ततः
खमिवोत्पतितां लङ्कां जहर्ष हनुमान्कपिः १२

शोभित, सागर से सेवित, बलवान् सेना से युक्त, सुन्दर तोरणों से शोभित भुजङ्गों से सेवित, शुभ भोगवती पुरी के समान, बिजलीयुक्त मेघोंसे घिरी हुई, आकाश को छूती हुई, मन्दवायु से सेवित, अमरावती सम, चारों तरफ से स्वर्णघण्टों से शोभित, पताकाओं से अलंकृत ऐसी पुरी को प्राप्त होकर प्रसन्नचित्त हनुमान् एक महल पर चढ गया और विस्मित होकर पुरी को चारों ओर से देखने लगा। (१–८)

जाम्बूनदमय द्वारवाली, वैदूर्यकी वेदीयुक्त, वज्र, स्फटिक, मोती, मणियों से युक्त, शुद्ध तपे हुए स्वर्ण से शोभित, मोतियों की सोपानयुक्त, सुन्दर परदों से ढकी हुई, क्रौंचमयूरों से पूर्ण, राजहंसों से सेवित, चारों ओर से तुरी के शब्द से नादित, इन्द्रभवनसम पुरी को देखकर आकाश में कूद कर महाकपि प्रसन्न हुआ। (८–१२)

तां समीक्ष्य पुरीं लङ्कां राक्षसाधिपतेः शुभाम् ।
अनुत्तमामृद्धिमतीं चिन्तयामास वीर्यवान् १३
नेयमन्येन नगरी शक्या धर्षयितुं बलात् ।
रक्षिता रावणबलैरुद्यतायुधपाणिभिः १४
कुमुदाङ्गदयोर्वापि सुषेणस्य महाकपेः ।
प्रसिद्धेयं भवेद्भूमिर्मैन्दद्विविदयोरपि १५
विवस्वतस्तनूजस्य हरेश्च कुशपर्वणः ।
ऋक्षस्य कपिमुख्यस्य मम चैव गतिर्भवेत् १६
समीक्ष्य च महाबाहो राघवस्य पराक्रमम् ।
लक्ष्मणस्य च विक्रान्तमभवत्प्रीतिमान्कपिः १७
तां रत्नवसनोपेतां गोष्ठागारावतंसिकाम् ।
यन्त्रागारस्तनीमृद्धां प्रमदामिव भूषिताम् १८
तां नष्टतिमिरां दीपैर्भास्वरैश्च महाग्रहैः ।
नगरीं राक्षसेन्द्रस्य स ददर्श महाकपिः १९
अथ सा हरिशार्दूलं प्रविशन्तं महाकपिम् ।
नगरी स्वेन रूपेण ददर्श पवनात्मजम् २०

रावण की शुभ पुरी को देख जो अति उत्तम ऋद्धियों से भरी हुई थी, बलवान् हनुमान् सोचने लगा। शस्त्रधारी राक्षसों से पालित यह पुरी अन्य पुरुष से जीती नहीं जा सकती। कुमुद और अङ्गद को और महाकपि सुषेण तथा मैन्द और द्विविद को भी यह पुरी ज्ञात है। सूर्यपुत्र सुग्रीव, कुशपर्व या ऋक्ष केतुमाल या मेरी ही यहां पहुंच हो सकती है। (१३-१६)

महाबाहु हनुमान् को राम के बल और लक्ष्मण के पराक्रम को देख अति आनन्द हुआ। रत्नवस्त्रों से युक्त, गोष्ठ और घरों से भरी, नाना यन्त्रागारों से युक्त शोभित स्त्रीके समान, प्रकाशयुक्त, सुन्दर स्थानों से युक्त रावण की पुरी को हनुमान् ने देखा। ततः हनुमान् के प्रविष्ट होने पर नगरी अपने रूप को दिखाने लगी। (१७-२०)

सा तं हरिवरं दृष्ट्वा लङ्का रावणपालिता।
स्वयमेवोत्थिता तत्र विकृताननदर्शना २१
पुरस्तात्तस्य वीरस्य वायुसूनोरतिष्ठत।
मुञ्चमाना महानादमब्रवीत्पवनात्मजम् २२
कस्त्वं केन च कार्येण इह प्राप्तो वनालय।
कथयस्वेह यत्तत्त्वं यावत्प्राणा धरन्ति ते २३
न शक्यं खल्वियं लङ्का प्रवेष्टुं वानर त्वया।
रक्षिता रावणबलैरभिगुप्ता समन्ततः २४
अथ तामब्रवीद्वीरो हनुमानग्रतः स्थिताम्।
कथयिष्यामि तत्तत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसे २५
का त्वं विरूपनयना पुरद्वारेऽवतिष्ठसे।
किमर्थं चापि मां क्रोधान्निर्भर्त्सयसि दारुणे २६
हनुमद्वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी।
उवाच वचनं क्रुद्धा परुषं पवनात्मजम् २७
अहं राक्षसराजस्य रावणस्य महात्मनः।
आज्ञाप्रतीक्षा दुर्धर्षा रक्षामि नगरीमिमाम् २८
न शक्यं मामवज्ञाय प्रवेष्टुं नगरीमिमाम्।
अद्य प्राणैः परित्यक्तः स्वप्स्यसे निहतो मया २९

घोररूपा रावणपालित पुरी हनुमान् को देखकर स्वयं ही उठी और हनुमान् के आगे खडी हो गई, तथा घोर शब्द करती हुई बोली– तू कौन है और किस कार्य के लिये आया है? जो ठीक है वह कहो जब तक मेरे प्राण बाकी हैं, राक्षसों से रक्षित इस लंका में तुझे आना योग्य नहीं था। आगे खडी हुई राक्षसी से हनुमान् बोला कि जो सत्य है, सो कहता हूं। तू कौन है, जो पूर के द्वार पर खडी है? मुझे रोक कर क्यों झिडकती है? (२१–२६)

कामरूपिणी लंका हनुमान् के वचन सुनकर क्रोध से बोली– मैं रावण की आज्ञा से इस पुरी की रक्षा करती हूं। मेरा अनादर करके इस पुरी में

अहं हि नगरी लङ्का स्वयमेव प्लवंगम ।
सर्वतः परिरक्षामि अतस्ते कथितं मया ३०
लङ्काया वचनं श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः ।
यत्नवान्स हरिश्रेष्ठः स्थितः शैल इवापरः ३१
स तां स्त्रीरूपविकृतां दृष्ट्वा वानरपुंगवः ।
आबभाषेऽथ मेधावी सत्त्ववान्प्लवगर्षभः ३२
द्रक्ष्यामि नगरीं लङ्कां साट्टप्राकारतोरणाम् ।
इत्यर्थमिह संप्राप्तः परं कौतूहलं हि मे ३३
वनान्युपवनानीह लङ्कायाः काननानि च ।
सर्वतो गृहमुख्यानि द्रष्टुमागमनं हि मे ३४
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी ।
भूय एव पुनर्वाक्यं बभाषे परुषाक्षरम् ३५
मामनिर्जित्य दुर्बुद्धे राक्षसेश्वरपालिताम् ।
न शक्यं ह्यद्य ते द्रष्टुं पुरीयं वानराधम ३६
ततः स हरिशार्दूलस्तामुवाच निशाचरीम् ।
दृष्ट्वा पुरीमिमां भद्रे पुनर्यास्ये यथागतम् ३७
ततः कृत्वा महानादं सा वै लङ्का भयंकरम् ।

तुझे आना योग्य नहीं था, आज मेरे से मारा तू सोवेगा । मैं ही स्वयं लंका हूं और चारों ओर से रक्षा करती हूं । (२७-३०)

लंका का वचन सुनकर हनुमान् सावधानी से पर्वततुल्य खड़ा हो गया । बलवान् और मेधावी हनुमान् विकृत स्त्री को देख कर बोला । तेरे देखते हुए ही मैं इस सुशोभित लंका को देखूंगा, इसलिये मैं यहां आया हूं । लंका के वन, उपवन और सर्वतः मुख्य मुख्य गृह देखने को मैं आया हूं । हनुमान् के वचन सुनकर लंका फिर कठोर शब्द बोली । (३१-३५)

हे वानराधम ! रावण से पालित इस लंका को तथा मुझे जीते विना तू नहीं देख सकता । हनुमान् ने राक्षसी से कहा- भद्रे ! इस पुरीको देखकर जैसे आया हूं, वैसे ही चला जाऊंगा । तब राक्षसीने बड़ा भयानक शब्द

तलेन वानरश्रेष्ठं ताडयामास वेगिता ३८
ततः स हरिशार्दूलो लङ्कया ताडितो भृशम् ।
ननाद सुमहानादं वीर्यवान्मारुतात्मजः ३९
ततः संवर्तयामास वामहस्तस्य सोऽङ्गुलीः ।
मुष्टिनाभिजघानैनां हनुमान्क्रोधमूर्च्छितः ४०
स्त्री चेति मन्यमानेन नातिक्रोधः स्वयं कृतः ।
सा तु तेन प्रहारेण विह्वलाङ्गी निशाचरी ।
पपात सहसा भूमौ विकृताननदर्शना ४१
ततस्तु हनुमान्वीरस्तां दृष्ट्वा विनिपातिताम् ।
कृपां चकार तेजस्वी मन्यमानः स्त्रियं च ताम् ४२
ततो वै भृशमुद्विग्ना लङ्का सा गद्गदाक्षरम् ।
उवाचागर्वितं वाक्यं हनुमन्तं प्लवंगमम् ४३
प्रसीद सुमहाबाहो त्रायस्व हरिसत्तम ।
समये सौम्य तिष्ठन्ति सत्त्ववन्तो महाबलाः ४४
अहं तु नगरी लङ्का स्वयमेव प्लवंगम ।
निर्जिताऽहं त्वया वीर विक्रमेण महाबल ४५
इदं च तथ्यं शृणु मे ब्रुवन्त्या वै हरीश्वर ।
स्वयं स्वयंभुवा दत्तं वरदानं यथा मम ४६

किया और जोर से हनुमान् के लात मारी । तब लंका से ताडित हनुमान् ने महानाद किया । क्रोधाविष्ट हनुमान् ने वाम हाथ को सकोड कर उसके एक मुक्का मारा और स्त्री जानकर ज्यादा क्रोध न किया । (३६-४१)

उस प्रहार से विकृतानना राक्षसी विह्वल हो भूमि पर गिर पडी । तब तेजस्वी, बुद्धिमान् हनुमान् ने स्त्री जानकर उस पर कृपा की । ततः दुःखित लंका हनुमान् से गर्वित वचन बोली, हे महाबाहो ! रक्षा करो । महाबली पुरुष अपने दायरे ही में स्थित रहते हैं । हे बली वानर ! मुझ लंका को तो तूने अपने पराक्रम से ही जीत लिया । (४१-४५)

हे हरीश्वर ! सुन, ब्रह्मा ने जो पहले मुझे वरदान दिया था । जब तू

यदा त्वां वानरः कश्चिद्विक्रमाद्वशमानयेत् ।
तदा त्वया हि विज्ञेयं रक्षसां भयमागतम् ४७
स हि मे समयः सौम्य प्राप्तोऽद्य तव दर्शनात् ।
स्वयंभूविहितः सत्यो न तस्यास्ति व्यतिक्रमः ४८
सीतानिमित्तं राक्षस्तु रावणस्य दुरात्मनः ।
रक्षसां चैव सर्वेषां विनाशः समुपागतः ४९
तत्प्रविश्य हरिश्रेष्ठ पुरीं रावणपालिताम् ।
विधत्स्व सर्वकार्याणि यानि यानीह वाञ्छसि ५०
प्रविश्य शापोपहतां हरीश्वरः पुरीं शुभां राक्षसमुख्यपालिताम् ।
यदृच्छया त्वं जनकात्मजां सतीं विमार्ग सर्वत्र गतो यथासुखम् ५१

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥३॥[३११]

चतुर्थः सर्गः ।

स निर्जित्य पुरीं लङ्कां श्रेष्ठां तां कामरूपिणीम् ।
विक्रमेण महातेजा हनूमान्कपिसत्तमः १
अद्वारेण महावीर्यः प्राकारमवपुप्लुवे ।
निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः २
प्रविश्य नगरीं लङ्कां कपिराजहितंकरः ।
चक्रेऽथ पादं सव्यं च शत्रूणां स तु मूर्धनि ३

किसी वानर के वश में प्राप्त होगी, तब तू जानना कि राक्षसों को भय प्राप्त हुआ । हे सौम्य ! वही समय आज मुझे प्राप्त हुआ है । जो ब्रह्मा ने कहा था, वह सत्य हुआ । सीता के निमित्त दुष्ट रावण का और समस्त राक्षसों का नाश प्राप्त हुआ है । अतः हे हरिश्रेष्ठ ! रावणपालित लंका में जा और जो जो तुझे इष्ट कार्य हैं, उन्हें कर । रावण से पालित और शाप से हत हुई लंका में जा और जहां तेरी इच्छा हो, वहां सीता को सुख से ढूंढ । (४६-५१)

यहाँ तृतीय सर्ग समाप्त हुआ ।

उस कामरूपिणी लंका को जीतकर महातेजा हनुमान् विना द्वार के

प्रविष्टः सत्त्वसंपन्नो निशायां मारुतात्मजः ।
स महापथमास्थाय मुक्तपुष्पविराजितम् ४
ततस्तु तां पुरीं लङ्कां रम्यामभिययौ कपिः ।
हसितोत्कृष्टनिनदैस्तूर्यघोषपुरस्कृतैः ५
वज्राङ्कुशनिकाशैश्च वज्रजालविभूषितैः ।
गृहमेघैः पुरी रम्या बभासे द्यौरिवाम्बुदैः ६
प्रजज्वाल तदा लङ्का रक्षोगणगृहैः शुभैः ।
सिताभ्रसदृशैश्चित्रैः पद्मस्वास्तिकसंस्थितैः ७
वर्धमानगृहैश्चापि सर्वतः सुविभूषितैः ।
तां चित्रमाल्याभरणां कपिराजहितंकरः ८
राघवार्थे चरञ्छ्रीमान्ददर्श च ननन्द च ।
भवनाद्भवनं गच्छन्ददर्श कपिकुञ्जरः ९

फसील से ही लंका में कूद गया। सुग्रीव के हित करने के लिये बली हनुमान् ने लंका में जाकर सव्यपाद शत्रुओं के सिर पर रक्खा। लंका में जा रात्रिको महापथ में स्थित हुआ, जो मोती और पुष्पों से शोभित था। महाबली राक्षसों से सेवित ऐसी लंका में हनुमान् गया। जिस में तूर्य के शब्द हो रहे थे, वज्र और अङ्कुशादि शस्त्रों से शोभित थी और गृहश्रेष्ठों से जो रम्य थी। लंका राक्षसों के सुन्दर घरों से प्रज्वलित हो रही थी। और पद्मस्वस्तिकचिह्नयुक्त बडे बडे घरों से भरी, चारों ओर से सुन्दर थी। विचित्रमाला और आभरणों से युक्त लंका को हनुमान् ने राम के निमित्त घूमकर देखा और प्रसन्न हुआ। घर से घर पर जाते हुए नाना

---

* प्रयाणकाले स्वगृहप्रवेशे विवाहकालेऽपि च दक्षिणाङ्घ्रिम् ।
कृत्वाग्रतः शत्रुपुरप्रवेशे वामं निदध्याच्चरणं नृपालयम् ॥

यात्रा करते समय, अपने घर में घुसते समय और ब्याह के लिए जाते समय दाहिना पैर आगे रखकर जाना चाहिए; पर राजमहल में या शत्रुकी नगरी में प्रवेश करना हो, तो बायाँ पैर पहले आगे धर दे।

विविधाकृतिरूपाणि भवनानि ततस्ततः ।
शुश्राव रुचिरं गीतं त्रिस्थानस्वरभूषितम् १०
स्त्रीणां मदनविद्धानां दिवि चाप्सरसामिव ।
शुश्राव काञ्चीनिनदं नुपुराणां च निःस्वनम् ११
सोपाननिनदांश्चापि भवनेषु महात्मनाम् ।
आस्फोटितनिनादांश्च क्ष्वेडितांश्च ततस्ततः १२
शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान् रक्षोगृहेषु वै ।
स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान्ददर्श सः १३
रावणस्तवसंयुक्तान्गर्जतो राक्षसानपि ।
राजमार्गं समावृत्य स्थितं रक्षोगणं महत् १४
ददर्श मध्यमे गुल्मे राक्षसस्य चरान्बहून् ।
दीक्षिताञ्जटिलान्मुण्डान्गोजिनाम्बरवाससः १५
दर्भमुष्टिप्रहरणानग्निकुण्डायुधांस्तथा ।
कूटमुद्गरपाणींश्च दण्डायुधधरानपि १६
एकाक्षानेकवर्णांश्च चलदेकपयोधरान् ।
करालान्भुग्नवक्त्रांश्च विकटान्वामनांस्तथा १७
धन्विनः खड्गिनश्चैव शतघ्नीमुसलायुधान् ।

भवन देखें और मदयुक्त स्त्रियों के स्वर्ग में अप्सराओं के समान मधुर गीत सुने । (१-११)

घूंघरुओं के, कांची के बडे ऊंचे ऊंचे शब्द सुने और राक्षसों के घरों में मन्त्रों का जाप होता था, उसे भी सुना । स्वाध्याय में रत राक्षसों को देखा जो गर्जते रावण की स्तुति कर रहे थे । राजमार्ग को घेरकर स्थित राक्षसी सेना तथा मध्यम छावनी में बहुत से रावण के गुप्तचरों को देखा। उनमें कोई मुण्डितमुख, कोई दीक्षित, कोई जटाजूटधारी, कोई मृगचर्म ओढे हाथ में कुशा लिये हवन कर रहे थे । हाथों में मुद्गर लिये और दण्डधारी, एकाक्ष, एक कर्णवाले और चौडी छातीवाले, भयंकर टेढे मुखवाले, विकट और वामन, धनुष खड्ग शतघ्नी परिघादिक लिये हुए, न ऊंचे, न लम्बे, न

परिघोत्तमहस्तांश्च विचित्रकवचोज्ज्वलान् १८
नातिस्थूलान्नातिकृशान्नातिदीर्घातिह्रस्वकान्।
नातिगौरान्नातिकृष्णान्नातिकुब्जान्न वामनान् १९
विरूपान्बहुरूपांश्च सुरूपांश्च सुवर्चसः।
ध्वजिनः पताकिनश्चैव ददर्श विविधायुधान् २०
शक्तिवृक्षायुधांश्चैव पट्टिशासिनिधारिणः।
क्षेपणीपाशहस्तांश्च ददर्श स महाकपिः २१
स्रग्विणस्त्वनुलिप्तांश्च वराभरणभूषितान्।
नानावेषसमायुक्तान्यथास्वैरचरान्बहून् २२
तीक्ष्णशूलधरांश्चैव वज्रिणश्च महाबलान्।
शतसाहस्रमव्यग्रमारक्षं मध्यमं कपिः २३
रक्षोधिपतिनिर्दिष्टं ददर्शान्तःपुराग्रतः।
स तदा तद्गृहं दृष्ट्वा महाहाटकतोरणम् २४
राक्षसेन्द्रस्य विख्यातमद्रिमूर्ध्नि प्रतिष्ठितम्।
पुण्डरीकावतंसाभिः परिखाभिः समावृतम् २५
प्राकारावृतमत्यन्तं ददर्श स महाकपिः।
त्रिविष्टपनिभं दिव्यं दिव्यनादविनादितम् २६

मोटे, न कृश, न गौर, न अति काले, विरूप और नाना रूपवाले, ध्वजा पताका और नाना शस्त्रों को लिये हुए राक्षसों को देखा। शक्ति, वृक्ष, पटा, वज्र, क्षेपणीय, पाशधारी राक्षसों को हनुमान् ने देखा। (११–२१)

मालाचन्दनादि लगाये, सुन्दर गहने पहरे, नाना वेष और तीक्ष्ण शस्त्र-धारी अनेक राक्षस देखे। एक लाख राक्षसों को मध्यम कक्षा में स्थित रावणाज्ञा से रनवास की रक्षा करते देखा। तदनन्तर स्वर्ण के पट लगे हुए रावण के विख्यात गृह को पर्वतशिखर पर देखा, जो चारों ओर से खाई और चहारदीवारी से घिरा था। स्वर्ग के समान दिव्य, दिव्य नाद से विनादित, घोड़े के सुन्दर शब्दों से युक्त, भूषणों से नादित, रथ, यान, विमान, अश्व, श्वेतमेघवत् चार दांतवाले हाथियोंसे शोभित, मत्त मृगपक्षियों

वाजिहेषितसंघुष्टमद्भुतैश्च हयैस्तथा ।
रथैर्यानैर्विमानैश्च तथा हयगजैः शुभैः २७
वारणैश्च चतुर्दन्तैः श्वेताभ्रनिचयोपमैः ।
भूषितै रुचिरद्वारं मत्तैश्च मृगपक्षिभिः । २८
रक्षितं सुमहावीर्यैर्यातुधानैः सहस्रशः ।
राक्षसाधिपतेर्गुप्तमाविवेश गृहं कपिः २९
स हेमजाम्बूनदचक्रवालं महार्हमुक्तामणिभूषितान्तम् ।
पराध्यकालागुरुचन्दनार्हं स रावणान्तःपुरमाविवेश ३०

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥४॥ [३४१]

पञ्चमः सर्गः ।

ततः स मध्यंगतमंशुमन्तं ज्योत्स्नावितानं मुहुरुद्वमन्तम् ।
ददर्श धीमान्भुवि भानुमन्तं गोष्ठे वृषं मत्तमिव भ्रमन्तम् १
लोकस्य पापानि विनाशयन्तं महोदधिं चापि समेधयन्तम् ।
भूतानि सर्वाणि विराजयन्तं ददर्श शीतांशुमथाभियान्तम् २
या भाति लक्ष्मीर्भुवि मन्दरस्था यथा प्रदोषेषु च सागरस्था ।
तथैव तोयेषु च पुष्करस्था रराज सा चारुनिशाकरस्था ३
हंसो यथा राजतपञ्जरस्थः सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः ।

से द्वार पर शोभायमान, बली राक्षसों से रक्षित रावणके उस गृह में हनुमान् ने गुप्त भाव से प्रवेश किया । स्वर्ण, कमल और चकवा पक्षियों से भरा हुआ, मोतियों से शोभित, अगरु चन्दन की सुगन्धयुक्त उस गृह में हनुमान् प्रविष्ट हुआ । (२१-३०)

यहाँ चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ ।

ततः हनुमान् ने प्रकाश फैलाते हुए चन्द्रमा को गोष्ठ में उन्मत्त बैल की न्याईं आकाश में फिरते देखा । लोकों के पापों को नष्ट करते, समुद्र को बढ़ाते, सर्व जीवों को प्रकाशते हुए चन्द्रको देखा । जो लक्ष्मी संसारमें मंदरस्थ है, प्रदोष में सागरस्थ है, जल में पद्मस्थ है, वही चन्द्रमा में शोभा दे रही थी । चांदी के पिंजरे में हंस, मन्दर की कन्दरा में सिंह, मदहस्ती

वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थश्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाम्बरस्थः ४
स्थितः ककुभ्मानिव तीक्ष्णशृङ्गो महाचलः श्वेत इवोर्ध्वशृङ्गः।
हस्तीव जाम्बूनदबद्धशृङ्गो विभाति चन्द्रः परिपूर्णशृङ्गः ५
विनष्टशीताम्बुतुषारपङ्को महाग्रहग्राहविनष्टपङ्कः।
प्रकाशलक्ष्म्याश्रयनिर्मलाङ्को रराज चन्द्रो भगवाञ्छशाङ्कः ६
शिलातलं प्राप्य यथा मृगेन्द्रो महारणं प्राप्य यथा गजेन्द्रः।
राज्यं समासाद्य यथा नरेन्द्रस्तथा प्रकाशो विरराज चन्द्रः ७
प्रकाशचन्द्रोदयनष्टदोषः प्रवृद्धरक्षः पिशिताशदोषः।
रामाभिरामेरितचित्तदोषः स्वर्गप्रकाशो भगवान्प्रदोषः ८
तन्त्रीस्वराः कर्णसुखाः प्रवृत्ताः स्वपन्ति नार्यः पतिभिः सुपृक्ताः।
नक्तंचराश्चापि तथा प्रवृत्ता विहर्तुमत्यद्भुतरौद्रवृत्ताः ९
मत्तप्रमत्तानि समाकुलानि रथाश्वभद्रासनसंकुलानि।
वीरश्रिया चापि समाकुलानि ददर्श धीमान्स कपिः कुलानि १०

पर वीर वैसे ही आकाश में चन्द्र शोभा दे रहा था। पूरी कलावाला चन्द्र तीक्ष्ण सींगवाले बैल वा ऊंचे श्वेत शृंगवाले महाचल वा स्वर्ण से बंधे दांतवाले हाथी के समान शोभता था। (१–५)

वर्षा बीत जाने से जिसकी शीतल जलबिन्दुरूप कीचड दूर हो गई है, महाग्रह सूर्य की किरण के सम्बन्ध से जिस की प्रभा बढ गई है, प्रकाश-लक्ष्मीके आश्रयवश जिसका कलंक भी स्पष्ट हो गया है, ऐसा चन्द्रमा शोभा दे रहा था। जैसे शिलातल को पाकर सिंह, महारण को पाकर हाथी, राज्य को पाकर नरेन्द्र, वैसे ही चन्द्रमा शोभायमान था। चन्द्रप्रकाश से तम नष्ट होने, राक्षसों के सञ्चार की अधिकता होने, स्त्रियों के चित्तदोष दूर होने से प्रदोषकाल स्वर्गतुल्य हो रहा था। कानों को सुखद तन्त्री की ध्वनि आ रही थी, पतिव्रता अपने पतियों के साथ सो रही थीं और घोर-कर्मी निशाचर इधर उधर घूम रहे थे। मत्त घोडे, रथ, आसनों से युक्त और वीरश्री से संयुक्त राक्षसकुलों को हनुमान् ने देखा। (६–१०)

परस्परं चाधिकमाक्षिपन्ति भुजांश्च पीनानधिविक्षिपन्ति ।
मत्तप्रलापानधिविक्षिपन्ति मत्तानि चान्योन्यमधिक्षिपन्ति ११
रक्षांसि वक्षांसि च विक्षिपन्ति गात्राणि कान्तासु च विक्षिपन्ति ।
रूपाणि चित्राणि च विक्षिपन्ति दृढानि चापानि च विक्षिपन्ति १२
ददर्श कान्ताश्च समालभन्त्यस्तथापरास्तत्र पुनः स्वपन्त्यः ।
सुरूपवक्त्राश्च तथा हसन्त्यः क्रुद्धाः पराश्चापि विनिःश्वसन्त्यः १३
महागजैश्चापि तथा नदद्भिः सुपूजितैश्चापि तथा सुसद्भिः ।
रराज वीरैश्च विनिःश्वसद्भिर्हृदा भुजंगैरिव निःश्वसद्भिः १४
बुद्धिप्रधानान्रुचिराभिधानान्संश्रद्दधानाञ्जगतः प्रधानान् ।
नानाविधानान्रुचिराभिधानान्ददर्श तस्यां पुरि यातुधानान् १५
ननन्द दृष्ट्वा स च तान्सुरूपान्नानागुणानात्मगुणानुरूपान् ।
विद्योतमानान्स च तान्सुरूपान्ददर्श कांश्चिच्च पुनर्विरूपान् १६
ततो वरार्हाः सविशुद्धभावास्तेषां स्त्रियास्तत्र महानुभावाः ।
प्रियेषु पानेषु च सक्तभावा ददर्श तारा इव सुस्वभावाः १७

जिन में कहीं प्रमत्त राक्षस परस्पर अधिक उत्तर-प्रत्युत्तर कर रहे थे, कोई दृढ हाथवाले, उलझनयुक्त मतवाले, प्रलापवचन परस्पर कहकर निन्दा कर रहे थे। कोई कोई राक्षस छाती को बजा रहे थे, कोई प्रिया को आलिंगन कर रहे थे, कोई विचित्र विविध वेश धारण कर रहे थे और अनेक धनुष को ही खेंच रहे थे। फिर हनुमान् ने देखा कि स्त्रियां कोई अपने शरीर को चन्दनादि लगा रहीं हैं, कोई शयन करती हैं, कोई हँस रही हैं और कोई क्रोध से लम्बे लम्बे सांस ले रही हैं। महागजों के गर्जन से, सज्जनों के पूजन से, वीरों के निःश्वास से, सर्पयुक्त हृदतुल्य नगरी हो रही थी। वहां अधिक बुद्धिमान्, विविध गुणधारी, अपने तुल्य गुणवाले और सुरूप तथा विरूप राक्षसों को देख हनुमान् प्रसन्न हुआ। (११-१५)

अतः श्रेष्ठ विशुद्ध भाववाले उनकी स्त्रियां महानुभाव पान करती हुई, तारों के समान उसने देखीं। उसने मध्यरात्री के समय कुछ ऐसी स्त्रियां भी देख लीं कि, जो अपनी स्वरूपकान्ति से प्रदीप्त हो उठी थीं, जो शर्माती

स्त्रियो ज्वलन्तीस्त्रपयोपगूढा निशीथकाले रमणोपगूढाः ।
ददर्श काश्चित्प्रमदोपगूढा यथा विहङ्गा विहगोपगूढाः १८
अन्याः पुनर्हर्म्यतलोपविष्टास्तत्र प्रियाङ्के सुसुखोपविष्टाः ।
भर्तुः परा धर्मपरा निविष्टा ददर्श धीमान्मदनोपविष्टाः १९
अप्रावृताः काञ्चनराजिवर्णाः काश्चित्परार्ध्यास्तपनीयवर्णाः ।
पुनश्च काश्चिच्छशलक्ष्मवर्णाः कान्तप्रहीणा रुचिराङ्गवर्णाः २०
ततः प्रियान्प्राप्य मनोभिरामान्सुप्रीतियुक्ताः सुमनोऽभिरामाः ।
गृहेषु हृष्टाः परमाभिरामा हरिप्रवीरः स ददर्श रामाः २१
चन्द्रप्रकाशाश्च हि वक्त्रमाला वक्राः सुपक्ष्माश्च सुनेत्रमालाः ।
विभूषणानां च ददर्श मालाः शतह्रदानामिव चारुमालाः २२
नत्वेव सीतां परमाभिजातां पथि स्थिते राजकुले प्रजाताम् ।
लतां प्रफुल्लामिव साधुजातां ददर्श तन्वीं मनसाभिजाताम् २३
सनातने वर्त्मनि संनिविष्टां रामेक्षणीं तां मदनाभिविष्टाम् ।
भर्तुर्मनःश्रीमदनुप्रविष्टां स्त्रीभ्यः पराभ्यश्च सदाविशिष्टाम् २४

थीं, जिन्हें पतियों ने गाढ आलिंगन दे दिया था, मानों पंछी अपनी सह चरियों से लिपटे पडे हों और जो आनंदविभोर हो उठी थीं। अपने अपने महलों के ऊपरी छज्जों में बैठी हुईं, इतना ही नहीं, किन्तु पति के अत्यन्त प्रिय होने के कारण उनकी गोदियों पर बडे सुख से बैठी हुईं और कुछ विवाहित महिलाएँ भी जो पतिसेवारूपी धर्माचरण में तल्लीन एवं कामदेव से व्याकुल हो जाती थीं, उस बुद्धिमान् हनुमानजी ने वहाँ पर देख लीं। कुछ स्त्रियाँ अपनी देह का ऊपरी भाग खुला रखनेवालीं सोने की लकीरके समान तेजस्वी और इकहरी, कुछ महिलाएँ उत्कृष्ट स्वरूपवाली और कुछ सुवर्णसदृश कांति से युक्त, कई नारियाँ चन्द्रमा के समान हर्षप्रद रंग से विभूषित, कई महिलाएँ प्रेमीयों से बिछुडी हुईं और कुछ मनोरम देह-शोभा से युक्त स्त्रियाँ उस हनुमानजी को उधर दीख पडीं। (१६-२०)

पश्चात् इच्छा के अनुकूल सुन्दर पति मिलने के कारण बडे प्रेम के वशीभूत हो, अपने अपने प्रिय पति से रमण करती हुईं, फूलों से रमणीय प्रतीत

हनुमान् लंकाको मारता है। (सुंदर० स. ३ श्लो. ४२)

उष्णार्दितां सानुसृतास्रकण्ठीं पुरा वराहोत्तमनिष्ककण्ठीम्।
सुजातपक्ष्मामभिरक्तकण्ठीं वने प्रवृत्तामिव नीलकण्ठीम् २५
अभ्यक्तरेखामिव चन्द्रलेखां पांसुप्रदिग्धामिव हेमरेखाम्।
क्षतप्ररूढामिव वर्णरेखां वायुप्रभुग्नामिव हेमरेखाम् २६
सीतामपश्यन्मनुजेश्वरस्य रामस्य पत्नीं वदतां वरस्य।
बभूव दुःखोपहतश्चिरस्य प्लवंगमो मन्द इवाचिरस्य २७

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चमः सर्गः॥५॥ [३९८]

षष्ठः सर्गः।

स निकामं विमानेषु विचरन्कामरूपधृक्।
विचचार कपिर्लङ्कां लाघवेन समन्वितः १
आससाद च लक्ष्मीवान्राक्षसेन्द्रनिवेशनम्।
प्राकारेणार्कवर्णेन भास्वरेणाभिसंवृतम् २

होनेवाली, घरों में हर्षपूर्वक रहनेवाली और पति के प्राणप्यारी ऐसी कुछ नारियाँ उस वानरवर हनुमान्‌जी ने देख लीं। चन्द्रवत् श्वेत मुखवाली, टेढी पलकों और सुन्दर नेत्रों से युक्त भूषण पहिरे हुए, कमलवत् शोभायुक्त अनेक स्त्रियां हनुमान् ने देखीं, पर राजकुलोत्पन्न, मन से उत्पन्न हुई, प्रफुल्लित लता के समान शोभित सीता को, सनातन मार्ग में स्थित, राम-दर्शन की इच्छावाली, सुन्दर स्त्रियों से भी विशिष्ट, पति में चित्त लगाए हुए, अश्रुपूर्ण नेत्रवाली, सुन्दर आभूषणोंसहित, वराहोत्तमनिष्ककण्ठी, नीलकण्ठी के समान, अव्यक्त चंद्ररेखावत्, वायु से भिन्न की हुई मेघरेखा समान, विदुषी, रामपत्नी सीता को कहीं नहीं देखा. जिस से हनुमान् दुःखित, दीन हुआ मंदपुरुषसम स्थित हो गया। (२१-२७)

यहाँ पंचम सर्ग समाप्त हुआ।

सीता के न देखने से विषादयुक्त हनुमान् फिर शीघ्रता से लंका में विचरने लगा। तदनु सूर्यवत् प्रकाशित प्राकार से घिरे रावण के महल में वह पहुंचा। घोर राक्षसों से रक्षित उस भवन को देखकर हनुमान् हर्षित

रक्षितं राक्षसैर्भीमैः सिंहैरिव महद्वनम्।
समीक्षमाणो भवनं चकाशे कपिकुञ्जरः ३
रूप्यकोपहितैश्चित्रैस्तोरणैर्हेममूषणैः।
विचित्राभिश्च कक्ष्याभिर्द्वारैश्च रुचिरावृतम् ४
गजास्थितैर्महामात्रैः शूरैश्च विगतश्रमैः।
उपस्थितमसंह्यार्यैर्हयैः स्यन्दनयायिभिः ५
सिंहव्याघ्रतनुत्राणैर्दान्तकाञ्चनराजतीः।
घोषवद्भिर्विचित्रैश्च सदा विचरितं रथैः ६
बहुरत्नसमाकीर्णं परार्घ्यासनभूषितम्।
महारथसमावापं महारथमहासनम् ७
दृश्यैश्च परमोदारैस्तैस्तैश्च मृगपक्षिभिः।
विविधैर्बहुसाहस्रैः परिपूर्णं समन्ततः ८
विनीतैरन्तपालैश्च रक्षोभिश्च सुरक्षितम्।
मुख्याभिश्च वरस्त्रीभिः परिपूर्णं समन्ततः ९
मुदितप्रमदारत्नं राक्षसेन्द्रनिवेशनम्।
वराभरणसंह्रादैः समुद्रस्वननिःस्वनम् १०
तद्राजगुणसंपन्नं मुख्यैश्च वरचन्दनैः।
महाजनसमाकीर्णं सिंहैरिव महद्वनम् ११
भेरीमृदङ्गाभिरुतं शङ्खघोषविनादितम्।
नित्यार्चितं पर्वसु तं पूजितं राक्षसैः सदा १२

हुआ। सुन्दर रजतचित्रों से युक्त, स्वर्ण की तोरण से भूषित, विचित्र प्रकोष्ठों और रुचिर द्वारों से आवृत्त, हाथी और शूर वीरों से सेवित, सुन्दर घोड़ों से युक्त, सिंहव्याघ्रचर्मयुक्त, विचित्र नादों से नादित, रथों से भरा हुआ, रत्नों और बहुमूल्य आसनों से युक्त, बड़ी बड़ी सवारियों से भरा हुआ, सुन्दर पक्षियों से पूर्ण, विनीत राक्षसों से रक्षित, श्रेष्ठ स्त्रियों से पूरित, मुदित स्त्रियों से भरा हुआ, सागर के शब्दों से नादित, सिंहों से परिपूर्ण जैसे वन ऐसे महाजनों से समाकुल, भेरी मृदङ्ग और शंख की

समुद्रमिव गम्भीरं समुद्रसमनिःस्वनम् ।
महात्मनो महद्वेश्म महारत्नपरिच्छदम् १३
महारत्नसमाकीर्णं ददर्श स महाकपिः ।
विराजमानं वपुषा गजाश्वरथसंकुलम् १४
लङ्काभरणमित्येव सोऽमन्यत महाकपिः ।
चचार हनुमांस्तत्र रावणस्य समीपतः १५
गृहाद्गृहं राक्षसानामुद्यानानि च सर्वशः ।
वीक्षमाणोऽप्यसंत्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः । १६
अवप्लुत्य महावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम् ।
ततोऽन्यत्पुप्लुवे वेश्म महापार्श्वस्य वीर्यवान् १७
अथ मेघप्रतीकाशं कुम्भकर्णनिवेशनम् ।
विभीषणस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः १८
महोदरस्य च तथा विरूपाक्षस्य चैव हि ।
विद्युज्जिह्वस्य भवनं विद्युन्मालेस्तथैव च १९
बहुदंष्ट्रस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ।
शुकस्य च महावेगः सारणस्य च धीमतः २०
तथा चेन्द्रजितो वेश्म जगाम हरियूथपः ।
जम्बुमालेः सुमालेश्च जगाम हरिसत्तमः २१

आवाजों से निनादित, राक्षसों से पर्व में नित्य हवन किया गया, समुद्रवत् गम्भीर शब्दयुक्त, महारत्नों से भरा हुआ रावण का महल हनुमान् ने देखा। (१-१३)

गज, अश्व, रथों से पूर्ण सशरीर विराजमान उस भवन को हनुमान् ने लंकाभूषण माना और वहां रावण के समीप में विचरने लगा। घरों से घरों पर और बगीचों तथा महलों को देखता निर्भय होकर फिरने लगा। शीघ्रही महाबली प्रहस्त के घरपर गया, फिर महापार्श्व के, फिर मेघवत् प्रकाशित कुम्भकर्ण के, पुनः विभीषण के घर पर पहुंचा। वहां से महोदर के और विरूपाक्ष के, फिर विद्युज्जिह्व और विद्युन्माली के, तदनु बहुदंष्ट्र के घर

रश्मिकेतोश्च भवनं सूर्यशत्रोस्तथैव च।
वज्रकायस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः २२
धूम्राक्षस्याथ संपातेर्भवनं मारुतात्मजः।
विद्युद्रूपस्य भीमस्य घनस्य विघनस्य च २३
शुकनाभस्य चक्रस्य शठस्य कपटस्य च।
ह्रस्वकर्णस्य दंष्ट्रस्य लोमशस्य च रक्षसः २४
युद्धोन्मत्तस्य मत्तस्य ध्वजग्रीवस्य सादिनः।
विद्युज्जिह्वद्विजिह्वानां तथा हस्तिमुखस्य च २५
करालस्य विशालस्य शोणिताक्षस्य चैव हि।
प्लवमानः क्रमेणैव हनुमान्मारुतात्मजः २६
तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः।
तेषामृद्धिमतामृद्धिं ददर्श स महाकपिः २७
सर्वेषां समतिक्रम्य भवनानि समन्ततः।
आससादाथ लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्रनिवेशनम् २८
रावणस्योपशायिन्यो ददर्श हरिसत्तम।
विचरन्हरिशार्दूलो राक्षसीर्विकृतेक्षणाः २९
शूलमुद्गरहस्ताश्च शक्तितोमरधारिणः।
ददर्श विविधान्गुल्मांस्तस्य रक्षःपतेर्गृहे ३०

पर गया। फिर महातेजा शुक और सारण के, पुनः इन्द्रजित् के, पश्चात् जम्बुमाली और सुमाली के, पुनः रश्मिकेतु और सूर्यशत्रु के, वज्रकाय और धूम्राक्ष के, फिर सम्पाति, विद्युद्रूप भीम घन और विघन के, पुनः शठ, विकट शुकनास और वक्र के, ह्रस्वकर्ण दंष्ट्र और रोमशादिकों के घरों पर पहुंचते हुए हनुमान् ने क्रम से उन समस्त भवनों में ऋद्धियों को देखा। (१४-२७)

इन सब के महलों को पार कर लक्ष्मीवान् हनुमान रावण के महल पर गया। हनुमान् ने विकृतनेत्रवाली, शूल, मुद्गर, शक्ति, तोमर लिये हुए रावण के सोने के कमरे में (रक्षार्थ) रहनेवाली राक्षसियों को देखा और उस

राक्षसांश्च महाकायान्नानाप्रहरणोद्यतान्।
रक्ताञ्छ्वेतान्सितांश्चापि हरींश्चापि महाजवान् ३१
कुलीनान्रूपसंपन्नान्गजान्परगजारुजान्।
शिक्षितान्गजशिक्षायामैरावतसमान्युधि ३२
निहन्तॄन्परसैन्यानां गृहे तस्मिन्ददर्श सः।
क्षरतश्च यथा मेघान्स्रवतश्च यथा गिरीन् ३३
मेघस्तनितनिर्घोषान्दुर्धर्षान्समरे परैः।
सहस्रं वाहिनीस्तत्र जाम्बूनदपरिष्कृताः ३४
हेमजालैरविच्छिन्नास्तरुणादित्यसंनिभाः।
ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने ३५
शिविका विविधाकाराः स कपिर्मारुतात्मजः
लतागृहाणि चित्राणि चित्रशालागृहाणि च।
क्रीडागृहाणि चान्यानि दारुपर्वतकानि च ३७
कामस्य गृहकं रम्यं दिवागृहकमेव च।
ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने ३८
स मन्दरसमप्रख्यं मयूरस्थानसंकुलम्।
ध्वजयष्टिभिराकीर्णं ददर्श भवनोत्तमम् ३९

महल में नाना गुल्मों और महाकाय शस्त्रधारी राक्षसों को देखा। रक्त श्वेतादिक वेगवान् घोडों को, कुलीन, रूपसम्पन्न हाथियों को भी मर्दन करनेवाले, सुशिक्षित, युद्ध में ऐरावतसमान गजश्रेष्ठों को उस गृह में देखा, जो शत्रु की सेना का संहार करनेवाले झरना के समान मद गिराते थे और मेघके समान गर्जन करते थे। और बहुत सी सेना स्वर्णसामग्री से सम्पन्न, सोने के बखतर पहिने, प्रातःकालीन सूर्य के समान चमकती रावण के निवेशन में हनुमान् ने देखी। (२८-३५)

रावण के उस मन्दिर में हनुमान् ने अनेक प्रकार की पालकी, लतागृह, चित्रशालागृह, क्रीडागृह, क्रीडा की पहाडियां, रतिग्रह, दिन के विनोद-स्थानों को देखा। हनुमान् ने उस उत्तम भवन को मन्दराचल की तलहटी

अनन्तरत्ननिचयं निधिजालं समन्ततः।
धीरनिष्ठितकर्माङ्गं गृहं भूतपतेरिव ४०
आर्चिर्भिश्चापि रत्नानां तेजसा रावणस्य च।
विरराज च तद्वेश्म राश्मिवानिव राश्मिभिः ४१
जाम्बूनदमयान्येव शयनान्यासनानि च।
भाजनानि च शुभ्राणि ददर्श हरियूथपः ४२
मध्वासवकृतक्लेदं मणिभाजनसंकुलम्।
मनोरममसंबाधं कुबेरभवनं यथा ४३
नूपुराणां च घोषेण काञ्चीनां निःस्वनेन च।
मृदङ्गतलनिर्घोषैर्घोषवद्भिर्विनादितम् ४४
प्रासादसंघातयुतं स्त्रीरत्नशतसंकुलम्।
सुव्यूढकक्ष्यं हनुमान्प्रविवेश महागृहम् ४५

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥६॥ [८१३]

सप्तमः सर्गः।

स वेश्मजालं बलवान्ददर्श व्यासक्तवैदूर्यसुवर्णजालम्।
यथा महत्प्रावृषि मेघजालं विद्युद्विनद्धं सविहंगजालम् १

के समान मयूरस्थानों से युक्त और ध्वजापताकाओं से पूर्ण देखा। जो अनेक रत्नों से पूर्ण और ऋद्धिसिद्धि के समूह से व्याप्त कुबेर के गृह के तुल्य था। रत्नों की चमक और रावण के तेजसे सूर्यवत् वह भवन शोभता था। हनुमान् ने स्वर्ण के बने पलङ्ग, आसन और सब बर्तन वहां देखे। हनुमान् ने उस महामन्दिर में प्रवेश किया, जो मदिरा आसव से गीला, मणिमय पात्रों से व्याप्त, कुबेरमन्दिरसम रमणीक, नूपुर काञ्ची मृदंगादि के शब्दों से नादित, प्रासाद और खाई से घिरा, अनेक स्त्रीरत्नों से भरा तथा बडी बडी कक्षावाला था। (३६-४५)

यहाँ षष्ठ सर्ग समाप्त हुआ।

बलवान् हनुमान् ने वेश्मजालों को जो रत्नों से खचित थे और नाना

निवेशनानां विविधाश्च शालाः प्रधानशङ्खायुधचापशालाः ।
मनोहराश्चापि पुनर्विशाला ददर्श वेश्माद्रिषु चन्द्रशालाः २
गृहाणि नानावसुराजितानि देवासुरैश्चापि सुपूजितानि ।
सर्वैश्च दोषैः परिवर्जितानि कपिर्ददर्श स्वबलार्जितानि ३
तानि प्रयत्नाभिसमाहितानि मयेन साक्षादिव निर्मितानि ।
महीतले सर्वगुणोत्तराणि ददर्श लङ्काधिपतेर्गृहाणि ४
ततो ददर्शोच्छ्रितमेघरूपं मनोहरं काञ्चनचारुरूपम् ।
रक्षोधिपस्यात्मबलानुरूपं गृहोत्तमं ह्यप्रतिरूपरूपम् ५
महीतले स्वर्गमिव प्रकीर्णं श्रिया ज्वलन्तं बहुरत्नकीर्णम् ।
नानातरूणां कुसुमावकीर्णं गिरेरिवाग्रं रजसावकीर्णम् ६
नारीप्रवेकैरिव दीप्यमानं तडिद्गिरम्भोधरमर्च्यमानम् ।
हंसप्रवेकैरिव वाह्यमानं श्रिया युतं खे सुकृतं विमानम् ७
यथा नगाग्रं बहुधातुचित्रं यथा नभश्च ग्रहचन्द्रचित्रम् ।
ददर्श युक्तीकृतचारुमेघचित्रं विमानं बहुरत्नचित्रम् ८
मही कृता पर्वतराजिपूर्णा शैलाः कृता वृक्षवितानपूर्णाः ।
वृक्षाः कृताः पुष्पवितानपूर्णाः पुष्पं कृतं केसरपत्रपूर्णम् ९

पक्षियों से भरे हुए थे, देखा और विविध शाला जैसे शङ्खशाला चाप-शाला और मनोहर चन्द्रशाला जो मनोहर और विशाल थीं, देखीं। देवासुरों से पूजित, नाना रत्नों से युक्त, निर्दोष, अपने बल से सञ्चित, जो साक्षात् मयद्वारा बनाये हुए थे, पृथ्वी पर सर्वगुणयुक्त रावण के ऐसे गृहों को देखा। (१-४)

ततः ऊंचे मेघ के समान, स्वर्णयुक्त, रावण के बल के अनुरूप, अप्रतिम-रूप, पृथ्वी पर स्वर्गसम, श्री से ज्वलन्त, बहुरत्नमय, नाना वृक्षों के पुष्पों से व्याप्त, श्रेष्ठ नारियों के समान दीप्यमान, बिजलीवत् चमकता हुआ, हंसों से वहन किये श्रीयुक्त विमानवत्, पर्वत के समान नाना वर्णवाला, गृहचन्द्रादि से युक्त आकाशवत्, बहुरत्नों से विचित्र पुष्पकविमान को देखा। उस विमान पर मही पर्वतमाला से पूर्ण चित्रित की गई थी, वृक्षों

कृतानि वेश्मानि च पाण्डुराणि तथा सुपुष्पा अपि पुष्करिण्यः।
पुनश्च पद्मानि सकेसराणि वनानि चित्राणि सरोवराणि १०
पुष्पाह्वयं नाम विराजमानं रत्नप्रभाभिश्च विधूर्णमानम्।
वेश्मोत्तमानामपि चोद्यमानं महाकपिस्तत्र महाविमानम् ११
कृताश्च वैदूर्यमया विहङ्गा रूप्यप्रवालैश्च तथा विहङ्गाः।
चित्राश्च नानावसुभिर्भुजङ्गा जात्यानुरूपास्तुरगाः शुभाङ्गाः १२
प्रवालजाम्बूनदपुष्पपक्षाः सलीलमावर्जितजिह्मपक्षाः।
कामस्य साक्षादिव भान्ति पक्षा कृता विहङ्गाः सुमुखाः सुपक्षाः १३
नियुज्यमानाश्च गजाः सुहस्ताः सकेसराश्चोत्पलपत्रहस्ताः।
बभूव देवी च कृता सुहस्ता लक्ष्मीस्तथा पद्मिनिपद्महस्ता १४
इवीव तद्गृहमभिगम्य शोभमानं सविस्मयो नगमिव चारुकन्दरम्।
पुनश्च तत्परमसुगन्धि सुन्दरं हिमात्यये नगमिव चारुकन्दरम् १५
ततः स तां कपिरभिपत्य पूजितां चरन्पुरीं दशमुखबाहुपालिताम्।

से पूर्ण पर्वत, पुष्पयुक्त वृक्ष और केसरपूर्ण पुष्प दिखलाये गये थे। इस पर श्वेतवर्ण के भवन, पुष्पमय तालाब, केसरयुक्त कमल, सुन्दर चित्र और वन विचित्र थे। (५-१०)

पुष्पक नामक वह विमान रत्नों की प्रभा से प्रोज्ज्वल और अत्युत्तम विमानों से भी अधिक ऊंचा था। वैदूर्य, चांदी और मूगा के पक्षी उस पर बनाये गये थे, नानारत्नों के सर्प और जाति के सदृश तुरग भी चित्रित थे। जिनके पंख में स्वर्ण और मूंगे के फूल सजाये गये थे, जो संकुचित और कुटिल साक्षात् कामदेव के पक्ष के समान शोभायमान थे, ऐसे सुन्दर मुखवाले और श्रेष्ठपंखधारी पक्षी भी उस पर बनाये गये थे। इस पर कमल का फूल हाथ में लिये लक्ष्मी और उसका अभिषेक करने में नियुक्त सुन्दर शुण्ड सुशोभित कमलपराग से अलंकृत हाथी भी बने हुए थे। (११-१४)

इस भांति विस्मययुक्त हो, उस मनोहर मन्दिर में जाकर हिम के नाश होने पर सुन्दर कन्दरावाले पर्वतवत् सुगन्धिमय गृह को देखते हुए रावण

अदृश्य तां जनकसुतां सुपूजितां सुदुःखितां पतिगुणवेगनिर्जिताम्॥
ततस्तदा बहुविधभावितात्मनः कृतात्मनो जनकसुतां सुवर्त्मनः।
अपश्यतोऽभवदतिदुःखितं मनः सचक्षुषः प्रविचरतो महात्मनः१७
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तमः सर्गः॥७॥[४३०]

अष्टमः सर्गः।

स तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितो महद्विमानं मणिरत्नचित्रितम्।
प्रतप्तजाम्बूनदजालकृत्रिमं ददर्श धीमान्पवनात्मजः कपिः १
तदप्रमेयप्रतिकारकृत्रिमं कृतं स्वयं साधिवति विश्वकर्मणा।
दिवं गते वायुपथे प्रतिष्ठितं व्यराजतादित्यपथस्य लक्ष्म तत् २
न तत्र किंचिन्न कृतं प्रयत्नतो न तत्र किंचिन्न महार्घरत्नवत्।
न ते विशेषा नियताः सुरेष्वपि न तत्र किंचिन्न महाविशेषवत् ३
तपःसमाधानपराक्रमार्जितं मनःसमाधानविचारचारिणम्।
अनेकसंस्थानविशेषनिर्मितं ततस्ततस्तुल्यविशेषनिर्मितम् ४
मनः समाधाय तु शीघ्रगामिनं दुरासदं मारुततुल्यगामिनम्।
महात्मनां पुण्यकृतां महर्द्धिनां यशस्विनामभ्यमुदामिवालयम् ५
विशेषमालम्ब्य विशेषसंस्थितं विचित्रकूटं बहुकूटमण्डितम्।
मनोभिरामं शरदिन्दुनिर्मलं विचित्रकूटं शिखरं गिरेर्यथा ६

से पालित पुरी में प्राप्त होकर फिरते हुए सुपूजित सीता को न देख कर जो पति के गुणों के वशीभूत थी, भावितात्मा कृतात्मा हनुमान् का मन अतिदुःखित हुआ। (१५-१७)

यहाँ सप्तम सर्ग समाप्त हुआ।

मणियों से जटित, स्वर्णजाल से युक्त, ब्रह्मा से कल्पित, अप्रमेय कृति-शाला, वायुपथ आकाश में स्थित, चिह्नवत् शोभित हुआ, तपःसमाधान पराक्रम से संचित, मनःसमाधान से शीघ्रगामी, न रुकनेवाला, वायुवत् वेग-वाला, पुण्यात्मा महात्मा की ऋद्धिसे युक्त, यशस्वी इन्द्रादिकों के स्थानवत्, बहुत पर्वतों से युक्त, विशेष विचित्रकूटपर्वत पर स्थित, मन को आनन्द देनेवाला, शरच्चन्द्रवत् निर्मल, विचित्रकूट के शिखर के समान जिस को

वहन्ति यत्कुण्डलशोभिताननाः महाशनाः व्योमचरा निशाचराः ।
विवृत्तविध्वस्तविशाललोचनाः महाजवाः भूतगणाः सहस्रशः ७
वसन्तपुष्पोत्करचारुदर्शनं वसन्तमासादपि चारुदर्शनम् ।
स पुष्पकं तत्र विमानमुत्तमं ददर्श तद्वानरवीरसत्तमः ८

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥८॥ [४३८]

नवमः सर्गः ।

तस्यालयवरिष्ठस्य मध्ये विमलमायतम् ।
ददर्श भवनश्रेष्ठं हनुमान्मारुतात्मजः १
अर्धयोजनविस्तीर्णमायतं योजनं महत् ।
भवनं राक्षसेन्द्रस्य बहुप्रासादसंकुलम् २
मार्गमाणस्तु वैदेहीं सीतामायतलोचनाम् ।
सर्वतः परिचक्राम हनूमानरिसूदनः ३
उत्तमं राक्षसावासं हनूमानवलोकयन् ।
आससादाथ लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ४
चतुर्विषाणैर्द्विरदैस्त्रिविषाणैस्तथैव च ।
परिक्षिप्तमसंबाधं रक्ष्यमाणमुदायुधैः ५
राक्षसीभिश्च पत्नीभी रावणस्य निवेशनम् ।

कुण्डल शोभित मुखवाले महाशना आकाशचारी राक्षस गोल, विशाल नेत्र-वाले अतिवेगवाले हजारो भूतगण चलाते थे । वसन्त के पुष्पों के समान चारुदर्शन, वसन्तऋतु से भी अति सुन्दर उस त्रिकूटगिरि पर पुष्पक विमान को वानरश्रेष्ठ हनुमान् ने देखा । (१-८)

यहाँ अष्टम सर्ग समाप्त हुआ ।

उस श्रेष्ठ विमान के बीच बड़ा लम्बाचौड़ा एक श्रेष्ठ भवन हनुमान् ने देखा । दो कोस लम्बा और चार कोस चौड़ा नाना महलोंसे युक्त रावण का भवन देखा । शत्रुघ्न हनुमान् दीर्घलोचन सीता को ढूंढता हुआ चारों ओर फिरने लगा । रावण का उत्तम वासस्थान देखता हुआ लक्ष्मीवान् हनुमान् उसके मुख्य भवन पर पहुंचा । तीन और चार सींगवाले शस्त्रधारी राक्षसों

आहृताभिश्च विक्रम्य राजकन्याभिरावृतम् ६
तन्नक्रमकराकीर्णं तिमिंगिलझषाकुलम् ।
वायुवेगसमाधूतं पन्नगैरिव सागरम् ७
या हि वैश्रवणे लक्ष्मीर्या चन्द्रे हरिवाहने ।
सा रावणगृहे रम्या नित्यमेवानपायिनी ८
या च राज्ञः कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च ।
तादृशी तद्विशिष्टा वा ऋद्धी रक्षोगृहेष्विह ९
तस्य हर्म्यस्य मध्यस्थवेश्म चान्यत्सुनिर्मितम् ।
बहुनिर्यूहसंयुक्तं ददर्श पवनात्मजः १०
ब्रह्मणोऽर्थे कृतं दिव्यं दिवि यद्विश्वकर्मणा ।
विमानं पुष्पकं नाम सर्वरत्नविभूषितम् ११
परेण तपसा लेभे यत्कुबेरः पितामहात् ।
कुबेरमोजसा जित्वा लेभे तद्राक्षसेश्वरः १२
ईहामृगसमायुक्तैः कार्तस्वरविरिण्मयैः ।
सुकृतै राजितं स्तम्भैः प्रदीप्तमिव च श्रिया १३

से रक्ष्यमाण, बल से लाई हुई राजकन्याओं और रावण की राक्षसपत्नियों से आवृत्त वह निकेतन था। (१-६)

जो नक्र, मकर, तिमिङ्गिल, मत्स्य से पूर्ण, वायुवेग से चलायमान, सर्पपूर्ण समुद्र के तुल्य था। जो लक्ष्मी कुबेर के थी और जो इन्द्र के थी, वही अनपायिनी लक्ष्मी रावणगृह में स्थित थी और जो ऋद्धि कुबेर, यम और वरुण के थी, वैसी ही या उससे विशेष रावणके थी। हनुमान् ने उस भवन के भीतर बहुत उत्तम बना बहुत मत्त हस्तियों से पूर्ण एक गृह देखा। (७-१०)

जो कुबेर ने ब्रह्मा से बडे तप से लिया था और विश्वकर्मा ने ब्रह्मा के लिये बनाया था, सर्व रत्नों से युक्त वह यह पुष्पकविमान था, जिसे रावण ने कुबेर से बलात् जीत लिया था। लक्ष्मी से युक्त, सोनेचांदी के जालोंसे व्याप्त, मेरुमंदर पर्वतसम ऊंचे शुभ गृहसमूहों से युक्त, सूर्यवत् प्रभावाले

मेरुमन्दरसंकाशैरुल्लिखद्भिरिवाम्बरम् ।
कूटागारैः शुभागारैः सर्वतः समलंकृतम् १४
ज्वलनार्कप्रतीकाशैः सुकृतं विश्वकर्मणा ।
हेमसोपानयुक्तं च चारुप्रवरवेदिकम् १५
जालवातायनैर्युक्तं काञ्चनैः स्फाटिकैरपि ।
इन्द्रनीलमहानीलमणिप्रवरवेदिकम् १६
विद्रुमेण विचित्रेण मणिभिश्च महाधनैः ।
निस्तुलाभिश्च मुक्ताभिस्तलेनाभिविराजितम् १७
चन्दनेन च रक्तेन तपनीयनिभेन च ।
सुपुण्यगन्धिना युक्तमादित्यतरुणोपमम् ॥
विमानं पुष्पकं दिव्यमारुरोह महाकपिः १८
तत्रस्थः सर्वतो गन्धं पानभक्ष्यान्नसंभवम् ।
दिव्यं संमूर्च्छितं जिघ्रन्रूपवन्तमिवानिलम् १९
स गन्धस्तं महासत्त्वं बन्धुर्बन्धुमिवोत्तमम् ।
इत एहीत्युवाचेव तत्र यत्र स रावणः २०
ततस्तां प्रस्थितः शालां ददर्श महतीं शिवाम् ।
रावणस्य महाकान्तां कान्तामिव वरस्त्रियम् २१
मणिसोपानविकृतां हेमजालविराजिताम् ।
स्फाटिकैरावृततलां दन्तान्तरितरूपिकाम् २२

विश्वकर्मा से बनाये हुए स्वर्णसीढियों से युक्त, सुन्दर वेदियों से पूर्ण, स्वर्ण और रत्नों के वातायनों से युक्त, इन्द्रनील और महानील मणियोंसे जडित, महामणियों से पूर्ण, विना तुले हुए मोतियों से युक्त तलवाला, रक्तचन्दन से सुगन्धित, तपे हुए स्वर्णवत् सूर्यसम प्रकाशित, नाना गृहोंसे युक्त उस दिव्य पुष्पकविमान पर हनुमान् चढ गया । (११-१८)

विमान पर स्थित हुए हनुमान् ने पान और भक्ष्यान्नकर गन्ध को जो दिव्य उठी हुई थी, सशरीरवायुवत् सूंघा । बन्धु जिस प्रकार अपने निष्कपट मित्र को उपदेश देता है, ऐसे ही वह गन्धमय वायु महाबली

मुक्तावज्रप्रवालैश्च रूप्यचामीकरैरपि ।
विभूषितां मणिस्तम्भैः सुबहुस्तम्भभूषिताम् २३
समैर्ऋजुभिरत्युच्चैः समन्तात्सुविभूषितैः ।
स्तम्भैः पक्षैरिवात्युच्चैर्दिवं संप्रस्थितामिव २४
महत्या कुशयास्तीर्णां पृथिवीलक्षणाङ्कया ।
पृथिवीमिव विस्तीर्णां सराष्ट्रगृहशालिनीम् २५
नादितां मत्तविहगैर्दिव्यगन्धाधिवासिताम् ।
परार्ध्यास्तरणोपेतां रक्षोधिपनिषेविताम् २६
धूम्रामगरुधूपेन विमलां हंसपाण्डुराम् ।
पत्रपुष्पोपहारेण कल्माषीमिव सुप्रभाम् २७
मनसो मोदजननीं वर्णस्यापि प्रसाधिनीम् ।
तां शोकनाशनीं दिव्यां श्रियः संजननीमिव २८
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थैस्तु पञ्चपञ्चभिरुत्तमैः ।
तर्पयामास मातेव तदा रावणपालिता २९
स्वर्गोऽयं देवलोकोऽयमिन्द्रस्यापि पुरी भवेत् ।
सिद्धिर्वैयं परा हि स्यादित्यमन्यत मारुतिः ३०

हनुमान् से मानो, यह कहने लगा कि, जहां रावण है, हमारे साथ वहां ही चलो । ततः वहांसे चलकर हनुमान्ने शुभ, महान्, रावण की प्रिय स्त्री के समान, रत्नों से युक्त, दान्तों के मध्य में स्थित रूपवाली, मोती मूंगों से युक्त, मणिस्तम्भों से व्याप्त स्तभोंवाली, ऊंचे नीचे स्तम्भों से पूर्ण, आकाश में परों से उडती हुई के समान, बडे मोटे गद्दे बिछी हुई पृथ्वीवत् लक्षणयुक्त, पक्षियों के शब्दों से युक्त, दिव्य गन्धवाली, असंख्य आस्तरणों में पूर्ण, रावण से सेवित, विमल धूपगन्धयुक्त, हंसवत् श्वेत फूलों के कण्ठों से शोभित, अन्धकार में प्रकाश के समान मनोल्लास करनेवाली, दिव्य, शोकनाशिनी, लक्ष्मी देनेवाली उस शालाको देखा, जो उत्तम पञ्चभूतों से पञ्चेन्द्रियों को माता के समान तृप्त करती थी । (१९-२९)

हनुमान् सोचने लगा कि, यह पुरी स्वर्ग है, या इन्द्रका देवलोक है, वा

प्रध्यायत इवापश्यत्प्रदीपांस्तत्र काञ्चनान् ।
धूर्तानिव महाधूर्तैर्देवनेन पराजितान् ३१
दीपानां च प्रकाशेन तेजसा रावणस्य च ।
अर्चिर्भिर्भूषणानां च प्रदीप्तेत्यभ्यमन्यत ३२
ततोऽपश्यत्कुथासीनं नानावर्णाम्बरस्रजम् ।
सहस्रं वरनारीणां नानावेषविभूषितम् ३३
परिवृत्तेऽर्धरात्रे तु पाननिद्रावशंगतम् ।
क्रीडित्वोपरतं रात्रौ प्रसुप्तं बलवत्तदा ३४
तत्प्रसुप्तं विरुरुचे निःशब्दान्तरभूषितम् ।
निःशब्दहंसभ्रमरं यथा पद्मवनं महत् ३५
तासां संवृतदान्तानि मीलिताक्षीणि मारुतिः ।
अपश्यत्पद्मगन्धीनि वदनानि सुयोषिताम् ३६
प्रबुद्धानीव पद्मानि तासां भूत्वा क्षपाक्षये ।
पुनः संवृतपत्राणि रात्राविव बभुस्तदा ३७
इमानि मुखपद्मानि नियतं मत्तषट्पदाः ।
अम्बुजानीव फुल्लानि प्रार्थयन्ति पुनः पुनः ३८

दूसरी सिद्धि है ? जुवे में महाधूर्तों से पराजित धूर्तों के तुल्य स्वर्णदीपक यह सोचते हुए हनुमान् ने देखे । दीपकों के प्रकाश और रावण के तेज से भूषणों की चमकसे वह शाला जलती हुईसी उसने समझी । फिर हनुमान् ने देखा कि, रात्रि के हो आने से सहस्र सहस्र स्त्रियां अनेक प्रकार के शृङ्गार कर विचित्र आसनों पर कोई कोई बैठी है, और कोई कोई लेटी हैं, जो अर्धरात्रि होने पर मदिरापान करने के कारण नींद के वश हो विहार करने से विरत हो गई थीं । इस प्रकार सब के सो जाने और उससे निस्तब्ध हो जाने से रावण का वह गृह भ्रमरहंसध्वनिरहित पद्मवन के समान दीखता था । (३०-३५)

हनुमान्ने तब ललनाओं के बन्द नेत्र और पद्मगन्धयुक्त मुख देखे । जो रात्रि के क्षय होने पर प्रबुद्ध कमल के समान पुनः रात्रि होने पर सङ्कु-

इति वामन्यत श्रीमानुपपत्त्या महाकपिः ।
मेने हि गुणतस्तानि समानि सलिलोद्भवैः ३९
सा तस्य शुशुभे शाला ताभिः स्त्रीभिर्विराजिता ।
शरदीव प्रसन्ना द्यौस्ताराभिरभिशोभिता ४०
स च ताभिः परिवृतः शुशुभे राक्षसाधिपः ।
यथा ह्युडुपतिः श्रीमांस्ताराभिरिव संवृतः ४१
याश्च्यवन्तेऽम्बरात्ताराः पुण्यशेषसमावृताः ।
इमास्ताः संगताः कृत्स्ना इति मेने हरिस्तदा ४२
ताराणामिव सुव्यक्तं महतीनां शुभार्चिषाम् ।
प्रभावर्णप्रसादाश्च विरेजुस्तत्र योषिताम् ४३
व्यावृत्तकञ्चपानस्रक्प्रकीर्णवरभूषणाः ।
पानव्यायामकालेषु निद्रोपहतचेतसः ४४
व्यावृत्ततिलकाः काश्चित्काश्चिदुद्भ्रान्तनूपुराः
पार्श्वे गलितहाराश्च काश्चित्परमयोषितः ४५
मुक्ताहारवृताश्चान्याः काश्चित्प्रस्रस्तवाससः ।
व्याविद्धरशनादामाः किशोर्य इव वाहिताः ४६

चित पत्रवाले कमलों के समान शोभित थे । इन मुखपद्मों को उन्मत्त भ्रमर प्रफुल्लित पद्मों के समान बार बार प्रार्थना करते थे । ऐसे श्रीमान् हनुमान् ने उन मुखों को देखकर गुणों से पद्मों के समान माना । वह शाला उन स्त्रियों से तारों से शोभित शरद् के शुद्ध आकाशवत् शोभित थी । (३६-४०)

वह रावण उन स्त्रियों से तारों से शोभित चन्द्रवत् शोभित था । यथा पुण्य शेष होने पर आकाशसे नक्षत्र गिरते हैं । हनुमान्ने उनको ऐसे देखा । तारागणवत् चमकती हुई स्त्रियाँ उस शाला में शोभित थीं । फैली हुई फूलों की माला और भूषणों से युक्त, पान करने से निद्रायुक्त चित्तवाली, तिलकयुक्त, नूपुरों को बजाती हुई, स्खलित हारवाली, कोई मोतियों का हार पहिरे हुए, किशोरावस्थायुक्त, कामश्रम से थकी हुई,

अकुण्डलधराश्चान्या विच्छिन्नमृदितस्रजः ।
गजेन्द्रमृदिताः फुल्ला लता इव महावने ४७
चन्द्रांशुकिरणाभाश्च हाराः कासांचिदुद्गताः ।
हंसा इव बभुः सुप्ताः स्तनमध्येषु योषिताम् ४८
अपरासां च वैदूर्याः कादम्बा इव पक्षिणः ।
हेमसूत्राणि चान्यासां चक्रवाका इवाभवन् ४९
हंसकारण्डवोपेताश्चक्रवाकोपशोभिताः ।
आपगा इव ता रेजुर्जघनैः पुलिनैरिव ५०
किङ्किणीजालसंकाशास्ता हेमविपुलाम्बुजाः ।
भावग्राहा यशस्तीराः सुप्ता नद्य इवाबभुः ५१
मृदुष्वङ्केषु कासांचित्कुचाग्रेषु च संस्थिताः
बभूवुर्भूषणानीव शुभा भूषणराजयः ५२
अंशुकान्ताश्च कासांचिन्मुखमारुतकम्पिताः ।
उपर्युपरि वक्त्राणां व्याधूयन्ते पुनः पुनः ५३
ताः पताका इवोद्भूताः पत्नीनां रुचिरप्रभाः ।
नानावर्णसुवर्णानां वक्त्रमूलेषु रेजिरे ५४

कोई कोई शुभ कुण्डलों को धारण किये हुए, कोई विच्छिन्न मालायुक्त जैसे महावन में गजेन्द्र से फूलों की माला मृदित की गई हो, कोई स्तनों में मणियों के हार पहिरे हुए मानों उन स्त्रियों के स्तनमध्य में हंस सो रहे थे, ऐसी स्त्रियाँ देखीं । (४१-४८)

किसी किसी की वैदूर्य मणियों की माला कलहसंवत् और किसी के हेमसूत्र चकवासमान शोभित थे । इससे वे हंस चक्रवाकादि से शोभित नदियों के समान पुलिनरूप जङ्घाओं से शोभित थीं । किङ्किणीजाल से युक्त, स्वर्णपत्रों से पूर्ण, यशरूप तटों से युक्त सुप्त नदियों के तुल्य शोभित थीं । किन्हीं किन्हीं के कोमलाङ्गों में कुचाग्र भाग में शुभ भूषण स्थित थे और किसी किसी के मुखकमलों पर वस्त्र श्वास से कांपते हुए

ववल्गुश्चात्र कासांचित्कुण्डलानि शुभार्चिषाम् ।
मुखमारुतसंकम्पैर्मन्दं मन्दं च योषिताम् ५५
शर्करासवगन्धः स प्रकृत्या सुरभिः सुखः ।
तासां वदननिःश्वासः सिषेवे रावणं तदा ५६
रावणाननशङ्काश्च काश्चिद्रावणयोषितः
मुखानि च सपत्नीनामुपाजिघ्रन् पुनः पुनः ५७
अत्यर्थं सक्तमनसो रावणे ता वरस्त्रियः ।
अस्वतन्त्राः सपत्नीनां प्रियमेवाचरंस्तदा ५८
बाहू उपनिधायान्याः पारिहार्यविभूषिताः ।
अंशुकानि च रम्याणि प्रमदास्तत्र शिश्यिरे ५९
अन्या वक्षसि चान्यस्यास्तस्याः काचिन्पुनर्भुजम् ।
अपरा त्वङ्कमन्यस्यास्तस्याश्चाप्यपरा कुचौ ६०
ऊरुपार्श्वकटीपृष्ठमन्योन्यस्य समाश्रिताः ।
परस्परानिविष्टाङ्ग्यो मदस्नेहवशानुगाः । ६१
अन्योन्यस्याङ्गसंस्पर्शात्प्रीयमाणाः सुमध्यमाः ।
एकीकृतभुजाः सर्वाः सुषुपुस्तत्र योषितः ६२

शोभित थे । वे पत्नियों की सुन्दर मुखप्रभाएं नाना वर्णयुक्त मुखों पर शोभित थीं । (४९-५५)

किन्हीं किन्हीं के कांतियुक्त मुखों पर कुण्डल मन्द मन्द मुखवायु से कम्पते थे । उनके मुख से निकल श्वास जो प्रकृत्या सुखद था, रावण की सेवा करता था । रावण के मुख की शङ्का से उसकी पत्नियां सौतों के मुख जो बार बार सूंघती थीं । रावण में आसक्त अतः पराधीन वे श्रेष्ठ नारियां सपत्नियों का प्रिय करती हुई स्थित थीं । कोई पारिहार्य (बलां) से भूषित भुजाओं को शिर के नीचे रखकर रम्य वस्त्रों से ढकी सोती थीं । (५५-६०)

कोई किसी की छाती के ऊपर, कोई किसी की भुजा के ऊपर और कोई किसी की गोदी में ही शयन कर रहीं थीं । वे सभी अत्यन्त लावण्यवती

अन्योन्यभुजसूत्रेण स्त्रीमालाग्रथिता हि सा।
मालेव ग्रथिता सूत्रे शुशुभे मत्तषट्पदा ६३
लतानां माधवे मासि फुल्लानां वायुसेवनात्।
अन्योन्यमालाग्रथितं संसक्तकुसुमोच्चयम् ६४
प्रतिवेष्टितसुस्कन्धमन्योन्यभ्रमराकुलम्।
आसीद्वनमिवोद्भूतं स्त्रीवनं रावणस्य तत् ६५
उचितेष्वपि सुव्यक्तं न तासां योषितां तदा।
विवेकं शक्यमाधातुं भूषणाङ्गाम्बरस्रजाम् ६६
रावणे सुखसंविष्टे ताः स्त्रियो विविधप्रभाः।
ज्वलन्तः काञ्चना दीपाः प्रेक्षन्तोऽनिमिषा इव ६७

स्त्रियां पारस्परिक देहस्पर्श के कारण हर्षित होती हुईं, हाथों से एक दूसरे को आलिंगन देकर वहाँपर सो रही थीं। धागे से पिरोई हुई फूलों की माला भौंरों से जुड जानेपर जैसी सुहाती है, उसी प्रकार परस्पर हस्तरूपी धागों से गूँथी हुई, वह स्त्रियों की मालिका सुहाने लगी। वैसाख के माह में वायु के छूने से विकसित हुईं लताओं के कुंज के समान वह रावण की स्त्रियों का झुंड दिखाई देने लगा, क्योंकि एक दूसरे से संबद्ध होने के कारण माली जैसे मालाएँ गूँथ देता है, ठीक वैसे ही उन महिलाओं की एक माला-सी गूँथी हुई दीख पडती थी। उनके अवयवों पर गहनों का जो जाल था, वह वनमें परस्परसंमिलित पुष्पराशिके समान दिखाई दे रहा था। (६१-६४)

प्रेमियों की कंधों को उन स्त्रियों ने अपनी बाहों से लिपटा था। अतः पेड से चिपक जानेवाली लताओं के समान वे सुहाती थीं और चूँकि एक दूसरीके केशकलाप परस्पर जुड गये थे, इसलिए भौंरों से भरी हुई लताओं का आभास हो रहा था। यद्यपि उन स्त्रियों के गहने आदि पहले ठीक ठीक रखे गये थे, तो भी नींदके बस में जानेके कारण आभूषण, माला एवं अंग इस स्त्रीके कौन और उस स्त्रीके कौन, यह साफ साफ बतलना असंभव था। रावण सुखसे सो रहा था और लगातार न मूँदते

राजर्षिविप्रदैत्यानां गन्धर्वाणां च योषितः ।
रक्षसां चाभवन्कन्यास्तस्य कामवशंगताः ६८
युद्धकामेन ताः सर्वा रावणेन हृताः स्त्रियः ।
समदा मदनेनैव मोहिताः काश्चिदागताः ६९
न तत्र काश्चित्प्रमदाः प्रसह्य वीर्योपपन्नेन गुणेन लब्धाः ।
न चान्यकामापि न चान्यपूर्वा विना वरार्हां जनकात्मजां तु ७०
न चाकुलीना न च हीनरूपा नादक्षिणा नानुपचारयुक्ता ।
भार्याभवत्तस्य न हीनसत्त्वा न चापि कान्तस्य न कामनीया ७१
बभूव बुद्धिस्तु हरीश्वरस्य यदीदृशी राघवधर्मपत्नी ।
इमा महाराक्षसराजभार्याः सुजातमस्येति हि साधुबुद्धेः ७२
पुनश्च सोऽचिन्तयदात्तरूपो ध्रुवं विशिष्टा गुणतो हि सीता ।
अथायमस्यां कृतवान्महात्मा लङ्केश्वरः कष्टमनार्यकर्म ७३

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ [५११]

हुए जलनेवाले रत्नदीप ऐसे प्रतीत होने लगे, मानों निर्निमेष दृष्टिसे कुछ पुरुष ही उन भाँति भाँति की कांतियों से युक्त नारियों को निहारने लगे हों। राजर्षि, ब्राह्मण, दैत्य, गन्धर्व और राक्षसों की कन्या इन सब को ही रावणने वशमें किया था। वे सर्व स्त्रियां युद्ध करके लाई गई थीं और कोई कोई मदवाली स्त्रियां काम से मोहित होकर स्वयं आई थीं। वे समस्त स्त्रियां हठ और बल से नहीं लाई गई थीं, किन्तु रावण के गुणों में आसक्त होकर प्राप्त हुई थीं, एक जानकी को छोडकर। (६५-७०)

उनमें न कोई अकुलीन थीं, न व्यभिचारिणी थीं और निर्बल भी न थीं और न अपने पति की इच्छा न रखनेवाली थीं। उन्हें देख हनुमान्‌ने विचारा कि इन रावणपत्नियों के समान सीता भी रावण में अनुरक्त हो गई हों तो इसका अहोभाग्य! फिर हनुमान् सोचने लगा कि सीता तो रामगुणविशिष्ट है, मैंने जो इन स्त्रियों के समान समझा यह बडा अनर्थ है और रावण ने सीता का अनादर करके बडा अनर्थ किया। (७०-७३)

यहाँ नवम सर्ग समाप्त हुआ।

*

दशमः सर्गः

तत्र दिव्योपमं मुख्यं स्फाटिकं रत्नभूषितम्।
अवेक्षमाणो हनुमान् ददर्श शयनासनम् १
दान्तकाञ्चनचित्राङ्गैर्वैदूर्यैश्च वरासनैः।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः २
तस्य चैकतमे देशे दिव्यमालोपशोभितम्।
ददर्श पाण्डुरं छत्रं ताराधिपतिसंनिभम् ३
जातरूपपरिक्षिप्तं चित्रभानोः समप्रभम्।
अशोकमालाविततं ददर्श परमासनम् ४
वालव्यजनहस्ताभिर्वीज्यमानं समन्ततः।
गन्धैश्च विविधैर्जुष्टं वरधूपेन धूपितम् ५
परमास्तरणास्तीर्णमाविकाजिनसंवृतम्।
दामभिर्वरमाल्यानां समन्तादुपशोभितम् ६
तस्मिञ्जीमूतसंकाशं प्रदीप्तोज्ज्वलकुण्डलम्।
लोहिताक्षं महाबाहुं महारजतवाससम् ७
लोहितेनानुलिप्ताङ्गं चन्दनेन सुगन्धिना।
संध्यारक्तमिवाकाशे तोयदं सतडिद्गुणम् ८
वृतमाभरणैर्दिव्यैः सुरूपं कामरूपिणम्।
सवृक्षवनगुल्माढ्यं प्रसुप्तमिव मन्दरम् ९

वहाँ देखते हुए हनुमान् ने दिव्य रत्नों से भूषित शयनासन देखा, जो हाथीदांत और नाना दिव्य रत्नों से तथा आभरणों से युक्त था। उसके एक देशमें चन्द्रमावत् पाण्डुर छत्र था, जो विचित्र मालाओंसे युक्त और अशोक के पुष्पों से भरा था। उसे हनुमान् ने देखा। (१-४)

छोटे छोटे पंखे हाथ में लिये हवा करतीं स्त्रियों से युक्त, विविध गन्धों से सुगन्धित, अच्छे बिछौने बिछे हुए, परदे पडे हुए, सुन्दर पुष्पमालाओं से ढका हुआ, मेघवत् रूपवाला, प्रदीप्त कुण्डलयुक्त, चारों ओर से शोभित, लोहिताक्ष, महाबाहु, श्वेत वस्त्रयुक्त, लाल चन्दनसे लिप्त, संध्याके

क्रीडित्वोपरतं रात्रौ वराभरणभूषितम् ।
प्रियं राक्षसकन्यानां राक्षसानां सुखावहम् १०
पत्निवाप्युपरतं चापि ददर्श स महाकपिः ।
भास्वरे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम् ११
निःश्वसन्तं यथा नागं रावणं वानरोत्तमः ।
आसाद्य परमोद्विग्नः सोऽपासर्पत्सुभीतवत् १२
अथारोहणमासाद्य वेदिकान्तरमाश्रितः ।
क्षीबं राक्षसशार्दूलं प्रेक्षते स्म महाकपिः १३
शुशुभे राक्षसेन्द्रस्य स्वपतः शयनं शुभम् ।
गन्धहस्तिनि संविष्टं यथा प्रस्रवणं महत् १४
काञ्चनाङ्गदसंनद्धौ ददर्श स महात्मनः ।
विक्षिप्तौ राक्षसेन्द्रस्य भुजाविन्द्रध्वजोपमौ १५
ऐरावतविषाणाग्रैरापीडनकृतव्रणौ ।
वज्रोल्लिखितपीनांसौ विष्णुचक्रपरिक्षतौ १६
पीनौ समसुजातांसौ संगतौ बलसंयुतौ ।
सुलक्षणनखाङ्गुष्ठौ स्वङ्गुलीयकलक्षितौ १७
संवृतौ परिघाकारौ वृत्तौ करिकरोपमौ ।

मेघवत् वर्णवाला, वृक्षलतायुक्त प्रसुप्त मन्दराचलवत्, सुन्दर आभूषणों से पूर्ण, रात्रि में क्रीडा करने से थका हुआ, भास्वर बिस्तरे पर प्रसुप्त रावण को देखा । (५-११)

सर्पवत् श्वास लेते हुए रावण के पास उद्विग्न हनुमान् डरता डरता पहुँचा । ततः सीढी पर चढ कर दूसरी वेदी में जाकर सुप्त रावण को देखने लगा । सोते हुए रावण का यह उत्तम शयन गन्धहस्तियों से युक्त प्रस्रवण गिरि के तुल्य शोभता था । मणियुक्त स्वर्णबाजू पहरे इधर उधर इन्द्रध्वजा के समान फैली रावण की भुजाओं को देखा । (१२-१५)

ऐरावत के मस्तक से क्षत, वज्र से लिखित, विष्णुचक्र से परिक्षत, मिली हुई वज्रवत् कठोर, बलयुक्त, सुलक्षण अंगुष्ठ और नखवाली, मोटी

विक्षिप्तौ शयने शुभे पञ्चशीर्षाविवोरगौ १८
शशाक्षतजकल्पेन सुशीतेन सुगन्धिना।
चन्दनेन पराध्यैन स्वनुलिप्तौ स्वलंकृतौ १९
उत्तमस्त्रीविमृदितौ गन्धोत्तमनिषेवितौ।
यक्षपन्नगगन्धर्वदेवदानवराविणौ २०
ददर्श स कपिस्तस्य बाहू शयनसंस्थितौ।
मन्दरस्यान्तरे सुप्तौ महाही रुषिताविव २१
ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यामुभाभ्यां राक्षसेश्वरः।
शुशुभेऽचलसंकाशः शृङ्गाभ्यामिव मन्दरः २२
चूतपुंनागसुरभिर्बकुलोत्तमसंयुतः।
मृष्टान्नरससंयुक्तः पानगन्धपुरःसरः २३
तस्य राक्षसराजस्य निश्चक्राम महामुखात्।
शयानस्य विनिःश्वासः पूरयन्निव तद्गृहम् २४
मुक्तामणिविचित्रेण काञ्चनेन विराजता।
मुकुटेनापवृत्तेन कुण्डलोज्ज्वलिताननम् २५
रक्तचन्दनदिग्धेन तथा हारेण शोभिना।
पीनायतविशालेन वक्षसाभिविराजता २६
पाण्डुरेणापविद्धेन क्षौमेण क्षतजेक्षणम्।
महार्हेण सुसंवीतं पीतेनोत्तरवाससा २७

हाथी की सूंडसम, पांच फनवाले सर्पवत् शुभ आसन पर पडी हुई, सुगन्धित चन्दनादि से लिप्त, उत्तम सुगन्धिवाली स्त्रियों से दबाई हुई, यक्षपन्नग, गन्धर्व, देवदानवों से प्रस्तुत मन्दरपर्वत पर सुप्त शेषनागवत् भयङ्कर, उन बाहुओं को हनुमान् ने देखा। (१६-२१)

रावण मन्दरगिरि के शिखरवत् उन भुजाओं से पूर्ण शोभायमान था। आम्रपुन्नागादिक वृक्षों की गन्धयुक्त, पक्वान्न के रसयुक्त मद्यपानगन्ध से पूर्ण रावण के मुख से निकले श्वास से वह स्थान पूर्ण था। मणिमुक्तादिक से युक्त मुकुट पहिरे हुए, कुण्डलों से शोभित मुखवाले, रक्त चन्दन लगाये हुए

माषराशिप्रतीकाशं निःश्वसन्तं भुजङ्गवत् ।
गाङ्गे महति तोयान्ते प्रसुप्तमिव कुञ्जरम् २८
चतुर्भिः काञ्चनैर्दीपैर्दीप्यमानं चतुर्दिशम् ।
प्रकाशीकृतसर्वाङ्गं मेघं विद्युद्गणैरिव २९
पादमूलगताश्चापि ददर्श सुमहात्मनः ।
पत्नीः स प्रियभार्यस्य तस्य रक्षःपतेर्गृहे ३०
शशिप्रकाशवदना वरकुण्डलभूषणाः ।
अम्लानमाल्याभरणा ददर्श हरियूथपः ३१
नृत्यवादित्रकुशला राक्षसेन्द्रभुजाङ्कगाः ।
वराभरणधारिण्यो निषण्णा ददृशे कपिः ३२
वज्रवैदूर्यगर्भाणि श्रवणान्तेषु योषिताम् ।
ददर्श तापनीयानि कुण्डलान्यङ्गदानि च ३३
तासां चन्द्रोपमैर्वक्त्रैः शुभैर्ललितकुण्डलैः ।
विराजते विमानं तन्नभस्तारागणैरिव ३४
मदव्यायामखिन्नास्ता राक्षसेन्द्रस्य योषितः ।
तेषु तेष्ववकाशेषु प्रसुप्तास्तनुमध्यमाः ३५

पीन और अति चौडे वक्षःस्थलवाले, सुन्दर पाण्डुर वस्त्र पहिरे हुए, सर्पवत् श्वास लेते हुए, गङ्गा में प्रसुप्त हाथीवत्, चारों ओर में प्रकाशित दीपकों से युक्त, बिजलीवत् चमकते हुए, रावणको और उस के गृह में पैरों में स्थित उसकी पत्नियों को देखा । (२२-३०)

जो चन्द्रवदनवाली, सुन्दर कुण्डलों में भूषित और माला व आभूषणों से सुशोभित, नाचनेगाने में प्रवीण, रावण की गोदी में बैठी हुई और सुन्दर आभरणों को धारण कर रहीं थी और जिनके कानों में हीरे और वैदूर्यमणि के कुण्डल तथा (हाथों में) बाजूबन्द शोभा दे रहे थे । उन के चन्द्रतुल्य और ललित कुण्डलवाले मुखों से वह विमान तारागणयुक्त आकाशवत् शोभित था । कामक्रीडा से थकीं, वे रावणपत्नियाँ जहाँ तहाँ सो गईं थीं । (३१-३५)

अङ्गहारैस्तथैवान्या कोमलैर्नृत्यशालिनी।
विन्यस्तशुभसर्वाङ्गी प्रसुप्ता वरवर्णिनी ३६
काचिद्वीणां परिष्वज्य प्रसुप्ता संप्रकाशते।
महानदीप्रकीर्णेव नलिनी पोतमाश्रिता ३७
अन्या कक्षगतेनैव मङ्कुकेनासितेक्षणा।
प्रसुप्ता भामिनी भाति बालपुत्रेव वत्सला ३८
पटहं चारुसर्वाङ्गी न्यस्य शेते शुभस्तनी।
चिरस्य रमणं लब्ध्वा परिष्वज्येव कामिनी ३९
काचिद्वीणां परिष्वज्य सुप्ता कमललोचना।
वरं प्रियतमं गृह्य सकामेव हि कामिनी ४०
विपञ्चीं परिगृह्यान्या नियता नृत्यशालिनी।
निद्रावशमनुप्राप्ता सहकान्तेव भामिनी ४१
अन्या कनकसंकाशैर्मृदुपीनैर्मनोरमैः।
मृदङ्गं परिविद्धयाङ्गैः प्रसुप्ता मत्तलोचना ४२
भुजपाशान्तरस्थेन कक्षगेन कृशोदरी।
पणवेन सहानिन्द्या सुप्ता मदकृतश्रमा ४३

कोई कामिनी निद्रावस्था में ही अपने अङ्गों को चलायमान करके नाचसी रही थीं। कोई वीणा को पकडे हुए सो जाने से महानदी में डूबती हुई कमलिनी के नौका में लग जाने के समान शोभती थीं। कोई स्त्री डमरु ही बगल में दबाये सो गई थी और कोई पटह बाजे को दबाए शयन कर रही थी। कोई कमलनेत्रा बांसुरी को ही पकड कर सो गई थी। (३६-४०)

सदा ही नृत्य करनेवाली कोई स्त्री विपञ्ची बाजे को गोद में लिये सो रही थी, कोई कोई मदमाते नेत्रवाली अपने कोमल अङ्गों में मृदङ्ग को चिपटा शयन कर रही थी, और एक कृशोदरी अपनी भुजाओं में पणव बाजे को दबाये हुए सो गई थी, डमरुप्रिया कोई स्त्री डमरु को ही

डिण्डिमं परिगृह्यान्या तथैवासक्तडिण्डिमा ।
प्रसुप्ता तरुणं वत्समुपगुह्येव भामिनी ४४
काचिदाडम्बरं नारी भुजसंभोगपीडितम् ।
कृत्वा कमलपत्राक्षी प्रसुप्ता मदमोहिता ४५
कलशीमपविद्धयान्या प्रसुप्ता भाति भामिनी ।
वसन्ते पुष्पशबला मालेव परिमार्जिता ४६
पाणिभ्यां च कुचौ काचित्सुवर्णकलशोपमौ ।
उपगुह्यावला सुप्ता निद्राबलमुपागता ४७
अन्या कमलपत्राक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना ।
अन्यामालिङ्ग्य सुश्रोणीं निद्रावशमुपागता ४८
आतोद्यानि विचित्राणि परिष्वज्य वरस्त्रियः ।
निपीड्य च कुचैः सुप्ताः कामिन्यः कामुकानिव ४९
तासामेकान्तविन्यस्ते शयानां शयने शुभे ।
ददर्श रूपसंपन्नामथ तां स कपिः स्त्रियम् ५०

लिपटाये बच्चे को गोद में लिये हुए बालवत्सला स्त्री के समान नींद के वश हो गई थीं, कोई अपनी बाहों में आडम्बर नाम बाजा धारण कर सो रही थी, और एक भामिनी जलकलश को ही लिपटा कर सो गई थी, जिसके जल से उसका सब अङ्ग गीला हो रहा था। (४१-४६)

नींद के बसमें गयी हुई दूसरी एक नारी स्वर्णकलशवत् दीखनेवाले अपने स्तन अपनेही हाथों से सुदृढ पकड कर सो रही थी। संपूर्ण चन्द्रमा के समान आह्लाददायक मुँह और कमलपत्रों के समान विशाल आँखों से युक्त तथा नींद से अलसायी हुई एक स्त्री पडोस में ही सोयी हुई दूसरी स्त्रीसे लिपट कर सो गयी थी। कामातुर स्त्रियाँ अपने स्तनों से पतियों को दृढालिंगन देती हुई जैसे सो जाती हैं, वैसे ही भाँतिभाँति के बाजोंको लपेट कर श्रेष्ठ स्त्रियाँ उधर निद्रासुख का अनुभव ले रही थीं। (४७-४९)

यह देखते देखते हनुमान् ने देखा कि अलग एक मनोहर सेज पर

मुक्तामणिसमायुक्तैर्भूषणैः सुविभूषिताम्।
विभूषयन्तीमिव च स्वश्रिया भवनोत्तमम् ५१
गौरीं कनकवर्णाभामिष्टामन्तःपुरेश्वरीम्।
कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम् ५२
स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः।
तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसंपदा।
हर्षेण महता युक्तो ननन्द हरियूथपः ५३
आस्फोटयामास चुचुम्ब पुच्छं ननन्द चिक्रीड जगौ जगाम।
स्तम्भानरोहन्निपपात भूमौ निदर्शयन्स्वां प्रकृतिं कपीनाम् ५४

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे दशमः सर्गः ॥१०॥

एकादशः सर्गः। [५६५]

अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा।
जगाम चापरां चिन्तां सीतां प्रति महाकपिः १
न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी।
न भोक्तुं नाप्यलंकर्तुं न पानमुपसेवितुम् २

अप्रतिमयौवना एक स्त्री सो रही है। जो मणिमय नाना भूषणोंसे युक्त इस श्रेष्ठ भवन को शोभित कर रही थी। वह गौराङ्गी सब रनवासकी स्वामिनी रावणप्रिया मन्दोदरी थी। हनुमान् ने उसे देख रूपयौवनसम्पन्न सीता समझा। सीता को देख बडे हर्ष से वह वानरपति आनन्दित हो गया। वानरप्रकृति दिखाते हुए, हनुमान् अपनी बाहु पटकने लगा, पूंछ चूमने लगा, नृत्य करने और नाना भाव दर्शाते छलाङ्गे मार कर खम्भों पर चढ चढ फिर भूमि में गिरने लगा। (५०-५५)

यहाँ दशम सर्ग समाप्त हुआ।

मन्दोदरी को सीता समझ हनुमान् स्थिरचित्त हो गया, पर सीता के विषय में एक और चिन्ता करने लगा कि, राम से वियुक्त वह शयन, भोग, शृङ्गार, पान, परपुरुषसेवन चाहे इन्द्र भी हो, न करेगी। देवतों में

नान्यं नरमुपस्थातुं सुराणामपि चेश्वरम् ।
नहि रामसमः कश्चिद्विद्यते त्रिदशेष्वपि ३
अन्येयमिति निश्चित्य भूयस्तत्र चचार सः ।
पानभूमौ हरिश्रेष्ठः सीतासंदर्शनोत्सुकः ४
क्रीडितेनापराः क्लान्ता गीतेन च तथापराः
नृत्येन चापराः क्लान्ताः पानविग्रहतास्तथा ५
मुरजेषु मृदङ्गेषु वेलिकासु च संस्थिताः ।
तथास्तरणमुख्येषु संविष्टाश्चापराः स्त्रियः ६
अङ्गनानां सहस्रेण भूषितेन विभूषणैः ।
रूपसंलापशीलेन युक्तगीतार्थभाषिणा ७
देशकालाभियुक्तेन युक्तवाक्याभिधायिना ।
रताधिकेन संयुक्तां ददर्श हरियूथपः ८
अन्यत्रापि वरस्त्रीणां रूपसंलापशायिनाम् ।
सहस्रं युवतीनां तु प्रसुप्तं स ददर्श ह ९
देशकालाभियुक्तं तु युक्तवाक्याभिधायि तत् ।
रताविरतसंसुप्तं ददर्श हरियूथपः १०
तासां मध्ये महाबाहुः शुशुभे राक्षसेश्वरः ।
गोष्ठे महति मुख्यानां गवां मध्ये यथा वृषः ११

भी रामतुल्य कोई नहीं है अतः यह सीता नहीं- यह निश्चय कर वह उस पानभूमि में फिर विचरने लगा । कुछ स्त्रियां वहां पाशे खेल, संगीत कर और नाच के थक गईं थीं, कुछ मद्य से मस्त हो रहीं थीं । कोई मुरव, कोई मृदङ्ग और कोई पीठिका बाजा लिये सो रही थी, कुछ स्त्रियां बिस्तर पर सो रहीं थीं । (१-६)

हजारों स्त्रियां जो भूषणों से भूषित थीं, रूपसंलापशील युक्त गीतार्थ भाषण करनेवाली और देशकालाभियुक्त वाक्य बोलनेवाली थीं, उन से युक्त रति से थके रावण को हनुमान् ने सोते देखा । (७-१०)

बडे गोष्ठ में गायों के बीच जैसे बिजार, तैसे उनके बीच रावण शोभित

स राक्षसेन्द्रः शुशुभे ताभिः परिवृतः स्वयम्।
करेणुभिर्यथारण्ये परिकीर्णो महाद्विपः १२
सर्वकामैरुपेतां च पानभूमिं महात्मनः।
ददर्श कपिशार्दूलस्तस्य रक्षःपतेर्गृहे १३
मृगाणां महिषाणां च वराहाणां च भागशः।
तत्र न्यस्तानि मांसानि पानभूमौ ददर्श सः १४
रौक्मेषु च विशालेषु भाजनेष्वप्यभक्षितान्।
ददर्श कपिशार्दूलो मयूरान्कुक्कुटांस्तथा १५
वराहवार्ध्राणसकान्दधिसौवर्चलायुतान्। ×
शल्यान्मृगमयूरांश्च हनुमानन्ववैक्षत १६
कृकलान्विविधांश्छागाञ्छशकानर्धभक्षितान्।
महिषानेकशल्कांश्च च्छेदांश्च कृतनिष्ठितान् १७
लेह्यानुच्चावचान्पेयान्भोज्यान्युच्चावचानि च १८

था। रावण उन के मध्य में हथिनियों में हाथी के समान शोभित था। हनुमान्ने राक्षसपति के गृह में सर्व कामनाओं से युक्त उस पानभूमि को देखा। मृग, महिष, वराह के मांसों को पानभूमि में रक्खे हुए देखा। हनुमान्ने विशाल स्वर्णपात्रों में मोरमुरगों का मांस भी रक्खा देखा। वराह वार्ध्राणस (छागविशेष) मृगमयूरों के मांस को दही और सौवर्चलयुक्त देखा। (११-१६)

चकवाचकवी बकरी आदिक के लेह्य, चोष्य, उच्चावच, नाना पेय-भोज्य लवण अम्ल के पक्व अन्न तथा हारनूपुरादिकों से युक्त, पानभाजन-

× कृष्णग्रीवो रक्तशिराः श्वेतपक्षो विहङ्गमः।
स वै वार्ध्राणसः प्रोक्तः॥ (विष्णुधर्म)
त्रिःपिबं त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धप्रजापतिम्।
वार्ध्राणसं च तं प्राहुर्याज्ञिकाः श्राद्धकर्मणि॥

'त्रिःपिब' का अर्थ है पानी पीते समय जिसके मुँह और दो कान पानी को लगते हैं, वह।

तथाम्ललवणोत्तंसैर्विविधै रागखाण्डवैः । ❀
महानूपुरकेयूरैरपविद्धैर्महाधनैः
पानभाजनविक्षिप्तैः फलैश्च विविधैरपि । १९
कृतपुष्पोपहारा भूराधिकां पुष्यति श्रियम् २०
तत्र तत्र च विन्यस्तैः सुश्लिष्टशयनासनैः ।
पानभूमिर्विना वह्निं प्रदीप्तेवोपलक्ष्यते २१
बहुप्रकारैर्विविधैर्वरसंस्कारसंस्कृतैः ।
मांसैः कुशलसंयुक्तैः पानभूमिगतैः पृथक् २२
दिव्याः प्रसन्ना विविधाः सुराः कृतसुरा अपि ।
शर्करासवमाध्वीकाः पुष्पासवफलासवाः २३
वासचूर्णैश्च विविधैर्मृष्टास्तैस्तैः पृथक्पृथक् ।
संतता शुशुभे भूमिर्माल्यैश्च बहुसंस्थितैः २४
हिरण्मयैश्च कलशैर्भाजनैः स्फाटिकैरपि ।
जाम्बूनदमयैश्चान्यैः करकैरभिसंवृता २५
राजतेषु च कुम्भेषु जाम्बूनदमयेषु च ।
पानश्रेष्ठां तथा भूमिं कपिस्तत्र ददर्श ह २६

युक्त, पुष्पोंपहारों से भरी हुई, लक्ष्मीयुक्त, इधर उधर शयनासनों से भरी हुई, बहुत प्रकार के मांसों से भरी पानभूमि विना अग्नि के प्रज्वलित हो रही थी। दिव्य निर्मल सुरा और कृत्रिम सुरा, शर्करासव, माध्वीक और पुष्पासव, विचित्र चूर्ण और नाना मालाओं से पानभूमि शोभित थी। (१७-२४)

स्वर्णस्फटिक के पात्रों से तथा अन्य पात्रों से अति शोभायमान पान-

❀ सितामध्वादिमधुरो द्राक्षादाडिमजो रसः।
विरलश्चेत्कृतो रागः सान्द्रश्चेत्खाण्डवः स्मृतः॥

शहद तथा खाँड वगैरा डालकर मीठा किया हुआ दाख और अनार का रस, यदि पतला हो तो राग, और घना हो तो खांडव कहलाया जाता है।

सोऽपश्यच्छातकुम्भानि सीधोर्मणिमयानि च ।
तानि तानि च पूर्णानि भाजनानि महाकपिः २७
क्वचिदर्धावशेषाणि क्वचित्पीतान्यशेषतः ।
क्वचिन्नैव प्रपीतानि पानानि स ददर्श ह २८
क्वचिद्भक्ष्यांश्च विविधान्क्वचित्पानं विभागतः ।
क्वचिदर्धावशेषानि पश्यन्वै विचचार ह २९
शयनान्यत्र नारीणां शून्यानि बहुधा पुनः ।
परस्परं समाश्लिष्य काश्चित्सुप्ता वराङ्गनाः ३०
काचिच्च वस्त्रमन्यस्य अपहृत्योपगुह्य च ।
उपगम्याबला सुप्ता निद्राबलपराजिता ३१
तासामुच्छ्वासवातेन वस्त्रं माल्यं च गात्रजम् ।
नात्यर्थं स्पन्दते चित्रं प्राप्य मन्दामिवानिलम् ३२
चन्दनस्य च शीतस्य सीधोर्मधुरसस्य च ।
विविधस्य च माल्यस्य पुष्पस्य विविधस्य च ३३
बहुधा मारुतस्तस्य गन्धं विविधमुद्वहन् ।
स्नानानां चन्दनानां च धूपानां चैव मूर्च्छितः ।
प्रववौ सुरभिर्गन्धो विमाने पुष्पके तदा ३४

भूमि हो रही थी। चांदी और स्वर्ण के घड़ों में भरी बहुतसी श्रेष्ठ मदिरा हनुमान् ने वहां देखी। तथा नानापात्र चांदी स्वर्ण के मद्य से भरे देखे। किन्हीं की शराब आधी पी ली गई थी और किन्हीं की सारी पी जा चुकी थी। कहीं विविध भक्ष्यान्न, कहीं पान और कहीं अवशेष अन्न, कहीं नाना भोजन कहीं फलफूल देखता वह घूमता रहा। (२५-२९)

कहीं कहीं स्त्रियां परस्पर चिपट कर सो गई थीं, कोई अबला निद्रावश दूसरी स्त्री की सेज पर जा, उसके वस्त्र ओढ उसकी सेज पर शयन कर रही थी। उनके निःश्वास से उनके शरीरके वस्त्र और मालाएं मन्दवायु से हिलाये के समान हिल रहे थे। शीतल चन्दन, मद्यमधुरस, विविध माल्य, धूप आदि की सुगंधि वहन करके वहां पवन चल रहा था। रस, चन्दन,

श्यामावदातास्तत्रान्याः काश्चित्कृष्णा वराङ्गनाः ।
काश्चित्काञ्चनवर्णाङ्ग्यः प्रमदा राक्षसालये ३५
तासां निद्रावशत्वाच्च मदनेन विमूर्च्छितम् ।
पद्मिनीनां प्रसुप्तानां रूपमासीद्यथैव हि ३६
एवं सर्वमशेषेण रावणान्तःपुरं कपिः ।
ददर्श स महातेजा न ददर्श च जानकीम् ३७
निरीक्षमाणश्च ततस्ताः स्त्रियः स महाकपिः ।
जगाम महतीं शङ्कां धर्मसाध्वसशङ्कितः ३८
परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम् ।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति ३९
न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी ।
अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः ४०
तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः ।
निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी ४१
कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः ।
न तु मे मनसा किंचिद्वैकृत्यमुपपद्यते ४२

धूपादि से व्याप्त गन्ध उस पुष्पकविमान में बहती थी। रावण के उस स्थान में कोई स्त्री श्याम रङ्ग, कोई काली, कोई स्वर्णवत् रंगवाली थी। (३०-३५)

रतिसे थकित सोई हुइ उन का रूप सुप्त कमलियों के रूपवत् दीखता था। इस प्रकार रावण के रनवास में हनुमान्ने सब कुछ देखा, पर जानकी को ही न देखा। उन स्त्रियों को देखता हुआ हनुमान् धर्मलोप के भय से बडी चिंता करने लगा, कि प्रसुप्त परस्त्रियों का देखना निश्चय ही मेरे धर्म का नाश करेगा। पराई स्त्रियों में मेरी दृष्टि विषयासक्त नहीं है, तो भी मैंने यहां परदारपरिग्रह तो देखा है। उस मनस्वी के मन में फिर एक चिन्ता उत्पन्न हुई कि, निश्चय ही सोई हुई रावण की स्त्रियां मैंने देखीं,

मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने ।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ४३
नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम् ।
स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा संपरिमार्गणे ४४
यस्य सत्त्वस्य या योनिस्तस्यां तत्परिमार्गते ।
न शक्यं प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम् ४५
तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया ।
रावणान्तःपुरं सर्वं दृश्यते न च जानकी ४६
देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च वीर्यवान् ।
अवेक्षमाणो हनुमान्नैवापश्यत जानकीम् ४७
तामपश्यन्कपिस्तत्र पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः ।
अपक्रम्य तदा वीरः प्रस्थातुमुपचक्रमे ४८
स भूयः सर्वतः श्रीमान्मारुतिर्यत्नमाश्रितः ।
आपानभूमिमुत्सृज्य तां विचेतुं प्रचक्रमे ४९

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

[६१८]

पर इस से मेरे मन में तो विकार नहीं हुआ। मन ही शुभ, अशुभ अवस्थाओं में सारी इन्द्रियों के प्रवर्तन का हेतु होता है, सो वह सुव्यवस्थित है ही। (३७-४३)

और कहीं मैं जानकी को ढूंढ भी नहीं सकता, स्त्रियां स्त्रियों में ही मिलती हैं। जिस की जो जाति है, उसी में वह ढूंढा जाता है, खोई हुई स्त्री हरिणियों में नहीं ढूंढी जाती। सो शुद्ध मन से यह रावण का रनवास मैंने ढूंढ ही डाला, पर कहीं जानकी दिखाई नहीं पडती। देवगन्धर्वनागादि की कन्याओं को निरखते हुए हनुमान् ने जानकी को कहीं न पाया। तब वह वहां से बाहर आ और कहीं चलने को उद्यत हुआ। यत्नवान् पवनपुत्र पानभूमि को छोड अन्यत्र खोज करने में लगा। (४४-४९)

यहाँ एकादश सर्ग समाप्त हुआ।

द्वादशः सर्गः।

स तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितो लतागृहांश्चित्रगृहाञ्छिशागृहान्।
जगाम सीतां प्रतिदर्शनोत्सुको न चैव तां पश्यति चारुदर्शनाम् १
स चिन्तयामास ततो महाकपिः प्रियामपश्यन्रघुनन्दनस्य ताम्।
ध्रुवं न सीता ध्रियते यथा न मे विचिन्वतो दर्शनमेति मैथिली २
सा राक्षसानां प्रवरेण बाला स्वशीलसंरक्षणतत्परा सती।
अनेन नूनं प्रति दुष्टकर्मणा हता भवेदार्यपथे परे स्थिता ३
विरूपरूपा विकृता विवर्चसो महानना दीर्घविरूपदर्शनाः।
समीक्ष्य ता राक्षसराजयोषितो भयाद्विनष्टा जनकेश्वरात्मजा ४
सीतामदृष्ट्वा ह्यनवाप्य पौरुषं विहृत्य कालं सह वानरैश्चिरम्।
न मेऽस्ति सुग्रीवसमीपगा गतिः सुतीक्ष्णदण्डो बलवांश्च वानरः ५

दृष्टमन्तःपुरं सर्वं दृष्टा राक्षसयोषितः।
न सीता दृश्यते साध्वी वृथा जातो मम श्रमः ६
किं नु मां वानराः सर्वे गतं वक्ष्यन्ति संगताः।
गत्वा तत्र त्वया वीर किं कृतं तद्ब्रूहि नः ७

उस महल के बीच सीता को देखने की इच्छावाला हनुमान् लतागृह, चित्रगृह, शयनागारों में गया, पर सीता को कहीं न देखा। सीता को न देखता हुआ हनुमान् तब सोचने लगा कि सीता अवश्य मर गई, जो ढूंढने पर भी नहीं मिलती। सन्मार्ग में स्थित स्वशील की रक्षक सती सीता को निश्चय दुष्टकर्मा रावण ने मार डाला होगा। अथवा वह कुरूप, विकृत, बडे बडे मुखवाली रावण की पत्नियों को देखकर भय से नष्ट हो गई होगी। सीता को न देखकर वानरों के साथ चिरकाल बिता कर मैं अब सुग्रीव के समीप नहीं जा सकता, क्योंकि वह कठोर दण्ड देनेवाले हैं। (१-५)

सारा रनवास और रावणपत्नियां देख लीं, पर सीता दिखाई नहीं पडती, मेरा श्रम निष्फल ही रहा। मेरे जाने पर सब वानर एक साथ पूछेंगे कि, कहो तुमने वहां जाकर क्या किया? जानकी को विना देखे मैं उन से क्या

अदृष्ट्वा किं प्रवक्ष्यामि तामहं जनकात्मजाम्।
ध्रुवं प्रायमुपासिष्ये कालस्य व्यतिवर्तने ८
किं वा वक्ष्यति वृद्धश्च जाम्बवानङ्गदश्च सः
गतं पारं समुद्रस्य वानराश्च समागताः ९
अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम्।
भूयस्तत्र विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः १०
अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः ११
तस्मादनिर्वेदकरं यत्नं चेष्टेऽहमुत्तमम्।
अदृष्टांश्च विचेष्यामि देशान्रावणपालितान् १२
आपानशाला विचितास्तथा पुष्पगृहाणि च।
चित्रशालाश्च विचिता भूयः क्रीडागृहाणि च १३
निष्कुटान्तररथ्याश्च विमानानि च सर्वशः।
इति संचिन्त्य भूयोऽपि विचेतुमुपचक्रमे १४
भूमीगृहांश्चैत्यगृहान्गृहातिगृहकानपि।
उत्पतन्निपतंश्चापि तिष्ठन्गच्छन्पुनः क्वचित् १५
अपवृण्वंश्च द्वाराणि कपाटान्यवघट्टयन्।
प्रविशन्निष्पतंश्चापि प्रपतन्नुत्पतन्निव १६

कहूंगा ? निश्चय ही बहुत काल बीत जाने से वे प्राण त्याग देंगे। समुद्रके पार जाने पर जाम्बवान्, अंगद और अन्य वानर क्या कहेंगे ? उत्साह-लक्ष्मी का मूल और परम सुख है, सदा उत्साह ही सब कार्यों में प्रवृत्ति कराता है। (६-१०)

वही जीव के किये हुए सब कर्मों को सफल करता है; इससे उत्साह-पूर्वक यत्न की चेष्टा मुझे करनी चाहिये। फिर से रावण के सब स्थान ढूंढूगा, जहां नहीं ढूंढा, वहां फिर ढूढ़गा। पानभूमि, लतागृह, चित्रशाला, क्रीडागृह, विमानादि तो देख लिये। यह सोच फिर तयखाने, चैत्यगृहादि देखने शुरू किये। बार बार ऊपर चढ नीचे उतर ठहर ठहर कर, फिर जा जा

सर्वमप्यवकाशं स विचचार महाकपिः १७
चतुरङ्गुलमात्रोऽपि नावकाशः स विद्यते ।
रावणान्तःपुरे तस्मिन्यं कपिर्न जगाम सः १८
प्राकारान्तरवीथ्यश्च वेदिकाश्चैत्यसंश्रयाः ।
श्वभ्राश्च पुष्करिण्यश्च सर्वं तेनावलोकितम् १९
राक्षस्यो विविधाकारा विरूपा विकृतास्तथा ।
दृष्टा हनुमता तत्र न तु सा जनकात्मजा २०
रूपेणाप्रतिमा लोके परा विद्याधरस्त्रियः ।
दृष्टा हनुमता तत्र न तु राघवनन्दिनी २१
नागकन्या वरारोहाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।
दृष्टा हनुमता तत्र न तु सा जनकात्मजा २२
प्रमथ्य राक्षसेन्द्रेण नागकन्या बलाद्धृताः ।
दृष्टा हनुमता तत्र न सा जनकनन्दिनी २३
सोऽपश्यंस्तां महाबाहुः पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः ।
विषसाद महाबाहुर्हनूमान्मारुतात्मजः २४
उद्योगं वानरेन्द्राणां प्लवनं सागरस्य च ।
व्यर्थं वीक्ष्यानिलसुतश्चिन्तां पुनरुपागतः २५

कर, द्वारों को तथा किवाडों को खोल घुस कर निकल कर इस प्रकार उस हनुमान् ने सारा स्थान देख डाला । (११-१७)

चार अङ्गुल भी रावण के अन्तःपुर में ऐसी जगह न रही होगी, जहां हनुमान् न गया । मकानों के आबचक, देवालयों के वेदी, गलियां, तलैयां सब कपिराज ने देख डालीं । विरूप, विकृत राक्षसी भी देखीं, पर वहां सीता को न देखा । वरारोहा चन्द्रमुखी नागकन्या भी वहां देखीं, पर सीता को ही न देखा । बलात् जिन नागकन्याओं को रावण हर लाया था उन्हें भी देखा, पर जानकी को ही न देखा । दूसरी स्त्रियों को देख, पर सीता को न देख हनुमान् फिर दुःखी हुआ । वानरों का उद्योग और समुद्र

अवतीर्य विमानाच्च हनूमान्मारुतात्मजः।
चिन्तामुपजगामाथ शोकोपहतचेतनः २६

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥१२॥[६४०]

त्रयोदशः सर्गः।

विमानात्तु स संक्रम्य प्राकारं हरियूथपः।
हनूमान्वेगवानासीद्यथा विद्युद्घनान्तरे १
संपरिक्रम्य हनुमान्रावणस्य निवेशनान्।
अदृष्ट्वा जानकीं सीतामब्रवीद्वचनं कपिः २
भूयिष्ठं लोलिता लङ्का रामस्य चरता प्रियम्।
न हि पश्यामि वैदेहीं सीतां सर्वाङ्गशोभनाम् ३
पल्वलानि तटाकानि सरांसि सरितस्तथा।
नद्योऽनूपवनान्ताश्च दुर्गाश्च धरणीधराः॥
लोलिता वसुधा सर्वा न च पश्यामि जानकीम् ४
इह संपातिना सीता रावणस्य निवेशने।
आख्याता गृध्रराजेन न च सा दृश्यते तु किम् ५
किं तु सीताऽथ वैदेही मैथिली जनकात्मजा।
उपतिष्ठेत विवशा रावणेन हृता बलात् ६

का लांघना व्यर्थ होता देख हनुमान् फिर चिन्तित हुआ। शोक से विक्षिप्त हनुमान् विमान से उतर बड़ी चिन्ता करने लगा। (१८-२६)

यहाँ द्वादश सर्ग समाप्त हुआ।

बिजुलीसम वेग से हनुमान् विमान से उतर प्राकार पर चढ़ गया। रावण के महल के चारों ओर फिर कर सीता को न देख हनुमान् कहने लगा। राम का प्रिय कर्म करते हुए मैंने लङ्का को ढूंढ डाला, पर सीता को कहीं नहीं पाया। पल्वल, सरोवर, सरिता, नदी के किनारे, दुर्ग, पर्वत, पृथ्वी सब देख डालीं, पर सीता को कहीं नहीं पाता। सम्पाति ने तो रावणगृह में सीताको बताया था, पर मैं उसे यहां नहीं देखता। (१-५)

कहीं सीता विवश होकर दुराचारी रावण के समीप तो नहीं बैठी, वा

क्षिप्रमुत्पततो मन्ये सीतामादाय रक्षसः।
बिभ्यतो रामबाणानामन्तरा पतिता भवेत् ७
अथवा ह्रियमाणायाः पथि सिद्धनिषेविते।
मन्ये पतितमार्यायाः हृदयं प्रेक्ष्य सागरम् ८
रावणस्योरुवेगेन भुजाभ्यां पीडितेन च।
तया मन्ये विशालाक्ष्या त्यक्तं जीवितमार्यया ९
उपर्युपरि सा नूनं सागरं क्रमतस्तदा।
विचेष्टमाना पतिता समुद्रे जनकात्मजा १०
आहो क्षुद्रेण चानेन रक्षन्ती शीलमात्मनः।
अबन्धुर्भक्षिता सीता रावणेन तपस्विनी ११
अथवा राक्षसेन्द्रस्य पत्नीभिरसितेक्षणा।
अदुष्टा दुष्टभावाभिर्भक्षिता सा भविष्यति १२
अथवा निहिता मन्ये रावणस्य निवेशने।
भृशं लालप्यते बाला पञ्जरस्थेव सारिका १३
जनकस्य कुले जाता रामपत्नी सुमध्यमा।
कथमुत्पलपत्राक्षी रावणस्य वशं व्रजेत् १४

रामबाणों के भय से रावण सीता को लेकर उडा हो, तो कहीं बीच में तो नहीं गिर पडी अथवा आकाश में हरकर ले जाती हुई समुद्र को देख इसमें गिर तो नहीं पडी वा जब भुजाओं के बीच दबाकर रावण वेग से भागा हो, तो सीता ने प्राण त्याग दिये हों? वा जब रावण सागरके ऊपर ऊपर आता था, तो तब विचलकर सीता समुद्रमें गिर पडी हो। (६-१०)

अपने सतीत्व की रक्षा करती हुई को इस शूद्र रावण ने खा ली हो। अथवा रावण की पत्नियों ने उसे भक्षण कर डाला हो, या पूर्ण चन्द्र-तुल्य राम के मुख का ध्यान करती मर गई हो। हा राम! हा लक्ष्मण! हा अयोध्ये! इस प्रकार बिलखती सीता ने शरीर छोड दिया हो, अथवा रावणगृह में उसे छिपा दिया हो, निश्चय पिंजडे में बन्द मैना के तुल्य सीता विलाप करती होगी। रामपत्नी सीता रावण के वश में कैसे आ

विनष्टा वा प्रणष्टा वा मृता वा जनकात्मजा ।
रामस्य प्रियभार्यस्य न निवेदयितुं क्षमम् १५
निवेद्यमाने दोषः स्याद्दोषः स्यादनिवेदने ।
कथं नु खलु कर्तव्यं विषमं प्रतिभाति मे १६
अस्मिन्नेवंगते कार्ये प्राप्तकालं क्षमं च किम् ।
भवेदिति मतिं भूयो हनुमान्प्राविचारयन् १७
यदि सीतामदृष्ट्वाऽहं वानरेन्द्रपुरीमितः ।
गमिष्यामि ततः को मे पुरुषार्थो भविष्यति १८
ममेदं लङ्घनं व्यर्थं सागरस्य भविष्यति ।
प्रवेशश्चैव लङ्काया राक्षसानां च दर्शनम् १९
किं वा वक्ष्यति सुग्रीवो हरयो वापि संगताः ।
किष्किन्धामनुसंप्राप्तं तौ वा दशरथात्मजौ २०
गत्वा तु यदि काकुत्स्थं वक्ष्यामि परुषं वचः ।
न द्रष्टेति मया सीता ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् २१
परुषं दारुणं तीक्ष्णं क्रूरमिन्द्रियतापनम् ।
सीतानिमित्तं दुर्वाक्यं श्रुत्वा स न भविष्यति २२

सकती है ? क्या तो कहीं छिपा दी या मार डाली या स्वयं मर गई, मैं राम से यह वृत्त कहने को समर्थ नहीं हूं । (११-१५)

कह ने में भी दोष है और न कहने में भी दोष है; बड़ी कठिनाई है कैसे किया जावे ? इसी काम में इतना समय बीत गया, अब क्या करना चाहिये ? हनुमान् यह सोचने लगा । यदि सीताको विना देखे ही किष्किन्धा को मैं जाऊं तो मेरा क्या पुरुषार्थ होगा ? सागर का लंघन और लङ्का का प्रवेश तथा राक्षसों का दर्शन व्यर्थ ही होगा । सुग्रीव, राम लक्ष्मण वा एकत्र हुए वानर किष्किन्धा में जाने पर मुझे क्या कहेंगे । (१६-२०)

जाकर यदि राम से कहूं कि सीता को मैं नहीं देख पाया, तो वह प्राण छोड़ देंगे । कठोर क्रूर सीतासम्बन्धी कुवार्ता सुन वह नहीं जीयेंगे । उन

तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा पञ्चत्वगतमानसम् ।
भृशानुरक्तो मेधावी न भविष्यति लक्ष्मणः २३
विनष्टौ भ्रातरौ श्रुत्वा भरतोऽपि मरिष्यति ।
भरतं च मृतं दृष्ट्वा शत्रुघ्नो न भविष्यति २४
पुत्रान्मृतान्समीक्ष्याथ न भविष्यन्ति मातरः ।
कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च न संशयः २५
कृतज्ञः सत्यसंधश्च सुग्रीवः प्लवगाधिपः ।
रामं तथागतं दृष्ट्वा ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् २६
दुर्मना व्यथिता दीना निरानन्दा तपस्विनी ।
पीडिता भर्तृशोकेन रुमा त्यक्ष्यति जीवितम् २७
वालिजेन तु दुःखेन पीडिता शोककर्शिता ।
पञ्चत्वमागता राज्ञी तारापि न भविष्यति २८
मातापित्रोर्विनाशेन सुग्रीवव्यसनेन च ।
कुमारोऽप्यङ्गदस्तस्माद्विजहिष्यति जीवितम् २९
भर्तृजेन तु दुःखेन अभिभूता वनौकसः ।
शिरांस्यभिहनिष्यन्ति तलैर्मुष्टिभिरेव च ३०
सान्त्वेनानुप्रदानेन मानेन च यशस्विना ।
लालिताः कपिनाथेन प्राणांस्त्यक्ष्यन्ति वानराः ३१

को गतप्राण देख मेधावी लक्ष्मण भी न जीयेंगे । दोनों भाइयों को मरा सुन भरत भी मर जांयगे, भरत को मरा देख शत्रुघ्न भी प्राण छोड देंगे । पुत्रों को मरा देख कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी भी निश्चय मर जायेंगीं । कृतज्ञ सत्यप्रतिज्ञ सुग्रीव भी राम को मरा देख मर जांयगे । तपस्विनी रुमा भी पतिशोक से मर जायगी । वालि के दुःख से पीडित तारा सुग्रीव के मरने पर न जीयेगी । मातापिता के विनाश और सुग्रीव के दुःख से कुमार अङ्गद भी कैसे जी सकेगा ? स्वामी के दुःख से सारे वानर लात-मूकों से अपने शिर धुनेंगे । (२१-३०)

सुग्रीवद्वारा साम दान मान से पालित वानर मर जांयगे । वन, शैल

न वनेषु न शैलेषु न निरोधेषु वा पुनः।
क्रीडामनुभविष्यन्ति समेत्य कपिकुञ्जराः ३२
सपुत्रदाराः सामात्या भर्तृव्यसनपीडिताः।
शैलाग्रेभ्यः पतिष्यन्ति समेषु विषमेषु च ३३
विषमुद्बन्धनं वापि प्रवेशं ज्वलनस्य वा।
उपवासमथो शस्त्रं प्रचरिष्यन्ति वानराः ३४
घोरमारोदनं मन्ये गते मयि भविष्यति।
इक्ष्वाकुकुलनाशश्च नाशश्चैव वनौकसाम् ३५
सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीमितः।
न हि शक्ष्याम्यहं द्रष्टुं सुग्रीवं मैथिलीं विना ३६
मय्यगच्छति चेहस्थे धर्मात्मानौ महारथौ।
आशया तौ धरिष्येते वानराश्च तरस्विनः ३७
हस्तादानो मुखादानो नियतो वृक्षमूलिकः।
वानप्रस्थो भविष्यामि अदृष्ट्वा जनकात्मजाम् ३८
सागरानूपजे देशे बहुमूलफलोदके।
चितिं कृत्वा प्रवेक्ष्यामि समिद्धमरणंसुतम् ३९
उपविष्टस्य वा सम्यग्लिङ्गिनं साधयिष्यतः।

वा निरोध में इकट्ठे होकर वानर फिर कभी क्रीडा न करेंगे। पुत्र स्त्री अमात्योंसहित वे राजा के दुःख से पीडित वे पर्वतों से नीचे ऊंचे स्थानों में गिर प्राण त्याग देंगे। वानर विष खाकर, फांसी लगा कर, आग में घुस कर वा शस्त्रोंद्वारा वा उपवास करके प्राण छोड देंगे। वहां मेरे जाने पर इक्ष्वाकु के कुलनाश और वानरनाश से घोर रुदन मचेगा। सो मैं यहां से किष्किन्धा को नहीं जाऊंगा, सीता के विना देखे मैं सुग्रीव से नहीं मिल सकता। मेरे न जाने और यहां रहने से वे दोनों राम लक्ष्मण व वानरगण आशा सो रक्खे रहेंगे। सीता के विना देखे मैं वानप्रस्थी हो जाऊंगा। वा बहुत मूलफलजलयुक्त सागर के तट पर चिता बना जलकर मर जाऊंगा। वा संन्यास को साधते हुए बैठे हुए, मेरे शरीर को कौवे व्याघ्रा-

शरीरं भक्षयिष्यन्ति वायसाः श्वापदानि च ४०
इदमप्यृषिभिर्दृष्टं निर्याणमिति मे मतिः ।
सम्यगापः प्रवेक्ष्यामि न चेत्पश्यामि जानकीम् ४१
सुजातमूला सुभगा कीर्तिमाला यशस्विनी ।
प्रभग्ना चिररात्राय मम सीतामपश्यतः ४२
तापसो वा भविष्यामि नियतो वृक्षमूलिकः ।
नेतः प्रतिगमिष्यामि तामदृष्ट्वाऽसितेक्षणाम् ४३
यदि तु प्रतिगच्छानि सीतामनधिगम्य ताम् ।
अङ्गदः सहितः सर्वैर्वानरैर्न भविष्यति ४४
विनाशे बहवो दोषा जीवन्प्राप्नोति भद्रकम् ।
तस्मात्प्राणान्धरिष्यामि ध्रुवो जीवति संगमः ४५
एवं बहुविधं दुःखं मनसा धारयन्बहु ।
नाध्यगच्छत्तदा पारं शोकस्य कपिकुञ्जरः ४६
ततो विक्रममासाद्य धैर्यवान्कपिकुञ्जरः ४७
रावणं वा वधिष्यामि दशग्रीवं महाबलम् ।
काममस्तु हृता सीता प्रत्याचीर्णं भविष्यति ४८

दिक खा जांयगे । (३१-४०)

यदि जानकी को न देखूंगा, तो जल में प्रवेश कर जाऊंगा । सुजात-मूला, सुभगा, कीर्तिमाला यह रात्रि मेरे सीता को न देखते हुए ही व्यतीत हो गई । वृक्षों को मूल खानेवाला मैं तपस्वी हो जाऊंगा । यदि वहां से सीता को विना देखे हो लौट जाऊंगा, तो उन सब वानरोंसहित अङ्गद न जीवेगा । विनाश में बहुत दोष हैं, जीता हुआ शुभ बातों को मनुष्य देखता है, अतः मैं अवश्य जीऊंगा । (४१-४५)

इस प्रकार मन में बार बार बहुविध दुःख धारता हनुमान् शोक का पार न पा सका । तदनु विक्रम को धारण कर कपिश्रेष्ठ हनुमानने रावण के वध का इरादा किया, हरी हुई सीता सकुशल होवे, अब किये का विपरीत

अथ वैनं समुत्क्षिप्य उपर्युपरि सागरम्।
रामायोपहरिष्यामि पशुं पशुपतेरिव ४९
इति चिन्तासमापन्नः सीतामनधिगम्य ताम्।
ध्यानशोकपरीतात्मा चिन्तयामास वानरः ५०
यावत्सीतां न पश्यामि रामपत्नीं यशस्विनीम्।
तावदेतां पुरीं लङ्कां विचिनोमि पुनःपुनः ५१
संपातिवचनाच्चापि रामं यद्यानयाम्यहम्।
अपश्यन्राघवो भार्यां निर्दहेत्सर्ववानरान् ५२
इहैव नियताहारो वत्स्यामि नियतेन्द्रियः।
न मत्कृते विनश्येयुः सर्वे ते नरवानराः ५३
अशोकवनिका चापि महतीयं महाद्रुमा।
इमामधिगमिष्यामि न हीयं विचिता मया ५४
वसून्रुद्रांस्तथादित्यानश्विनौ मरुतोऽपि च।
नमस्कृत्वा गमिष्यामि रक्षसां शोकवर्धनः ५५
जित्वा तु राक्षसान्देवीमिक्ष्वाकुकुलनन्दिनीम्।
संप्रदास्यामि रामाय यथा सिद्धिं तपस्विने ५६

होगा। अग्नि के लिये जैसे पशु वैसे राम के लिये सीता का सागर के ऊपर से उडकर हरण करूंगा। इस चिंता से युक्त ध्यानशोक से आक्रांत सीता को न पाकर हनुमान सोचने लगा। (४६-५०)

जब तक रामप्रिया न पाऊं, तबतक इस लंका को बार बार ढूंढूंगा। यदि सम्पाति के वचन से राम को यहां ले आऊं, तो सीता को न पाकर वह सब वानरों को जला डालेंगे। इससे जितेन्द्रिय नियताहारी ही यहीं रहूंगा, मेरे कारण से सब वानर नष्ट न होवें। बडे बडे वृक्षोंवाली जो यह अशोकवाटिका दीखती है, इस में जाऊंगा, यहीं मैंने नहीं ढूंढी। वसु, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमारों को नमस्कार कर के वहां जाऊंगा। सारे राक्षसों को जीत कर सीता को रामको दूंगा। (५१-५६)

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा चिन्तावग्रथितेन्द्रियः ।
उदतिष्ठन्महाबाहुर्हनूमान्मारुतात्मजः ५७
नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्राग्निमरुद्गणेभ्यः ५८
स तेभ्यस्तु नमस्कृत्वा सुग्रीवाय च मारुतिः ।
दिशः सर्वाः समालोक्य सोऽशोकवनिकां प्रति ५९
स गत्वा मनसा पूर्वमशोकवनिकां शुभाम् ।
उत्तरं चिन्तयामास वानरो मारुतात्मजः ६०
ध्रुवं तु रक्षोबहुला भविष्यति वनाकुला ।
अशोकवनिका पुण्या सर्वसंस्कारसंस्कृता ६१
राक्षिणश्चात्र विहिता नूनं रक्षन्ति पादपान् ।
भगवानपि विश्वात्मा नातिक्षोभं प्रवाति वै ६२
संक्षिप्तोऽयं मयात्मा च रामार्थे रावणस्य च ।
सिद्धिं दिशन्तु मे सर्वे देवाः सर्षिगणास्त्विह ६३
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान्देवाश्चैव तपस्विनः ।
सिद्धिमग्निश्च वायुश्च पुरुहूतश्च वज्रभृत् ६४
वरुणः पाशहस्तश्च सोमादित्यौ तथैव च ।
अश्विनौ च महात्मानौ मरुतः सर्व एव च ६५

चिंता से व्याकुल हनुमान् थोडी देर सोच कर उठ खडा हुआ (और बोला कि) राम, लक्ष्मण, सीता, रुद्र, यम, वायु और मरुद्गणों के लिये नमस्कार हो । वह हनुमान् इन सब और सुग्रीव को नमस्कार कर के सब दिशाओंको देख अशोकवाटिका की ओर मन से जाकर सोचने लगा कि, निश्चय ही वह अशोकवाटिका बहुत राक्षसों से युक्त और सब प्रकार के संस्कारों से संस्कृत होगी । वहां रखवारे वृक्षों की रक्षा करते हैं और वायु भी जोर से नहीं चलता । मेरी आत्मा राम रावण के अर्थ बहुत छोटी होगई, अतः ऋषियोंसहित सब देवता मुझे सिद्धि देवें । (५७-६३)

ब्रह्मा, अग्नि, वायु, इन्द्र, वरुण, सोम, अश्विनीकुमार, वायु, सर्व भूत

सिद्धिं सर्वाणि भूतानि भूतानां चैव यः प्रभुः ।
दास्यन्ति मम ये चान्येऽप्यदृष्टाः पथि गोचराः ६६
तदुन्नसं पाण्डुरदन्तमव्रणं शुचिस्मितं पद्मपलाशलोचनम् ।
द्रक्ष्ये कदार्यावदनं कदा न्वहं प्रसन्नताराधिपतुल्यवर्चसम् ६७
क्षुद्रेण हीनेन नृशंसमूर्तिना सुदारुणालंकृतवेषधारिणा ।
बलाभिभूता ह्यबला तपस्विनी कथं नु मे दृष्टिपथेऽद्य सा भवेत् ६८
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः । [७०८]

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा मनसा चाधिगम्य ताम् ।
अवप्लुतो महातेजाः प्राकारं तस्य वेश्मनः १
स तु संहृष्टसर्वाङ्गः प्राकारस्थो महाकपिः ।
पुष्पिताग्रान्वसन्तादौ ददर्श विविधान्द्रुमान् २
सालानशोकान्भव्यांश्च चम्पकांश्च सुपुष्पितान् ।
उद्दालकान्नागवृक्षांश्चूतान्कपिमुखानपि ३
तथाम्रवणसंपन्नां लताशतसमन्वितान् ।
ज्यामुक्त इव नाराचः पुप्लुवे वृक्षवाटिकाम् ४

और उन का अधिष्ठाता ये सब मुझे सिद्धि देवें । उन्नतनासिका, श्वेत दांतवाली मन्द मुसकानयुक्त कमललोचनसहित उस आर्या के पूर्ण चन्द्रवत् मुखको मैं कब देखूंगा ? क्षुद्र पापी हिंसक भयंकर वेशधारी से हरी हुई, तपिस्वनी अबला सीता कब मेरे दृष्टिपथ को प्राप्त होगी ? (६४-६८)

यहाँ तेरहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

वह महातेजस्वी हनुमान् मुहूर्त भर सोच के मन से सीता के पास पहुँच कर, रावण के गृह से अशोकवाटिका की चहारदीवारी पर पहुंचा । प्राकारस्थ हृष्टमना हनुमान् ने विविध वृक्षों को पुष्पोंसे युक्त देखा । उसने वहां साल, अशोक, चम्पक, उद्दालक, आम्र के अनेक वृक्ष देखे । आम के वनसे युक्त तथा सैंकडों लताओं से आवृत्त उस वाटिका में हनुमान् धनुष्

स प्रविश्य विचित्रां तां विहगैरभिनादिताम्।
राजतैः काञ्चनैश्चैव पादपैः सर्वतो वृताम् ५
विहगैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां चित्रकाननाम्।
उदितादित्यसंकाशां ददर्श हनुमान् कपिः ६
वृतां नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पोपगफलोपगैः।
कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च मत्तैर्नित्यनिषेवितां ७
प्रहृष्टमनुजां काले मृगपक्षिमदाकुलाम्।
मत्तबर्हिणसंघुष्टां नानाद्विजगणायुताम् ८
मार्गमाणो वरारोहां राजपुत्रीमनिन्दिताम्।
सुखप्रसुप्तान्विहगान्बोधयामास वानरः ९
उत्पतद्भिर्द्विजगणैः पक्षैर्वातैः समाहताः।
अनेकवर्णा विविधा मुमुचुः पुष्पवृष्टयः १०
पुष्पावकीर्णः शुशुभे हनूमान्मारुतात्मजः।
अशोकवनिकामध्ये यथा पुष्पमयो गिरिः ११
दिशः सर्वाभिधावन्तं वृक्षखण्डगतं कपिम्।
दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि वसन्त इति मेनिरे १२

से छुटे बाण के समान कूद गया। उस में घुमकर उस विचित्र, पक्षियों से कूजित, स्वर्णवत् वृक्षों से घिरी हुई, बालसूर्य की तुलनावाली वाटिका को देखा। (१-५)

जो पुष्पफलवाले नानाविध वृक्षों से युक्त और मत्त कोकिल और मोरों से नित्यसेवित थी और जो वसन्त में मत्त मृगादिकों तथा पक्षिगणों से युक्त थी। हनुमान् ने सीता को ढूंढते हुए वहां सोते हुए पक्षियों को जगा दिया। उडते हुए पक्षियों से युक्त वृक्ष फूलों की वर्षा करते थे। (६-१०)

पुष्पमय पर्वत के तुल्य उन पुष्पों से युक्त हनुमान् शोभा देने लगा। सब ओर दौडते हुए वृक्षसमूह में प्राप्त उस कपि को देख सब प्राणी उसे

वृक्षेभ्यः पतितैः पुष्पैरवकीर्णा पृथग्विधैः।
रराज वसुधा तत्र प्रमदेव विभूषिता १३
तरस्विना ते तरवस्तरसा बहु कम्पिताः।
कुसुमानि विचित्राणि ससृजुः कपिना तदा १४
निर्धूतपत्रशिखराः शीर्णपुष्पफलद्रुमाः।
निक्षिप्तवस्त्राभरणा धूर्ता इव पराजिताः १५
हनूमता वेगवता कम्पितास्ते नगोत्तमाः।
पुष्पपत्रफलान्याशु मुमुचुः फलशालिनः १६
विहङ्गसङ्घैर्हीनास्ते स्कन्धमात्राश्रया द्रुमाः।
बभूवुरगमाः सर्वे मारुतेन विनिर्धुताः १७
विधूतकेशी युवतिर्यथा मृदितवर्णका।
निपीतशुभदन्तोष्ठी नखैर्दन्तैश्च विक्षता १८
तथा लाङ्गूलहस्तैस्तु चरणाभ्यां च मर्दिता।
तथैवाशोकवनिका प्रभग्नवनपादपा १९
महालतानां दामानि व्यधमत्तरसा कपिः।
यथा प्रावृषि वेगेन मेघजालानि मारुतः २०

रूपमान् वसन्त मानने लगे। वृक्षों से गिरते हुए पुष्पों से वहां की भूमि विभूषित स्त्री के समान शोभा देने लगी। हनुमान् के भुजाओं के वेगसे सब वृक्ष कांप उठे और उनमें से पुष्प गिरने लगे। उन वृक्षों के पत्ते, फूल, इस प्रकार गिर पडे जैसे हारे हुए जुआरी वस्त्राभरण से रहित हो जाते हैं। (११-१५)

ज्योंही हनुमान्ने वृक्षोंको हिलाया त्योंही उनमें से सब फल, पुष्प गिर पडे। वे वृक्ष पक्षियों से रहित केवल ठूँठ मात्र रह गये। जैसे स्त्रियों के बाल अधिक मर्दन से खुल कर हिलने लगते हैं और नखों के चिह्न उनके अङ्गों में हो जाते हैं, वैसे ही हनुमान् की पूछ व हाथ पांव के लगने से उस वाटिका के वृक्ष टूटफूट गये थे। हनुमान् ने बडी बडी लतापंक्तियां तोड डाली थीं। (१६-२०)

स तत्र मणिभूमीश्च राजतीश्च मनोरमाः ।
तथा काञ्चनभूमीश्च विचरन्ददृशे कपिः २१
वापीश्च विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा ।
महार्हैर्मणिसोपानैरुपपन्नास्ततस्ततः २२
मुक्ताप्रवालसिकताः स्फाटिकान्तरकुट्टिमाः ।
काञ्चनैस्तरुभिश्चित्रैस्तीरजैरुपशोभिताः २३
बुद्धपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपशोभिताः ।
नत्यूहरुतसंघुष्टा हंससारसनादिताः २४
दीर्घाभिर्द्रुमयुक्ताभिः सरिद्भिश्च समन्ततः ।
अमृतोपमतोयाभिः शिवाभिरुपसंस्कृताः २५
लताशतैरवततां संतानकुसुमावृताः ।
नानागुल्मावृतवनाः करवीरकृतान्तराः २६
ततोऽम्बुधरसंकाशं प्रवृद्धशिखरं गिरिम् ।
विचित्रकूटं कूटैश्च सर्वतः परिवारितम् २७
शिलागृहैरवततं नानावृक्षसमावृतम् ।
ददर्श कपिशार्दूलो रम्यं जगति पर्वतम् २८

वहां घूमते हुए कपि ने मणि, चांदी व स्वर्णजटित मनोहर भूमि देखी। वहां विविधाकारवाली वापियां अच्छे जल से पूर्ण थीं, जिन में मणिमय सोपान लगे हुए थे। उन बावडियों में मोतियों की सिकता और स्फटिक-मणि की दीवारें बनीं थीं और किनारे पर सुन्दर स्वर्णके वृक्ष लगे हुए थे। खिले कमलों से शोभित उन पर चकवा पक्षी और कोकिल बोल रहे थे व हंस और सारस का शब्द गूंज रहा था। उनके आसपास बडे बडे वृक्षोंसे युक्त नहरें बहती थीं, उनमें अमृत के समान स्वादिष्ट जल शोभित था। (२१-२५)

उन पर सैंकडों लताएं लगी थीं और कल्पवृक्ष के पुष्प बीच बीच में बहते थे। फिर इनके अनन्त चारों तरफ गिरिशिखर के सदृश कंगूरे भी थे। नाना प्रकार के वृक्ष और पत्थरों के गृहों से युक्त जगत्भर में अति रमणीय

ददर्श च नगात्तस्मान्नदीं निपतितां कपिः।
अङ्कादिव समुत्पत्य प्रियस्य पतितां प्रियाम् २९
जलेन पतिताग्रैश्च पादपैरुपशोभिताम्।
वार्यमाणामिव क्रुद्धां प्रमदां प्रियबन्धुभिः ३०
पुनरावृत्ततोयां च ददर्श स महाकपिः।
प्रसन्नामिव कान्तस्य कान्तां पुनरुपस्थिताम् ३१
तस्यादूरात्स पद्मिन्यो नानाद्विजगणायुताः।
ददर्श कपिशार्दूलो हनूमान्मारुतात्मजः ३२
कृत्रिमां दीर्घिकां चापि पूर्णां शीतेन वारिणा।
मणिप्रवरसोपानां मुक्तासिकतशोभिताम् ३३
विविधैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां चित्रकाननाम्।
प्रासादैः सुमहद्भिश्च निर्मितैर्विश्वकर्मणा ३४
काननैः कृत्रिमैश्चापि सर्वतः समलंकृताम्।
ये केचित्पादपास्तत्र पुष्पोपगफलोपगाः ३५
सच्छत्राः सावितर्दीकाः सर्वे सौवर्णवेदिकाः।
लताप्रतानैर्बहुभिः पर्णैश्च बहुभिर्वृताम् ३६
काञ्चनीं शिंशपामेकां ददर्श स महाकपिः।
वृतां हेममयीभिस्तु वेदिकाभिः समन्ततः ३७

पर्वत हनुमान् ने देखा। हनुमान् ने उस पर्वत से निकली हुई एक नदी देखी। जलप्रवाह से झुकी हुई डालियोंवाले वृक्षों से उसके तट शोभायमान थे और घूम कर लौटी हुई जिसकी धारा ऐसी शोभा देती थी जैसे कान्त से प्रसन्न हुई स्त्री फिर उसके समीप गई हो। (२९-३१)

हनुमान् ने दूर से ही नाना पक्षियों से युक्त नलिनियों को देखा। शीतल जलसे पूर्ण कृत्रिम बावडी मणियों की सीढियों और मोतियों की सिकता से युक्त, विविध मृगसमूह से समाकुल, बडे बडे प्रासादों से युक्त, बनावटी काननों से सर्वतः अलंकृत देखी। वहां जो वृक्ष थे वे पुष्पफलों से युक्त, छत्राकार और स्वर्ण के थांवलेवाले थे। बहुत सी फैली हुई

सोऽपश्यद्भूमिभागांश्च नगप्रस्रवणानि च ।
सुवर्णवृक्षानपरान्ददर्श शिखिसंनिभान् ३८
तेषां द्रुमाणां प्रभया मेरोरिव महाकपिः ।
अमन्यत तदा वीरः काञ्चनोऽस्मीति सर्वतः ३९
तान्काञ्चनान्वृक्षगणान्मारुतेन प्रकम्पितान् ।
किङ्किणीशतनिर्घोषान्दृष्ट्वा विस्मयमागमत् ४०
सुपुष्पिताग्रान्रुचिरांस्तरुणाङ्कुरपल्लवान् ।
तामारुह्य महावेगः शिंशपां पर्णसंवृताम् ४१
इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं रामदर्शनलालसाम् ।
इतश्चेतश्च दुःखार्तां संतपन्तीं यदृच्छया ४२
अशोकवनिका चेयं दृढं रम्या दुरात्मनः ।
चन्दनैश्चम्पकैश्चापि बकुलैश्च विभूषिता ४३
इयं च नलिनी रम्या द्विजसङ्घनिषेविता ।
इमां सा राजमहिषी नूनमेष्यति जानकी ४४
सा रामा राजमहिषी राघवस्य प्रिया सदा ।
वनसंचारकुशला ध्रुवमेष्यति जानकी ४५

लताओं से युक्त हनुमान् ने एक शिंशुपा का पेड देखा जो चारों ओर से स्वर्णमय वेदिकाओं से घिरा था। (३२-३७)

उसने भूमिभाग, पर्वतों के झरने और अग्नितुल्य स्वर्णवृक्ष देखे। उन वृक्षों की प्रभा से मेरुवत् शोभित हनुमान् ने अपने को स्वर्णरूप समझा। स्वर्णवृक्षों से आवृत वायु से हिलाये हुए छोटी छोटी घण्टियों के शब्द से युक्त उस शिंशुप वृक्षको देख हनुमान् को बडा आश्चर्य हुआ। (३८-४०)

हनुमान् पुष्पित रुचिर उस शिंशुप वृक्ष पर चढ कहने लगा कि, यहां से इच्छापूर्वक रामदर्शन की लालसावाली दुःखार्ता इधरउधर गिरती पडती, सीता को देखूंगा। चदन, चम्पक और बकुल से विभूषित यही रावण की अशोकवाटिका है। यह रम्या नलिनी पक्षियों से सेवित है, यहां सीता अवश्य आयेगी। वह राम की प्रिया सती वन में घूमने में चतुर

अथवा मृगशावाक्षी वनस्यास्य विचक्षणा।
वनमेष्यति साद्येह रामचिन्तासुकर्शिता ४६
रामशोकाभिसंतप्ता सा देवी वामलोचना।
वनवासरता नित्यमेष्यते वनचारिणी ४७
वनेचराणां सततं नूनं स्पृहयते पुरा।
रामस्य दयिता भार्या जनकस्य सुता सती ४८
संध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वरवर्णिनी ४९
तस्याश्चाप्यनुरूपेयमशोकवनिका शुभा।
शुभायाः पार्थिवेन्द्रस्य पत्नी रामस्य संमता ५०
यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना।
आगमिष्यति सावश्यमिमां शीतजलां नदीम् ५१
एवं तु गत्वा हनुमान्महात्मा प्रतीक्षमाणो मनुजेन्द्रपत्नीम्।
अवेक्षमाणश्च ददर्श सर्वं सुपुष्पिते पर्णघने निलीनः ५२

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्दशः सर्गः॥१४॥

[७६०]

सीता यहां अवश्य आयगी। रामचिन्ता से दुबली हुई, मृगनयनी आर्या सीता इस वन में आज अवश्य आयेगी। (४१-४६)

रामशोक से सन्तप्त टेढी चितवनवाली और वनवास में रत वह देवी अवश्य आयगी। रामप्रिया जनकसुता सीता पूर्व सदा वनचर मृगपक्षियों को प्यार करती थी। सन्ध्याकाल में सन्ध्या करने के लिये सीता अवश्य इस नदी पर आवेगी। यह अशोकवाटिका भी उन्हीं के योग्य है, क्योंकि वह राम की पत्नी सब प्रकार शुभ रूप हैं। चन्द्रवदना सीता यदि जीवित है, तो वह अवश्य इस शुभजलवाली नदी पर आवेगी। ऐसा समझ हनुमान् ने सीता की प्रतीक्षा करते हुए सुपुष्पित उस वाटिका में यह सब कुछ देखा। (४७-५२)

यहाँ चौदहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

पञ्चदशः सर्गः ।

स वीक्षमाणस्तत्रस्थो मार्गमाणश्च मैथिलीम् ।
अवेक्षमाणश्च महीं सर्वां तामन्ववैक्षत १
संतानकलताभिश्च पादपैरुपशोभिताम् ।
दिव्यगन्धरसोपेतां सर्वतः समलंकृताम् २
तां स नन्दनसंकाशां मृगपक्षिभिरावृताम् ।
हर्म्यप्रासादसंबाधां कोकिलाकुलनिःस्वनाम् ३
काञ्चनोत्पलपद्माभिर्वापीभिरुपशोभिताम् ।
बह्वासनकुथोपेतां बहुभूमिगृहायुताम् ४
सर्वर्तुकुसुमै रम्यैः फलवद्भिश्च पादपैः ।
पुष्पितानामशोकानां श्रिया सूर्योदयप्रभाम् ५
प्रदीप्तामिव तत्रस्थो मारुतिः समुदैक्षत ।
निष्पत्रशाखां विहगैः क्रियमाणामिवासकृत् ६
विनिष्पतद्भिः शतशश्चित्रैः पुष्पावतंसकैः ।
समूलपुष्परचितैरशोकैः शोकनाशनैः ७
पुष्पभारातिभारैश्च स्पृशद्भिरिव मेदिनीम् ।
कर्णिकारैः कुसुमितैः किंशुकैश्च सुपुष्पितैः ८

सीता के अन्वेषण में तत्पर उस वृक्ष पर बैठकर हनुमान् ने वाटिका की सब भूमि देख डाली । जो वाटिका कल्पवृक्ष की लता व वृक्षों से शोभित व दिव्य सुगन्धित रसों से चारों ओर अलंकृत थी । और जो नन्दनवन के समान, मृगपक्षियों से युक्त, महल और प्रासादों से समाकुल, कोकिलाओं के शब्द से गुञ्जायमान, स्वर्णमय उत्पल कमलों से युक्त, बावडियों से शोभित, बहुत प्रकारके आसनों से युक्त, सर्व ऋतुओं में फूलने फलनेवाले सुन्दर वृक्षों की सूर्यसम प्रभा से रम्य, तथा पक्षियों के वास से पत्र और शाखारहित वृक्षों से युक्त थी, हनुमान्ने उस वाटिकाको देखा । (१-६)

सैंकडों चित्रविचित्र पुष्पों के कारण भूषण धारण किये व गिरे हुए अशोकवृक्षों से जो पुष्पभार से पृथ्वी को छू रहे थे, तथा पुष्पित कनेर

स देशः प्रभया तेषां प्रदीप्त इव सर्वतः ।
पुंनागाः सप्तपर्णाश्च चम्पकोद्दालकास्तथा ९
विवृद्धमूला बहवः शोभन्ते स्म सुपुष्पिताः ।
शातकुम्भनिभाः केचित्केचिदग्निशिखप्रभाः १०
नीलाञ्जननिभाः केचित्तत्राशोकाः सहस्रशः ।
नन्दनं विबुधोद्यानं चित्रं चैत्ररथं यथा ११
अतिवृत्तमिवाचिन्त्यं दिव्यं रम्यश्रिया युतम् ।
द्वितीयमिव चाकाशं पुष्पज्योतिर्गणायुतम् १२
पुष्परत्नशतैश्चित्रं पञ्चमं सागरं यथा ।
सर्वर्तुपुष्पैर्निचितं पादपैर्मधुगन्धिभिः १३
नानानिनादैरुद्यानं रम्यं मृगगणद्विजैः ।
अनेकगन्धप्रवहं पुण्यगन्धं मनोहरम् १४
शैलेन्द्रमिव गन्धाढ्यं द्वितीयं गन्धमादनम् ।
अशोकवनिकायां तु तस्यां वानरपुंगवः १५
स ददर्शाविदूरस्थं चैत्यप्रासादमूर्जितम् ।
मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थितं कैलासपाण्डुरम् १६

और किंशुकों की प्रभा से वह देश प्रदीप्त हो रहा था; और पुंनाग, उद्दालक, चम्पक आदि बहुत से वृक्ष शोभा देते थे। वहां सहस्रों अशोकवृक्ष कोई स्वर्ण के रंग के, कोई अग्निशिखा की उपमावाले और कोई नीलाञ्जनसदृश थे। (६-११)

वह वाटिका नन्दनवन और विचित्र चैत्ररथ वन के सदृश शोभित थी। और पुष्पज्योति से युक्त सैंकडों पुष्परत्नों से चित्रित वह द्वितीय आकाशवत् थी। सर्व ऋतुओंवाले वृक्षोंकी मधुर गन्ध से शोभित और नाना मृगपक्षियों से युक्त वह रम्य वाटिका थी। अनेक प्रकार की गन्ध जिस में वह रही थी, मनोरम, द्वितीय गन्धमादनपर्वत के तुल्य वह वाटिका थी। (११-१५)

उस वाटिका में हनुमान्ने समीप में एक प्रासाद देखा, जो सहस्र

प्रवालकृतसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम् ।
मुष्णन्तमिव चक्षूंषि द्योतमानमिव श्रिया १७
निर्मलं प्रांशुभावत्वादुल्लिखन्तमिवाम्बरम् ।
ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम् १८
उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ।
ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम् १९
मन्दप्रख्यायमानेन रूपेण रुचिरप्रभाम् ।
पिनद्धां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः २०
पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्तमवाससा ।
सपङ्कामनलंकारां विपद्मामिव पद्मिनीम् २१
पीडितां दुःखसंतप्तां परिक्षीणां तपस्विनीम् ।
ग्रहेणाङ्गारकेणेव पीडितामिव रोहिणीम् २२
अश्रुपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च ।
शोकध्यानपरां दीनां नित्यं दुःखपरायणाम् २३
प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम् ।
स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणेनावृतामिव २४

स्तम्भों पर स्थित, कैलाससम श्वेत, प्रवाल के बने सोपान तथा स्वर्णवेदी से युक्त, श्री से द्योतमान व विमल था, मानो अपनी दीप्ति से नेत्रों को चुराये लेता था। तदनु मलिन वस्त्र धारण किये, राक्षसियों से घिरी हुई, उपवास के कारण दुबली हुई, दीन, बार बार श्वास लेती हुई, द्वितीया की चन्द्ररेखातुल्य सीता को देखा। (१५-१९)

कहने में मन्दरूप पर रुचिर प्रभावाली, धुवें से दबी अग्निशिखा के समान प्रकाशित, एक ही पीताम्बर धारे हुए, भूषणहीन, पङ्कसहित कमल-हीन तलैया के सदृश, दुःखार्ता, दुर्बल, तपस्विनी, मंगल ग्रह से पीडित रोहिणी नक्षत्र के समान, अश्रुपूर्ण मुखवाली, दीना, भोजन न करने से क्षीणकाय, शोकध्यान में तत्पर, प्रियजन को न देखती और राक्षसियों को देखती हुई, अपने गिरोह से भ्रष्ट हुई, तथा श्वानोंसे परिवेष्टित मृगीके

नीलनागाभया वेण्या जघनं गतयैकया ।
नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव २५
सुखार्हां दुःखसंतप्तां व्यसनानामकोविदाम् ।
तां विलोक्य विशालाक्षीमधिकं मलिनां कृशाम् २६
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः ।
ह्रियमाणा तदा तेन रक्षसा कामरूपिणा २७
यथारूपा हि दृष्टा सा तथारूपेयमङ्गना ।
पूर्णचन्द्राननां सुभ्रूं चारुवृत्तपयोधराम् २८
कुर्वतीं प्रभया देवीं सर्वा वितिमिरा दिशः ।
तां नीलकण्ठीं बिम्बोष्ठीं सुमध्यां सुप्रतिष्ठिताम् २९
सीतां पद्मपलाशाक्षीं मन्मथस्य रतिं यथा ।
दृष्टां सर्वस्य जगतः पूर्णचन्द्रप्रभामिव ३०
भूमौ सुतनुमासीनां नियतामिव तापसीम् ।
निःश्वासबहुलां भीरुं भुजगेन्द्रवधूमिव ३१
शोकजालेन महता विततेन न राजतीम् ।
संसक्तां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ३२

समान, नील नाग की आभावाली एक वेणी पीठ पर पडी व बादल के अभाव पर नीलवन से पृथ्वी के सदृश शोभित, सुख के योग्य पर दुःख से सन्तप्त उस विशालाक्षी को देखकर इन सब चिह्नों से हनुमान् ने उसे सीता समझा । (२०-२७)

कामरूपी रावणद्वारा हरी हुई, जैसी स्त्री देखी थी, वैसी यह है । पूर्णचंद्र के तुल्य मुखवाली, अच्छी भौंवाली, सुन्दर गोल स्तनवाली, अपनी प्रभासे सब दिशाओं को प्रकाशित करती हुई, नीलकेशी, बिम्बोष्ठी, पद्मपलाश जैसी आंखोंवाली, पूर्णचंद्र की प्रभा के समान सारे जगत् को इष्ट, जितेन्द्रिय तपस्विनी के समान भूमि पर बैठी, सर्पिणी के समान श्वास लेती हुई, बडे शोकजाल से शोभा को न प्राप्त होती हुई, धुवें से ढकी अग्नि की शिखा के समान, पृथ्वी पर गिरी हुई ऋद्धिके तुल्य, विहत

तां स्मृतीमिव संदिग्धामृद्धिं निपतितामिव ।
विहतामिव च श्रद्धामाशां प्रतिहतामिव ३३
सोपसर्गां यथा सिद्धिं बुद्धिं सकलुषामिव ।
अभूतेनापवादेन कीर्तिं निपतितामिव ३४
रामोपरोधव्यथितां रक्षोगणनिपीडिताम् ।
अबलां मृगशावाक्षीं वीक्षमाणां ततस्ततः ३५
बाष्पाम्बुपरिपूर्णेन कृष्णवक्त्राक्षिपक्ष्मणा ।
वदनेनाप्रसन्नेन निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ३६
मलपङ्कधरां दीनां मण्डनार्हाममण्डिताम् ।
प्रभां नक्षत्रराजस्य कालमेघैरिवावृताम् ३७
तस्य संदिदिहे बुद्धिस्तथा सीतां निरीक्ष्य च ।
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव ३८
दुःखेन बुबुधे सीतां हनुमाननलंकृताम् ।
संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम् ३९
तां समीक्ष्य विशालाक्षीं राजपुत्रीमनिन्दिताम् ।
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादयन् ४०

श्रद्धा तथा प्रतिहत आशा के समान, विघ्नसंयुक्त सिद्धि की तरह, संशय-युक्त बुद्धि की तरह, राम की सेवा न करने से व्याकुल, रावणद्वारा हरे जाने से कर्शित, अबला, मृगशावाक्षी, इधर उधर देखती हुई, आसुओं से परिपूर्ण मुख होने से जिस के मुख और पलक श्याम हो गये थे, अ-प्रसन्न मुख से बार बार श्वास लेती हुई, मलपंक धारण किये, दीन, मण्डन करनेयोग्य पर अमण्डित व मेघ से ढकी चन्द्र की प्रभा के समान, अन-भ्यास के कारण शिथिल विद्या सम सीता को देखकर हनुमान् की बुद्धि में बड़ा संदेह पैदा हुआ । (२७-३८)

आभूषणरहित सीता को हनुमान् कठिनता से पहिचान सका, जैसे असंस्कृत वाक्य और अर्थ के लगाने में कठिनता होती है । उस अनिन्दित विशालाक्षी को देख हनुमानने सीता समझा । रामने जो वैदेही के अंगोंमें

वैदेह्या यानि चाङ्गेषु तदा रामोऽन्वकीर्तयत् ।
तान्याभरणजालानि गात्रशोभीन्यलक्षयत् ४१
सुकृतौ कर्णवेष्टौ च श्वदंष्ट्रौ च सुसंस्थितौ ।
मणिविद्रुमचित्राणि हस्तेष्वाभरणानि च ४२
श्यामानि चिरयुक्तत्वात्तथा संस्थानवन्ति च ।
तान्येवैतानि मन्येऽहं यानि रामोऽन्वकीर्तयत् ४३
तत्र यान्यवहीनानि तान्यहं नोपलक्षये ।
यान्यस्या नावहीनानि तानीमानि न संशयः ४४
पीतं कनकपट्टाभं स्रस्तं तद्वसनं शुभम् ।
उत्तरीयं नगासक्तं तदा दृष्टं प्लवङ्गमैः ४५
भूषणानि च मुख्यानि दृष्टानि धरणीतले ।
अनयैवापविद्धानि स्वनवन्ति महान्ति च ४६
इदं चिरगृहीतत्वाद्वसनं क्लिष्टवत्तरम् ।
तथाप्यनूनं तद्वर्णं तथा श्रीमद्यथेतरत् ४७
इयं कनकवर्णाङ्गी रामस्य महिषी प्रिया ।
प्रणष्टापि सती यस्य मनसो न प्रणश्यति ४८

आभूषण बतलाये थे, उन आभूषणों को हनुमान् पहिचानने लगा । अच्छे बने हुए दोनों कुंडल, मणि मूंगे के बने हाथ के आभारण यद्यपि चिरकाल से धारण करने व मैल से श्यामवर्ण हो गये हैं, पर रामचन्द्रने जैसे बताये थे, वैसे ही निश्चय ये ही हैं । जो कहीं गिर गये हैं, उन्हें मैं नहीं देखता और जो इस समय पहने हैं, वे राम के बतलाये जैसे ही हैं । (३९-४४)

अपना पीला स्वर्णतुल्य दुपट्टा जो ऋष्यमूक पर इन्होंने फेंक दिया था, वह सब वानरोंने देखा था व मुख्य आभूषण जो पृथ्वी पर पडे देखे थे, इन्होंने ही फेंके थे । यह वस्त्र चिरकाल से धारण करनेसे मलिन हो गया है, फिर भी उस की शोभा वैसी ही बनी है । यह स्वर्णवर्णांगी रामप्रिया है, जो खोई जाने पर भी राम के मन से नहीं उतरती । यह वही है,

इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिरिह तप्यते ।
कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च ४९
स्त्री प्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः ।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च ५०
तस्या देव्या यथा रूपमङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवम् ।
रामस्य च यथा रूपं तस्येयमसितेक्षणा ५१
अस्या देव्या मनस्तस्मिंस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम् ।
तेनेयं स च धर्मात्मा मुहूर्तमपि जीवति ५२
दुष्करं कृतवान्रामो हीनो यदनया प्रभुः ।
धारयत्यात्मनो देहं न शोकेनावसीदति ५३
एवं सीतां तथा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसंभवः ।
जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम् ५४

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥१५॥

[८१४]

जिस के लिये राम कारुण्य, अक्रूरत्व, शोक और काम से पीडित रहते हैं। (४५-४९)

क्योंकि स्त्री के खोये जाने से करुणा, आश्रिता की रक्षा न होने से अनृशंसता, पत्नी के नष्ट होने से शोक और प्रिया के वियोग से मदन के कारण व्याकुलता राम को हो रही है। जैसे इस देवी के रूप व अंग-प्रत्यंगों में सुन्दरता है, वैसे ही राम का रूप भी है, अतः यह सीता है। इस देवी का मन राम में व उन का मन इस में लगा है, इसी से ये दोनों जीते हैं। प्रिया के वियोग में जो राम शरीर धारण कर रहे हैं, यह बडा दुष्कर कर्म कर रहे हैं। सीता के विना क्षणभर जी जीते हैं, यह दुष्कर कर्म है। सीता को एवं देख हनुमान् मन से राम के पास पहुंचा और उस प्रभु की प्रशंसा की। (५०-५४)

यहाँ पंद्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

षोडशः सर्गः।

प्रशस्य तु प्रशस्तव्यां सीतां तां हरिपुङ्गवः।
गुणाभिरामं रामं च पुनश्चिन्तापरोऽभवत् १
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः।
सीतामाश्रित्य तेजस्वी हनूमान्विललाप ह २
मान्या गुरुविनीतस्य लक्ष्मणस्य गुरुप्रिया।
यदि सीता हि दुःखार्ता कालो हि दुरतिक्रमः ३
रामस्य व्यवसायज्ञा लक्ष्मणस्य च धीमतः।
नात्यर्थं क्षुभ्यते देवी गङ्गेव जलदागमे ४
तुल्यशीलवयोवृत्तां तुल्याभिजनलक्षणाम्।
राघवोऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा ५
तां दृष्ट्वा नवहेमाभां लोककान्तामिव श्रियम्।
जगाम मनसा रामं वचनं चेदमब्रवीत् ६
अस्या हेतोर्विशालाक्ष्या हतो वाली महाबलः।
रावणप्रतिमो वीर्ये कबन्धश्च निपातितः ७
विराधश्च हतः संख्ये राक्षसो भीमविक्रमः।
वने रामेण विक्रम्य महेन्द्रेणेव शम्बरः ८

प्रशंसनीय सीता व गुणाभिराम राम की प्रशंसा कर हनुमान् दूसरी चिन्ता करने लगा। मुहूर्त भर सोच आंखों में आसुं भर तेजस्वी हनुमान् सीता का आश्रय ले विलाप करने लगा। जो विनीत लक्ष्मण की मान्य रामपत्नी सीता ही दुःख से दीन है, तो काल बडा बलवान् है। राम-लक्ष्मण का पराक्रम जाननेवाली सीता का मन वर्षाकाल में गङ्गा के समान क्षुभित नहीं होता। शील, अवस्था, आचरण, लक्षणों में तुल्य राम सीता के योग्य और सीता राम के योग्य है। (१-५)

लक्ष्मीसमान स्वर्णवर्णा सीता को देख मन से राम के पास पहुंच हनुमान् बोला। इसके ही कारण महाबली वाली और पराक्रम में रावणसम कबन्ध को मारा। जैसे इन्द्र ने शम्बर को ऐसे ही राम ने वन में राक्षस-

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमैः ९
खरश्च निहतः संख्ये त्रिशिराश्च निपातितः ।
दूषणश्च महातेजा रामेण विदितात्मना १०
ऐश्वर्यं वानराणां च दुर्लभं वालिपालितम् ।
अस्या निमित्ते सुग्रीवः प्राप्तवाँल्लोकविश्रुतः ११
सागरश्च मयाक्रान्तः श्रीमान्नदनदीपतिः ।
अस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः पुरी चेयं निरीक्षिता १२
यदि रामः समुद्रान्तां मेदिनीं परिवर्तयेत् ।
अस्याः कृते जगच्चापि युक्तमित्येव मे मतिः १३
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु सीता वा जनकात्मजा ।
त्रैलोक्यराज्यं सकलं सीताया नाप्नुयात्कलाम् १४
इयं सा धर्मशीलस्य जनकस्य महात्मनः ।
सुता मैथिलराजस्य सीता भर्तृदृढव्रता १५
उत्थिता मेदिनीं भित्त्वा क्षेत्रे हलमुखक्षते ।
पद्मरेणुनिभैः कीर्णा शुभैः केदारपांसुभिः १६

विरोध को इसके हेतु मारा । अग्नि-ज्वाला की उपमावाले बाणों से जनस्थान में सहस्र राक्षस मारे गये । इसी के निमित्त युद्ध में रामने खर, त्रिशिरा और दूषण को मारा । (६-१०)

इस ही के कारण वालिपालित वानरों का दुर्लभ राज्य सुग्रीवने पाया, इस ही के निमित्त मैंने सागर को लांघा और यह पुरी ढूंढी । इस के निमित्त यदि राम समुद्रपर्यंत पृथ्वी वा सारे जगत् का भी चक्कर काटें, तो भी ठीक ही होगा, यह मेरी मति है । एक ओर त्रिलोकी का राज्य और दूसरी ओर सीता । सारा त्रिलोकी का आधिपत्य सीता के लेश बराबर भी नहीं । क्योंकि जनकसुता सीता पतिव्रतामें दृढतर है । (११-१५)

यह खेत में हल चलाये जाने पर भूमि से निकली थी, निकलने के समय खेत की धूलि इसके अङ्गों में यज्ञभस्म के तुल्य लगी थी । फिर

विक्रान्तस्यार्यशीलस्य संयुगेष्वनिवर्तिनः।
स्नुषा दशरथस्यैषा ज्येष्ठा राज्ञो यशस्विनी १७
धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य रामस्य विदितात्मनः।
इयं सा दयिता भार्या राक्षसीवशमागता १८
सर्वान्भोगान्परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात्कृता।
अचिन्तयित्वा कष्टानि प्रविष्टा निर्जनं वनम् १९
संतुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणापरा।
या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा २०
सेयं कनकवर्णाङ्गी नित्यं सुस्मितभाषिणी।
सहते यातनामेतामनर्थानामभागिनी २१
इमां तु शीलसंपन्नां द्रष्टुमिच्छति राघवः।
रावणेन प्रमथितां प्रपामिव पिपासितः २२
अस्या नूनं पुनर्लाभाद्राघवः प्रीतिमेष्यति।
राजा राज्यपरिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम् २३
कामभोगैः परित्यक्तां हीना बन्धुजनेन च।
धारयत्यात्मनो देहं तत्समागमकाङ्क्षिणी २४
नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान्पुष्पफलद्रुमान्।

यह यशस्विनी पराक्रमी आर्यस्वभाव दशरथ की बड़ी पुत्रवधू हुई। धर्मज्ञ राम की यह प्यारी पत्नी राक्षसियों के वश में प्राप्त हो रही है। जो सारे भोगों को त्याग पतिस्नेह से खींची हुई दुःखों की चिन्ता न कर निर्जन वन में प्रविष्ट हुई, तथा फलमूल से सन्तुष्ट पतिसेवा में लगी हुई घर के समान ही वन में परम प्रीति दर्शाती थी। (१६-२०)

सो वह अभागिनी इन यातनाओं को सह रही है। जैसे प्यासा जलशाला को उसी दृष्टि से राम रावणद्वारा सताई हुई इसको देखने को योग्य हैं। राज्यभ्रष्ट राजा जैसे पृथ्वी को ऐसे ही इसको फिरसे पा राम प्रसन्न होंगे। कामभोगों से परित्यक्त बन्धुहीन राम के मिलने की इच्छा से यह देह धारण करती है। न तो राक्षसियों को और न इन पुष्पित वृक्षों

एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति २५
भर्ता नाम परं नार्याः शोभनं भूषणादपि।
एषा हि रहिता तेन शोभनार्हा न शोभते २६
दुष्करं कुरुते रामो हीनो यदनया प्रभुः।
धारयत्यात्मनो देहं न दुःखेनावसीदति २७
इमामसितकेशान्तां शतपत्रनिभेक्षणाम्।
सुखार्हां दुःखितां ज्ञात्वा ममापि व्यथितं मनः २८
क्षितिक्षमा पुष्करसंनिभेक्षणा या रक्षिता राघवलक्ष्मणाभ्याम्।
सा राक्षसीभिर्विकृतेक्षणाभिः संरक्ष्यते संप्रति वृक्षमूले २९
हिमहतनलिनीव नष्टशोभा व्यसनपरम्परया निपीड्यमाना।
सहचररहितेव चक्रवाकी जनकसुता कृपणां दशां प्रपन्ना ३०
अस्या हि पुष्पावनताग्रशाखाः शोकं दृढं वै जनयन्त्यशोकाः।
हिमव्यपायेन च शीतरश्मिरभ्युत्थितो नैकसहस्ररश्मिः ३१
इत्येवमर्थं कपिरन्ववेक्ष्य सीतेयमित्येव तु जातबुद्धिः।
संश्रित्य तस्मिन्निषसाद वृक्षे बली हरीणामृषभस्तरस्वी ३२
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षोडशः सर्गः।१६।[८४६]

को देखती है, एकमना हो केवल राम की ही चिंता करती है। (२१-२५)

स्त्रियों का सर्वश्रेष्ठ भूषण पति ही है, उस से रहित यह भूषणार्हा भी नहीं शोभती। इस से हीन हो राम प्राण धारण कर रहे हैं और दुःखी नहीं होते- यह दुष्कर कर्म है। इस सुखयोग्य पर दुःखार्ता को देख मेरा मन भी दुःखी हो गया। पृथ्वीसम क्षमावाली कमलनयना जो सीता रामलक्ष्मण से रक्षित की जाती थी, उसीकी आज वृक्षकी जडमें राक्षसियों से रखवाली की जाती है। पाले की मारी कमलिनी के समान शोभाहीन व चकवारहित चकई की भांति सीता दीनदशा को प्राप्त है। ये पुष्पभार से झुके अशोक व निर्मल प्रकाशित चन्द्रमा शोक उत्पन्न कर रहे हैं। हनुमान् ने निश्चय कर जान लिया कि, यही सीता है, इससे उसी वृक्षपर बैठ गया। (२६-३२) यहाँ सोलहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

सप्तदशः सर्गः ।

ततः कुमुदखण्डाभो निर्मलं निर्मलोदयः ।
प्रजगाम नभश्चन्द्रो हंसो नीलमिवोदकम् १
साचिव्यमिव कुर्वन्स प्रभया निर्मलप्रभः ।
चन्द्रमा रश्मिभिः शीतैः सिषेवे पवनात्मजम् २
स ददर्श ततः सीतां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
शोकभारैरिव न्यस्तां भारैर्नावमिवाम्भसि ३
दिदृक्षमाणो वैदेहीं हनूमान्मारुतात्मजः ।
स ददर्श विदूरस्था राक्षसीर्घोरदर्शनाः ४
एकाक्षीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा ।
अकर्णां शङ्कुकर्णां च मस्तकोच्छ्वासनासिकाम् ५
अतिकायोत्तमाङ्गीं च तनुदीर्घशिरोधराम् ।
ध्वस्तकेशीं तथाऽकेशीं केशकम्बलधारिणीम् ६
लम्बकर्णललाटां च लम्बोदरपयोधराम् ।
लम्बोष्ठीं चुबुकोष्ठीं च लम्बास्यां लम्बजानुकाम् ७
ह्रस्वां दीर्घां च कुब्जां च विकटां वामनां तथा ।
करालां भुग्नवक्त्रां च पिङ्गाक्षीं विकृताननाम् ८

ततः कुमुदसम श्वेत व निर्मल चन्द्र नीलजल में हंस के समान आकाश में प्रकाशित हुआ । उस समय चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से हनुमान् की मंत्री के समान सेवा करने लगा । तदनु हनुमान् ने जल में बोझ से दबी नौकासम चन्द्रमुखी सीता को शोकभार से दबी देखा । वैदेही को देखते हुए हनुमान् ने समीप में ही घोरदर्शन राक्षसियों को देखा । (१-४)

उन में कोई एकाक्षी कोई एक कानवाली, कोई विना कानकी, कोई बडे शरीरवाली, कोई दीर्घ शिरवाली, कोई लम्बे कान और लम्बे माथेवाली, लम्बोदर व लम्बे पयोधरवाली, लम्बे ओठ लम्बे मुखवाली, कोई ह्रस्व दीर्घ कुबरी वामनी पीले नेत्रवाली व विकृतमुखी, कोई पीली काली क्रोधालु

विकृताः पिङ्गलाः कालीः क्रोधनाः कलहप्रियाः ।
कालायसमहाशूलकूटमुद्गरधारिणीः ९
वराहमृगशार्दूलमहिषाजशिवामुखाः ।
गजोष्ट्रहयपादाश्च निखातशिरसोऽपराः १०
एकहस्तैकपादाश्च खरकर्ण्यश्वकर्णिकाः ।
गोकर्णीर्हस्तिकर्णीश्च हरिकर्णीस्तथापराः ११
अतिनासाश्च काश्चिच्च तिर्यक्च्छ्वासा अनासिकाः ।
गजसंनिभनासाश्च ललाटोच्छ्वासनासिकाः १२
हस्तिपादा महापादा गोपादाः पादचूलिकाः ।
अतिमात्रशिरोग्रीवा अतिमात्रकुचोदरीः १३
अतिमात्रास्यनेत्राश्च दीर्घजिह्माननास्तथा ।
अजामुखीर्हस्तिमुखीर्गोमुखीः सूकरीमुखीः १४
हयोष्ट्रखरवक्त्राश्च राक्षसीर्घोरदर्शनाः ।
शूलमुद्गरहस्ताश्च क्रोधनाः कलहप्रियाः ॥
करालधूम्रकेशिन्यो राक्षसीर्विकृताननाः १५
पिबन्ति सततं पानं सुरामांससदाप्रियाः ।
मांसशोणितदिग्धाङ्गीर्मांसशोणितभोजनाः १६
ता ददर्श कपिश्रेष्ठो रोमहर्षणदर्शनाः ।

कलहप्रिय शूल मुद्गर धारण किए, कोई वराह मृग, महिष, छाग व सूकर के से मुखवाली, गज ऊंट घोडों के तुल्य पांववाली, एक हाथवाली एक पैरवाली, गाय, हाथी व वानर के से कानवाली, कोई बडी टेढी कानवाली व विना नाकवाली व हाथी के समान नाकवाली, तथा कटी नाकवाली, कोई हाथी के से पैरोंवाली, गोपदी बडी ग्रीवा व शिरवाली, बडे नेत्र, जिह्वा व मुखवाली, कोई बकरी, हाथी, गौ, शूकर, घोडा, ऊंट, गदहा के समान मुखवाली, इस प्रकार घोरदर्शन, क्रोधित व कलहप्रिय, धूम्रकेशिनी, मदिरा व मांस को चाहनेवाली, बडे मुखवाली, मांस रुधिर शरीर में लगाए, मांस व रुधिर का भोजन करनेवाली राक्षसियां श्रेष्ठ हनुमान ने देखीं, जो उस

स्कन्धवन्तमुपासीनाः परिवार्य वनस्पतिम् १७
तस्याधस्ताच्च तां देवीं राजपुत्रीमनिन्दिताम्।
लक्षयामास लक्ष्मीवान्हनूमाञ्जनकात्मजाम् १८
निष्प्रभां शोकसंतप्तां मलसंकुलमूर्धजाम्।
क्षीणपुण्यां च्युतां भूमौ तारां निपतितामिव १९
चारित्रव्यपदेशाढ्यां भर्तृदर्शनदुर्गताम्।
भूषणैरुत्तमैर्हीनां भर्तृवात्सल्यभूषिताम् २०
राक्षसाधिपसंरुद्धां बन्धुभिश्च विनाकृताम्।
वियूथां सिंहसंरुद्धां वद्धां गजवधूमिव २१
चन्द्ररेखां पयोदान्ते शारदाभ्रैरिवावृताम्।
क्लिष्टरूपामसंस्पर्शादयुक्तामिव वल्लकीम् २२
स तां भर्तृहिते युक्तामयुक्तां रक्षसां वशे।
अशोकवनिकामध्ये शोकसागरमाप्लुताम् २३
ताभिः परिवृतां तत्र सग्रहामिव रोहिणीम्।
ददर्श हनुमांस्तत्र लतामकुसुमामिव २४
सा मलेन च दिग्धाङ्गी वपुषा चाप्यलंकृता।
मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति च न भाति च २५

वृक्ष को जिसपर हनुमान् बैठा था घेरे खड़ी थीं। (५-१७)

उस के नीचे अनिन्दित राजपुत्री सीता को हनुमान् ने देखा। जो निष्प्रभ, शोक से सन्तप्त, मलयुक्त एक वेणी धारण किए, भूमिपर गिरे तारा के तुल्य, पतिव्रत धर्मवाली, पतिदर्शन से हीन, उत्तम आभूषणों से हीन, पतिप्रेमरूप भूषणवाली, रावण से रोकी गई, बन्धुहीन, शरद् ऋतु के बादलों से घिरी चन्द्ररेखा के समान, पति के वश में युक्त किंतु राक्षसियों के वश में अयुक्त, अशोकवाटिका के बीच शोकसागर में डूबी, उन राक्षसियों से परिवृत पुष्पमय लता के तुल्य सीता को हनुमान् ने देखा। (१८-२४)

वह मलिन अङ्गवाली, पर शरीर से अलंकृत पङ्कयुक्त नालिनी के समान

अशोकवनमें श्रीसीतादेवी। (सुंदर० स. १७ श्लो. २३।२४)

मलिनेन तु वस्त्रेण परिक्लिष्टेन भामिनीम् ।
संवृतां मृगशावाक्षीं ददर्श हनुमान्कपिः २६
तां देवीं दीनवदनामदीनां भर्तृतेजसा ।
रक्षितां स्वेन शीलेन सीतामसितलोचनाम् २७
तां दृष्ट्वा हनुमान्सीतां मृगशावनिभेक्षणाम् ।
मृगकन्यामिव त्रस्तां वीक्षमाणां समन्ततः २८
दहन्तीमिव निःश्वासैर्वृक्षान्पल्लवधारिणः ।
संघातमिव शोकानां दुःखस्योर्मिमिवोत्थिताम् । २९
तां क्षमां सुविभक्ताङ्गीं विनाभरणशोभिनीम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे मारुतिः प्रेक्ष्य मैथिलीम् ३०
हर्षजानि च सोऽश्राणि तां दृष्ट्वा मदिरेक्षणाम् ।
मुमोच हनुमांस्तत्र नमश्चक्रे च राघवम् ३१
नमस्कृत्वाथ रामाय लक्ष्मणाय च वीर्यवान् ।
सीतादर्शनसंहृष्टो हनुमान्संवृतोऽभवत् ३२

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः । [८७८]

तथा विप्रेक्षमाणस्य वनं पुष्पितपादपम् ।

शोभित हुई भी नहीं शोभती थी । हनुमान् ने उसे मलिन वस्त्रोंसे संवृत देखा । उस दीनवदना पर पतितेज के कारण अदीना और स्वशील से रक्षिता, मृगशावनयनी, डरी हरनी के समान चारों ओर को देखती हुई, सांसों से वृक्षों को जलाती हुईसी, शोकरूपी सागर को बहाती हुईसी, सुविभक्त अङ्गवाली, विना आभूषणों के भी शोभा देनेवाली सीता को देख हनुमान् बेहद खुश हुआ । हनुमान् ने उस सुलोचनी को देख हर्ष के आंसू गिराए और राम लक्ष्मण को नमस्कार करके सीता के देखने से हर्षितमना हो छिपकर बैठ गया । (२५-३२)

यहाँ सतरहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

विचिन्वतश्च वैदेहीं किंचिच्छेषा निशाभवत् १
षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम्।
शुश्राव ब्रह्मघोषान्स विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम् २
अथ मङ्गलवादित्रैः शब्दैः श्रोत्रमनोहरैः।
प्राबुध्यत महाबाहुर्दशग्रीवो महाबलः ३
विबुध्य तु महाभागो राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्।
स्रस्तमाल्याम्बरधरो वैदेहीमन्वचिन्तयत् ४
भृशं नियुक्तस्तस्यां च मदनेन मदोत्कटः।
न तु तं राक्षसः कामं शशाकात्मनि गूहितुम् ५
स सर्वाभरणैर्युक्तो विभ्रच्छ्रियमनुत्तमाम्।
तां नगैर्विविधैर्जुष्टां सर्वपुष्पफलोपगैः ६
वृतां पुष्करिणीभिश्च नानापुष्पोपशोभिताम्।
सदा मत्तैश्च विहगैर्विचित्रां परमाद्भुतैः ७
ईहामृगैश्च विविधैर्वृतां दृष्टिमनोहरैः।
वीथीः संप्रेक्षमाणश्च मणिकाञ्चनतोरणाम् ८
नानामृगगणाकीर्णां फलैः प्रपतितैर्वृताम्।
अशोकवनिकामेव प्राविशत्संततद्रुमाम् ९

इस प्रकार वनको देखते और सीताको ढूढते रात्रि समाप्त होनेको आई। छओं अङ्गोंसहित वेद को जाननेवाले और श्रेष्ठ अग्निहोम करनेवाले ब्रह्म-राक्षसोंका ब्राह्ममुहूर्तमें वेदपाठ हनुमान्को सुनाई पडा। तदनु कर्णमनोहर मङ्गल वाद्यों द्वारा महाबली रावण जगाया गया। उचित समय पर जागकर रावण नवीन वस्त्र व माला धारण कर सीताका ध्यान करने लगा। (१-४)

काम से उन्मत्त उस राक्षस ने अपना मन उसी में लगा रक्खा था, अतः वह इस समय काम रोकने को समर्थ नहीं हुआ। अतः वह वस्त्रा-भूषण धारण कर, पूर्णित फलित वृक्षों से पूर्ण, छोटी पुष्करिणी व नाना नाना प्रकार के पुष्पों से शोभित, विविध पक्षियों से युक्त, मनोहर-दृष्टि हिरनों से समाकुल, अशोकवाटिका की वीथियों को देखता अशोकवाटिका

अङ्गनाः शतमात्रं तु तं व्रजन्तमनुव्रजन् ।
महेन्द्रमिव पौलस्त्यं देवगन्धर्वयोषितः १०
दीपिकाः काञ्चनीः काश्चिज्जगृहुस्तत्र योषितः ।
वालव्यजनहस्ताश्च तालवृन्तानि चापराः ११
काञ्चनैश्चैव भृङ्गारैर्जहुः सलिलमग्रतः ।
मण्डलाग्रा बृसीश्चैव गृह्यान्याः पृष्ठतो ययुः १२
काचिद्रत्नमयीं पात्रीं पूर्णां पानस्य भ्राजतीम् ।
दक्षिणा दक्षिणेनैव तदा जग्राह पाणिना १३
राजहंसप्रतीकाशं छत्रं पूर्णशशिप्रभम् ।
सौवर्णदण्डमपरा गृहीत्वा पृष्ठतो ययौ १४
निद्रामदपरीताक्ष्यो रावणस्योत्तमस्त्रियः ।
अनुजग्मुः पतिं वीरं घनं विद्युल्लता इव १५
व्याविद्धहारकेयूराः समामृदितवर्णकाः ।
समागलितकेशान्ताः सस्वेदवदनास्तथा १६
घूर्णन्त्यो मदशेषेण निद्रया च शुभाननाः ।
स्वेदक्लिष्टाङ्गकुसुमाः समाल्याकुलमूर्धजाः १७

में प्रविष्ट हुआ । (५--९)

जैसे देवस्त्रियां इन्द्रके पीछे ऐसे ही उस जाते हुए रावणके पीछे सैकडों ललनाएं चलीं । किसी के हाथ में स्वर्णदीपक, किसी के हाथ में पंखियां और किसी के हाथ में ताड के पंखे थे । कोई जल से भरी स्वर्ण की पिचकारियां ले आगे आगे छिडकाव करती चलीं, कोई पीछे से आस्तरण लेकर चलीं, कोई चतुर स्त्री मदिरापूर्ण कलशी लेकर चली । कोई पूर्ण-चन्द्रतुल्य सोने की दण्डी का छत्र ले पीछे पीछे चली, इस प्रकार रावण-पत्नियां निद्रा और मद से तन्द्रायुक्त चलीं । (१०-१५)

स्खलित हारकेयूरवाली, खुले बालवाली, स्वेदयुक्त मुखवाली, मद और निद्रा से तन्द्रा के वश हुई और मालाओं से युक्त वेणीवाली वे रावणप्रिय

प्रयान्तं नैर्ऋतपतिं नार्यो मदिरलोचनाः।
बहुमानाच्च कामाच्च प्रियभार्यास्तमन्वयुः १८
स च कामपराधीनः पतिस्तासां महाबलः।
सीतासक्तमना मन्दो मन्दाञ्चितगतिर्बभौ १९
ततः काञ्चीनिनादं च नूपुराणां च निःस्वनम्।
शुश्राव परमस्त्रीणां कपिर्मारुतनन्दनः २०
तं चाप्रतिमकुर्वाणमचिन्त्यबलपौरुषम्।
द्वारदेशमनुप्राप्तं ददर्श हनुमान्कपिः २१
दीपिकाभिरनेकाभिः समन्तादवभासितम्।
गन्धतैलावसिक्ताभिर्धियमाणाभिरग्रतः २२
कामदर्पमदैर्युक्तं जिह्मताम्रायतेक्षणम्।
समक्षमिव कंदर्पमपविद्धशरासनम् २३
मथितामृतफेनाभमरजोवस्त्रमुत्तमम्।
सुपुष्पमवकर्षन्तं विमुक्तं सक्तमङ्गदे २४
तं पत्रविटपे लीनः पत्रपुष्पशतावृतः।
समीपमुपसंक्रान्तं विज्ञातुमुपचक्रमे २५
अवेक्षमाणस्तु तदा ददर्श कपिकुञ्जरः।
रूपयौवनसंपन्ना रावणस्य वरस्त्रियः २६

सम्मान और काम के वश हो, उसके पीछे चलीं। पर उन सब का पति रावण काम से पराधीन हो सीता के निमित्त धीरे धीरे चला जा रहा था। तदनु हनुमान् ने उन स्त्रियोंके काञ्ची और नूपुरका शब्द सुना। (१६-२०)

और दर्वाजे में घुमते रावण को भी देखा। उसके आगे आगे सुगन्धित तैल की मसालें लिये स्त्रियां आ रहीं थीं व काम से मदोन्मत्त रावण साक्षात् कामदेव के समान चला आता था, जो अति उजले निर्मल वस्त्र और पुष्पमाल यथास्थान अङ्ग में पहर रहा था। वृक्ष के पत्तों में छिपा हनुमान् समीप आते हुए उसे जानने का उद्योग करने लगा। (२१-२५)

तदनन्तर हनुमान् ने रूपयौवनसम्पन्न रावणपत्नियां देखीं, उनसे घिरा

ताभिः परिवृतो राजा सुरूपाभिर्महायशाः २७
तन्मृगद्विजसंघुष्टं प्रविष्टः प्रमदावनम्।
क्ष्वेडो विचित्राभरणः शङ्कुकर्णो महाबलः २८
तेन विश्रवसः पुत्रः स दृष्टो राक्षसाधिपः।
वृतः परमनारीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः २९
तं ददर्श महातेजास्तेजोवन्तं महाकपिः।
रावणोऽयं महाबाहुरिति संचिन्त्य वानरः ३०
सोऽयमेव पुरा शेते पुरमध्ये गृहोत्तमे।
अवप्लुतो महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः ३१
स तथाप्युग्रतेजाः स निर्धूतस्तस्य तेजसा।
पत्रे गुह्यान्तरे सक्तो मतिमान्संवृतोऽभवत् ३२
स तामसितकेशान्तां सुश्रोणीं संहतस्तनीम्।
ददृक्षुरसितापाङ्गीमुपावर्तत रावणः ३३

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः। [९११]

तस्मिन्नेव ततः काले राजपुत्री त्वनिन्दिता।
रूपयौवनसंपन्नं भूषणोत्तमभूषितम् १

हुआ रावण अशोकवाटिका में प्रविष्ट हुआ। मत्त, विचित्र आभरणों से युक्त, महाबली, ताराओं से परिवृत चन्द्रमा के समान उन कामिनियों से घिरे रावण को हनुमान् ने देखा। यह रावण है, ऐसा सोच कर, यहीं मैंने पहले नगर के बीच उत्तम भवन में सोते हुए देखा था, तेजस्वी हनुमान् ऊपर की शाखा पर कूद कर बैठ गया। अति तेजस्वी होकर भी हनुमान उसके तेज से निर्धूत हो पत्तों में छिप बैठ गया। रावण सुश्रोणी काले केशोंवाली उस सीता के पास पहुंचा। (२६-३३)

यहाँ अठारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

अनिन्दित सीता रूपयौवनसम्पन्न उत्तम भूषणों से भूषित रावण को

ततो दृष्ट्वैव वैदेही रावणं राक्षसाधिपम्।
प्रावेपत वरारोहा प्रवाते कदली यथा २
ऊरुभ्यामुदरं छाद्य बाहुभ्यां च पयोधरौ।
उपविष्टा विशालाक्षी रुदती वरवर्णिनी ३
दशग्रीवस्तु वैदेहीं रक्षितां राक्षसीगणैः।
ददर्श दीनां दुःखार्तां नावं सन्नामिवार्णवे ४
असंवृतायामासीनां धरण्यां संशितव्रताम्।
छिन्नां प्रपतितां भूमौ शाखामिव वनस्पतेः ५
मलमण्डनदिग्धाङ्गीं मण्डनार्हाममण्डनाम्।
मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च ६
समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः।
संकल्पहयसंयुक्तैर्यान्तीमिव मनोरथैः ७
शुष्यन्तीं रुदतीमेकां ध्यानशोकपरायणाम्।
दुःखस्यान्तमपश्यन्तीं रामां राममनुव्रताम् ८
चेष्टमानामथाविष्टां पन्नगेन्द्रवधूमिव।
धृष्यमाणां ग्रहेणेव रोहिणीं धूमकेतुना ९

देख वायु से कम्पित कदली वृक्ष के समान कांपने लगी। उदर को जंघाओं से और स्तनों को हाथों से ढक रोती हुई सीता उठ बैठी। दशग्रीव ने राक्षसियों से रक्षित सीता को समुद्र में मग्न होती नौका के समान दुःख में डूबा हुआ देखा। (१-४)

कठोर व्रत धारण करनेवाली, पृथ्वी में बैठी हुई, काटी हुई शाखा के तुल्य भूमि में गिरी हुई, मण्डनयोग्य पर अमण्डित, राजसिंह विदितात्मा राम के पास मनोरथ के सङ्कल्परूप घोड़ों से जाती हुई, रुदन करती हुई, अकेली, रामध्यान में रत, दुःख का पार न पाती हुई, रामानुरक्त, शेषनागभार्यावत् वेष्टमान, धार्मिक कुलोत्पन्न, दुर्जनों से दूषित कीर्ति के समान, आदरहित श्रद्धा के समान, परीक्षीण बुद्धि के समान, भङ्ग हुई आशा के तुल्य, अग्नि लगी दिशा सम, समय में अपहृत पूजा के समान,

वृत्तशीले कुले जातामाचारवति धार्मिके ।
पुनः संस्कारमापन्नां जातामिव च दुष्कुले १०
सन्नामिव महाकीर्तिं श्रद्धामिव विमानिताम् ।
प्रज्ञामिव परिक्षीणामाशां प्रतिहतामिव ११
आयतीमिव विध्वस्तामाज्ञां प्रतिहतामिव ।
दीक्षामिव दिशं काले पूजामपहतामिव १२
पौर्णमासीमिव निशां तमोग्रस्तेन्दुमण्डलाम् ।
पद्मिनीमिव विध्वस्तां हतशूरां चमूमिव १३
प्रभामिव तमोध्वस्तामुपक्षीणामिवापगाम् ।
वेदीमिव परामृष्टां शान्तामग्निशिखामिव १४
उत्कृष्टपर्णकमलां वित्रासितविहंगमाम् ।
हस्तिहस्तपरामृष्टामाकुलामिव पद्मिनीम् १५
पतिशोकातुरां शुष्कां नदीं विस्राविताम् इव ।
परया मृजया हीनां कृष्णपक्षं निशामिव १६
सुकुमारीं सुजाताङ्गीं रत्नगर्भगृहोचिताम् ।
तप्यमानामिवोष्णेन मृणालीमचिरोद्धृताम् १७
गृहीतां लालितां स्तम्भे यूथपेन विनाकृताम् ।
निःश्वसन्तीं सुदुःखार्तां गजराजवधूमिव १८
एकया दीर्घया वेण्या शोभमानामयन्नतः ।

प्रस्त चन्द्रवत्, नष्ट सेनानीवाली सेना के समान, राहु से ध्वस्त सूर्य चन्द्र की प्रभा के समान व क्षीणधारा नदी के समान, चाण्डालादिक से छुई हुई वेदी के तुल्य, बुझी हुई अग्नि की शिखा के समान, हाथियों को सूंडसे विदारित कमल व पक्षियों से रहित तलैया के समान, पतिशोक से आतुर अलग बहती हुई नदी के समान, उपटनादि से हीन कृष्णपक्ष की रात्रि के समान, सुकुमारी, अच्छे अङ्गवाली, रत्नमय घर में बैठनेयोग्य, हथिनी के समान सांस लेती हुई, दुःखार्ता, एक बडी लम्बी बालों की जटा से शोभित, उपवास, शोक, ध्यान, भय से परिक्षीण, कृश और दीन हुई,

नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव १९
उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च।
परिक्षीणां कृशां दीनामल्पाहारां तपोधनाम् २०
आयाचमानां दुःखार्तां प्राञ्जलिं देवतामिव।
भावेन रघुमुख्यस्य दशग्रीवपराभवम् २१
समीक्षमाणां रुदतीमनिन्दितां सुपक्ष्मताम्रायतशुक्ललोचनाम्।
अनुव्रतां राममतीव मैथिलीं प्रलोभयामास वधाय रावणः २२

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनविंशः सर्गः ॥१९॥

विंशः सर्गः। [९३७]

स तां परिवृतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीम्।
साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयत रावणः १
मां दृष्ट्वा नागनासोरु गूहमाना स्तनोदरम्।
अदर्शनमिवात्मानं भयान्नेतुं त्वमिच्छसि २
कामये त्वां विशालाक्षि बहु मन्यस्व मां प्रिये।
सर्वाङ्गगुणसंपन्ने सर्वलोकमनोहरे ३
नेह किंचिन्मनुष्या वा राक्षसाः कामरूपिणः।
व्यपसर्पतु ते सीते भयं मत्तः समुत्थितम् ४

अल्पाहार करनेवाली, तपोधना, राम में मन लगाए, देवता के तुल्य, मन से रावण का पराभव देखती, रोती, अनिंदित, सुन्दर पलकोंयुक्त, बड़े श्वेत नेत्रवाली, राम की अति अनुव्रता सीता को रावण अपने वध के लिए लुभाने लगा। (१-२२)

यहां उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

रावण मंगित मधुर वाक्यों से उस दीन निरानंद तपस्विनी से अपना अभिप्राय कहने लगा— हे हाथी की सूंडसमान जङ्घावाली! स्तन और उदर के छिपाने से मानो तुम भय से भागना ही चाहती हो। हे सर्वगुण-सम्पन्न विशालाक्षि! मैं तेरी कामना करता हूं, मुझे तू बहुत कुछ मान। यहां न कोई राक्षस है न मनुष्य, इस से मुझ से उत्पन्न भय को छोड़।

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वदैव न संशयः ।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं संप्रमथ्य वा ५
एवं चैवमकामां त्वां न च स्प्रक्ष्यामि मैथिलि ।
कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम् ६
देवि नेह भयं कार्यं मयि विश्वसिहि प्रिये ।
प्रणयस्व च तत्त्वेन मैवं भूः शोकलालसा ७
एकवेणी अधःशय्या ध्यानं मलिनमम्बरम् ।
अस्थानेऽप्युपवासश्च नैतान्यौपयिकानि ते ८
विचित्राणि च माल्यानि चन्दनान्यगुरूणि च ।
विविधानि च वासांसि दिव्यान्याभरणानि च ९
महार्हाणि च पानानि शयनान्यासनानि च ।
गीतं नृत्यं च वाद्यं च लभ मां प्राप्य मैथिलि १०
स्त्रीरत्नमसि मैवं भूः कुरु गात्रेषु भूषणम् ।
मां प्राप्य हि कथं वा स्यास्त्वमनर्हा सुविग्रहे ११
इदं ते चारु संजातं यौवनं ह्यतिवर्तते ।
यदतीतं पुनर्नैति स्रोतः स्रोतस्विनामिव १२

हे भीरु ! परस्त्रीगमन वा बलात् हरण करना तो राक्षसों का धर्म ही है, इस में सन्देह नहीं । (१--५)

हे सीते ! कामरहित होने से तुझे मैं नहीं छू सकता, पर काम मेरे शरीर में यथाकाम व्याप रहा है । हे देवी ! भय न करो और मुझपर विश्वास रखो, मुझसे प्रेम करो और इस प्रकार दुःखी न हो । एक वेणी धारना, पृथ्वी पर सोना, चिंता में रहना, मलिन वस्त्र, कुसमय में उपवास ये तेरे लिए युक्त नहीं । विचित्र माला, चन्दन, विविध वस्त्र, दिव्य आभूषण, मूल्यवान् पानपदार्थ व आसन, गीत, नृत्य, वाद्य मुझे प्राप्त हो, इन सब को प्राप्त कर । (६-१०)

सर्वश्रेष्ठ स्त्री होकर तू इस प्रकार मत रह, भूषण धारण कर, मुझे प्राप्त होकर तू कैसे भूषणरहित रहेगी ? तेरा यह सुन्दर यौवन बीत रहा है,

त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्ता स विश्वकृत्।
नहि रूपोपमा ह्यन्या तवास्ति शुभदर्शने १३
त्वां समासाद्य वैदेहि रूपयौवनशालिनीम्।
कः पुनर्नातिवर्तेत साक्षादपि पितामहः १४
यद्यत्पश्यामि ते गात्रं शीतांशुसदृशानने।
तस्मिंस्तस्मिन्पृथुश्रोणि चक्षुर्मम निबद्ध्यते १५
भव मैथिलि भार्या मे मोहमेतं विसर्जय।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव १६
लोकेभ्यो यानि रत्नानि संप्रमथ्याहृतानि मे।
तानि ते भीरु सर्वाणि राज्यं चैव ददामि ते १७
विजित्य पृथिवीं सर्वां नानानगरमालिनीम्।
जनकाय प्रदास्यामि तव हेतोर्विलासिनि १८
नेह पश्यामि लोकेऽन्यं यो मे प्रतिबलो भवेत्।
पश्य मे सुमहद्वीर्यमप्रतिद्वन्द्वमाहवे १९
असकृत्संयुगे भग्ना मया विमृदितध्वजाः।
अशक्ताः प्रत्यनीकेषु स्थातुं मम सुरासुराः २०

नदी के जल के समान जो बीत गया वह फिर नहीं आता। हे शुभदर्शने! तुझे बनाकर ब्रह्मा विरत हो गया, क्योंकि तेरी कोई उपमा नहीं है। रूप और यौवनवाली तुझे पाकर कौन विषयासक्त न हो जायगा, चाहे ब्रह्मा भी हो? हे सीते! जो जो तेरा गात्र मैं देखता हूं, उसी उसी में मेरी दृष्टि बँध जाती है। (११-१५)

इस मोह को छोड, मेरी भार्या बन, बहुतसी उत्तम स्त्रियों की पटरानी हो। लोकोंसे बलात् जो रत्न छीने हैं, वे सब तथा यह राज्य तुझे दे दूंगा। नाना नगरों से युक्त सारी पृथ्वी को जीत कर तेरे कारण से जनकराज को दे दूंगा। मैं संसार में अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं देखता, युद्ध में अप्रतिम बडे बलवाले मुझे देख। रण में बार बार पराजित किए और ध्वजा तोडे हुए सुरासुर मेरे सामने नहीं ठहर सकते। (१६--२०)

इच्छ मां क्रियतामद्य प्रतिकर्म तवोत्तमम् ।
सुप्रभाण्यवसज्जन्तां तवाङ्गे भूषणानि हि २१
साधु पश्यामि ते रूपं सुयुक्तं प्रतिकर्मणा ।
प्रतिकर्माभिसंयुक्ता दाक्षिण्येन वरानने २२
भुङ्क्ष्व भोगान्यथाकामं पिब भीरु रमस्व च ।
यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानि च २३
लालस्व मयि विस्रब्धा धृष्टमाज्ञापयस्व च ।
मत्प्रसादाल्लुलन्त्याश्च ललन्तां बान्धवास्तव २४
ऋद्धिं ममानुपश्य त्वं श्रियं भद्रे यशस्विनि ।
किं करिष्यसि रामेण सुभगे चीरवासिना २५
निक्षिप्तविजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः ।
व्रती स्थण्डिलशायी च शङ्के जीवति वा न वा २६
न हि वैदेहि रामस्त्वां द्रष्टुं वाप्युपलभ्यते ।
पुरोबलाकैरसितैर्मेघैर्ज्योत्स्नामिवावृताम् २७
न चापि मम हस्तात्त्वां प्राप्तुमर्हति राघवः
हिरण्यकशिपुः कीर्तिमिन्द्रहस्तगतामिव २८

मुझ में अनुराग कर जिस से तेरा उत्तम शृङ्गार किया जाय और प्रभामय भूषण तेरे शरीरमें पहराए जांय; शृङ्गारमय तेरा रूप मैं भले प्रकार देखूंगा। हे वरानने ! चतुराई से शृङ्गारयुक्त होकर खाओ, पीओ और रमण करो। यथेच्छ पृथ्वी और धन का दान दे, मुझ में विश्रब्ध हो रमण कर और धृष्टतापूर्वक मुझ पर हुक्म चला, मेरे प्रसाद से तेरे बांधव भी लालित होंगे। हे भद्रे ! मेरी ऋद्धि, श्री और यश को देखो, चीरधारी राम के साथ तुम क्या करोगी ? (२१-२५)

राम तो त्यक्तविजय, गतश्री, वनचारी, व्रत में लगा, भूमि पर सोने-वाला है, जीता है वा नहीं, मुझे तो यह भी सन्देह है। हे वैदेहि ! राम तुम को देख भी नहीं सकते, जैसे बगुलों की पंक्ति को आगे किए श्याम घटा में छिपी हुई सूर्य की प्रभा को कोई नहीं देख सकता। हिरण्यकशिपु

चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि।
मनो हरसि मे भीरु सुपर्णः पन्नगं यथा २९
क्लिष्टकौशेयवसनां तन्वीमप्यनलंकृताम्।
त्वां दृष्ट्वा स्वेषु दारेषु रतिं नोपलभाम्यहम् ३०
अन्तःपुरनिवासिन्यः स्त्रियः सर्वगुणान्विताः
यावत्यो मम सर्वासामैश्वर्यं कुरु जानकि ३१
मम ह्यसितकेशान्ते त्रैलोक्यप्रवरस्त्रियः।
तास्त्वां परिचरिष्यन्ति श्रियमप्सरसो यथा ३२
यानि वैश्रवणे सुष्ठु रत्नानि च धनानि च।
तानि लोकांश्च सुश्रोणि मया भुङ्क्ष्व यथासुखम् ३३
न रामस्तपसा देवि न बलेन च विक्रमैः।
न धनेन मया तुल्यस्तेजसा यशसापि वा ३४
पिब विहर रमस्व भुङ्क्ष्व भोगान्धननिचयं प्रदिशाभिमेदिनीं च।
मयि लल ललने यथासुखं त्वं त्वयि च समेत्य ललन्तु बान्धवास्ते ३५
कुसुमिततरुजालसंततानि भ्रमरयुतानि समुद्रतीरजानि।

जैसे इन्द्र से हस्तगत कीर्ति को नहीं पा सका, ऐसे राम मुझ से नहीं पा सकता। हे चारुनयनि! जैसे गरुड सर्प को वैसे ही तू मेरे मन को हरती है। मलिन वस्त्र और अनलङ्कृत वदनवाली तुझे देख मैं अपनी स्त्रियों में भी रति को नहीं प्राप्त होता। (२६--३०)

हे जानकि! अन्तःपुरनिवासिनी जितनी मेरी स्त्रियां हैं, उन सब पर तू प्रभुता कर। हे श्यामकेशवाली! तीनों लोकों की उत्तम जो मेरी स्त्रियां हैं, वे तेरी सेवा करेंगी, जैसे अप्सराएं लक्ष्मी की। हे सुश्रोणि! जो रत्न और धन कुबेर के पास है, उन का और तीनों लोकों का मेरे साथ भोग कर। हे देवि! राम तप, बल, विक्रम, धन, तेज वा यश किसी में भी मेरे तुल्य नहीं। इस से पान करो, रमण करो और भोगों को भोगो। खजाना और पृथ्वी तुझे ही दे दूंगा, मुझमें यथासुख प्रीति कर। तेरे बन्धुगण भी इकट्ठे हो लालित होवें। समुद्रतीर पर उत्पन्न भ्रमरयुक्त, पुष्पयुक्त

कनकविमलहारभूषिताङ्गी विहर मया सह भीरु काननानि ३६

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः । [९६९]

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः ।
आर्ता दीनस्वरा दीनं प्रत्युवाच ततः शनैः १
दुःखार्ता रुदती सीता वेपमाना तपस्विनी ।
चिन्तयन्ती वरारोहा पतिमेव पतिव्रता ॥
तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता २
निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रीयतां मनः ।
न मां प्रार्थयितुं युक्तस्त्वं सिद्धिमिव पापकृत् ३
अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम् ।
कुलं संप्राप्तया पुण्यं कुले महति जातया ४
एवमुक्त्वा तु वैदेही रावणं तं यशस्विनी ।
रावणं पृष्ठतः कृत्वा भूयो वचनमब्रवीत् ५
नाहमौपयिकी भार्या परभार्या सती तव ।
साधु धर्ममवेक्षस्व साधु साधुव्रतं चर ६

तरुसमूहों और काननों में हे भीरु ! मेरे साथ विहार कर । (३१–३६)

यहाँ बीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

उस भयानक राक्षस के वचन सुन सीता दुःखी हो, यह दीनवाणी शनैः शनैः बोली-- दुःखार्ता, रोती, तपस्विनी, पति का चिंतन करती सीता तिनके की आड करके कहने लगी-- मुझ से अपना मन हटा और अपनी स्त्री में लगा, जैसे पापी सिद्धि की ऐसे ही तू मेरी याचना करनेयोग्य नहीं । मुझ पतिव्रता श्रेष्ठकुलोत्पन्न और बडे कुल में पैदा हुई को निंदित कर्म करना योग्य नहीं । यह रावण की ओर पीठ कर सीता फिर बोली । (१–५)

मैं परस्त्री और सती तेरी स्त्री होने के उपयुक्त नहीं, तू साधुधर्म की

यथा तव तथान्येषां रक्ष्या दारा निशाचर।
आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम् ७
अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चपलेन्द्रियम्।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम् ८
इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे।
यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता ९
वचो मिथ्या प्रणीतात्मा पथ्यमुक्तं विचक्षणैः।
राक्षसानामभावाय त्वं वा न प्रतिपद्यसे १०
अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम्।
समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च ११
तथैव त्वां समासाद्य लङ्का रत्नौघसंकुला।
अपराधात्तवैकस्य न चिराद्विनशिष्यति १२
स्वकृतैर्हन्यमानस्य रावणादीर्घदर्शिनः।
अभिनन्दन्ति भूतानि विनाशे पापकर्मणः १३
एवं त्वां पापकर्माणं वक्ष्यन्ति निकृता जनाः।
दिष्ट्यैतद्व्यसनं प्राप्तो रौद्र इत्येव हर्षिताः १४

ओर दृष्टि रख और साधुव्रत का आचरण कर। जैसे तेरी ऐसे अन्यों की स्त्रियां भी रक्षणीया हैं, अपनी उपमा लेकर स्वदारोंमें रमण करो। अपनी स्त्रियों में असन्तुष्ट और चञ्चलेन्द्रिय पुरुष को दूसरों की स्त्रियां पराभव को प्राप्त करा देती हैं। इस लङ्का में क्या तो साधुपुरुष ही नहीं वा तू उन का कहना नहीं मानता, जिस से तेरी बुद्धि आचारभ्रष्ट उल्टी हो रही है। अथवा मिथ्या स्नेहवश तू पण्डितों का वचन राक्षसों के नाश कराने के हेतु स्वीकार नहीं करता। (६-१०)

अकृतात्मा अनीति में रत राजा को पा समृद्ध राष्ट्र और नगर नष्ट हो जाते हैं। ऐसे ही रत्नमय लङ्का तुझे पा तेरे अपराध से शीघ्र नष्ट हो जायगी। अपने कर्मों से हन्यमान पापी अदीर्घदर्शी रावण के नाश से सब प्राणी प्रसन्न होंगे। भाग्य से ही इसे यह व्यसन प्राप्त हुआ है-

शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा १५
उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम्।
कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित् १६
अहमौपयिकी भार्या तस्यैव च धरापतेः।
व्रतस्नातस्य विद्येव विप्रस्य विदितात्मनः १७
साधु रावण रामेण मां समानय दुःखिताम्।
वने वासितया सार्धं करेणवेव गजाधिपम् १८
मित्रमौपयिकं कर्तुं रामः स्थानं परीप्सता।
बन्धं चानिच्छता घोरं त्वयासौ पुरुषर्षभः १९
विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः।
तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि २०
प्रसादयस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम्।
मां चास्मै प्रयतो भूत्वा निर्यातयितुमर्हसि २१
एवं हि ते भवेत्स्वस्ति संप्रदाय रघूत्तमे।
अन्यथा त्वं हि कुर्वाणः परां प्राप्स्यसि चापदम् २२

इस बात से हर्षित तुझ से ठगे जन तुझ पापी को ऐसा कहेंगे। मैं ऐश्वर्य वा धन से नहीं लुभाई जा सकती, जैसे प्रभा सूर्य से ऐसे ही मैं राम से अलग नहीं हो सकती। (११-१५)

उस लोकनाथ राम का हाथ शिर नीचे रख अब अन्य किसी का हाथ कैसे धारण कर सकती हूं? मैं उस पृथ्वीनाथ विदितात्मा राम के ही उपयुक्त भार्या हूं। हे रावण! तेरा मंगल हो, मुझ दुःखिनी को राम के पास ही पहुंचा दो। यदि तुम अपने अधिकार की रक्षा चाहते हो और अपना वध नहीं चाहते, तो रामसे मित्रता करना ही उपयुक्त है-वह धर्मज्ञ शरणागत के पालक हैं ही। यदि जीना चाहता है, तो उनके साथ तेरी मित्रता होवे, शरणागतवत्सल उन्हें प्रसन्न कर। (१६-२१)

और निर्मलचित्त हो मुझे उनके समर्पण करो। मुझे रामको देकर तेरा

वर्जयेद्वज्रमुत्सृष्टं वर्जयेदन्तकश्चिरम्।
त्वद्विधं न तु संक्रुद्धो लोकनाथः स राघवः २३
रामस्य धनुषः शब्दं श्रोष्यसि त्वं महास्वनम्।
शतक्रतुविसृष्टस्य निर्घोषमशनेरिव २४
इह शीघ्रं सुपर्वाणो ज्वलितास्या इवोरगाः।
इषवो निपतिष्यन्ति रामलक्ष्मणलक्षिताः २५
रक्षांसि निहनिष्यन्तः पुर्यामस्यां न संशयः।
असंपातं करिष्यन्ति पतन्तः कङ्कवाससः २६
राक्षसेन्द्र महासर्पान्स रामगरुडो महान्।
उद्धरिष्यति वेगेन वैनतेय इवोरगान् २७
अपनेष्यति मां भर्ता त्वत्तः शीघ्रमरिन्दमः।
असुरेभ्यः श्रियं दीप्तां विष्णुस्त्रिभिरिव क्रमैः २८
जनस्थाने हतस्थाने निहते रक्षसां बले।
अशक्तेन त्वया रक्षः कृतमेतदसाधु वै २९
आश्रमं तत्तयोः शून्यं प्रविश्य नरसिंहयोः।
गोचरं गतयोर्भ्रात्रोरपनीता त्वयाधम ३०

कल्याण होगा, विपरीत करके तू वध को प्राप्त होगा। छोडे इन्द्रवज्र को चाहे तू रोक दे वा यमराज तुझे छोड दे, पर क्रुद्ध हुए राम से तू न बच सकेगा। इन्द्र से छोडे वज्रशब्द के तुल्य तू राम के धनुष के शब्द को सुनेगा। यहां शीघ्र ही विषधर सर्पोंके समान राम--लक्ष्मण से छोडे जलते हुए बाण आकर गिरेंगे। (२१–२५)

चारों ओर से गिरते हुए बाण राक्षसों को मारते हुए इस पुरी में अनवकाश कर डालेंगे। जैसे गरुड सर्पों का वैसे ही गरुडरूप राम महा--सर्परूप राक्षसेंद्रों का नाश करेंगे। शत्रुनाशक मेरा भर्ता मुझे तुझ से शीघ्र ही ले जायगा, जैसे विष्णु ने तीन पाद से असुरों से लक्ष्मी ले ली थी। जनस्थान में राक्षससेना के मारे जाने पर तुम अशक्त ने यह असाधु कर्म किया कि उन दोनों नरशार्दूलों से रहित आश्रम में घुसकर तू मुझ को

श्रीसीतादेवी रावणको प्रत्युत्तर देती हैं। (सुंदर० स. २१ श्लो. ४)

न हि गन्धमुपाघ्राय रामलक्ष्मणयोस्त्वया।
शक्यं संदर्शने स्थातुं शुना शार्दूलयोरिव ३१
तस्य ते विग्रहे ताभ्यां युगग्रहणमस्थिरम्।
वृत्रस्येवेन्द्रबाहुभ्यां बाहोरेकस्य विग्रहे ३२
क्षिप्रं तव सनाथो मे रामः सौमित्रिणा सह।
तोयमल्पमिवादित्यः प्राणानादास्यते शरैः ३३
गिरिं कुबेरस्य गतोऽथवालयं सभां गतो वा वरुणस्य राज्ञः।
असंशयं दाशरथेर्विमोक्ष्यसे महाद्रुमः कालहतोऽशनेरिव ३४
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकविंशः सर्गः॥ २१॥

द्वाविंशः सर्गः। [१००३]

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं राक्षसेश्वरः।
प्रत्युवाच ततः सीतां विप्रियं प्रियदर्शनाम् १
यथा यथा सान्त्वयिता वश्यः स्त्रीणां तथा तथा।
यथा यथा प्रियं वक्ता परिभूतस्तथा तथा २

चुरा लाया। (२६--३०)

व्याघ्र के सामने जैसे कुत्ता ऐसे ही रामलक्ष्मण की गन्ध पाकर तू नहीं ठहर सकता। उन दोनों के साथ युद्ध में तुम्हारा जय भी ऐसे ही सम्भव नहीं, जैसे वृत्रासुर की एक बाहु इन्द्रकी दोनों बाहुओं से पराजित हुई थी। मेरे स्वामी रामलक्ष्मणसहित बाणों को चलाकर तुम्हारे प्राण लेंगे, जैसे अल्प जल को सूर्य सोख लेता है। तू यदि कैलास पर चला जावे वा राजा वरुण की सभा में चला जावे, तो भी इन्द्रवज्र से हत महाद्रुम के समान राम के हाथ से प्राण गवांवेगा। (३१--३४)

यहाँ इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

सीता के कठोर वचन सुन, रावण प्रियदर्शन सीता से कठोर वचन कहने लगा कि लोकमें पुरुष, स्त्री को जितना जितना समझाता है, उतना उतना ही वह वश्य हो जाता है और मैंने जितना जितना मीठा वचन

संनियच्छति मे क्रोधं त्वयि कामः समुत्थितः।
द्रवतो मार्गमासाद्य हयानिव सुसारथिः ३
वामः कामो मनुष्याणां यस्मिन्किल निबध्यते।
जने तस्मिंस्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते ४
एतस्मात्कारणान्न त्वां घातयामि वरानने।
वधार्हामवमानार्हां मिथ्या प्रव्रजने रताम् ५
परुषाणि हि वाक्यानि यानि यानि ब्रवीषि माम्।
तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैथिलि दारुणः ६
एवमुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः।
क्रोधसंरम्भसंयुक्तः सीतामुत्तरमब्रवीत् ७
द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः।
ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि ८
द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम्।
मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः ९
तां भर्त्स्यमानां संप्रेक्ष्य राक्षसेन्द्रेण जानकीम्।

तुझ से कहा, तूने उतना उतना ही मेरा अनादर किया। जैसे सुसारथि कुमार्ग पाकर दौड़ते हुए घोड़ों को वैसे तेरे कारण उत्पन्न हुआ काम मेरे क्रोध को रोक लेता है। मनुष्यों का प्रतिकूल काम जिस में फंस जाता है, उस जन के प्रति दया और स्नेह निश्चय उत्पन्न हो ही जाते हैं। इसी कारण मैं तुझे नहीं मारता, यद्यपि तू वधयोग्य, अनादरयोग्य और कपटी राम में रत है। (१–५)

जो कठोर वचन तू मेरे प्रति कहती है, उन के लिए तेरा दारुण वध ही उचित है। यह कह क्रोध और सम्भ्रम से युक्त रावण सीता से कहने लगा। हे वरवर्णिनि! दो मासकी जो अवधि कर दी है, तबतक तू रक्षित है, तदनन्तर मेरे बिस्तरे पर आना होगा। दो मास के पश्चात् जो तू मुझे भर्ता न बनायेगी तो प्रात कालीन भोजन के लिए रसोइए तेरे खण्ड खण्ड कर डालेंगे। रावण से इस प्रकार धमकाई हुई सीता को देखकर

देवगन्धर्वकन्यास्ता विषेदुर्विकृतेक्षणाः १०
ओष्ठप्रकारैरपरा नेत्रैर्वक्त्रैस्तथापराः ।
सीतामाश्वासयामासुस्तर्जितां तेन रक्षसा ११
ताभिराश्वासिता सीता रावणं राक्षसाधिपम् ।
उवाचात्महितं वाक्यं वृत्तशौटीर्यगर्वितम् १२
नूनं न ते जनः कश्चिदस्मिन्निःश्रेयसे स्थितः ।
निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद्विगर्हितात् १३
मां हि धर्मात्मनः पत्नीं शचीमिव शचीपतेः ।
त्वदन्यस्त्रिषु लोकेषु प्रार्थयेन्मनसापि कः १४
राक्षसाधम रामस्य भार्यामिततेजसः ।
उक्तवानसि यत्पापं क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे १५
यथा दृप्तश्च मातङ्गः शशश्च सहितौ वने ।
तथा द्विरदवद्रामस्त्वं नीच शशवत्स्मृतः १६
स त्वमिक्ष्वाकुनाथं वै क्षिपन्निह न लज्जसे ।
चक्षुषो विषये तस्य न यावदुपगच्छसि १७

साथ आई देवगन्धव कन्याएं कातरनयन और दुःखी हुईं । (३-१०)

और कोई ओष्ठ, कोई नेत्र और कोई मुंह चला कर सीता को सांत्वना देने लगीं । उनसे आश्वासित सीता रावण से पातिव्रत्य के बल से गर्वित आत्महितकर वाक्य बोली- निश्चय ही इस लङ्का में ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जो तुम्हारा भला चाहता हो, जो तुम्हें इस निंदित कर्म से रोके । इन्द्राणी के तुल्य मुझ रामप्रिया को तेरे सिवा तीन लोक में और कौन है, जो मन से भी मेरी प्रार्थना करता हो ? हे नीच राक्षस ! अमित तेजवाले राम की भार्या से तूने जो पापकथा कही, उस से कौन तुझे छुडावेगा ? (११-१५)

रे नीच ! वन में दर्पित हाथी और खरगोश भी एकसाथ हो रहते हैं, उन में हाथी के समान श्रीराम और खरगोश के तुल्य तू है । सो तुम जबतक श्रीराम को दीख नहीं पडते, तबतक उन की निंदा करके नहीं

इमे ते नयने क्रूरे विकृते कृष्णपिङ्गले।
क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्य निरीक्षतः १८
तस्य धर्मात्मनः पत्नीं स्नुषां दशरथस्य च।
कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यति १९
असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा २०
नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः।
विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्र संशयः २१
शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च।
अपोह्य रामं कस्माच्चिद्दारचौर्यं त्वया कृतम् २२
सीताया वचनं श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः।
विवृत्य नयने क्रूरे जानकीमन्ववैक्षत २३
नीलजीमूतसंकाशो महाभुजशिरोधरः।
सिंहसत्त्वगतिः श्रीमान्दीप्तजिह्वोग्रलोचनः २४

लजाते हो। मुझ को लखते हुए ये तेरे क्रूर, विकृत, कृष्ण और पिङ्गल नेत्र पृथ्वी पर क्यों नहीं गिर पड़ते? उस धर्मात्मा की पत्नी और दशरथ की पुत्रवधू मुझ को खोटे वचन कहते हुए तेरी जीभ कट कर क्यों नहीं गिर पड़ती? हे दशग्रीव! श्रीराम की आज्ञा न होने और तप के कारण मैं तुझ को तेज से भस्म नहीं करती, यद्यपि तू राख कर डालनेयोग्य है। (१६-२०)

उस राम के समीप से तू मुझे हर नहीं सकता था, पर तेरे वध के लिए यह बात हुई, उस में सन्देह नहीं। तू शूर है, कुबेर का भाई है और सेनावाला है, फिर तूने राम को धोखे से दूर ले जा कर यह स्त्रीहरण क्यों किया? राक्षसराज सीता की बात सुन अपने क्रूर नेत्र घुमा जानकी को घूरने लगा। नीले मेघसमान, बड़े बड़े भुजा और शिरवाला, सिंह की सी गतिवाला, श्रीमान्, दीप्त जिह्वा व उग्र लोचनवाला, मुगुट जिस का

चलाग्रमुकुटप्रांशुश्चित्रमाल्यानुलेपनः ।
रक्तमाल्याम्बरधरस्तप्ताङ्गदविभूषणः २५
श्रोणीसूत्रेण महता मेचकेन सुसंवृतः ।
अमृतोत्पादने नद्धो भुजङ्गेनेव मन्दरः २६
ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यां भुजाभ्यां राक्षसेश्वरः ।
शुशुभेऽचलसंकाशः शृङ्गाभ्यामिव मन्दरः २७
तरुणादित्यवर्णाभ्यां कुण्डलाभ्यां विभूषितः ।
रक्तपल्लवपुष्पाभ्यामशोकाभ्यामिवाचलः २८
स कल्पवृक्षप्रतिमो वसन्त इव मूर्तिमान् ।
श्मशानचैत्यप्रतिमो भूषितोऽपि भयङ्करः २९
अवेक्षमाणो वैदेहीं कोपसंरक्तलोचनः ।
उवाच रावणः सीतां भुजङ्ग इव निःश्वसन् ३०
अनयेनाभिसंपन्नमर्थहीनमनुव्रते ।
नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः संध्यामिवौजसा ३१
इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः ।
संददर्श ततः सर्वा राक्षसीर्घोरदर्शनाः ३२

कुछ खिसक गया था, मालाओं और अनुलेपन से युक्त, स्वर्ण बाजुओं से भूषित, अमृतमन्थन के समय मन्दराचल पर्वत जैसे सर्प से बंधा हो वैसे बडी भारी तगडी पहिरे हुए, अपनी उन परिपूर्ण दोनों भुजाओंसे युक्त वह राक्षसेश्वर शृंगों से युक्त मन्दर पर्वतसमान शोभा देने लगा । (२१-२७)

बाल सूर्य के वर्णवाले दो कुण्डलों से विभूषित, लाल पत्ते और पुष्पों-वाले अशोकों से युक्त पर्वतसमान, कल्पवृक्ष की उपमावाला, साक्षात् वसन्त के तुल्य, स्मशान में उगे मन्दार वृक्ष के समान भूषित हुआ भी भयङ्कर, क्रोध से लाल नेत्रवाला सीता को देखता हुआ सर्प के समान सांस लेता हुआ रावण बोला (२८-३०) ।

अनीतिसम्पन्न और अर्थहीन व्रत की पालनेवाली ! तुझे आज सूर्यद्वारा नष्ट की गई सन्ध्यातुल्य नष्ट कर दूंगा । सीता से यह कह शत्रु को

एकाक्षीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा।
गोकर्णीं हस्तिकर्णीं च लम्बकर्णीमकर्णिकाम् ३३
हस्तिपद्यश्वपद्यौ च गोपदीं पादचूलिकाम्।
एकाक्षीमेकपादीं च पृथुपादीमपादिकाम् ३४
अतिमात्रशिरोग्रीवामतिमात्रकुचोदरीम्।
अतिमात्रास्यनेत्रां च दीर्घजिह्वानखामपि ३५
अनासिकां सिंहमुखीं गोमुखीं सूकरीमुखीम् ३६
यथा मद्वशगा सीता क्षिप्रं भवति जानकी।
तथा कुरुत राक्षस्यः सर्वाः क्षिप्रं समेत्य वा ३७
प्रतिलोमानुलोमैश्च सामदानादिभेदनैः।
आवर्जयत वैदेहीं दण्डस्योद्यमनेन च ३८

रुलानेवाले रावण ने सब घोरदर्शना राक्षसियों को आज्ञा दी। किसी को एकही आँख, किसी को एक ही कान, किसी के कान दुपट्टे के कपडे के समान शरीर ढक देनेके लिए पर्याप्त रूपसे विशाल, किसीके कान गायके जैसे, किसी के हाथी के सदृश, कोई लंबे कानवाली तो कोई बिना कान के थीं। किसी के पैर हाथी के जैसे, किसी के घोडों के समान, किसी के बैल जैसे, किसी के पैर को ही कर्णसदृश पालि या लौं छूटी हुई, कोई एक आँखवाली तो कोई एक पैरवाली, किसी के पैर बहुत मोटे, कोई बिना पैर की, किसी के धड और गर्दन का प्रमाण बहुत बढाचढा, तो किसी के स्तन एवं पेट बहुत ही प्रचंड, किसीके मुँह और आँखें बहुत बढी हुई, किसी की जीभ और नाखून बहुत लम्बे, कोई सिवा नाक के तो कोई सिंह के समान मुँहवाली, कोई बैल जैसी मुखवाली, तो कोई सूअर के समान मुँहवाली ऐसी राक्षसनारियों को देखकर वह रावण उन से बोला। (३१-३६)

जैसे सीता जल्दीसे मेरे वशीभूत होवे, वैसे ही तुम सब मिलकर उपाय करो। अनुकूल, प्रतिकूल आचरण से, सामदानादि भेद से और दण्ड के

इति प्रतिसमादिश्य राक्षसेन्द्रः पुनः पुनः ।
काममन्युपरीतात्मा जानकीं प्रति गर्जत ३९
उपगम्य ततः क्षिप्रं राक्षसी धान्यमालिनी ।
परिष्वज्य दशग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् ४०
मया क्रीड महाराज सीतया किं तवानया ।
विवर्णया कृपणया मानुष्या राक्षसेश्वर ४१
नूनमस्यां महाराज न देवा भोगसत्तमान् ।
विदधत्यमरश्रेष्ठास्तव बाहुबलार्जितान् । ४२
अकामां कामयानस्य शरीरमुपतप्यते ।
इच्छतीं कामयानस्य प्रीतिर्भवति शोभना ४३
एवमुक्तस्तु राक्षस्या समुत्क्षिप्तस्ततो बली ।
प्रहसन्मेघसंकाशो राक्षसः स न्यवर्तत ४४
प्रस्थितः स दशग्रीवः कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
ज्वलद्भास्करसंकाशं प्रविवेश निवेशनम् ४५
देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च तास्ततः ।
परिवार्य दशग्रीवं विविशुस्ता गृहोत्तमम् ४६

उद्यमन से वैदेही को वशीभूत करो । यह आज्ञा दे राक्षसेंद्र रावण काम और क्रोधके वश हो, जानकीपर वार वार गर्जने लगा । ततः धान्यमालिनी नाम राक्षसी जाकर रावण से आलिङ्गन कर कहने लगी । (३७-४०)

महाराज ! मेरे साथ क्रीडा करो, इस विवर्णा, कृपणा, मानुषी सीता से क्या प्रयोजन ? हे महाराज ! निश्चय ही आपके बाहुबल से सञ्चित किए दिव्य भोग इस के भाग्य में नहीं बदे । कामरहित स्त्री के भोगने से शरीर सन्तप्त होता है और इच्छावाली की कामना करनेवाले को सुन्दर प्रीति होती है । राक्षसी से ऐसा कहे जानेपर रावण हंसता हुआ निवृत्त हो गया । चलकर वह दशग्रीव पृथ्वी को कँपाता हुआ जलते सूर्यके वर्ण-वाले गृह में प्रविष्ट हुआ । गन्धर्वकन्याएँ और नागकन्याएँ दशग्रीव को

स मैथिलीं धर्मपरामवस्थितां प्रवेपमानां परिभर्त्स्य रावणः।
विहाय सीतां मदनेन मोहितः स्वमेव वेश्म प्रविवेश रावणः ४७

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥२२॥

त्रयोविंशः सर्गः । [१०५०]

इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः ।
संदिश्य च ततः सर्वा राक्षसीर्निर्जगाम ह १
निष्क्रान्ते राक्षसेन्द्रे तु पुनरन्तःपुरं गते ।
राक्षस्यो भीमरूपास्ताः सीतां समभिदुद्रुवुः २
ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः ।
परं परुषया वाचा वैदेहीमिदमब्रुवन् ३
पौलस्त्यस्य वरिष्ठस्य रावणस्य महात्मनः ।
दशग्रीवस्य भार्यात्वं सीते न बहु मन्यसे ४
ततस्त्वेकजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
आमन्त्र्य क्रोधताम्राक्षी सीतां करतलोदरीम् ५
प्रजापतीनां षण्णां तु चतुर्थोऽयं प्रजापतिः ।
मानसो ब्रह्मणः पुत्रः पुलस्त्य इति विश्रुतः ६

घेर कर उस गृहोत्तम में प्रविष्ट हुईं। वह रावण धर्मपरा, कम्पायमान सीताको धमकाकर फिर उसे छोड मदोन्मत्त अपने गृह को ही चला गया। (४१-४६)

यहाँ बाईसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

राजा रावण मैथिली से यह कह ततः सब राक्षसियों को आज्ञा दे चला गया। रावण के निकल जाने और रनवास में चले जाने पर भीमरूपा राक्षसी सीता की ओर दौडीं। सीताके समीप आ क्रोधसे मूर्च्छित राक्षसी कठोर वाणी से सीता से कहने लगीं। पुलस्त्यवंशीय श्रेष्ठ रावण के भार्यात्व को तू कुछ नहीं समझती। तदनन्तर एकजटा नाम की राक्षसी क्रोधसे लाल नेत्र करके सीता से कहने लगी। (१-५)

छओं प्रजापतियों में चतुर्थ प्रजापति ब्रह्मा के मानसपुत्र पुलस्त्य नाम

पुलस्त्यस्य तु तेजस्वी महर्षिर्मानसः सुतः ।
नाम्ना स विश्रवा नाम प्रजापतिसमप्रभः ७
तस्य पुत्रो विशालाक्षि रावणः शत्रुरावणः ।
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि ।
मयोक्तं चारुसर्वाङ्गि वाक्यं किं नानुमन्यसे ८
ततो हरिजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
विवृत्य नयने कोपान्मार्जारसदृशेक्षणा ९
येन देवाश्चयस्त्रिंशद्देवराजश्च निर्जितः ।
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि १०
वीर्योत्सिक्तस्य शूरस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः ।
बलिनो वीर्ययुक्तस्य भार्यात्वं किं न लिप्ससे ११
प्रियां बहुमतां भार्यां त्यक्त्वा राजा महाबलः
सर्वासां च महाभागां त्वामुपैष्यति रावणः १२
समृद्धं स्त्रीसहस्रेण नानारत्नोपशोभितम् ।
अन्तःपुरं तदुत्सृज्य त्वामुपैष्यति रावणः १३
अन्या तु विकटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् १४

से विख्यात हैं । पुलस्त्य का तेजस्वी मानसपुत्र विश्रवा नाम से प्रजापति के समान प्रभावाला था । हे विशालाक्षि ! उसका पुत्र अरिन्दम रावण है, उसकी तू भार्या होने के योग्य है, मेरे कहे वाक्य को क्या तू नहीं मानेगी ? (६-८)

बिडालाक्षी हरिजटा राक्षसी आंखें टेढी करके बोली । जिसने तैंतीस देवता और इन्द्र को जीत लिया, उस रावणकी तू भार्या होनेयोग्य है । वीर्योन्मत्त, शूर, संग्राम में न लौटनेवाले, बली रावण की भार्या होना क्यों नहीं चाहती ? सब से प्रिय और मनचढी भार्या मन्दोदरी को छोड रावण तेरी इच्छा करता है । सहस्रों नारियों से समृद्ध और नाना रत्नों से शोभित रनवास को छोड रावण तेरा इच्छुक है । (९-१३)

असकृद्भीमवीर्येण नागा गन्धर्वदानवाः।
निर्जिताः समरे येन स ते पार्श्वमुपागतः १५
तस्य सर्वसमृद्धस्य रावणस्य महात्मनः।
किमर्थं राक्षसेन्द्रस्य भार्यात्वं नेच्छसेऽधमे।
ततस्तां दुर्मुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् १६
यस्य सूर्यो न तपति भीतो यस्य स मारुतः १७
न वाति स्मायतापाङ्गि किं त्वं तस्य न तिष्ठसे १८
पुष्पवृष्टिं च तरवो मुमुचुर्यस्य वै भयात्।
शैलाः सुस्रुवुः पानीयं जलदाश्च यदेच्छति १९
तस्य नैर्ऋतराजस्य राजराजस्य भामिनि।
किं त्वं न कुरुषे बुद्धिं भार्यार्थे रावणस्य हि २०
साधु ते तत्त्वतो देवि कथितं साधु भामिनि।
गृहाण सुस्मिते वाक्यमन्यथा न भविष्यसि २१

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥२३॥

चतुर्विंशः सर्गः। [१०७१]

ततः सीतां समस्तास्ता राक्षस्यो विकृताननाः।

विकटा नाम दूसरी राक्षसी कहने लगी। युद्ध में बार बार जिसने नाग, गन्धर्व, दानव और देवताओंको हराया, वह रावण तेरे समीप आया था। हे अधमे! क्या तू उस सब प्रकार से समृद्ध राक्षसराज की भार्या होना नहीं चाहती? तदनु दुर्मुखी नाम राक्षसी बोली, जिससे भयभीत सूर्य तपता नहीं, वायु बहता नहीं, उसके समीप तू क्यों नहीं रहती? जिस की इच्छा होते ही वृक्ष फूल बर्साने लगते, पर्वत और मेघ जल छोडने लगते हैं, उस राजराजेश्वर रावण की भार्या होने की बुद्धि तू क्यों नहीं करती? हे मन्दमुस्कानयुक्त देवी! तुम्हारे हितकी बात कह दी, इसे मानो अन्यथा तू जी नहीं सकती। (१४-२१)

यहाँ तेईसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

परुषं परुषानर्हामूचुस्तद्वाक्यमप्रियम् १
किं त्वमन्तःपुरे सीते सर्वभूतमनोरमे।
महार्हशयनोपेते न वासमनुमन्यसे २
मानुषे मानुषस्यैव भार्यात्वं बहु मन्यसे।
प्रत्याहर मनो रामान्नैवं जातु भविष्यति ३
त्रैलोक्यवसुभोक्तारं रावणं राक्षसेश्वरम्।
भर्तारमुपसंगम्य विहरस्व यथासुखम् ४
मानुषी मानुषं तं तु राममिच्छसि शोभने।
राज्याद्भ्रष्टमसिद्धार्थं विक्लवं तमनिन्दिते ५
राक्षसीनां वचः श्रुत्वा सीता पद्मनिभेक्षणा।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ६
यदिदं लोकविद्विष्टमुदाहरत संगताः।
नैतन्मनसि वाक्यं मे किल्बिषं प्रतितिष्ठति ७
न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ८
दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः।
तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्यं सुवर्चला ९

ततः विकृत मुंहवाली राक्षसियां सीताके पास कठोर, अप्रिय वचन कहने लगीं कि सर्वभूतमनोहर बडे कीमती आसनों से युक्त रनवास में तू वास क्यों स्वीकार नहीं करती ? तू मानुषी मनुष्य के भार्यात्व को बहुत मानती है। राम से मन हटा, अन्यथा तेरा जीवन न रहेगा। त्रिलोकी के सुख भोगनेवाले पति को पाकर यथासुख विहार कर। हे अनिन्दित देवी ! तू मानुष, राजभ्रष्ट, असफल, नपुंसक राम की इच्छा करती है। (१-५)

राक्षसियों की बात सुन कमलनेत्रा सीता आंसू भर कर बोली, यह जो तुम मिलकर वाक्य कहती हो, यह लोकविरुद्ध और पापमय होने से मेरे मनको नहीं भाता। मानुषी राक्षस की भार्या नहीं हो सकती; चाहे तुम सब मुझे खा जाओ, पर मैं तुम्हारी बात न मानूंगी। दीन हो वा राज्य-

यथा शची महाभागा शक्रं समुपतिष्ठति ।
अरुन्धती वसिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा १०
लोपामुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा ।
सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा ११
सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा ।
नैषधं दमयन्तीव भैमी पतिमनुव्रता १२
तथाहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता ।
तथाहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता १३
सीताया वचनं श्रुत्वा राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः ।
भर्त्सयन्ति स्म परुषैर्वाक्यै रावणचोदिताः १४
अवलीनः स निर्वाक्यो हनुमाञ्शिंशपाद्रुमे ।
सीतां संतर्जयन्तीस्ता राक्षसीरशृणोत्कपिः १५
तामभिक्रम्य संरब्धा वेपमानां समन्ततः ।
भृशं संलिलिहुर्दीप्तान्प्रलम्बान्दशनच्छदान् १६
ऊचुश्च परमक्रुद्धाः प्रगृह्याशु परश्वधान् ।
नेयमर्हति भर्तारं रावणं राक्षसाधिपम् १७

हीन हो, जो मेरा पति है, वही मेरा गुरु और उसी की जैसे सूर्यकी सुवर्चला वैसे मैं अनुरक्त हूं। जैसे इन्द्राणी इन्द्र की, अरुन्धती वशिष्ठ की, रोहिणी चन्द्रकी, लोपामुद्रा अगस्त्य की, सुकन्या च्यवन की, सावित्री सत्यवान् की, श्रीमती कपिल की, मदयन्ती सौदास की, केशिनी सगर की, दमयन्ती नल की, वैसे ही मैं रामकी अनुचारिणी हूं। (६-१३)

सीता का वचन सुन रावणद्वारा प्रेरित राक्षसियां कठोर वाक्यों से उसे धमकाने लगीं। शिंशुपा वृक्ष में छिपे निस्तब्ध हनुमान् ने राक्षसियों को सीता को धमकाते सुना। वे सब क्रोध से भरी कांपती सीता के चारों ओर इकट्ठी हो लम्बे लम्बे अधर जीभ से चाटने लगीं और फरसाओं को ग्रहण कर कहने लगीं- यह सीता रावणके योग्य नहीं है। उन डरावनी राक्षसियों से धमकाई हुई सीता आंसू बहाती उस शिंशुपा वृक्ष के पास

सा भर्त्स्यमाना भीमाभी राक्षसीभिर्वराङ्गना ।
सा बाष्पमपमार्जन्ती शिंशपान्तामुपागमत् १८
ततस्तां शिंशपां सीता राक्षसीभिः समावृता ।
अभिगम्य विशालाक्षी तस्थौ शोकपरिप्लुता १९
तां कृशां दीनवदनां मलिनाम्बरवासिनीम् ।
भर्त्सयाञ्चक्रिरे भीमा राक्षस्यस्ताः समन्ततः २०
ततस्तु विनता नाम राक्षसी भीमदर्शना ।
अब्रवीत्कुपिताकारा कराला निर्णतोदरी २१
सीते पर्याप्तमेतावद्भर्तुः स्नेहः प्रदर्शितः ।
सर्वत्रातिकृतं भद्रे व्यसनायोपकल्पते २२
परितुष्टास्मि भद्रं ते मानुषस्ते कृतो विधिः ।
ममापि तु वचः पथ्यं ब्रुवन्त्याः कुरु मैथिली २३
रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् ।
विक्रान्तमापतन्तं च सुरेशमिव वासवम् २४
दक्षिणं त्यागशीलं च सर्वस्य प्रियवादिनम् ।
मानुषं कृपणं रामं त्यक्त्वा रावणमाश्रय २५
दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता ।
अद्यप्रभृति लोकानां सर्वेषामीश्वरी भव २६

गई । राक्षसियों से घिरी सीता शिंशुप वृक्ष के पास जा शोकातुर हो बैठ गई । राक्षसियों ने उस कृशा, दीनवदना, मैले वस्त्र पहिने सीता को चारों ओर से धमकाना शुरू किया । (१४-२०)

ततः उन्नत उदरवाली कराला विनता नाम राक्षसी बोली- हे सीते ! पतिस्नेह तैंने काफी दर्शा दिया, सर्वत्र अति दुःख का कारण होती है । हे मैथिली ! तैंने मनुष्योचित पातिव्रत्य दिखलाया, इस से मैं सन्तुष्ट हूं । मेरे कहे हितकर वचन को भी अब कर । राक्षसराज, पराक्रमी, इन्द्रतुल्य रूपवान्, त्यागशील, प्रियदर्शन रावण की तू सेवा कर । मनुष्य कृपण राम को त्याग रावण का आश्रय ले और दिव्याङ्गराग तथा दिव्य भूषणोंसे

अग्नेः स्वाहा यथा देवी शची वेन्द्रस्य शोभने।
किं ते रामेण वैदेहि कृपणेन गतायुषा २७
एतदुक्तं च मे वाक्यं यदि त्वं न करिष्यसि।
अस्मिन्मुहूर्ते सर्वास्त्वां भक्षयिष्यामहे वयम् २८
अन्या तु विकटा नाम लम्बमानपयोधरा।
अब्रवीत्कुपिता सीतां मुष्टिमुद्यम्य तर्जती २९
बहून्यप्रतिरूपाणि वचनानि सुदुर्मते
अनुक्रोशान्मृदुत्वाच्च सोढानि तव मैथिलि ३०
न च नः कुरुषे वाक्यं हितं कालपुरस्कृतम्।
आनीतासि समुद्रस्य पारमन्यैर्दुरासदम्।
रावणान्तःपुरे घोरे प्रविष्टा चासि मैथिलि ३१
रावणस्य गृहे रुद्धा अस्माभिस्त्वभिरक्षिता।
न त्वां शक्तः परित्रातुमपि साक्षात्पुरन्दरः ३२
कुरुष्व हितवादिन्या वचनं मम मैथिलि।
अलमश्रुनिपातेन त्यज शोकमनर्थकम्। ३३
भज प्रीतिं प्रहर्षं च त्यजन्ती नित्यदैन्यताम्।
सीते राक्षसराजेन परिक्रीड यथासुखम् ३४

भूषिता हो आज से ही सब लोकों की स्वामिनी बन, जसे अग्निकी स्वाहा वा इन्द्र की शची हैं! उस कृपण बूढे राम के साथ क्या करेगी? यदि तू मेरी बात न माने, तो हम सब अभी तुझे खा डालेंगी। (२१-२८)

लम्बे स्तनोंवाली विकटा नाम राक्षसी मुट्ठी उठा गर्जती हुई बोली, हे मूर्खे! तेरे बहुत से अप्रिय वचन, दया और मृदुता के वश रावणने सहे; तू हमारा हितकर और कालानुरूप वचन नहीं करती। हे सीते! तू दूसरों से दुरासद समुद्र के पार लाई जाकर घोर रावणान्तःपुर में प्रविष्ट की गई है। रावणगृह में कैद और हम से रक्षित तुझे साक्षात् इन्द्र भी नहीं छुडा सकता। हितभाषिणी मेरे वचन को कर और आंसू बन्द कर के निरर्थक शोक को त्याग। प्रीति और आनन्द को भज, दीनता को छोड, हे सीते!

जानीमहे यथा भीरु स्त्रीणां यौवनमध्रुवम् ।
यावन्न ते व्यतिक्रामेत्तावद् दुःखमवाप्नुहि ३५
उद्यानानि च रम्याणि पर्वतोपवनानि च ।
सह राक्षसराजेन चर त्वं मदिरेक्षणे ३६
स्त्रीसहस्राणि ते देवि वशे स्थास्यन्ति सुन्दरि ।
रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् ३७
उत्पाट्य वा ते हृदयं भक्षयिष्यामि मैथिलि ।
यदि मे व्याहृतं वाक्यं न यथावत्करिष्यसि ३८
ततश्चण्डोदरी नाम राक्षसी क्रूरदर्शना ।
भ्रामयन्ती महच्छूलमिदं वचनमब्रवीत् ३९
इमां हरिणशावाक्षीं त्रासोत्कम्पपयोधराम् ।
रावणेन हृतां दृष्ट्वा दौर्हृदो मे महानयम् ४०
यकृत्प्लीहं महत्क्रोडं हृदयं च सबन्धनम् ।
गात्राण्यपि तथा शीर्षं खादेयमिति मे मतिः ४१
ततस्तु प्रघसा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
कण्ठमस्या नृशंसायाः पीडयामः किमास्यते ४२

रावण के साथ यथासुख क्रीडा कर । (२९-३४)

तू जानती है कि स्त्रियों का यौवन सदा रहनेवाला नहीं, जब तक यह रहे तब तक तो सुख भोग । हे सुन्दर नेत्रवाली ! रावण के साथ रम्य उद्यान और पर्वत उपवनों की सैर कर । हे सुन्दरी ! सहस्रों स्त्रियां तेरे वश में रहेंगीं, राक्षसराज रावण को भज । यदि तू मेरे कहे वचन को यथावत् न करेगी, तो तेरे हृदयको फाड खा डालूंगी । (३५-३८)

ततः चण्डोदरी नाम राक्षसी बडे शूल को घूमाती बोली कि इस मृगशावकनयनी त्रास से कम्पित स्तनवाली-रावण द्वारा हरी सीता को देख मेरे मन में बुरा भाव उत्पन्न हुआ है कि इस के जिगर, तिल्ली, हृदय, आंतें और शिर को मैं खा जाऊं, यह मेरी मति है । तदनु प्रघसा राक्षसी बोली कि हम इस नीच का गला दबा लें और तुम जाकर राजा से कहो

निवेद्यतां ततो राज्ञे मानुषी सा मृतेति च।
नात्र कश्चिच्च संदेहः खादतेति स वक्ष्यति। ४३
ततस्त्वजामुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।
विशस्येमां ततः सर्वान्समान्कुरुत पिण्डकान् ४४
विभजाम ततः सर्वा विवादो मे न रोचते।
पेयमानीयतां क्षिप्रं माल्यं च विविधं बहु ४५
ततः शूर्पणखा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।
अजामुख्या यदुक्तं वै तदेव मम रोचते ४६
सुरा चानीयतां क्षिप्रं सर्वशोकविनाशिनी।
मानुषं मांसमासाद्य नृत्यामोऽथ निकुम्भिलाम् ४७
एवं निर्भर्त्स्यमाना सा सीता सुरसुतोपमा।
राक्षसीभिर्विरूपाभिर्धैर्यमुत्सृज्य रोदिति ४८

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥२४॥

पञ्चविंशः सर्गः। [१११९]

अथ तासां वदन्तीनां परुषं दारुणं बहु।
राक्षसीनामसौम्यानां रुरोद जनकात्मजा १

कि सीता मर गई। तब वह यही कह देंगे कि उसे खा लो– इसमें संशय नहीं। (३९–४३)

ततः अजामुखी राक्षसी बोली, इसको कतर कर तुम बराबर के टुकडे कर लो। झगडा तो मुझे पसन्द नहीं फिर हम बराबर बराबर आपस में बांट लेंगे, अतः जल्दी शराब और बहुत से हार लाओ। फिर शूर्पणखा कहने लगी कि अजामुखी ने जो कुछ कहा है वही मुझे पसन्द है। सर्वशोकनाशक सुरा जल्दी लाओ, मनुष्य का मांस खाकर हम तदनु निकुंभिला देवी के मंदिर में नाच करेंगे। इस प्रकार धमकाई जाकर वह सुरसुता की तुल्य सीता धैर्य छोड रोने लगी। (४४–४८)

यहाँ चौविसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

तदनन्तर उन असौम्य राक्षसियों के बहुत से कठोर वचन कहने पर

एवमुक्ता तु वैदेही राक्षसीभिर्मनस्विनी ।
उवाच परमत्रस्ता बाष्पगद्गदया गिरा २
न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति ।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ३
सा राक्षसीमध्यगता सीता सुरसुतोपमा ।
न शर्म लेभे शोकार्ता रावणेनेव भर्त्सिता ४
वेपते स्माधिकं सीता विशन्तीवाङ्गमात्मनः ।
वने यूथपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिवार्दिता ५
सा त्वशोकस्य विपुलां शाखामालम्ब्य पुष्पिताम् ।
चिन्तयामास शोकेन भर्तारं भग्नमानसा ६
सा स्रापयन्ती विपुलौ स्तनौ नेत्रजलस्रवैः ।
चिन्तयन्ती न शोकस्य तदान्तमधिगच्छति ७
सा वेपमाना पतिता प्रवाते कदली यथा ।
राक्षसीनां भयत्रस्ता विवर्णवदनाभवत् ८
तस्याः सा दीर्घबहुला वेपन्त्याः सीतया तदा ।
ददृशे कम्पिता वेणी व्यालीव परिसर्पती ९

जानकी रोने लगी । राक्षसियों से एवं कहे जाने पर अत्यंत भयभीत वैदेही आंसुओं से रुकी वाणी से बोली- मानुषी राक्षस की स्त्री कभी नहीं हो सकती, मैं तुम्हारा वचन न करूंगी, चाहे खा डालो। देवकन्यातुल्य सीता राक्षसियों के बीच रावण से धमकाई दुःखी हो सुख न पा सकी। सीता अङ्ग सिकोडे हुए कांपती थी, जैसे वन में बिछुडी हुई मृगी भेडियों से दुःखी होती है । (१-५)

वह शोक से उदास हो, अशोक की एक बडी पुष्पित शाखा को पकड पति-ध्यान करने लगी । वह नेत्रजलके बहने से दोनों स्तनों को भिगोती हुई सोचती हुई शोक का अन्त न पा सकी । वह आंधी में गिरे केले के समान कांपती राक्षसियों के भय से त्रस्त विषण्णवदना हो गई । कांपती हुई सीता की दीर्घ और हिलती हुई वेणी रेंगती सर्पिणी के समान दीखती

सा निःश्वसन्ती शोकार्ता कोपोपहतचेतना ।
आर्ता व्यसृजदश्रूणि मैथिली विललाप च १०
हा रामेति च दुःखार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च ।
हा श्वश्रूर्मम कौसल्ये हा सुमित्रेति भामिनी ११
लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः ।
अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा १२
यत्राहमाभिः क्रूराभी राक्षसीभिरिहार्दिता ।
जीवामि हीना रामेण मुहूर्तमपि दुःखिता १३
एषाल्पपुण्या कृपणा विनशिष्याम्यनाथवत् ।
समुद्रमध्ये नौः पूर्णा वायुवेगैरिवाहता १४
भर्तारं तमपश्यन्ती राक्षसीवशमागता ।
सीदामि खलु शोकेन कूलं तोयहतं यथा १५
तं पद्मदलपत्राक्षं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
धन्याः पश्यन्ति मे नाथं कृतज्ञं प्रियवादिनम् १६
सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितात्मना ।
तीक्ष्णं विषमिवास्वाद्य दुर्लभं मम जीवनम् १७

थी । वह दुःखी और शोक से चेतनारहित हो विलाप करने लगी । (६-१०)

वह कहने लगी कि हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा मेरी सास कौसल्या और हा सुमित्रा ! पण्डितों से कही यह कहावत सत्य ही है कि स्त्री वा पुरुष की अकाल में मृत्यु दुर्लभ है । क्योंकि मैं इस प्रकार क्रूर राक्षसियों से सताई और राम से हीन मुहूर्त भर भी जीती हूं । मैं अल्पपुण्यवाली कृपण वायुवेग से आहत समुद्र बीच लदी नौका के तुल्य अनाथवत् नष्ट हो जाऊंगी । पति को न देखती और राक्षसियों के वश में प्राप्त जल से आहत तट के समान शोक से दुःख पा रही हूं । (११-१५)

उस कृतज्ञ प्रियवादी कमलदल के तुल्य नेत्रवाले सिंहगतिवाले मेरे नाथ को जो देखते हैं, वे धन्य हैं । उस विदितात्मा राम से हीन मेरा

कीदृशं तु महापापं मया देहान्तरे कृतम्।
येनेदं प्राप्यते घोरं महादुःखं सुदारुणम् १८
जीवितं त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महता वृता।
राक्षसीभिश्च रक्षन्त्या रामो नासाद्यते मया १९
धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम्।
न शक्यं यत्परित्यक्तुमात्मच्छन्देन जीवितम् २०

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः॥२५॥

षड्विंशः सर्गः। [११३९]

प्रसक्ताश्रुमुखी त्वेवं ब्रुवती जनकात्मजा।
अधोगतमुखी बाला विलप्तुमुपचक्रमे १
उन्मत्तेव प्रमत्तेव भ्रान्तचित्तेव शोचती।
उपावृत्ता किशोरीव विचेष्टन्ती महीतले २
राघवस्य प्रमत्तस्य रक्षसा कामरूपिणा।
रावणेन प्रमथ्याहमानीता क्रोशती बलात् ३
राक्षसीवशमापन्ना भर्त्स्यमाना च दारुणम्।
चिन्तयन्ती सुदुःखार्ता नाहं जीवितुमुत्सहे ४

जीवन तीक्ष्ण विष चखने के समान दुर्लभ है। मैंने पूर्वजन्म में कैसा पाप किया था, जिस से यह घोर दुःख मुझे मिला। राक्षसियों से रक्षित मैं राम तक नहीं पहुंच सकती, अतः बडे शोक से घिरी प्राण गँवाना चाहती हूं। इस मनुष्यपन और पराधीनता को धिक्कार है कि जिस से इच्छा-पूर्वक जीवन भी त्याग नहीं सकती। (१६-२०)

यहां पचीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

सीता नीचा मुख किए व आंसू बहाती विलाप करती थी। उन्मत्त, प्रमत्त वा भ्रांतचित्त के तुल्य सीता शोक करती थी, जैसे बछेडी श्रम दूर करने को पृथ्वी पर लोटती हो। श्रीराम को धोखा दे कामरूपी रावण बल-पूर्वक रोती मुझे ले आया। राक्षसियों के वशमें प्राप्त और बुरी तरह धमकाई

न हि मे जीवितेनार्थो नैवार्थैर्न च भूषणैः।
वसन्त्या राक्षसीमध्ये विना रामं महारथम् ५
अश्मसारमिदं नूनमथवाप्यजरामरम्।
हृदयं मम येनेदं न दुःखेन विशीर्यते ६
धिङ्मामनार्यामसतीं याहं तेन विनाकृता।
मुहूर्तमपि जीवामि जीवितं पापजीविका ७
चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं निशाचरम् ८
प्रत्याख्यानं न जानाति नात्मानं नात्मनः कुलम्।
यो नृशंसस्वभावेन मां प्रार्थयितुमिच्छति ९
छिन्ना भिन्ना प्रभिन्ना वा दीप्तेवाग्नौ प्रदीपिता।
रावणं नोपतिष्ठेयं किं प्रलापेन वश्चिरम् १०
ख्यातः प्राज्ञः कृतज्ञश्च सानुक्रोशश्च राघवः।
सद्वृत्तो निरनुक्रोशः शङ्के मद्भाग्यसंक्षयात् ११
राक्षसानां जनस्थाने सहस्राणि चतुर्दश।
एकेनैव निरस्तानि स मां किं नाभिपद्यते १२

मैं दुःखित हो जीना नहीं चाहती। राक्षसियों के बीच वसती हुई मुझे राम के विना जीवन, अर्थ वा भूषणों से कुछ प्रयोजन नहीं। (१-५)

मेरा हृदय निश्चय ही पत्थर के सार का बना वा अजरामर है, जो दुःख से फट नहीं जाता। मुझ अनार्य असती को धिक्कार है, जो राम के विना मैं पापजीविका मुहूर्त भर भी जीती हूं। रावण की कामना करनी तो एक ओर, मैं तो उसे बायें पैर से भी न छूऊं। जो नीचस्वभाव से मेरी इच्छा करता है, वह रावण मेरे स्पष्ट कथन, अपने आप और स्वकुल को भी नहीं जानता। छिन्नभिन्न वा विभक्त वा अग्नि में जली होकर भी रावण के समीप न बैठूंगी। तुम्हारे प्रलाप से क्या लाभ! (६-१०)

राघव ख्यात, प्राज्ञ, कृतज्ञ, दयालु और सद्वृत्त हैं, मेरे भाग्य के विपर्यय से आज वह मुझे निर्दयी प्रतीत होते हैं। जिसने जनस्थान में अकेले

कामं मध्ये समुद्रस्य लङ्केयं दुष्प्रधर्षणा ।
न तु राघवबाणानां गतिरोधो भविष्यति १३
किं नु तत्कारणं येन रामो दृढपराक्रमः ।
रक्षसापहृतां भार्यामिष्टां यो नाभिपद्यते १४
इहस्थां मां न जानीते शङ्के लक्ष्मणपूर्वजः ।
जानन्नपि स तेजस्वी धर्षणां मर्षयिष्यति १५
हृतेति मां योऽधिगत्य राघवाय निवेदयेत् ।
गृध्रराजोऽपि स रणे रावणेन निपातितः १६
कृतं कर्म महत्तेन मां तथाऽभ्यवपद्यता ।
तिष्ठता रावणवधे वृद्धेनापि जटायुषा १७
यदि मामिह जानीयाद्वर्तमानां हि राघवः ।
अद्य बाणैरभिक्रुद्धः कुर्याल्लोकमराक्षसम् १८
निर्दहेच्च पुरीं लङ्कां निर्दहेच्च महोदधिम् ।
रावणस्य च नीचस्य कीर्तिं नाम च नाशयेत् १९
ततो निहतनाथानां राक्षसीनां गृहे गृहे ।
यथाहमेवं रुदती तथा भूयो न संशयः २०

ही सहस्र राक्षसों को मार डाला, क्या वह मुझे प्राप्त न करेंगे ? मैं अल्पवीर्य रावण से कैद की गई हूं, मेरा पति युद्ध में रावण को मारने में समर्थ है। चाहे यह लंका दुर्गम हो, पर राम के बाणों की रोक यहां न होगी। वह कारण क्या है, जिस से पराक्रमी राम राक्षस से हरी प्यारी भार्या को प्राप्त नहीं होते ! यहां कैद की गई मुझे शायद राम नहीं जानते। जानकर वह तेजस्वी अपमान क्यों सहेंगे ! (११-१५)

उस जटायु को रावण ने मारही डाला, जो हरी गई है सीता, यह जान कर राम से कहता। उस जटायु ने बडा काम किया था कि वृद्ध होनेपर रावण का मुकाबिला किया। यदि राम यह जान लें कि, मैं यहां वर्तमान हूं, तो आज ही बाणों से संसार को राक्षसरहित कर दें, लंका को जला डालें, समुद्र को सुखा डालें, नीच रावण के यश और नामको मिटा दें।

अन्विष्य रक्षसां लङ्कां कुर्याद्रामः सलक्ष्मणः।
न हि ताभ्यां रिपुर्दृष्टो मुहूर्तमपि जीवति २१
जिता धूमाकुलपथा गृध्रमण्डलमण्डिता।
अचिरेणैव कालेन श्मशानसदृशी भवेत् २२
अचिरेणैव कालेन प्राप्स्याम्येनं मनोरथम्।
दुष्प्रस्थानोऽयमाभाति सर्वेषां वो विपर्ययः २३
यादृशानि तु दृश्यन्ते लङ्कायामशुभानि वै।
अचिरेणैव कालेन भविष्यति हतप्रभा २४
नूनं लङ्का हते पापे रावणे राक्षसाधिपे।
शोषमेष्यति दुर्धर्षा प्रमदा विधवा यथा २५
पुण्योत्सवसमृद्धा च नष्टभर्त्री सराक्षसा।
भविष्यति पुरी लङ्का नष्टभर्त्री यथाङ्गना २६
नूनं राक्षसकन्यानां रुदतीनां गृहे गृहे।
श्रोष्यामि न चिरादेव दुःखार्तानामिह ध्वनिम् २७
सान्धकारा हतद्योता हतराक्षसपुंगवा।

तब तो अनाथ राक्षसियों के गृहों में ऐसा ही रुदन होगा, जैसा कि मैं किया करती हूं। (१६-२०)

लक्ष्मणसहित राम लंका को ढूंढ कर ऐसा ही करेंगे, उनसे देखा गया शत्रु क्षणभर भी नहीं जो सकता। चिताके धुएं से जिसके मार्ग भर गए हैं और गृध्रसमूह से युक्त शीघ्र ही लंङ्का श्मशानतुल्य हो जायगी। शीघ्र ही स्वमनोरथ को पाऊंगी, तुम्हारा दुराचार विध्वंसका द्योतक है। जैसे अ-शकुन लंकामें दीख पडते हैं, इससे तो शीघ्र ही यह हतप्रभा हो जायगी। निश्चय ही दुर्धर्षा लङ्का पापी रावण के मारे जानेपर विधवातुल्य सूख जायगी। (२१-२५)

पुण्योत्सवों से युक्त राक्षसियोंसहित यह लङ्का विधवासमान हो जायगी। निश्चय ही मैं यहां दुःखार्ता रोती राक्षसकन्याओं का शीघ्र ही शब्द सुनूंगी। राम के बाणों से अन्धकारमय द्युतिरहित यह लङ्का निर्दग्ध

भविष्यति पुरी लङ्का निर्दग्धा रामसायकैः २८
यदि नाम स शूरो मां रामो रक्तान्तलोचनः।
जानीयाद्वर्तमानां यां राक्षसस्य निवेशने २९
अनेन तु नृशंसेन रावणेनाधमेन मे।
समयो यस्तु निर्दिष्टस्तस्य कालोऽयमागतः ३०
स च मे विहितो मृत्युरस्मिन्दुष्टे न वर्तते।
अकार्यं ये न जानन्ति नैर्ऋताः पापकारिणः ३१
अधर्मात्तु महोत्पातो भविष्यति हि सांप्रतम्।
नैते धर्मं विजानन्ति राक्षसाः पिशिताशनाः ३२
ध्रुवं मां प्रातराशार्थं राक्षसः कल्पयिष्यति।
साहं कथं करिष्यामि तं विना प्रियदर्शनम् ३३
रामं रक्तान्तनयनमपश्यन्ती सुदुःखिता।
क्षिप्रं वैवस्वतं देवं पश्येयं पतिना विना ३४
नाजानाज्जीवतीं रामः स मां भरतपूर्वजः।
जानन्तौ तु न कुर्यातां नोद्यौ हि परिमार्गणम् ३५

हो जायगी, यदि वीर राम यह जान लें कि मैं रावणगृह में वर्तमान हूं। इस अधम रावण ने जो दो मास की अवधि नियत करी है, इससे इसका काल ही आ गया। (२६-३०)

यह जो रावण ने मेरा समय नियत किया है, पापी राक्षस इसके विपरीत फल को नहीं जानते, अधर्म से बडा उत्पात होगा। ये मांसाहारी राक्षस धर्म को नहीं जानते, निश्चय ही रावण सुबह के भोजन के लिए मुझे मरवा डालेगा। मैं रक्तांतनयन प्रियदर्शन राम के दर्शन विना कैसे करूंगी? आरक्तनयन राम को न देखती हुई मैं शीघ्र ही पति के विना यमराज को देखूगी। भरत के बडे भाई राम मुझे जीता नहीं जानते, जानते होते तो वे दोनों सारी पृथ्वी में मेरी तलाश क्यों न करते? (३१-३५)

नूनं ममैव शोकेन स वीरो लक्ष्मणाग्रजः ।
देवलोकमितो यातस्त्यक्त्वा देहं महीतले ३६
धन्या देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
मम पश्यन्ति ये वीरं रामं राजीवलोचनम् ३७
अथवा न हि तस्यार्थो धर्मकामस्य धीमतः ।
मया रामस्य राजर्षेर्भार्यया परमात्मनः ३८
दृश्यमाने भवेत्प्रीतिः सौहृदं नास्त्यदृश्यतः ।
नाशयन्ति कृतघ्नास्तु न रामो नाशयिष्यति ३९
किं वा मय्यगुणाः केचित्किं वा भाग्यक्षयो हि मे ।
या हि सीता वरार्हेण हीना रामेण भामिनी ४०
श्रेयो मे जीवितान्मर्तुं विहीनाया महात्मना ।
रामादक्लिष्टचारित्राच्छूराच्छत्रुनिबर्हणात् ४१
अथवा न्यस्तशस्त्रौ तौ वने मूलफलाशनौ ।
भ्रातरौ हि नरश्रेष्ठौ चरन्तौ वनगोचरौ ४२
अथवा राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ।
छद्मना घातितौ शूरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ४३
साहमेवंविधे काले मर्तुमिच्छामि सर्वतः ।
न च मे विहितो मृत्युरस्मिन्दुःखेऽतिवर्तति ४४

निश्चय ही मेरे शोक से वीर राम शरीर छोड देवलोक को चले गए। वे देवगन्धर्वादि धन्य हैं, जो राजीवलोचन मेरे नाथ राम को देखते हैं। अथवा उस परमात्मा राजर्षि राम का मुझ भार्या से कुछ प्रयोजन ही नहीं रहा। देखने से प्रीति होती है, न देखने से नहीं; कृतघ्न प्रीति को त्याग देते हैं, पर राम ऐसा न करेंगे। क्या तो मुझ में अवगुण हैं वा मेरा भाग्य-विपर्यय है कि जिस से मैं रामसे हीन हो दुःख पा रही हूं। (३६-४०)

महात्मा शूर अरिन्दम रामसे विहीन मेरे जीनेसे मरना बेहतर है। अथवा वे दोनों शाकाहारी भाई शस्त्रहीन हो वन में घूमते होंगे। अथवा दुरात्मा राक्षसराज रावण ने धोखे से उन्हें मरवा डाला। इस समय तो मैं सर्वथा

धन्याः खलु महात्मानो मुनयः सत्यसंमताः ।
जितात्मानो महाभागा येषां न स्तः प्रियाप्रिये ४५
प्रियान्न संभवेद् दुःखमप्रियादधिकं भवेत् ।
ताभ्यां हि ते वियुज्यन्ते नमस्तेषां महात्मनाम् ४६
साहं त्यक्ता प्रियेणैव रामेण विदितात्मना ।
प्राणांस्त्यक्ष्यामि पापस्य रावणस्य गता वशम् ४७

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥२६॥

सप्तविंशः सर्गः । [११८६]

इत्युक्ताः सीतया घोरं राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः ।
काश्चिज्जग्मुस्तदाख्यातुं रावणस्य दुरात्मनः १
ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यो भीमदर्शनाः
पुनः परुषमेकार्थमनर्थार्थमथाब्रुवन् २
अद्येदानीं तवानार्ये सीते पापविनिश्चये ।
राक्षस्यो भक्षयिष्यन्ति मांसमेतद्यथासुखम् ३
सीतां ताभिरनार्याभिर्दृष्ट्वा संतर्जितां तदा ।
राक्षसी त्रिजटा वृद्धा प्रबुद्धा वाक्यमब्रवीत् ४

मरना चाहती हूं, पर इतना दुःख उपस्थित होने पर भी मौत नहीं आती। निश्चय ही सत्य ब्रह्मवाले मुनि धन्य हैं, जो आत्मा को जीत लेते हैं और जिनका कोई प्रिय वा अप्रिय नहीं होता। (४१-४५)

प्रिय के वियोग से दुःख नहीं पाते, अप्रिय के मेल से दुःख बढता नहीं, इन दोनों से रहित महात्माओं को नमस्कार है। सो मैं प्रिय राम से त्यागी व पापी रावण के वश में पडी प्राण त्यागूंगी। (४६-४७)

यहाँ छब्बीसवा सर्ग समाप्त हुआ।

सीता के ऐसा कहने पर क्रोध से मूर्च्छित घोर राक्षसियों में से कोई कोई रावण से हाल कहने गईं। तदनु घोरदर्शना राक्षसी सीता के पास आ पुनः कठोर व अनर्थ वचन कहने लगीं। हे पाप में बुद्धि रखनेवाली अनार्य सीते! आज राक्षसी तेरा मांस यथासुख खायेंगीं। अनार्य राक्ष-

आत्मानं खादतानार्या न सीतां भक्षयिष्यथ।
जनकस्य सुतामिष्टां स्नुषां दशरथस्य च ५
स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः।
राक्षसानामभावाय भर्तुरस्या भवाय च ६
एवमुक्तास्त्रिजटया राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः।
सर्वा एवाब्रुवन्भीतास्त्रिजटां तामिदं वचः।
कथयस्व त्वया दृष्टः स्वप्नोऽयं कीदृशो निशि ७
तासां श्रुत्वा तु वचनं राक्षसीनां मुखोद्गतम्।
उवाच वचनं काले त्रिजटा स्वप्नसंश्रितम् ८
गजदन्तमयीं दिव्यां शिबिकामन्तरिक्षगाम्।
युक्तां वाजिसहस्रेण स्वयमास्थाय राघवः ९
शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन समागतः।
स्वप्ने चाद्य मया दृष्टा सीता शुक्लाम्बरावृता १०
सागरेण परिक्षिप्तं श्वेतपर्वतमास्थिता।
रामेण संगता सीता भास्करेण प्रभा यथा। ११
राघवश्च पुनर्दृष्ट्वा तुर्दन्तं महागजम्।
आरूढः शैलसंकाशं चकास सहलक्ष्मणः १२

सियों द्वारा सीता को धमकाया हुआ देख, त्रिजटा राक्षसी बोली। अपने को खाओ, न कि जनकदुलारी दशरथ की पुत्रवधू सीता को। आज मैंने राक्षसों के नाश और इस के पति की वृद्धि का द्योतक एक दारुण स्वप्न देखा है। (१-६)

त्रिजटा के ऐसा कहने पर सारी राक्षसी डरकर बोलीं, कह तो सही रात तूने कैसा स्वप्न देखा है? राक्षसियों का वचन सुन त्रिजटा कहने लगी। हाथीदांत की बनी आकाश में स्थित दिव्य पालकी जिस में सहस्र घोडे जुते थे, उस पर लक्ष्मणसहित राम बैठकर आये हैं और स्वप्न में मैंने आज यह भी देखा है कि श्वेत वस्त्र धारण किए सागरावृत श्वेत पर्वत पर स्थित राम के साथ सीता ऐसे बैठी हैं, जैसे सूर्य के साथ प्रभा और मैंने

ततस्तु सूर्यसकाशौ दीप्यमानौ स्वतेजसा ।
शुक्लमाल्याम्बरधरौ जानकीं पर्युपस्थितौ १३
ततस्तस्य नगस्याग्रे ह्याकाशस्थस्य दन्तिनः ।
भर्त्रा परिगृहीतस्य जानकी स्कन्धमाश्रिता १४
भर्तुरङ्कात्समुत्पत्य ततः कमललोचना ।
चन्द्रसूर्यौ मया दृष्टौ पाणिभ्यां परिमार्जती १५
ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यामास्थितः स गजोत्तमः
सीतया च विशालाक्ष्या लङ्काया उपरि स्थितः १६
पाण्डुरर्षभयुक्तेन रथेनाष्टयुजा स्वयम् ।
शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन सहागतः १७
ततोऽन्यत्र मया दृष्टो रामः सत्यपराक्रमः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह वीर्यवान् १८
आरुह्य पुष्पकं दिव्यं विमानं सूर्यसंनिभम् ।
उत्तरां दिशमालोच्य प्रस्थितः पुरुषोत्तमः १९
रावणश्च मया दृष्टो मुण्डस्तैलसमुक्षितः ।

देखा कि राम लक्ष्मणसमेत चार दांतवाले पर्वताकार हाथी पर घूम रहे हैं । (७-१२)

तदनन्तर वे दोनों नरश्रेष्ठ श्वेतवस्त्रधारी जानकी के पास आये । ततः उस आकाशस्थ हाथी के कन्धे पर सीता को रामने गोद में ले आरूढ करा दिया । फिर कमलनेत्रा सीता पति की गोद से अलग हो हाथ से सूर्यचन्द्र का परिमार्जन करने लगी, यह मैंने देखा । सीतासहित उन दोनों कुमारों से युक्त वह हस्तिश्रेष्ठ सब लंका के ऊपर स्थित हो गया । फिर आठ सफेद बैल जुते रथ पर सवार श्वेत वस्त्र व श्वेत ही माला धारण किये लक्ष्मण के साथ राम को मैंने दूसरे स्थान पर देखा । फिर सीतासहित राम यहां आये, फिर देखा कि लक्ष्मण व सीतासहित राम सूर्यवत् प्रकाशित पुष्पक विमान पर चढ उत्तर दिशा की ओर चले गये । (१३-१९)

रक्तवासाः पिबन्मत्तः करवीरकृतस्रजः २०
विमानात्पुष्पकादद्य रावणः पतितः क्षितौ।
कृष्यमाणः स्त्रिया मुण्डो दृष्टः कृष्णाम्बरः पुनः २१
रथेन खरयुक्तेन रक्तमाल्यानुलेपनः।
पिबंस्तैलं हसन्नृत्यन्भ्रान्तचित्ताकुलेन्द्रियः २२
गर्दभेन ययौ शीघ्रं दक्षिणां दिशमाश्रितः।
पुनरेव मया दृष्टो रावणो राक्षसेश्वरः २३
पतितो विशिरा भूमौ गर्दभाद्भयमोहितः।
सहसोत्थाय संभ्रान्तो भयार्तो मदविह्वलः २४
उन्मत्तरूपो दिग्वासा दुर्वाक्यं प्रलपन्बहु।
दुर्गन्धं दुःसहं घोरं तिमिरं नरकोपमम् २५
मलपङ्कं प्रविश्याशु मग्नस्तत्र स रावणः।
प्रस्थितो दक्षिणामाशां प्रविष्टो कर्दमं ह्रदम् २६
कण्ठे बद्ध्वा दशग्रीवं प्रमदा रक्तवासिनी।
काली कर्दमलिप्ताङ्गी दिशं याम्यां प्रकर्षती २७

मैंने यह भी देखा कि रावण मुण्डन कराये तैल लगाये रक्त वस्त्र धार शराब पिये, कनेल के पुष्पों की माला से युक्त, पुष्पकविमान से पृथ्वी में गिर पडा, फिर मैंने उसे काले वस्त्र पहिने स्त्री द्वारा खींचा जाता देखा। लाल माला व चन्दन लगाये गदहे पर सवार तैल पीता हँसता, नाचता, व्याकुलेन्द्रिय व भ्रांतचित्तवाला वह शीघ्र दक्षिण दिशा को चला गया। और देखा कि रावण भय से मोहित हो, नीचा शिर किये उस गदहे से भूमि पर गिर पडा। सहसा उठ सम्भ्रान्त भयार्त मदविह्वल नंगा रावण पागल की तरह बकने लगा। फिर दुर्गन्धित दुःसह नरकतुल्य मल के कीचड में घुस रावण उस में डूब गया, फिर वह दक्षिण दिशा को जा कीचड के कुण्ड में प्रविष्ट हुआ। (२०-२६)

वहां लाल वस्त्र धारे एक काली स्त्री रावण को कण्ठ में बांध रावण को

एवं तत्र मया दृष्टः कुम्भकर्णो महाबलः ।
रावणस्य सुताः सर्वे मुण्डास्तैलसमुक्षिताः २८
वराहेण दशग्रीवः शिशुमारेण चेन्द्रजित् ।
उष्ट्रेण कुम्भकर्णश्च प्रयातो दक्षिणां दिशम् २९
एकस्तत्र मया दृष्टः श्वेतच्छत्रो विभीषणः ।
चतुर्भिः सचिवैः सार्धं वैहायसमुपस्थितः ३०
समाजश्च महान्वृत्तो गीतवादित्रनिःस्वनः ।
पिबतां रक्तमाल्यानां रक्षसां रक्तवाससाम् ३१
लङ्का चेयं पुरी रम्या सवाजिरथकुञ्जरा ।
सागरे पतिता दृष्टा भग्नगोपुरतोरणा ३२
पीत्वा तैलं प्रमत्ताश्च प्रहसन्त्यो महास्वनाः ।
लङ्कायां भस्मरूक्षायां सर्वा राक्षसयोषितः ३३
कुम्भकर्णादयश्चेमे सर्वे राक्षसपुङ्गवाः ।
रक्तं निवसनं गृह्य प्रविष्टा गोमयह्रदम् ३४
अपगच्छत पश्यध्वं सीतामाप्नोति राघवः ।
घातयेत्परमामर्षी युष्मान्सार्धं हि राक्षसैः ३५

दक्षिण दिशा की ओर खींच रही है। ऐसे ही मैंने वहां कुम्भकर्ण और रावण के सब पुत्रों को देखा। रावण शूकर पर, इंद्रजित् शिंशुमार पर और कुम्भकर्ण ऊंट पर चढे दक्षिण दिशा को जा रहे थे। एक केवल बिभीषण को तो देखा कि श्वेत छत्रधारे चार मंत्रियोंसहित विमान पर बैठे हैं। शराब पिये, रक्त वस्त्र धारे राक्षसोंके समाज को मैंने गाते बजाते और शोर करते देखा। लंका को मैंने देखा कि हाथी घोडेसहित फाटक व चहार-दीवारीसमेत समुद्र में गिर गई। (२७-३२)

भस्म हुई लंका में राक्षसों की स्त्रियां तैल पी हंसती और शोर करती थीं। कुम्भकर्णादि राक्षस सरदार लाल वस्त्र धार गोबर के कुण्ड में घुस गये। इस से यहां से भागो, राम सीता को प्राप्त हुआ चाहते हैं, क्रोध में

प्रियां बहुमतां भार्यां वनवासमनुव्रताम्।
भर्त्सितां तर्जितां वापि नानुमंस्यति राघवः ३६
तदलं क्रूरवाक्यैश्च सान्त्वमेवाभिधीयताम्।
अभियाचाम वैदेहीमेतद्धि मम रोचते ३७
यस्या ह्येवंविधः स्वप्नो दुःखितायाः प्रदृश्यते।
सा दुःखैर्बहुभिर्मुक्ता प्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ३८
भर्त्सितामपि याचध्वं राक्षस्यः किं विवक्षया।
राघवाद्धि भयं घोरं राक्षसानामुपस्थितम् ३९
प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा।
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात् ४०
अपि चास्या विशालाक्ष्या न किंचिदुपलक्षये।
विरूपमपि चाङ्गेषु सुसूक्ष्ममपि लक्षणम् ४१
छायावैगुण्यमात्रं तु शङ्के दुःखमुपस्थितम्।
अदुःखार्हामिमां देवीं वैहायसमुपस्थिताम् ४२

भर राक्षसों के साथ हम सब को भी न मार डालें। क्योंकि वे प्रिया तथा वन में साथ आई सीता का डराया या धमकाया जाना न सह सकेंगे। अतः मुझे तो यह भाता है कि क्रूर वाक्यों को छोड़ो, सीता को सांत्वना दो, वैदेही की हम याचना करें। जिस दुःखिता के विषय में ऐसा स्वप्न दिखाई पड़ा, वह विविध दुःखों से छूट प्रिय पति को पायेगी। हे राक्षसियों! अब उस धमकाई हुई के हाथ जोड़ो, बहुत कहनेसे क्या? राम से राक्षसों को घोर भय उपस्थित हुआ है। विनयसे प्रसन्न हुई सीता राक्षसियों को बड़े भय से छुड़ाने में समर्थ होंगी। (३३-४०)

देखो, विशालाक्षी सीताके अंगों में कुछ विपरीत नहीं दिखाई देता, न कोई आपत्तिसूचक सूक्ष्म चिह्न ही दीख पड़ते हैं। दुःख के अयोग्य विमानस्थ इस देवी की छाया की विगुणता से ही यह दुःख प्राप्त हुआ है। मैं तो सीता की अर्थसिद्धि उपस्थित देखती हूं, अर्थात् रावण का नाश और राम का विजय। इस सीता का प्रिय सुनने को यह शुभसूचक, विस्तृत व

अर्थसिद्धिं तु वैदेह्याः पश्याम्यहमुपस्थिताम्।
राक्षसेन्द्रविनाशं च विजयं राघवस्य च ४३
निमित्तभूतमेतत्तु श्रोतुमस्या महत्प्रियम्।
दृश्यते च स्फुरच्चक्षुः पक्ष्मपत्रमिवायतम् ४४
ईषच्च हृषितो वास्या दक्षिणाया ह्यदक्षिणः।
अकस्मादेव वैदेह्या बाहुरेकः प्रकम्पते ४५
करेणुहस्तप्रतिमः सव्यश्चोरुरनुत्तमः।
वेपन्कथयतीवास्या राघवं पुरतः स्थितम् ४६
पक्षी च शाखानिलयं प्रविष्टः पुनः पुनश्चोत्तमसान्त्ववादी।
सुस्वागतां वाचमुदीरयाणः पुनः पुनश्चोदयतीव हृष्टः ४७
ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता।
अवोचद्यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः ४८

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तविंशः सर्गः॥ २७॥

अष्टाविंशः सर्गः। [१२३४]

सा राक्षसेन्द्रस्य वचो निशम्य तद्रावणस्याप्रियमप्रियार्ता।
सीता वितत्रास यथा वनान्ते सिंहाभिपन्ना गजराजकन्या १

देदीप्यमान नेत्र फरकते हुए दिखाई पडते हैं। देखो, तो इस परम चतुर सीता का वाम बाहु कैसे धीरेधीरे फरक रहा है और हस्तिशुण्डसम इन की जांघ भी फरफरा रही है, जो यह सूचित करती है कि मानो राम आगे खडे हैं। देखो, तो उत्तम समझानेवाला यह पक्षी बारबार कूद कूद बैठता है। मानो सीतासे कहता है कि, तुम आनन्द को प्राप्त होओ। ततः पति की विजय से हर्षित सीता बोली, यदि यह बात ठीक हुई, तो मैं तुम्हारी रक्षा करूंगी। (४१-४५)

यहाँ सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

राम के कारण दुःखी सीता रावण के अप्रिय वचन सुन वन में सिंह से

सा राक्षसीमध्यगता च भीरुर्वाग्भिर्भृशं रावणतर्जिता च।
कान्तारमध्ये विजने विसृष्टा बालेव कन्या विललाप सीता २
सत्यं बतेदं प्रवदन्ति लोके नाकालमृत्युर्भवतीति सन्तः।
यत्राहमेवं परिभर्त्स्यमाना जीवामि यस्मात्क्षणमप्यपुण्या ३
सुखाद्विहीनं बहुदुःखपूर्णमिदं तु नूनं हृदयं स्थिरं मे।
विशीर्यते यत्र सहस्रधाद्य वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य ४
नैवास्ति नूनं मम दोषमत्र वध्याहमस्याप्रियदर्शनस्य।
भावं न चास्याहमनुप्रदातुमलं द्विजो मन्त्रमिवाद्विजाय ५
तस्मिन्ननागच्छति लोकनाथे गर्भस्य जन्तोरिव शल्यकृन्तः।
नूनं ममाङ्गान्यचिरादनार्यः शरैः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्रः ६
दुःखं बतेदं ननु दुःखिताया मासौ चिरायाभिगमिष्यतो द्वौ।
बद्धस्य वध्यस्य यथा निशान्ते राजोपरोधादिव तस्करस्य ७
हा राम हा लक्ष्मण हा सुमित्रे हा राममातः सह मे जनन्यः।
एषा विपद्याम्यहमल्पभाग्या महार्णवे नौरिव मूढवाता ८

घिरी गजराज कन्यावत् डरी। राक्षसियों के बीच डरी सीता रावण से धमकाई जाकर निर्जन वन में छोडी बाला कन्यावत् विलाप करने लगी। पण्डित लोग यह ठीक ही कहते हैं कि लोक में अकाल मृत्यु नहीं होती जिससे मैं पापिनी इस प्रकार धमकाई जाकर भी जी रही हूं। और जो यह सुख से हीन बडे दुःख से भरा मेरा हृदय सहस्र टुकडे नहीं हो जाता जैसे वज्रसे हत पर्वतशृंग। निश्चय इस में मेरा कुछ दोष नहीं, यदि मैं रावण से वध्य हूं तो वह मारे, पर मैं उसका भार्यात्व नहीं ग्रहण कर सकती जैसे ब्राह्मण शूद्र को वेद नहीं सुना सकता। (१–५)

लोकनाथ राम के आने से पूर्व ही दिति के गर्भस्थ पवन को जैसे इन्द्र ऐसे ही रावण हमारे अङ्गोंको तीक्ष्ण शस्त्रसे काट डालेगा। दुःख की बात तो यह है कि मेरे वधार्थ दो मास की जो अवधि है वह ऐसी है जैसे कैद किए गए राजापराध से वध्य चोर के लिए नियमित रात्रि का बीतना। हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा सुमित्रे ! हा कौसल्ये ! हा मेरी जननि ! आंधी

तरस्विनौ धारयता मृगस्य सत्त्वेन रूपं मनुजेन्द्रपुत्रौ ।
नूनं विशस्तौ मम कारणात्तौ सिंहर्षभौ द्वाविव वैद्युतेन ९
नूनं स कालो मृगरूपधारी मामल्पभाग्यां लुलुभे तदानीम् ।
यत्रार्यपुत्रौ विससर्ज मूढा रामानुजं लक्ष्मणपूर्वजं च १०
हा राम सत्यव्रत दीर्घबाहो हा पूर्णचन्द्रप्रतिमानवक्त्र ।
हा जीवलोकस्य हितः प्रियश्च वध्यां न मां वेत्सि हि राक्षसानाम् ११
अनन्यदेवत्वमियं क्षमा च भूमौ च शय्या नियमश्च धर्मे ।
पातिव्रतात्वं विफलं ममेदं कृतं कृतघ्नेष्विव मानुषाणाम् १२
मोघं हि धर्मश्चरितो ममायं तथैकपत्नीत्वमिदं निरर्थकम् ।
या त्वां न पश्यामि कृशा विवर्णा हीना त्वया संगमने निराशा १३
पितुर्निदेशं नियमेन कृत्वा वनान्निवृत्तश्चरितव्रतश्च ।
स्त्रीभिस्तु मन्ये विपुलेक्षणाभिः संरंस्यसे वीतभयः कृतार्थः १४
अहं तु राम त्वयि जातकामा चिरं विनाशाय निबद्धभावा ।
मोघं चरित्वाऽथ तपो व्रतं च त्यक्ष्यामि धिग्जीवितमल्पभाग्या १५

से घिरी समुद्र में नौकावत् मैं अभागिनी दुःख पा रही हूं । निश्चय ही मृगरूप उस जन्तु ने सिंहसमान उन दोनों राजपुत्रों को मेरे कारण मार डाला । निश्चय ही मृगरूपधारी वह काल था, जिसने मुझ अभागिनी को ललचाया, जिससे मैंने राम और लक्ष्मण दोनों को भेज दिया। (६-१०)

हा सत्यव्रत दीर्घबाहो संसार के हितकारी और प्रिय राम ! राक्षसों से मैं मारी जानेवाली हूं, यह तुम नहीं जानते ! जैसे कृतघ्न मनुष्यों के साथ किया उपकार, वैसे ही मेरा केवल राममें ही अनुराग, क्षमाभाव, भूमि में सोना, धर्मपालन, पातिव्रत्य निष्फल हुआ । एकपत्नीव्रतधारी राम का पातिव्रत्यरूप जो धर्माचरण मैंने किया, वह भी निरर्थक ही हुआ। क्योंकि मैं कृशा, विवर्णा, तुम्हारे साथ जानेमें निराश हुई, अब तुम्हें नहीं देखती। अब तुम भी नियम से पिता की आज्ञा पूरी कर वन से लौट बडी बडी नेत्रवाली स्त्रियों के साथ भयरहित हो रमण करोगे । पर मैंने तो अपने नाश के लिए ही तुम में अपना मन लगाया; तप और व्रत का निरर्थक

सा जीवितं क्षिप्रमहं त्यजेयं विषेण शस्त्रेण शितेन वापि।
विषस्य दाता न तु मेऽस्ति कश्चिच्छस्त्रस्य वा वेश्मनि राक्षसस्य १६
शोकाभितप्ता बहुधा विचिन्त्य सीताथ वेणीग्रथनं गृहीत्वा।
उद्बध्य वेण्युद्ग्रथनेन शीघ्रमहं गमिष्यामि यमस्य मूलम् १७
उपस्थिता सा मृदुसर्वगात्री शाखां गृहीत्वा च नगस्य तस्य।
तस्यास्तु रामं परिचिन्तयन्त्या रामानुजं स्वं च कुलं शुभाङ्ग्याः १८
तस्या विशोकानि तदा बहूनि धैर्यार्जितानि प्रवराणि लोके।
प्रादुर्निमित्तानि तदा बभूवुः पुरापि सिद्धान्युपलक्षितानि १९

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः। [१२५३]

तथागतां तां व्यथितामनिन्दितां व्यतीतहर्षां परिदीनमानसाम्।
शुभां निमित्तानि शुभानि भेजिरे नरं श्रिया जुष्टमिवोपसेविनः १
तस्याः शुभं वाममरालपक्ष्मराज्या वृतं कृष्णविशालशुक्लम्।
प्रास्पन्दतैकं नयनं सुकेश्या मीनाहतं पद्ममिवाभिताम्रम् २

आचरण कर मैं अल्पभाग्य जीवन छोड़ूगी। (११–१५)

विष वा तेज शस्त्र से शीघ्र अपने प्राण छोड दूं, पर रावणगृह में मुझे कोई विष वा शस्त्र का देनेवाला भी तो नहीं। शोकसंतप्त सीता ने बहुत चिंता करके वेणी का बन्धन हाथ में लिया कि इस वेणीके गुथे हुए डोरों से फांसी लगा शीघ्र यमराजगृह को चली जाऊं। यह विचार सीता उस शिंशुप वृक्ष की डाल को पकड राम की चिंता करती हुई ही लक्ष्मण और अपने कुल की चिंता भी करने लगी। उस समय सीता के अङ्गों में शोक-नाशक धैर्य देनेवाले होनहार समाचार की सूचना देनेवाले विविध लोक-प्रसिद्ध शुभ चिह्न उत्पन्न होने लगे। (१६–१९)

यहाँ अट्ठाईसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

दुःखित, अनिन्दित, हर्षहीन, दीनमना सीता की सेवा शुभ लक्षण ऐसे करने लगे, जैसे उपजीवी लोग धनवान् की करें। उस सुकेशी सीता का उज्ज्वल पलकों के सहित काले तारोंसे शोभित विशाल शुक्ल वर्ण, लाल

भुजश्च चार्वञ्चितवृत्तपीनः परार्ध्यकालागुरुचन्दनार्हः।
अनुत्तमेनाध्युषितः प्रियेण चिरेण वामः समवेपताशु ३
गजेन्द्रहस्तप्रतिमश्च पीनस्तयोर्द्वयोः संहतयोस्तु जातः।
प्रस्पन्दमानः पुनरूरुरस्या रामं पुरस्तात्स्थितमाचचक्षे ४
शुभं पुनर्हेमसमानवर्णमीषद्रजोध्वस्तमिवातुलाक्ष्याः।
वासः स्थितायाः शिखराग्रदन्त्याः किंचित्परिस्रंसत चारुगात्र्याः ५
एतैर्निमित्तैरपरैश्च सुभ्रूः संचोदिता प्रागपि साधुसिद्धैः।
वातातपक्लान्तमिव प्रणष्टं वर्षेण बीजं प्रतिसंजहर्ष ६
तस्याः पुनर्बिम्बफलोपमोष्ठं स्वक्षिभ्रुकेशान्तमरालपक्ष्म।
वक्त्रं बभासे सितशुक्लदंष्ट्रं राहोर्मुखाच्चन्द्र इव प्रमुक्तः ७
सा वीतशोका व्यपनीततन्द्रा शान्तज्वरा हर्षविबुद्धसत्त्वा।
अशोभतार्या वदनेन शुक्ले शीतांशुना रात्रिरिवोदितेन ८

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः॥ २९॥

[१२६१]

कोयेवाला वामनेत्र मीन से हिलाए कमल के समान फडकने लगा। उस की मनोहर गोल, सुडौल बाईं भुजा जो बडे मोल के अगर चन्दन से चर्चित हो अपने प्रीतम का सहारा होती थी, वह बाईं भुजा आज जल्दी जल्दी फडकने लगी। संहत दोनों जङ्घाओं में मोटी गजहस्ततुल्य बाईं जांघने फडक कर सूचना दी कि मानो राम सामने आही गए। (१-४)

अनार के दानों के समान दांतोंवाली सुन्दर देहवाली वहां स्थित सीता का शुभ स्वर्णवर्ण का कुछ धूलि लगने से मलिन वस्त्र खिसक गया। पवन और धूप से नष्ट बीज जैसे वर्षा से जी जाता है, ऐसे ही इन तथा अन्य होनहार लक्षणों को जान सीता हर्षित हुई। फिर से सीता के पके कुन्दुरु के समान होंठ व सुन्दर नेत्र व भौं से युक्त सफेद दांतोंवाला मुख राहुमुख से छुटे चन्द्रतुल्य प्रकाशित हुआ। विगतशोक, गततन्द्री, शान्त-ज्वरा, हर्ष से बढे सत्त्ववाली सीता अपने मुख से उदित चन्द्रयुक्त रात्रि-तुल्य शोभा पाने लगी। (५-८) यहाँ उनतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

त्रिंशः सर्गः।

हनुमानपि विक्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्त्वतः।
सीतायास्त्रिजटायाश्च राक्षसानां च गर्जितम् १
अवेक्षमाणस्तां देवीं देवतामिव नन्दने।
ततो बहुविधां चिन्तां चिन्तयामास वानरः २
यां कपीनां सहस्राणि सुबहून्ययुतानि च।
दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते सेयमासादिता मया ३
चारेण तु सुयुक्तेन शत्रोः शक्तिमवेक्षता।
गूढेन चरता तावदवेक्षितमिदं मया ४
राक्षसानां विशेषश्च पुरी चेयं निरीक्षता।
राक्षसाधिपतेरस्य प्रभावो रावणस्य च ५
यथा तस्याप्रमेयस्य सर्वसत्त्वदयावतः।
समाश्वासयितुं भार्यां पतिदर्शनकाङ्क्षिणीम् ६
अहमाश्वासयाम्येनां पूर्णचन्द्रनिभाननाम्।
अदृष्टदुःखां दुःखस्य न ह्यन्तमधिगच्छतीम् ७
यदि ह्यहं सतीमेनां शोकोपहतचेतनाम्।
अनाश्वास्य गमिष्यामि दोषवद्गमनं भवेत् ८

हनुमान् ने भी निश्चल हो, सीता का विलाप, त्रिजटा का स्वप्न और राक्षसियों का गर्जनादि सब कुछ सुना। सीता को देखते हुए वह बहुत-सी चिंताएं करने लगा कि, जिस को लाखों करोडों वानर ढूंढते हैं, उस सीताको मैं पा गया। सुयुक्त गुप्तचर शत्रुकी शक्तिको देखते छिपकर घूमते हुए मैंने ही यह सब कुछ देखा। राक्षसों में विशेष उस रावण, उस के प्रभाव और लङ्का को भी देखा। (१–५)

इस समय उस अप्रतिम सब पर दया करनेवाले की पतिदर्शनाभिलाषिणी भार्या को समझाना ठीक है। पूर्णचन्द्रमुखी (सीता) जिसने कभी भी दुःख नहीं देखा, दुःख के अन्त (मरण) की पहुंचती हुई को मैं समझाऊंगा। यदि मैं इस देवी को (जिस की चैतन्यता शोक से जाती

गते हि मयि तत्रेयं राजपुत्री यशस्विनी ।
परित्राणमपश्यन्ती जानकी जीवितं त्यजेत् ९
यथा च स महाबाहुः पूर्णचन्द्रनिभाननः ।
समाश्वासयितुं न्याय्यः सीतादर्शनलालसः १०
निशाचरीणां प्रत्यक्षमक्षमं चाभिभाषितम् ।
कथं नु खलु कर्तव्यमिदं कृच्छ्रगतो ह्यहम् ११
अनेन रात्रिशेषेण यदि नाश्वास्यते मया ।
सर्वथा नास्ति संदेहः परित्यक्ष्यति जीवितम् १२
रामस्तु यदि पृच्छेन्मां किं मां सीताब्रवीद्वचः ।
किमहं तं प्रतिब्रूयामसंभाष्य सुमध्यमाम् १३
सीतासंदेशरहितं मामितस्त्वरया गतम् ।
निर्दहेदपि काकुत्स्थः क्रोधतीव्रेण चक्षुषा १४
यदि वोद्योजयिष्यामि भर्तारं रामकारणात् ।
व्यर्थमागमनं तस्य ससैन्यस्य भविष्यति १५
अन्तरं त्वहमासाद्य राक्षसीनामवस्थितः ।
शनैराश्वासयाम्यद्य संतापबहुलामिमाम् १६

रही है) विना समझाए चला जाऊंगा, तो दोष के साथ (मेरा) जाना होगा । मेरे जाने से यह यशस्विनी राजकुमारी जानकी उद्धार को न पाकर प्राण तजेगी । पूर्ण चन्द्रमुखवाली महाबाहु सीता के दर्शनाकांक्षी (राम) ने जैसे मुझे कहा है, वैसे समझाना योग्य है । (६-१०)

राक्षसियों के सामने बात करना अनुचित है । मैं कैसे करूं, मुझे यह संकट है । यदि इस शेष रात्रि में मैं उसे न समझाऊं, तो निस्संदेह सीता प्राण त्याग देगी । राम यदि पूछेंगे कि सीता ने मुझ से क्या बात की, तो इस से विना बात करे, मैं उन से क्या कहूंगा ? सीतासन्देहसे रहित शीघ्र गए मुझे क्रुद्ध हुए राम तीव्र चक्षु से जला डालेंगे । और यदि राम के कारण से राजा सुग्रीव को मैं यहां ले आऊं, तो भी ससैन्य उन का आना व्यर्थ होगा । (११-१५)

अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् १७
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति १८
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता १९
सेयमालोक्य मे रूपं जानकी भाषितं तथा।
रक्षोभिस्त्रासिता पूर्वं भूयस्त्रासमुपैष्यति २०
ततो जातपरित्रासा शब्दं कुर्यान्मनस्विनी।
जानाना मां विशालाक्षी रावणं कामरूपिणम् २१
सीतया च कृते शब्दे सहसा राक्षसीगणः।
नानाप्रहरणो घोरः समेयादन्तकोपमः २२
ततो मां संपरिक्षिप्य सर्वतो विकृताननाः।
वधे च ग्रहणे चैव कुर्युर्यत्नं महाबलाः २३
तं मां शाखाः प्रशाखाश्च स्कन्धांश्चोत्तमशाखिनाम्।
दृष्ट्वा च परिधावन्तं भवेयुः परिशङ्किताः २४

यहां स्थित मैं राक्षसियों के अवकाश का समय पा सन्तापबहुला सीता को शनैः शनैः समझाऊंगा। मैं तो स्वल्पशरीरी और वानर हूं, पर यहां संस्कृत मनुष्यवाणी बोलूंगा। यदि द्विजातिके समान संस्कृत वाणी बोलूंगा, तो मुझे रावण समझ सीता डर जायगी। मुझे अर्थयुक्त मानुष वाक्य ही बोलना चाहिए, अन्यथा मैं इन्हें न समझा सकूंगा। पर यह मेरा वानररूप और मानुष वाक्य देख पूर्व से राक्षसों से त्रासित और भी डर जायगी। (१६-२०)

ततः विशालाक्षी सीता मुझे कामरूपी रावण समझ डर कर शोर न मचा दे। सीताके शब्द करने पर सहसा यमतुल्य शस्त्रों से युक्त घोर राक्षसियाँ आ जावेंगीं। तदनन्तर विकृतमुखा राक्षसियाँ यथाशक्ति मेरे पकडने और वध का यत्न करेंगीं। तब मुझे बडे बडे वृक्षों की शाखा और तनों को

मम रूपं च संप्रेक्ष्य वने विचरतो महत् ।
राक्षस्यो भयविस्रस्ता भवेयुर्विकृतस्वराः २५
ततः कुर्युः समाह्वानं राक्षस्यो रक्षसामपि ।
राक्षसेन्द्रनियुक्तानां राक्षसेन्द्रनिवेशने २६
ते शूलशरनिस्त्रिंशविविधायुधपाणयः ।
आपतेयुर्विमर्देऽस्मिन्वेगेनोद्वेगकारणात् २७
संरुद्धस्तैस्तु परितो विधमे रक्षसं बलम् ।
शक्नुयां न तु संप्राप्तुं परं पारं महोदधेः २८
मां वा गृह्णीयुरावृत्य बहवः शीघ्रकारिणः ।
स्यादियं चागृहीतार्था मम च ग्रहणं भवेत् २९
हिंसाभिरुचयो हिंस्युरिमां वा जनकात्मजाम् ।
विपन्नं स्यात्ततः कार्यं रामसुग्रीवयोरिदम् ३०
उद्देशे नष्टमार्गेऽस्मिन्राक्षसैः परिवारिते ।
सागरेण परिक्षिप्ते गुप्ते वसति जानकी ३१
विशस्ते वा गृहीते वा रक्षोभिर्मयि संयुगे ।
नान्यं पश्यामि रामस्य सहायं कार्यसाधने ३२

पकड दौडते हुए देख राक्षसियाँ भय से डर जायेंगीं । वन में विचरते मेरे बडे रूप को देख राक्षसियाँ भय से विह्वल हो जायेंगीं । (२१-२५)

ततः वे राक्षसियाँ रावणगृह में नियुक्त राक्षसों को भी बुला लेंगीं । तब वे राक्षस शूल, भाला वादि विविध अस्त्र ले अतिवेग से यहां आवेंगे । क्रुद्ध हुए उन से घिरा मैं राक्षसबल का संहार करके भी समुद्रके पार न जा सकूंगा । और जल्दी करके बहुत से राक्षस मुझे पकड लें, तो सीता तो मेरे आने का अभिप्राय न जान सकेगी और मैं बन्दी भी हो जाऊंगा । हिंसक-वृत्ति राक्षस यदि सीता को ही मार डालें, तो राम-सुग्रीव का कार्य नष्ट हो जावे । (२६-३०)

सागरावृत राक्षसों से रक्षित मार्गहीन गुप्त इस देश में सीता रहती हैं । युद्ध में राक्षसों से मेरे मारे वा पकडे जानेपर कार्यसाधन में राम का

विमृशंश्च न पश्यामि यो हते मयि वानरः।
शतयोजनविस्तीर्णं लङ्घयेत महोदधिम् ३३
कामं हन्तुं समर्थोऽस्मि सहस्राण्यपि रक्षसाम्।
न तु शक्ष्याम्यहं प्राप्तुं परं पारं महोदधेः ३४
असत्यानि च युद्धानि संशयो मे न रोचते।
कश्च निःसंशयं कार्यं कुर्यात्प्राज्ञः ससंशयम् ३५
एष दोषो महान्हि स्यान्मम सीताभिभाषणे।
प्राणत्यागश्च वैदेह्या भवेदनभिभाषणे ३६
भूताश्चार्था विरुध्यन्ति देशकालविरोधिताः।
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ३७
अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते।
घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ३८
न विनश्येत्कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं मम।
लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न वृथा भवेत् ३९
कथं नु खलु वाक्यं मे शृणुयान्नोद्विजेत च।
इति संचिन्त्य हनुमांश्चकार मतिमान्मतिम् ४०

अन्य सहायक मुझे नहीं दीखता। विचार कर भी मैं ऐसा किसी को नहीं देखता, जो मेरे मरने पर १०० योजन चौडे समुद्र को लांघ जावे। यद्यपि मैं सहस्रों राक्षसों को मार सकता हूं, पर समुद्रपार न जा सकूंगा। युद्ध अनिश्चित होते हैं, और सन्देह मुझे पसन्द है नहीं; कौन बुद्धिमान् निस्संशय काम को ससंशय करना चाहेगा? (३१-३५)

रामसंदेश न कहने से सीता प्राण त्याग देंगी और कहने में भी पूर्वोक्त बडा दोष उपस्थित होगा। डरपोक दूत को पाकर देशकाल से विरोधित भूतार्थ सूर्योदय पर तमवत् नष्ट हो जाते हैं। अर्थ और अनर्थ के बीच निश्चित बुद्धि भी नहीं शोभती और पण्डितमानी दूतोंको पा कार्य नष्ट हो जाते हैं। यह कैसे हो कि न तो कार्य नष्ट होवे, न वैक्लव्य होवे और न समुद्रलङ्घन वृथा हो? (३६-३९)

राममाक्लिष्टकर्माणं सुबन्धुमनुकीर्तयन् ।
नैनामुद्वेजयिष्यामि तद्बन्धुगतचेतनाम् ४१
इक्ष्वाकूणां वरिष्ठस्य रामस्य विदितात्मनः ।
शुभानि धर्मयुक्तानि वचनानि समर्पयन् ४२
श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन्गिरम् ।
श्रद्धास्यति यथा सीता तथा सर्वं समादधे ४३
इति स बहुविधं महाप्रभावो जगतिपतेः प्रमदामवेक्षमाणः ।
मधुरमवितथं जगाद वाक्यं द्रुमविटपान्तरमास्थितो हनूमान्४४

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥३०॥

एकत्रिंशः सर्गः । [१३०५]

एवं बहुविधां चिन्तां चिन्तयित्वा महामतिः ।
संश्रवे मधुरं वाक्यं वैदेह्या व्याजहार ह १
राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान् ।
पुण्यशीलो महाकीर्तिरिक्ष्वाकूणां महायशाः २
अहिंसारतिरक्षुद्रो घृणी सत्यपराक्रमः ।
मुख्यस्येक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मिवर्धनः ३

और कैसे यह मेरे वाक्य को सुन उद्विग्न न हो यह सोच हनुमान् ने स्थिर किया कि स्वबन्धु राम का कीर्तन करता हुआ सीता को उद्विग्न न करूंगा, क्योंकि राम के ध्यान में इन का मन लग जायगा । इक्ष्वाकुश्रेष्ठ राम के शुभ धर्ममय वचन समर्पित कर मीठी वाणी बोल सब सुनाऊंगा । जैसे सीता विश्वास करेंगी, वैसे ही समाधान करूंगा । वृक्ष की शाखाओं के बीच बैठ हनुमान् ने बहुविध सोच रामभार्या को देखते हुए मधुर और यथार्थ वाणी बोलनी शुरु की । (४०-४४)

यहाँ तीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

हनुमान् ने बहुत सोचविचार करके सीता को सुनाने को मधुर वाणी बोली- रथ, हाथी, घोडों से युक्त पुण्यशील महाकीर्ति राजा दशरथ हुए हैं । जो अहिंसावृत्ति, अक्षुद्र, दयालु, सत्यपराक्रमी, लक्ष्मीवान् और

पार्थिवव्यञ्जनैर्युक्तः पृथुश्रीः पार्थिवर्षभः।
पृथिव्यां चतुरन्तायां विश्रुतः सुखदः सुखी ४
तस्य पुत्रः प्रियो ज्येष्ठस्ताराधिपनिभाननः।
रामो नाम विशेषज्ञः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ५
रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य स्वजनस्यापि रक्षिता।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य च परंतपः ६
तस्य सत्याभिसंधस्य वृद्धस्य वचनात्पितुः।
सभार्यः सह च भ्रात्रा वीरः प्रव्रजितो वनम् ७
तेन तत्र महारण्ये मृगयां परिधावता।
राक्षसा निहताः शूरा बहवः कामरूपिणः ८
जनस्थानवधं श्रुत्वा निहतौ खरदूषणौ।
ततस्त्वमर्षापहृता जानकी रावणेन तु।
वञ्चयित्वा वने रामं मृगरूपेण मायया ९
स मार्गमाणस्तां देवीं रामः सीतामनिन्दिताम्।
आससाद वने मित्रं सुग्रीवं नाम वानरम् १०
ततः स वालिनं हत्वा रामः परपुरंजयः।
प्रायच्छत्कपिराज्यं तु सुग्रीवाय महात्मने ११

इक्ष्वाकुकुल में मुख्य थे। और राजाओं में श्रेष्ठ, सारी पृथ्वी में विख्यात, स्वजनों को सुखदाता और सुखी थे। सारे धनुषधारियों में श्रेष्ठ बहुज्ञ राम नाम के उन के बड़े पुत्र हैं। वह परम तपस्वी धर्म, स्वजन और संसार के रक्षक हैं। (१-६)

उस सत्यप्रतिज्ञ वृद्ध पिता की आज्ञा से वह वीर भार्या और भाई-सहित वन को चले आए। उन्होंने वहां बड़े वन में शिकार खेलते बहुत से कामरूपी राक्षस मारे। जनस्थानवासी राक्षस और खर दूषण का वध सुन रावण ने मायावी मृगद्वारा राम को ठग सीता को हर लिया। उस देवी को ढूंढते हुए राम वन में वानर सुग्रीव के मित्र बने। (७-१०)

तब सत्यपराक्रमी राम ने वाली को मार सुग्रीव को वानरराज बनाया।

सुग्रीवेणाभिसंदिष्टा हरयः कामरूपिणः ।
दिक्षु सर्वासु तां देवीं विचिन्वन्तः सहस्रशः १२
अहं संपातिवचनाच्छतयोजनमायतम् ।
तस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः समुद्रं वेगवान्प्लुतः १३
यथारूपां यथावर्णां यथालक्ष्मवतीं च ताम् ।
अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया १४
विरराम्रैवमुक्त्वा स वाचं वानरपुङ्गवः ।
जानकी चापि तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं गता १५
ततः सा वक्रकेशान्ता सुकेशी केशसंवृतम् ।
उन्नम्य वदनं भीरुः शिंशपामन्ववैक्षत १६
निशम्य सीता वचनं कपेश्च दिशश्च सर्वाः प्रदिशश्च वीक्ष्य ।
स्वयं प्रहर्षं परमं जगाम सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती १७
सा तिर्यगूर्ध्वं च तथा ह्यधस्ताच्चिरीक्षमाणा तमचिन्त्यबुद्धिम् ।
ददर्श पिङ्गाधिपतेरमात्यं वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम् १८

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दर० एकत्रिंशः सर्गः ॥३१॥ [१३२३]

सुग्रीव से आज्ञापित सहस्रों कामरूपी वानर सब दिशाओं में उस देवी को ढूंढ रहे हैं । मैंने सम्पाति के वचन से उस विशालाक्षी के कारण शत-योजन चौडे समुद्र को पार किया है । जैसा रूप, जैसा वर्ण, जैसी शोभा-वाली मैंने राम से सुनी थी, वैसा ही देवी के पास मैं पहुंच गया हूं । (११-१४)

हनुमान् यह कह चुप हो गया और सीता यह सुन आश्चर्य करने लगी । तब वह सुकेशी बालों से ढका मुंह ऊंचा कर डरती शिंशुपवृक्ष की ओर देखने लगी । वानरवचन सुन सब ओर देख राम के स्मरण में तन्मय हो सीता बडी आनन्दित हुई । उसने इधरउधर, नीचेऊपर देखते उदय होते सूर्यसम सुग्रीवके मंत्री असाधरणबुद्धि हनुमान् को देखा । (१५-१८)

यहाँ एकत्तीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

द्वात्रिंशः सर्गः।

ततः शाखान्तरे लीनं दृष्ट्वा चालितमानसा।
वेष्टितार्जुनवस्त्रं तं विद्युत्संघातपिङ्गलम् १
सा ददर्श कपिं तत्र प्रश्रितं प्रियवादिनम्।
फुल्लाशोकोत्करामासं तप्तचामीकरेक्षणम् २
साऽथ दृष्ट्वा हरिश्रेष्ठं विनीतवदवस्थितम्।
मैथिली चिन्तयामास विस्मयं परमं गता ३
अहो भीममिदं सत्त्वं वानरस्य दुरासदम्।
दुर्निरीक्ष्यमिदं मत्वा पुनरेव मुमोह सा ४
विललाप भृशं सीता करुणं भयमोहिता।
राम रामेति दुःखार्ता लक्ष्मणेति च भामिनी ५
रुरोद सहसा सीता मन्दमन्दस्वरा सती ६
साऽथ दृष्ट्वा हरिवरं विनीतवदुपागतम्।
मैथिली चिन्तयामास स्वप्नोऽयमिति भामिनी ७
सा वीक्षमाणा पृथुभग्नवक्त्रं शाखामृगेन्द्रस्य यथोक्तकारम्।
ददर्श पिङ्गप्रवरं महार्हं वातात्मजं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ८

तब उस उद्विग्नमना ने शाखाओं के बीच श्वेतवस्त्रधारी, बिजलीतुल्य, स्वर्णतुल्य आंखवाले प्रियवादी हनुमान् को देखा। विनीतपुरुष के समान बैठे वानरश्रेष्ठ को देख सीता बड़े आश्चर्य में सोचने लगी। अहो! वानर का यह रूप भीम, दुरासद और कठिनता से देखनेयोग्य है। यह जानकर वह फिर मोह को प्राप्त हो गई। भय से मोहित हो सीता हे राम! हे लक्ष्मण!- दुःख से ऐसा कह कह करुणोत्पादक विलाप करने लगी। (१-५)

सती सीता मन्दस्वर से शनैःशनैः बड़ा रुदन करने लगी। वह सीता विनीत पुरुष के समान बैठे उस वानरश्रेष्ठ को देख सोचने लगी कि, यह तो स्वप्न देख रही हूं। शायद अपने ये शब्द राक्षसस्त्रियोंने सुन लिये होंगे, ऐसा सन्देह होने के कारण वह सीता इधर उधर झाँकने लगी।

सा तं समीक्ष्यैव भृशं विपन्ना गतासुकल्पेव बभूव सीता ।
चिरेण संज्ञां प्रतिलभ्य चैवं विचिन्तयामास विशालनेत्रा ९
स्वप्नो मयाऽयं विकृतोऽद्य दृष्टः शाखामृगः शास्त्रगणैर्निषिद्धः ।
स्वस्त्यस्तु रामाय सलक्ष्मणाय तथा पितुर्मे जनकस्य राज्ञः १०
स्वप्नो हि नायं न हि मेऽस्ति निद्रा शोकेन दुःखेन च पीडितायाः ।
सुखं हि मे नास्ति यतो विहीना तेनेन्दुपूर्णप्रतिमाननेन ११
रामेति रामेति सदैव बुद्ध्या विचिन्त्य वाचा ब्रुवती तमेव ।
तस्यानुरूपं च कथां तदर्थामेवं प्रपश्यामि तथा शृणोमि १२

तब उसने सुयोग्य तथा वायुपुत्र वानरश्रेष्ठ को देखा, जो वानराधिपति सुग्रीव की आज्ञा के अनुसार आचरण करनेवाला था । वह बुद्धिमानों में श्रेष्ठ था और वज्र के आघात के कारण उसका विशाल मुँह कुछ टूटसा गया था । उसे देखते ही वह बिलकुल सहम गयी और उसके होश उड गये । इस डर के मारे कि शायद रावण ही भेस बदल कर यों आया हो, वह सीता सुतरां भयभीत हो निर्जीव प्राणी के समान निश्चेष्ट हो पडी । बाद में बडी बडी आँखोंवाली सीता बडी देर के उपरान्त होश में आकर सोचने लगी (६-९)

आज मुझे यह बडा बुरा स्वप्न देखना पडा, क्योंकि शास्त्रों ने जिसका निषेध किया है, वही बन्दर प्रत्यक्ष स्वप्न में मुझे दीख पडा । अतः लक्ष्मण के साथ रामचन्द्रजी और वैसे ही मेरे पिताजी जनक सकुशल हों । परन्तु शोक तथा दुःख से सतायी गयी मैं निद्रा पाती ही नहीं, इसलिए यह स्वप्न नहीं हो सकता, क्योंकि पूर्ण चंद्र जैसे प्रसन्नता देनेवाले मुख से युक्त रामचन्द्रजी से बिछुड जाने से मुझे सुख (आँख मीच लेने का भी) नहीं मिलता है । मैं मनमें ' हे राम, हे राम ' ऐसा लगातार सोचा करती हूं और वाणी से भी उसी के नाम का उच्चारण करती हूं । उस से सम्बन्ध रखनेवाली बातकोही सुनने को मेरा दिल खींचा जाता है और मेरी आँखों के सामने भी उन्हीं की बातें दिखाई दे रही हैं । संक्षेप में, उस राम के बारे में तीव्र विचार मेरे मन में आते

अहं हि तस्याद्य मनोभवेन संपीडिता तद्गतसर्वभावा।
विचिन्तयन्ती सततं तमेव तथैव पश्यामि तथा शृणोमि १३
मनोरथः स्यादिति चिन्तयामि तथापि बुद्ध्यापि वितर्कयामि।
किं कारणं तस्य हि नास्ति रूपं सुव्यक्तरूपश्च वदत्ययं माम् १४
नमोऽस्तु वाचस्पतये सवज्रिणे स्वयंभुवे चैव हुताशनाय।
अनेन चोक्तं यदिदं ममाग्रतो वनौकसा तच्च तथास्तु नान्यथा १५

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः। [१३३८]

सोऽवतीर्य द्रुमात्तस्माद्विद्रुमप्रतिमाननः।
विनीतवेषः कृपणः प्रणिपत्योपसृत्य च १
तामब्रवीन्महातेजा हनूमान्मरुतात्मजः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय सीतां मधुरया गिरा २

हैं, इसलिए आज मैं अकुला रही हूँ। मेरा सारा चित्त उसी में विलीन हो उठा है। अन्तःकरण में उसका अविच्छिन्न चिंतन चल रहा है और आँखों के सामने भी उसी का सारा पराक्रम नाच रहा है, कान भी उसी के बारे में सब कुछ सुन रहे हैं। ऐसा आभास हो रहा है। (१०-१३)

अब तक जो कुछ हुआ है, वह निरी मनोभ्रांति हो, कल्पित हो, तो स्थिर अन्तःकरण रहने पर भी मुझे वैसे ही जान पड़ता है। भला ऐसा होने का क्या कारण है? अगर कहें कि, यह निरे मन के लड्डू हैं, तो वैसे अनुभव कहीं कुछ मिलते ही नहीं, लेकिन यह जो वानर मुझ से कह रहा है, यह साफ साफ दिखाई दे रहा है। बृहस्पति, इन्द्र, ब्रह्मदेव एवं अग्नि को प्रणाम! इन देवताओं की कृपा से, इस बन में घूमनेवाले बन्दर ने मेरे सामने जो कुछ कहा है, वह सत्य ठहरे, झूठा न हो। (१४-१५)

यहाँ बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

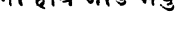

पेड़ से उतर मूंगासदृश मुखवाला विनीतवेषधारी हनुमान् प्रणाम कर और पास जा शिर पर से दोनों हाथ जोड़ मधुरवाणी से बोला- हे कमल-

का नु पद्मपलाशाक्षि क्लिष्टकौशेयवासिनि।
द्रुमस्य शाखामालम्ब्य तिष्ठसि त्वमनिन्दिता ३
किमर्थं तव नेत्राभ्यां वारि स्रवति शोकजम्।
पुण्डरीकपलाशाभ्यां विप्रकीर्णमिवोदकम् ४
सुराणामसुराणां च नागगन्धर्वरक्षसाम्।
यक्षाणां किंनराणां च का त्वं भवसि शोभने ५
का त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां वा वरानने।
वसूनां वा वरारोहे देवता प्रतिभासि मे ६
किं नु चन्द्रमसा हीना पतिता विबुधालयात्।
रोहिणी ज्योतिषां श्रेष्ठा श्रेष्ठसर्वगुणाधिका ७
कोपाद्वा यदि वा मोहाद्भर्तारमसितेक्षणे।
वसिष्ठं कोपयित्वा त्वं वासि कल्याण्यरुन्धती ८
को नु पुत्रः पिता भ्राता भर्ता वा ते सुमध्यमे।
अस्माल्लोकादमुं लोकं गतं त्वमनुशोचसि ९
रोदनादतिनिःश्वासाद्भूमिसंस्पर्शनादपि।
न त्वा देवीमहं मन्ये राज्ञः संज्ञावधारणात् १०

चारु नेत्रवाली! तुम कौन हो और वृक्षशाखा पकड़े क्यों खड़ी हो? कमलपत्र से जल गिरने के समान तुम्हारे नेत्रों से शोकजनित आंसू क्यों गिर रहे हैं? हे शोभने! सुर, असुर, नाग, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर इन सब में तुम कौन हो? (१-५)

हे चारुवदने! तुम रुद्रगण, मरुद्गण या वसुओं में से कोई हो, मुझे तो देवता प्रतीत होती हो। क्या तुम नक्षत्रगणों में मुख्य रोहिणी हो, जो चन्द्रमा के वियोग में ग्रस्त हो स्वर्ग से यहां पर गिरी हो? हे कल्याणी! हे अनिन्दित नेत्रवाली! तुम कौन हो? हे श्यामलोचने! क्या तुम अरुन्धती हो, जो कोप वा मोह से स्वभर्ता वसिष्ठ को क्रोधित करा, यहां चली आई हो? हे सुमध्यमे! तुम्हारा पुत्र पिता, भाई वा भर्ता कौन है? वा इन में से किसी की मृत्यु का शोक तो नहीं करती? रुदन, बार बार

व्यञ्जनानि हि ते यानि लक्षणानि च लक्षये।
महिषी भूमिपालस्य राजकन्या च मे मता ११
रावणेन जनस्थानाद्बलात्प्रमथिता यदि।
सीता त्वमसि भद्रं ते तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः १२
यथा हि तव वै दैन्यं रूपं चाप्रतिमानुषम्।
तपसा चान्वितो वेषस्त्वं राममहिषी ध्रुवम् १३
सा तस्य वचनं श्रुत्वा रामकीर्तनहर्षिता।
उवाच वाक्यं वैदेही हनूमन्तं द्रुमाश्रितम् १४
पृथिव्यां राजसिंहानां मुख्यस्य विदितात्मनः।
स्नुषा दशरथस्याहं शत्रुसैन्यप्रणाशिनः १५
दुहिता जनकस्याहं वैदेहस्य महात्मनः।
सीतेति नाम्ना चोक्ताहं भार्या रामस्य धीमतः १६
समा द्वादश तत्राहं राघवस्य निवेशने।
भुञ्जाना मानुषान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी १७
ततस्त्रयोदशे वर्षे राज्ये चेक्ष्वाकुनन्दनम्।
अभिषेचयितुं राजा सोपाध्यायः प्रचक्रमे १८

सांस लेने, भूमिस्पर्श और राम का नाम वार वार लेने के कारण, मैं तुमको देवता भी नहीं समझता। (६-१०)

लक्षणों से तो तुम किसी राजा की रानी वा पुत्री दिखाई पडती हो। रावणद्वारा जनस्थान से हरी यदि तुम सीता हो, तो मुझ पूछते हुए से कहो। इस दीनावस्था, अलौकिक रूप और तपयुक्त वेष से तो तुम राम-प्रिया ही प्रतीत होती हो। पेड के सहारे खडे हनुमान् का वचन सुन रामकीर्तन से हर्षित हो सीता बोली। (११-१४)

पृथ्वी में राजसिंहश्रेष्ठ शत्रुसेना को तपानेवाले राजा दशरथ की मैं पुत्रवधू हूं और विदेहराज की पुत्री सीतानाम्नी धीमान् राम की भार्या हूं। बारह वर्ष तक मैं राघव के गृह में समस्त मानुष भोगों का भोग करती रही। तेरहवें वर्ष में राजा पुरोहितों के सहाय से श्रीराम का अभिषेक

तस्मिन्संभ्रियमाणे तु राघवस्याभिषेचने ।
कैकेयी नाम भर्तारमिदं वचनमब्रवीत् १९
न पिबेयं न खादेयं प्रत्यहं मम भोजनम् ।
एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते २०
यत्तदुक्तं त्वया वाक्यं प्रीत्या नृपतिसत्तम ।
तच्चेन्न वितथं कार्यं वनं गच्छतु राघवः २१
स राजा सत्यवाग्देव्या वरदानमनुस्मरन् ।
मुमोह वचनं श्रुत्वा कैकेय्याः क्रूरमप्रियम् २२
ततस्तं स्थविरो राजा सत्यधर्मे व्यवस्थितः ।
ज्येष्ठं यशस्विनं पुत्रं रुदन्राज्यमयाचत २३
स पितुर्वचनं श्रीमानभिषेकात्परं प्रियम् ।
मनसा पूर्वमासाद्य वाचा प्रतिगृहीतवान् २४
दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात्सत्यं ब्रूयान्न चानृतम् ।
अपि जीवितहेतोर्हि रामः सत्यपराक्रमः २५
स विहायोत्तरीयाणि महार्हाणि महायशाः ।
विसृज्य मनसा राज्यं जनन्यै मां समादिशत् २६

करने को उद्यत हुए । रामाभिषेक की सब सामग्री इकट्ठी हो जानेपर रानी कैकेयी राजा से बोली । (१५-१९)

" यदि राम का अभिषेक होगा, तो मैं न खाऊंगी न पीऊंगी और मेरे जीवन का अन्त हो जायगा । हे राजन् ! आपने जो प्रसन्न हो मुझे वर दिया था, यदि आप उसे असत्य न करना चाहें, तो राम वन को जावें ।" सत्यवादी राजा वरदान का स्मरण करता हुआ कैकेयी का कठोर वचन सुन मूर्च्छित हो गया । तब वृद्ध राजा ने सत्यधर्म में स्थित हो, रोते हुए ज्येष्ठ पुत्र से राज्य मांग लिया । पिता का वचन रामको राज्याभिषेक से भी अधिक प्रिय था, उसे पूर्व मन से स्वीकार फिर वाणी से किया । (२०-२४)

सत्यपराक्रमी राम जीवन के लिए भी दिए को वापिस न लेंगे, न कभी असत्य बोलनेवाले हैं । वह महायशस्वी मूल्यवान् वस्त्रों को छोड राज्य को

साहं तस्याग्रतस्तूर्णं प्रस्थिता वनचारिणी ।
न हि मे तेन हीनाया वासः स्वर्गेऽपि रोचते २७
प्रागेव तु महाभागः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।
पूर्वजस्यानुयात्रार्थे कुशचीरैरलंकृतः २८
ते वयं भर्तुरादेशं बहुमान्य दृढव्रताः ।
प्रविष्टाः स्म पुराऽदृष्टं वनं गम्भीरदर्शनम् २९
वसतो दण्डकारण्ये तस्याहममितौजसः ।
रक्षसापहृता भार्या रावणेन दुरात्मना ३०
द्वौ मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रहः कृतः ।
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां तु मासाभ्यां ततस्त्यक्ष्यामि जीवितम् ३१

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥३३॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः । [१३६९]

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनूमान्हरिपुङ्गवः ।
दुःखाद्दुःखाभिभूतायाः सान्त्वमुत्तरमब्रवीत् १

मन से त्याग, मुझे अपनी माता को सौंपने लगे। पर मैं शीघ्र वनचारिणी का वेष बना उनके आगे हो ली, उन से हीन मुझे स्वर्गवास भी पसन्द नहीं है। (२५-२७)

महाभाग सुमित्रापुत्र लक्ष्मण भी चीरवल्कल पहिर बड़े भाई के साथ चलने को तैयार हो गए। वे हम तीनों दृढव्रतधारी राजा की आज्ञा को मान पूर्व से विना देखे गम्भीर वन में प्रविष्ट हुए। दण्डकवन में रहते बड़े तेजस्वी रामकी मैं भार्या दुरात्मा रावण से हरी गई हूं। उस रावण ने मेरे जीवन के दो मास की अवधि नियत की है, तदनन्तर मुझे प्राण छोड़ने होंगे। (२८-३१)

यहाँ तेंतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

दुःख से शोकाक्रांत उस का वचन सुन हनुमान् सीता को समझाने

अहं रामस्य संदेशाद्देवि दूतस्त्वागतः ।
वैदेहि कुशली रामः स त्वां कौशलमब्रवीत् १
यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेद वेदविदां वरः ।
स त्वां दाशरथी रामो देवि कौशलमब्रवीत् २
लक्ष्मणश्च महातेजा भर्तुस्तेऽनुचरः प्रियः ।
कृतवाञ्छोकसंतप्तः शिरसा तेऽभिवादनम् ४
सा तयोः कुशलं देवी निशम्य नरसिंहयोः ।
प्रतिसंहृष्टसर्वाङ्गी हनूमन्तमथाब्रवीत् ५
कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मा ।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ६
तयोः समागमे तस्मिन्प्रीतिरुत्पादिताद्भुता ।
परस्परेण चालापं विश्वस्तौ तौ प्रचक्रतुः ७
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः ।
सीतायाः शोकतप्तायाः समीपमुपचक्रमे ८
यथा यथा समीपं स हनूमानुपसर्पति ।
तथा तथा रावणं सा तं सीता परिशङ्कते ९

लगे । मैं राम की आज्ञा से उन का दूत आया हूं । राम सकुशल हैं और तुम्हारी कुशल पूछी है । जो वेदज्ञों में श्रेष्ठ, ब्रह्मास्त्र और वेदों का ज्ञाता है, उस दशरथपुत्र रामने तुम्हारी कुशल पूछी है । महातेजस्वी रामानुगामी शोकसन्तप्त प्रिय लक्ष्मणने शिरसे तुम्हें अभिवादन किया है । उन दोनों नरश्रेष्ठों का कुशल सुन प्रीति से पुलकितगात्र सीता हनुमान् से बोली । (१-५)

"यह शुभ कहावत आज मुझे अच्छी लगती है कि यदि मनुष्य जीवित रहे, तो १०० वर्षके पीछे भी आनन्द पाता है । " आगत हनुमान् में सीता को अद्भुत प्रीति उत्पन्न हुई, वे दोनों विश्वस्त हो परस्पर वार्तालाप करने लगे । शोक से दीन सीता का वचन सुन हनुमान् समीप आगए । ज्यों ज्यों हनुमान् समीप आते गए, त्यों त्यों सीता उसे रावण समझ शंका

अहो धिग्धिक्कृतमिदं कथितं हि यदस्य मे।
रूपान्तरमुपागम्य स एवाऽयं हि रावणः १०
तामशोकस्य शाखां तु विमुक्त्वा शोककर्शिता।
तस्यामेवानवद्याङ्गी धरण्यां समुपाविशत् ११
अवन्दत महाबाहुस्ततस्तां जनकात्मजाम्।
सा चैनं भयसंत्रस्ता भूयो नैनमुदैक्षत १२
तं दृष्ट्वा वन्दमानं च सीता शशिनिभानना।
अब्रवीद्दीर्घमुच्छ्वस्य वानरं मधुरस्वरा १३
मायां प्रविष्टो मायावी यदि त्वं रावणः स्वयम्।
उत्पादयसि मे भूयः संतापं तन्न शोभनम् १४
स्वं परित्यज्य रूपं यः परिव्राजकरूपवान्।
जनस्थाने मया दृष्टस्त्वं स एव हि रावणः १५
उपवासकृशां दीनां कामरूप निशाचर।
संतापयसि मां भूयः संतापं तन्न शोभनम् १६
अथवा नैतदेवं हि यन्मया परिशङ्कितम्।
मनसो हि मम प्रीतिरुत्पन्ना तव दर्शनात् १७

करने लगी। अहो! यह बुरा हुआ कि मैंने इससे अपना वृत्तांत कह दिया, यह तो रूप धार रावण ही आया है। (६-१०)

शोकाभिभूत हो सीता अशोक की डाली छोड पृथ्वी में बैठ गई। हनुमान् ने सीता को भय से मोहित देख, उसकी वन्दना की, पर भय से डरी उसने फिर हनुमान् की ओर नहीं देखा। सीता उसे वन्दमान देख दीर्घ श्वास ले बोली- माया में प्रविष्ट मायावी तू यदि स्वयं रावण ही है, तो मुझे फिर सन्ताप उत्पन्न करा रहा है- यह ठीक नहीं। अपना रूप तज संन्यासी का वेष धर, जिसे मैंने जनस्थान में देखा था, तू वही रावण है। (११-१५)

उपवास से कृश, दीन, दुःखी मुझे तू फिर सन्तप्त करता है- यह अच्छा नहीं। अथवा मेरी शंका ठीक नहीं, क्योंकि तेरे दर्शन से ही मेरे मन में

यदि रामस्य दूतस्त्वमागतो भद्रमस्तु ते ।
पृच्छामि त्वां हरिश्रेष्ठ प्रिया रामकथा हि मे १८
गुणान्रामस्य कथय प्रियस्य मम वानर ।
चित्तं हरसि मे सौम्य नदीकूलं यथा रयः १९
अहो स्वप्नस्य सुखता याहमेवं चिराहृता ।
प्रेषितं नाम पश्यामि राघवेण वनौकसम् २०
स्वप्नेऽपि यद्यहं वीरं राघवं सहलक्ष्मणम् ।
पश्येयं नावसीदेयं स्वप्नोऽपि मम मत्सरी २१
नाहं स्वप्नमिमं मन्ये स्वप्ने दृष्ट्वा हि वानरम् ।
न शक्योऽभ्युदयः प्राप्तुं प्राप्तश्चाभ्युदयो मम २२
किं नु स्याच्चित्तमोहोऽयं भवेद्वातगतिस्त्वियम् ।
उन्मादजो विकारो वा स्यादयं मृगतृष्णिका २३
अथवा नायमुन्मादो मोहोऽप्युन्मादलक्षणः ।
संवुध्ये चाहमात्मानमिमं चापि वनौकसम् २४
इत्येवं बहुधा सीता संप्रधार्य बलाबलम् ।

प्रीति उत्पन्न हुई है । यदि तू राम का दूत आया है, तो तेरा कल्याण हो, तुझ से हे हरिश्रेष्ठ ! मैं राम की कथा पूछती हूं, मेरे प्रिय राम के गुण वर्णन कर । हे सौम्य ! तू मेरे चित्त को ऐसे हरता है, जैसे जल का वेग नदीतट को । अहो ! स्वप्न का सुख कि बहुत दिनों से हरी मैं राम के भेजे दूत को देखती हूं । (१६-२०)

स्वप्न में भी यदि लक्ष्मणसमेत वीर राम को देख लूं, तो दुःखी न होऊं, पर स्वप्न भी मेरा विरोधी है । मैं इसे स्वप्न भी नहीं समझती, क्योंकि स्वप्न में वानर देखने से अभ्युदय नहीं प्राप्त हो सकता, पर मैंने तो सन्तोषरूप अभ्युदय प्राप्त किया है, तो क्या यह चित्तभ्रम वा पवन का विकार वा उन्माद से उत्पन्न विकार वा मृगतृष्णा है ? पर यह तो उन्माद भी नहीं है, क्योंकि उन्माद का लक्षण मोह है, पर मुझे तो अपना और इस वानर का भली भांति ज्ञान है । इस प्रकार बहुत तर्कवितर्क

रक्षसां कामरूपत्वान्मेने तं राक्षसाधिपम् २५
एतां बुद्धिं तदा कृत्वा सीता सा तनुमध्यमा।
न प्रतिव्याजहाराथ वानरं जनकात्मजा २६
सीताया निश्चितं बुद्ध्वा हनूमान्मारुतात्मजः।
श्रोत्रानुकूलैर्वचनैस्तदा तां संप्रहर्षयन् २७
आदित्य इव तेजस्वी लोककान्तः शशी यथा।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवो वैश्रवणो यथा २८
विक्रमेणोपपन्नश्च यथा विष्णुर्महायशाः।
सत्यवादी मधुरवाग्देवो वाचस्पतिर्यथा २९
रूपवान्सुभगः श्रीमान्कन्दर्प इव मूर्तिमान्।
स्थानक्रोधे प्रहर्ता च श्रेष्ठो लोके महारथः ३०
बाहुच्छायामवष्टब्धो यस्य लोको महात्मनः।
अपक्रम्याश्रमपदान्मृगरूपेण राघवम्।
शून्ये येनापनीतासि तस्य द्रक्ष्यसि तत्फलम् ३१
अचिराद्रावणं संख्ये यो वधिष्यति वीर्यवान्।
क्रोधप्रमुक्तैरिषुभिर्ज्वलद्भिरिव पावकैः ३२

करके सीता ने हनुमान् को रावण ही समझा। (२१–२५)

सीता यह बुद्धि करके हनुमान् से फिर कुछ न बोली। सीता की चिंता को जान हनुमान् सुनने में सुखद वचनों से उसे प्रसन्न करने लगा कि राम सूर्यसम तेजस्वी, चन्द्रसम लोकप्रिय, कुबेरतुल्य सब लोकों के राजा, विष्णु के समान पराक्रमी, बृहस्पति के समान सत्यवादी और मधुरभाषी, मूर्तिमान् कामदेवसम रूपवान्, उचित स्थान में क्रोध करनेवाले, संसार में सर्वश्रेष्ठ और सब लोक उनकी बाहु का आश्रय लेकर टिके हुए हैं। जिसने मृगमाया से राम को आश्रम से हटाकर तुम्हें हरा है, उस का फल तुम अब देखोगी। (२६–३१)

जो शीघ्र ही राम युद्ध में अग्निसमान जलते क्रोध से छोड़े बाणों से

तेनाहं प्रेषितो दूतस्त्वत्सकाशमिहागतः ।
त्वद्वियोगेन दुःखार्तः स त्वां कौशलमब्रवीत् ३३
लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः ।
अभिवाद्य महाबाहुः स त्वां कौशलमब्रवीत् ३४
रामस्य च सखा देवि सुग्रीवो नाम वानरः ।
राजा वानरमुख्यानां स त्वां कौशलमब्रवीत् ३५
नित्यं स्मरति ते रामः ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ।
दिष्ट्या जीवसि वैदेहि राक्षसीवशमागता ३६
न चिराद्द्रक्ष्यसे रामं लक्ष्मणं च महारथम् ।
मध्ये वानरकोटीनां सुग्रीवं चामितौजसम् ३७
अहं सुग्रीवसचिवो हनूमान्नाम वानरः ।
प्रविष्टो नगरीं लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् ३८
कृत्वा मूर्ध्नि तदा न्यासं रावणस्य दुरात्मनः ।
त्वां द्रष्टुमुपयातोऽहं समाश्रित्य पराक्रमम् ३९
नाहमस्मि तथा देवि यथा मामवगच्छसि ।
विशङ्का त्यज्यतामेषा श्रद्धत्स्व वदतो मम ४०

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४ [१४०९]

रावण का वध करेंगे । उनके द्वारा भेजा मैं दूत तुम्हारे पास आया हूं, तुम्हारे वियोग से दुःखी वह राम तुम्हारा कुशल पूछते हैं । महातेजस्वी लक्ष्मण ने तुम्हें अभिवादन करके कुशल पूछा है । हे देवी ! वानरराज राम के मित्र सुग्रीव ने भी तुम्हारा कुशल पूछा है । लक्ष्मण और सुग्रीव-सहित राम तुम्हारा नित्य स्मरण करते हैं । यह भाग्यकी बात है कि राक्षसियों के वश में पडकर भी तुम जीती हो । (३२-३६)

शीघ्र ही तुम महाबली रामलक्ष्मण और करोडों वानरों के बीच तेजस्वी सुग्रीव को देखोगी । मैं सुग्रीव का मन्त्री हनुमान् नामक समुद्र को लांघ लङ्का में आया हूं । दुरात्मा रावण के मस्तक पर चरण धर पराक्रम का सहारा ले तुम्हें देखने को आया हूं । मैं हे देवी ! वैसा नहीं हूं, जैसा तुम

पञ्चत्रिंशः सर्गः।

तां तु रामकथां श्रुत्वा वैदेही वानरर्षभात्।
उवाच वचनं सान्त्वमिदं मधुरया गिरा १
क्व ते रामेण संसर्गः कथं जानासि लक्ष्मणम्।
वानराणां नराणां च कथमासीत्समागमः २
यानि रामस्य चिह्नानि लक्ष्मणस्य च वानर।
तानि भूयः समाचक्ष्व न मां शोकः समाविशेत् ३
कीदृशं तस्य संस्थानं रूपं तस्य च कीदृशम्।
कथमूरू कथं बाहू लक्ष्मणस्य च शंस मे ४
एवमुक्तस्तु वैदेह्या हनूमान्मारुतात्मजः।
ततो रामं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ५
जानन्ती बत दिष्ट्या मां वैदेहि परिपृच्छसि।
भर्तुः कमलपत्राक्षि संस्थानं लक्ष्मणस्य च ६
यानि रामस्य चिह्नानि लक्ष्मणस्य च यानि वै।
लक्षितानि विशालाक्षि वदतः शृणु तानि मे ७

शंका करती हो, आशंका को छोड मेरे वचन में श्रद्धा करो। (३७-४०)

यहाँ चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

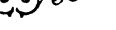

सीता हनुमान् से राम- कथा सुन मधुर वाणी से बोली- राम के साथ तुम्हारा संसर्ग कहां हुआ ? लक्ष्मणको कैसे जाना और वानर तथा मनुष्यों का समागम कैसे हुआ ? हे वानर ! राम और लक्ष्मण के जो चिह्न हैं उन्हें फिर कहो, जिस से मेरा शोक दूर हो। श्रीराम व लक्ष्मण का शरीर गठन, रूप, ऊरू और बाहु कैसे हैं, सो मुझ से कहो। सीता के कहने पर हनुमान् राम का यथावत् वर्णन करने लगे। (१-५)

हे सीते ! जानती हुई भी तुम राम-लक्ष्मण का शरीरगठनादि मुझ से पूछती हो, यह भाग्य की बात है। राम और लक्ष्मण के जो चिह्न देखे

रामः कमलपत्राक्षः पूर्णचन्द्रनिभाननः ।
रूपदाक्षिण्यसंपन्नः प्रसूतो जनकात्मजे ८
तेजसादित्यसंकाशः क्षमया पृथिवीसमः ।
बृहस्पतिसमो बुद्धया यशसा वासवोपमः ९
रक्षिता जीवलोकस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य धर्मस्य च परंतपः १०
रामो भामिनि लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ।
मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः ११
अर्चिष्मानर्चितोऽत्यर्थं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ।
साधूनामुपकारज्ञः प्रचारज्ञश्च कर्मणाम् १२
राजनीत्यां विनीतश्च ब्राह्मणानामुपासकः ।
ज्ञानवाञ्शीलसंपन्नो विनीतश्च परंतपः १३
यजुर्वेदविनीतश्च वेदविद्भिः सुपूजितः ।
धनुर्वेदे च वेदे च वेदाङ्गेषु च निष्ठितः १४
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवः शुभाननः ।
गूढजत्रुः सुताम्राक्षो रामो नाम जनैः श्रुतः १५

हैं, उन्हें सुनो । राम कमलदल के से नेत्रवाले, सब से सुन्दर और रूप तथा चातुर्य को साथ लेकर ही जन्मे हैं । तेज में सूर्य, क्षमा में पृथ्वी, बुद्धि में बृहस्पति और यशमें इन्द्रवत् हैं । संसार, स्वजन, धर्म तथा शील के रक्षक हैं । (६-१०)

हे भामिनि ! राम संसार के चारों वर्णों के रक्षक और लोकमर्यादा के रखने रखानेवाले हैं । वह सूर्यसमान राजित, ब्रह्मचर्यव्रत में स्थित, साधुओं के उपकार को जाननेवाले और कर्मों के प्रचार के ज्ञाता हैं । राजविद्या से युक्त, ब्राह्मणों के उपासक, श्रुतवान्, शीलवान् और विनीत हैं । राम यजुर्वेद के ज्ञाता, वेदज्ञों के पूजित और युद्धविद्या तथा वेदवेदांगों में निपुण हैं । बडे कन्धोंवाले, महाबाहु, शंखके सी गर्दनवाले, सुन्दरवदन, हंसलियों की अस्थियां मांसयुक्त, अरुण आंखवाले, लोगों में रामनाम से

दुन्दुभिस्वननिर्घोषः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
समश्च सुविभक्ताङ्गो वर्णे श्यामं समाश्रितः १६
त्रिस्थिरस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिसमस्त्रिषु चोन्नतः।
त्रिताम्रस्त्रिषु च स्निग्धो गम्भीरस्त्रिषु नित्यशः १७
त्रिवलीमांस्त्र्यवनतश्चतुर्व्यङ्गस्त्रिशीर्षवान्।
चतुष्कलश्चतुर्लेखश्चतुष्किष्कुश्चतुःसमः
चतुर्दशसमद्वन्द्वश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्गतिः।
महोष्ठहनुनासश्च पञ्चस्निग्धोऽष्टवंशवान् १९

प्रसिद्ध हैं। (११-१५)

वह गम्भीर शब्दवाले, चिकने वर्णवाले, प्रतापी, सुविभक्त अंगोंवाले और श्यामवर्ण हैं। उस के अंक, कलाई और मुक्के तीनों स्थिर हैं; भौंहें, अंड कोश एवं हाथ तीनों लम्बे हैं; केशका अगला भाग, वृषण तथा घुटने तीनों समतल हैं; नाभी के समीप का स्थान, सीना और बाजू तीनों उन्नत हैं; उस के आंख की छोर, नाखून और हाथ तथा पैर के तलुवे में लालिमा दीख पडती है; पैर पर रहनेवाली रेखाओं, माथे पर के केश तथा लिंग-मणि में चिकनाहट है; स्वर, गति तथा नाभि में गहराई है; उस के पेट और गले में तीन तीन झुर्रियाँ पाई जाती हैं; पैरों के तलुओं का मध्यभाग, पैरों की रेखाएँ और स्तन के अग्रभाग गहरे हैं; उस की गर्दन, जननेन्द्रिय, पीठ और घुटने के पीछे के निचले भाग चारों छोटे हैं; उस के शीर्षपर तीन आवर्त हैं और उस के अँगूठे की जड में चार लकीरें हैं; वह चार हाथ ऊँचा है; उस के हाथ, घुटने, गोदी तथा गाल चारों युग्म अवयव एकसमान है, अर्थात् विषमता नहीं है। (१६-१८)

उसके चौदह द्वन्द्व अंग अर्थात् भौंहें, नासिकापुट, आँख, कान, होठ, स्तनाग्र, कुहनी, कलाई, घुटने, वृषण, हाथ, पैर, कमर की बाजू एवं कुल्हे समरूपी हैं। उस की हर बाजू में चार बराबर डाढें हैं। सिंह, बाघ, हाथी और बैल के समान उस की चाल है। उस के होठ, ठुड्डी, नाक, अच्छी हैं। उसके जीभ, मुँह, नाखून, बाल और चमडी मार्दवयुक्त

दशपद्मो दशबृहत्त्रिभिर्व्याप्तो द्विशुक्लवान् ।
षड्उन्नतो नवतनुस्त्रिभिर्व्याप्नोति राघवः २०
सत्यधर्मरतः श्रीमान्संग्रहानुग्रहे रतः ।
देशकालविभागज्ञः सर्वलोकप्रियंवदः २१
भ्राता चास्य च द्वैमात्रः सौमित्रिरमितप्रभः ।
अनुरागेण रूपेण गुणैश्चापि तथाविधः २२
स सुवर्णच्छविः श्रीमान्रामः श्यामो महायशाः २३
तावुभौ नरशार्दूलौ त्वद्दर्शनकृतोत्सवौ ।
विचिन्वन्तौ महीं कृत्स्नामस्माभिः सह संगतौ २४
त्वामेव मार्गमाणौ तौ विचरन्तौ वसुंधराम् ।
ददर्शतुर्मृगपतिं पूर्वजेनावरोपितम् २५

हैं । उसके हाथ, ऊँगलियाँ, जाँघें और घुटने के पीछे पैर के नीचले भाग बाँस की तरह सीधे हैं । (१९)

उसके मुख, नेत्र, जीभ, चेहरे, होठ, तालू, स्तन, नख, हाथ और पैरपर कमल की आकृतियाँ हैं । उसके वक्षःस्थल, शीर्ष, माथा, गर्दन, हाथ, कंधे, नाभि, पैर, पीठ और कान दसों बडे बडे हैं । वह श्री, यश तथा तेजसे व्याप्त है । उस के मातृवंश तथा पितृवंश दोनों विशुद्ध हैं । उसके कक्ष, बाजू, नाक, उरःस्थल, कंधा और ललाट छहों उन्नत हैं । ऊँगलियाँ, केश, लोम, नख, चमडी, मूँछें, बुद्धि, दृष्टि तथा जननेन्द्रिय सूक्ष्म हैं और धर्म, अर्थ तथा काम का पालन करनेवाला है । सत्य धर्म में वह निरत है, धनिक हैं, निग्रहानुग्रह में वह पर्याप्त चतुराई दर्शाता है । वह देश तथा काल की स्थिति से परिचित है और सभी लोगों से वह प्यारा भाषण करता है । (२०-२१)

उन के सौतेले भाई अमित प्रभावाले लक्ष्मण स्नेह, रूप और गुण में रामतुल्य ही हैं, पर राम श्यामवर्ण और लक्ष्मण स्वर्णवर्ण है । वे दोनों नरशार्दूल तुम्हारे दर्शनों के इच्छुक सारी पृथ्वी को ढूंढते हुए हम लोगों

ऋष्यमूकस्य मूले तु बहुपादपसंकुले।
भ्रातुर्भयार्तमासीनं सुग्रीवं प्रियदर्शनम् २६
वयं च हरिराजं तं सुग्रीवं सत्यसंगरम्।
परिचर्यामहे राज्यात्पूर्वजेनावरोपितम् २७
ततस्तौ चीरवसनौ धनुःप्रवरपाणिनौ।
स तौ दृष्ट्वा नरव्याघ्रौ धन्विनौ वानरर्षभः २८
अभिप्लुतो गिरेस्तस्य शिखरं भयमोहितः २९
ततः स शिखरे तस्मिन्वानरेन्द्रो व्यवस्थितः।
तयोः समीपं मामेव प्रेषयामास सत्वरम् ३०
तावहं पुरुषव्याघ्रौ सुग्रीववचनात्प्रभू।
रूपलक्षणसंपन्नौ कृताञ्जलिरुपस्थितः ३१
तौ परिज्ञाततत्त्वार्थौ मया प्रीतिसमन्वितौ।
पृष्ठमारोप्य तं देशं प्रापितौ पुरुषर्षभौ ३२
निवेदितौ च तत्त्वेन सुग्रीवाय महात्मने।
तयोरन्योन्यसंभाषाद्दृढं प्रीतिरजायत ३३

के पास आये। तुम्हें ढूढते और पृथ्वी पर घूमते उन दोनोंने बडे भाई से निकाले, बहुत वृक्षोंवाले ऋष्यमूकपर्वत के पृष्ठ पर बैठे, भाई के भय से दुःखी, प्रियदर्शन सुग्रीव को देखा। (२२-२६)

हम सत्यप्रतिज्ञ भाईद्वारा राज्य से निकाले वानरराज सुग्रीव की सेवा किया करते थे। तदनन्तर उन चीरवल्कल और धनुषधारी दोनों भाइयों को देख वानरश्रेष्ठ सुग्रीव भय से मोहित हो, पर्वत की चोटी पर चढ गये। तब उस शिखर पर बैठे वानरराजने मुझे शीघ्रता से उन दोनों के समीप भेजा। सुग्रीव के कहने पर मैं पुरुषश्रेष्ठ रूपलक्षणयुक्त उन दोनों के पास जा हाथ जोड खडा हो गया। सत्य बात जाने और प्रीतियुक्त हुए उन दोनों को मैंने पीठ पर चढा शिखर पर पहुंचा दिया और महात्मा सुग्रीव से उन का ठीक ठीक वृत्तान्त कहा। (२७-३३)

परस्पर के वार्तालाप से उन दोनों का आपस में अतिशय प्रेम हो गया।

तत्र तौ कीर्तिसंपन्नौ हरीश्वरनरेश्वरौ ।
परस्परकृताश्वासौ कथया पूर्ववृत्तया ३४
तं ततः सान्त्वयामास सुग्रीवं लक्ष्मणाग्रजः ।
स्त्रीहेतोर्वालिना भ्रात्रा निरस्तं पुरुतेजसा ३५
ततस्त्वन्नाशजं शोकं रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
लक्ष्मणो वानरेन्द्राय सुग्रीवाय न्यवेदयत् ३६
स श्रुत्वा वानरेन्द्रस्तु लक्ष्मणेनेरितं वचः ।
तदासीन्निष्प्रभोऽत्यर्थं ग्रहग्रस्त इवांशुमान् ३७
ततस्त्वद्वात्रशोभीनि रक्षसा ह्रियमाणया ।
यान्याभरणजालानि पातितानि महीतले ३८
तानि सर्वाणि रामाय आनीय हरियूथपाः ।
संहृष्टा दर्शयामासुर्गतिं तु न विदुस्तव ३९
तानि रामाय दत्तानि मयैवोपहृतानि च ।
स्वनवन्त्यवकीर्णानि तस्मिन्विहतचेतसि ४०
तान्यङ्के दर्शनीयानि कृत्वा बहुविधं तदा ।
तेन देवप्रकाशेन देवेन परिदेवितम् ४१

तदनन्तर प्रीतिसम्पन्न सुग्रीव और राम अपनी अपनी कथा सुनाकर एक दूसरेके विश्वासपात्र हो गये । ततः श्रीरामने स्त्रीके कारण घरसे भाई वाली द्वारा निकाले सुग्रीव को धैर्य दिलाया । तब लक्ष्मणने तुम्हारे खोये जाने से उत्पन्न हुए राम के शोक का सुग्रीव से वर्णन किया । लक्ष्मणोक्त वार्ता सुन सुग्रीव राहुग्रस्त चन्द्रवत् मलिन हो गया । ततः रावणद्वारा हरी हुई तुमने जो गहने पृथ्वी पर गिराये थे, वानर सरदार उन सब को ला ला प्रसन्न हो राम को दिखाने लगे, पर वे यह नहीं जानते थे कि तुम किधर ले जाई गई हो । (३३-३९)

जब वे भूषण शब्द करते हुए भूमिपर गिरे थे, मैंने उन्हें उठा लिया था। उन सुन्दर गहनों को बार बार हृदय से लगा देवतुल्य राम अनेक

प्रादीपयद्दाशरथेस्तदा शोकहुताशनम् ।
शायितं च चिरं तेन दुःखार्तेन महात्मना ४२
मयापि विविधैर्वाक्यैः कृच्छ्रादुत्थापितः पुनः ४३
तानि दृष्ट्वा महार्हाणि दर्शयित्वा मुहुर्मुहुः ।
राघवः सहसौमित्रिः सुग्रीवे संन्यवेशयत् ४४
स तवादर्शनादार्ये राघवः परितप्यते ।
महता ज्वलता नित्यमग्निनेवाग्निपर्वतः ४५
त्वत्कृते तमनिद्रा च शोकश्चिन्ता च राघवम् ।
तापयन्ति महात्मानमग्न्यगारमिवाग्नयः ४६
तवादर्शनशोकेन राघवः परिचाल्यते ।
महता भूमिकम्पेन महानिव शिलोच्चयः ४७
काननानि सुरम्याणि नदीप्रस्रवणानि च ।
चरन्न रतिमाप्नोति त्वामपश्यन्नृपात्मजे ४८
स त्वां मनुजशार्दूलः क्षिप्रं प्राप्स्यति राघवः ।
समित्रबान्धवं हत्वा रावणं जनकात्मजे ४९
सहितौ रामसुग्रीवावुभावकुरुतां तदा ।

भांति के विलाप करने लगे । उन आभूषणों ने राम के शोकानल को और भी प्रज्वलित कर दिया । दुःख से मूर्च्छित हो पृथ्वीपर पडे राम को मैंने भी विविध वाक्य कह फिर से कठिनता से उठाया । लक्ष्मणसमेत राम ने उन गहनों को बार बार देख दिखलाकर सुग्रीव को सौंप दिये । ज्वालामुखी पर्वत जैसे जलती आग से नित्य तपता है, ऐसे ही राम तुम्हारे अदर्शन से हे देवी ! नित्य तपा करते हैं । जैसे अग्नियां अग्न्यगार को तैसे अनिद्रा, शोक और चिंता तुम्हारे कारण राम को तपाते हैं । (४०-४६)

तुम्हारे अदर्शन से राम बडे भूकम्प से हिलाए पर्वत के तुल्य विचलित रहते हैं । तुम्हें न देख राघव रम्य कानन, नदी, झरनों में घूमते भी आनंद नहीं पाते । बान्धवोंसहित रावण को मार राम शीघ्र ही तुम्हें प्राप्त करेंगे ।

समयं वालिनं हन्तुं तव चान्वेषणं प्रति ५०
ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यां वीराभ्यां स हरीश्वरः ।
किष्किन्धां समुपागम्य वाली युद्धे निपातितः ५१
ततो निहत्य तरसा रामो वालिनमाहवे ।
सर्वर्क्षहरिसङ्घानां सुग्रीवमकरोत्पतिम् ५२
रामसुग्रीवयोरैक्यं देव्येवं समजायत ।
हनूमन्तं च मां विद्धि तयोर्दूतमुपागतम् ५३
स्वं राज्यं प्राप्य सुग्रीवः स्वानानीय महाकपीन् ।
त्वदर्थं प्रेषयामास दिशो दश महाबलान् ५४
आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महौजसः ।
अद्रिराजप्रतीकाशाः सर्वतः प्रस्थिता महीम् ५५
ततस्ते मार्गमाणा वै सुग्रीववचनातुराः ।
चरन्ति वसुधां कृत्स्नां वयमन्ये च वानराः ५६
अङ्गदो नाम लक्ष्मीवान्वालिसूनुर्महाबलः ।
प्रस्थितः कपिशार्दूलस्त्रिभागबलसंवृतः ५७
तेषां नो विप्रणष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे ।

राम, सुग्रीव दोनों ने एक दूसरे के साथ वालीवध और तुम्हारे अन्वेषण की प्रतिज्ञा की । तब उन दोनों कुमारों के साथ सुग्रीव ने किष्किंधा में वाली को युद्ध में मरवा डाला । ततः राम ने वाली को युद्ध में तीर से मार सुग्रीव को ऋक्षवानरों का स्वामी बनाया । देवी ! राम-सुग्रीव की मित्रता इस प्रकार उत्पन्न हुई । उन का दूत यहां आए मुझे हनुमान् जानो । (४७-५३)

सुग्रीव ने स्वराज्य पा महाबली वानरों को इकट्ठा कर तुम्हारे ढूंढने को दशों दिशाओं में भेजा । तेजस्वी सुग्रीव से आज्ञा दिए पर्वततुल्य वे वानर सब ओर को चल दिए । हम और अन्य वानर सुग्रीवाज्ञा से आतुर हुए तुम्हें ढूंढते सारी पृथ्वी में घूम रहे हैं । तीन चौथाई सेना के साथ वालि-पुत्र महाबली अङ्गद भी रवाना हुआ । विंध्याचल पर रास्ता भूल जाने से

भृशं शोकपरीतानामहोरात्रगणा गताः ५८
ते वयं कार्यनैराश्यात्कालस्यातिक्रमेण च।
भयाच्च कपिराजस्य प्राणांस्त्यक्तुमुपस्थिताः ५९
विचित्य गिरिदुर्गाणि नदीप्रस्रवणानि च।
अनासाद्य पदं देव्याः प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिताः॥
ततस्तस्य गिरेर्मूर्ध्नि वयं प्रायमुपास्महे ६०
दृष्ट्वा प्रायोपविष्टांश्च सर्वान्वानरपुङ्गवान्।
भृशं शोकार्णवे मग्नः पर्यदेवयदङ्गदः ६१
तव नाशं च वैदेहि वालिनश्च तथा वधम्।
प्रायोपवेशमस्माकं मरणं च जटायुषः ६२
तेषां नः स्वामिसंदेशान्निराशानां सुमूर्षताम्।
कार्यहेतोरिहायातः शकुनिर्वीर्यवान्महान् ६३
गृध्रराजस्य सोदर्यः संपातिर्नाम गृध्रराट्।
श्रुत्वा भ्रातृवधं कोपादिदं वचनमब्रवीत् ६४
यवीयान्केन मे भ्राता हतः क्व च निपातितः।
एतदाख्यातुमिच्छामि भवद्भिर्वानरोत्तमाः ६५

शोकग्रस्त हमें वहां बहुत दिन रात बीत गए। कार्य में निराशा, काल के बीतने और वानरराज के भय के कारण हम प्राण त्यागने को उद्यत हुए। वन, पर्वत, दुर्ग, झरनों को ढूंढ तुम्हारा पता न पाकर हम उस गिरि-शिखरपर प्रायोपवेशन करके मरने को उद्यत हो गये। (५४-६०)

प्रायोपवेशन करते हम सब वानरों का देख, तुम्हारा नाश, वाली का वध, जटायुका मरण और हमारे प्रायोपवेशन के स्मरण से शोकसागर में डूबा अङ्गद बडा रुदन करने लगा। निराश और मरने को बैठे हम लोगों की कार्यसिद्धि के लिए ही वीर्यवान् एक पक्षी आया, जो सम्पाति नाम-वाला जटायु का सगा भाई था। भाई के वध का समाचार सुन वह क्रोध

अङ्गदोऽकथयत्तस्य जनस्थाने महद्वधम् ।
रक्षसा भीमरूपेण त्वामुद्दिश्य यथार्थतः ६६
जटायोस्तु वधं श्रुत्वा दुःखितः सोऽरुणात्मजः ।
त्वामाह स वरारोहे वसन्तीं रावणालये ६७
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा संपातेः प्रीतिवर्धनम् ।
अङ्गदप्रमुखाः सर्वे ततः प्रस्थापिता वयम् ६८
विन्ध्यादुत्थाय संप्राप्ताः सागरस्यान्तमुत्तमम् ।
त्वद्दर्शने कृतोत्साहा हृष्टाः पुष्टाः प्लवङ्गमाः ६९
अङ्गदप्रमुखाः सर्वे वेलोपान्तमुपागताः ।
चिन्तां जग्मुः पुनर्भीमां त्वद्दर्शनसमुत्सुकाः ७०
अथाहं हरिसैन्यस्य सागरं दृश्य सीदतः ।
व्यवधूय भयं तीव्रं योजनानां शतं प्लुतः ७१
लङ्का चापि मया रात्रौ प्रविष्टा राक्षसाकुला ।
रावणश्च मया दृष्टस्त्वं च शोकनिपीडिता ७२
एतत्ते सर्वमाख्यातं यथावृत्तमनिन्दिते ।

से बोला– मेरे छोटे भाई को किसने और कहां मार डाला, यह वार्ता हे वानरों ! मैं तुमसे सुनना चाहता हूं । अङ्गद ने तुम्हारे कारण रावणद्वारा जनस्थान में उस का वध ज्यों का त्यों कह दिया । (६१-६६)

जटायुवध सुन दुःखित हुए सम्पातिने कहा कि सीता रावणगृह में वसती है । आनन्ददायक उस का वचन सुन अंगद है सरदार जिन का ऐसे हम तब शीघ्रता से रवाना हुए । तुम्हारे देखने के लिये उत्साहवाले हृष्ट और सन्तुष्ट हुए वानर विन्ध्यपर्वत से चलकर समुद्र के किनारे पहुंचे । तुम्हारे दर्शनों के इच्छुक वानरों को, जो भयभीत हो रहे थे और अंगद जिन का अग्रणी था, फिर चिन्ताने आ घेरा । (६७-७०)

तब सागरको देख दुःखी होती वानरसेनाके तीव्र भयको छुडा मैं १०० योजन लांघ गया और राक्षसोंसे भरी लंकामें रात्रिमें प्रविष्ट हो रावण और शोकातुर तुम्हें देखा । हे अनिन्दित देवी ! यह सब वृत्तान्त ठीक ठीक तुमसे

अभिभाषस्व मां देवि दूतो दाशरथेरहम् ७३
तन्मां रामकृतोद्योगं त्वन्निमित्तमिहागतम् ।
सुग्रीवसचिवं देवि बुद्धयस्व पवनात्मजम् ७४
कुशली तव काकुत्स्थः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
गुरोराराधने युक्तो लक्ष्मणः शुभलक्षणः ७५
तस्य वीर्यवतो देवि भर्तुस्तव हिते रतः ।
अहमेकस्तु संप्राप्तः सुग्रीववचनादिह ७६
मयेयमसहायेन चरता कामरूपिणा ।
दक्षिणा दिगनुक्रान्ता त्वन्मार्गविचयैषिणा ७७
दिष्ट्याहं हरिसैन्यानां त्वन्नाशमनुशोचताम् ।
अपनेष्यामि संतापं तवाधिगमभाषणात् ७८
दिष्ट्या हि न मम व्यर्थं सागरस्येह लङ्घनम् ।
प्राप्स्याम्यहमिदं देवि त्वद्दर्शनकृतं यशः ७९
राघवश्च महावीर्यः क्षिप्रं त्वामभिपत्स्यते ।
सपुत्रबान्धवं हत्वा रावणं राक्षसाधिपम् ८०

कह दिया । मैं रामका दूत हूं, मुझ से बातें करो । हे देवी ! राम के लिये उद्योग करनेवाले, तुम्हारे कारण यहां आये, सुग्रीव के मंत्री मुझे पवनपुत्र जानो । सर्वशस्त्रधारियों में श्रेष्ठ तुम्हारे नाथ और गुरु बडे भाई की आराधना में युक्त लक्ष्मण कुशलपूर्वक हैं । (७१-७५)

हे देवी ! बली तुम्हारे पति का हितकारी केवल मैं सुग्रीव के वचन से यहां आया हूं । तुम्हारी तलाश में लगे असहाय कामरूपी मैंने दक्षिण-दिशा ढूंढ डाली । भाग्य से मैं तुम्हारा दर्शनसंवाद देकर तुम्हारे खोये जाने का शोक करती वानरसेना के सन्ताप को दूर करूंगा । सौभाग्य से मेरा समुद्र का लांघना व्यर्थ नहीं हुआ और भाग्य से ही तुम्हारे दर्शन करने के यश को मैं प्राप्त होऊंगा । मित्र और बान्धवोंसहित रावण को मार राम शीघ्र तुम्हें प्राप्त होंगे । (७६-८०)

माल्यवान्नाम वैदेहि गिरीणामुत्तमो गिरिः।
ततो गच्छति गोकर्णं पर्वतं केसरी हरिः ८१
स च देवर्षिभिर्दिष्टः पिता मम महाकपिः।
तीर्थे नदीपतेः पुण्ये शम्बसादनमुद्धरन् ८२
यस्यां हरिणः क्षेत्रे जातो वातेन मैथिलि।
हनूमानिति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा ८३
विश्वासार्थं तु वैदेहि भर्तुरुक्ता मया गुणाः।
अचिरात्त्वामितो देवि राघवो नयिता ध्रुवम् ८४
एवं विश्वासिता सीता हेतुभिः शोककर्शिता।
उपपन्नैरभिज्ञानैर्दूतं तमधिगच्छति ८५
अतुलं च गता हर्षं प्रहर्षेण तु जानकी।
नेत्राभ्यां वक्त्रपक्ष्माभ्यां मुमोचानन्दजं जलम्। ८६
चारु तद्वदनं तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम्।
अशोभत विशालाक्ष्या राहुमुक्त इवोडुराट् ८७
हनूमन्तं कपिं व्यक्तं मन्यते नान्यथेति सा।
अथोवाच हनूमांस्तामुत्तरं प्रियदर्शनाम् ८८

हे वैदेहि! पर्वतश्रेष्ठ माल्यवान् पर केसरी नाम वानर रहते थे, उन्होंने वहां से गोकर्ण पर्वत पर जा, देवर्षियों से आज्ञा पा, उस पवित्र नदीपति के पुण्यतीर्थ में शम्बसाधन असुर को मार डाला। हे सीते! उन्हीं वानर की स्त्री में पवन से मेरी उत्पत्ति हुई है। अपने कर्म से मैं लोक में हनुमान् नाम से विख्यात हूं, विश्वासार्थ ही मैंने स्वामी के गुण कहे। शीघ्र ही राम तुमको यहां से ले जायंगे। शोकातुरा सीताने अनेक हेतु और राम-लक्ष्मण के यथार्थ चिन्ह जान हनुमान् को दूत ही समझा। (८१-८५)

आनन्द से हर्षित हुई सीता आंखों में खुशी के आंसू बहाने लगी। बडी बडी आंखों से युक्त सीता का मुखमण्डल राहुमुक्त चन्द्रमा के समान शोभा देने लगा। तब सीताने हनुमान् को प्रकृत वानर जान भ्रांति त्याग

एतत्ते सर्वमाख्यातं समाश्वसिहि मैथिलि ।
किं करोमि कथं वा ते रोचते प्रतियाम्यहम् ८९
हतेऽसुरे संयति शम्बसादने कपिप्रवीरेण महर्षिचोदनात् ।
ततोऽस्मि वायुप्रभवो हि मैथिलि प्रभावतस्तत्प्रतिमश्च वानरः ९०

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥३५॥

षट्त्रिंशः सर्गः । [१४९९]

भूय एव महातेजा हनूमान्पवनात्मजः ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सीताप्रत्ययकारणात् १
वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः ।
रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम् । २
प्रत्ययार्थं तवानीतं तेन दत्तं महात्मना ।
समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीणदुःखफला ह्यसि ३
गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषितम् ।
भर्तारमिव संप्राप्तं जानकी मुदिताऽभवत् ४
चारु तद्वदनं तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम् ।
बभूव हर्षोदग्रं च राहुमुक्त इवोडुराट् ५

दी, तब हनुमान् उस प्रियदर्शना से कहने लगा- हे मैथिलि ! मैंने सब बयान कर दिया, अब विश्वास करो, मैं क्या करूं ? तुम्हें क्या पसन्द है ? मैं अब लौटूंगा । हे मैथिलि ! महर्षि की आज्ञा से शम्बसाधनवध करनेवाले केसरी का पुत्र उस के समानप्रभाव ही मैं हनुमान् हूँ । (८६--९०)

यहाँ पैंतीसवा सर्ग समाप्त हुआ ।

तेजस्वी हनुमान् सीता को विश्वास दिलाने के लिए फिर विनीतवचन बोला, हे महाभागे ! मैं रामदूत वानर हूं, रामनामाङ्कित यह अंगूठी देखो । उन महात्मा राम से दी इसे तुम्हारे विश्वासार्थ लाया हूं, विश्वास करो, अब तुम्हारे दुःखों का अन्त आ गया । जानकी पति की अंगूठी को ग्रहण कर और देख ऐसी प्रसन्न हुई मानो रामही मिल गए । उन का वह अरुण कोयेवाला बडे बडे शुभ नेत्रों से युक्त मनोहर वदनमण्डल राहुमुक्त

ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुः संदेशहर्षिता ।
परितुष्टा प्रियं कृत्वा प्रशशंस महाकपिम् ६
विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम ।
येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम् ७
शतयोजनविस्तीर्णः सागरो मकरालयः
विक्रमश्लाघनीयेन क्रमता गोष्पदीकृतः ८
नहि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ ।
यस्य ते नास्ति संत्रासो रावणादपि संभ्रमः ९
अर्हसे च कपिश्रेष्ठ मया समभिभाषितुम् ।
यद्यसि प्रेषितस्तेन रामेण विदितात्मना १०
प्रेषयिष्यति दुर्धर्षो रामो न ह्यपरीक्षितम् ।
पराक्रममविज्ञाय मत्सकाशं विशेषतः ११
दिष्ट्या च कुशली रामो धर्मात्मा सत्यसंगरः ।
लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः १२
कुशली यदि काकुत्स्थः किं न सागरमेखलाम् ।
महीं दहति कोपेन युगान्ताग्निरिवोत्थितः १३

चन्द्रवत् शोभा देने लगा । (१-५)

तब लज्जायुक्त पतिसन्देश से हर्षित सीता हनुमान् की प्रशंसा करने लगी- हे हरिश्रेष्ठ ! तू बडा पराक्रमी, समर्थ और बुद्धिमान है कि जिसने अकेले ही राक्षसस्थान मथ डाला । तुम्हारा विक्रम श्लाघनीय है कि १०० योजन चौडा समुद्र तूने गोपद के तुल्य समझ कर सरलता से लांघ डाला। तुम्हें रावण से भी भय और सम्भ्रम नहीं, तुम साधारण वानर नहीं हो । जब कि विदितात्मा राम ने तुम्हें भेजा है, तो तुम मेरे साथ वार्तालाप करने के योग्य हो । (६-१०)

पराक्रमी राम पराक्रम विना जाने अपरीक्षित व्यक्ति को विशेषकर मेरे पास न भेजेंगे । सौभाग्य की बात है कि सत्यप्रतिज्ञ राम और महातेजस्वी लक्ष्मण कुशलपूर्वक हैं । यदि राम सकुशल हैं, तो सागरान्त पृथ्वी को

अथवा शक्तिमन्तौ तौ सुराणामपि निग्रहे ।
ममैव तु न दुःखानामस्ति मन्ये विपर्ययः १४
कच्चिन्न व्यथते रामः कच्चिन्न परितप्यते ।
उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुरुषोत्तमः १५
कच्चिन्न दीनः संभ्रान्तः कार्येषु च न मुह्यति ।
कच्चित्पुरुषकार्याणि कुरुते नृपतेः सुतः १६
द्विविधं त्रिविधोपायमुपायमपि सेवते ।
विजिगीषुः सुहृत्कच्चिन्मित्रेषु च परंतपः १७
कच्चिन्मित्राणि लभते मित्रैश्चाप्यभिगम्यते ।
कच्चित्कल्याणमित्रश्च मित्रैश्चापि पुरस्कृतः १८
कच्चिदाशास्ति देवानां प्रसादं पार्थिवात्मजः ।
कच्चित्पुरुषकारं च दैवं च प्रतिपद्यते १९
कच्चिन्न विगतस्नेहो विवासान्मयि राघवः ।
कच्चिन्मां व्यसनादस्मान्मोक्षयिष्यति राघवः २०

युगान्त में उठी अग्नि के समान क्यों नहीं जला डालते ? अथवा वे दोनों तो देवताओं के निग्रह में भी समर्थ हैं, पर मेरे ही दुःखों का अन्त अभी नहीं आया । श्रीराम व्यथित तो नहीं होते, परितप्त तो नहीं रहते, मेरे उद्धार का यत्न तो करते हैं ? (११-१५)

वह राजकुमार दीन और व्याकुल हो पुरुषोचित कर्तव्य कार्यों का करना तो नहीं भूल जाते हैं ? श्रीराम विजय की अभिलाषा कर मित्रों के प्रति साम, दाम और शत्रु के प्रति भेद, दण्ड का उपाय तो प्रयोग किए जाते हैं ? श्रीराम औरों के साथ मित्रता तो करते हैं ? और भी उनके साथ मित्रता करते हैं ? मित्र उनका और वे मित्रों का सत्कार तो करते हैं ? वे देवतानुग्रह की प्रार्थना तो करते रहते हैं ? उन्होंने पौरुष और देव बल का आश्रय तो ले रक्खा है ? दूर रहने से उन का मुझ से स्नेह तो नहीं जाता रहा ? श्रीराम इस विपद् से मेरा उद्धार तो करेंगे ? (१६-२०)

सुखानामुचितो नित्यमसुखानामनूचितः ।
दुःखमुत्तरमासाद्य कच्चिद्रामो न सीदति २१
कौसल्यायास्तथा कच्चित्सुमित्रायास्तथैव च ।
अभीक्ष्णं श्रूयते कच्चित्कुशलं भरतस्य च २२
मन्निमित्तेन मानार्हः कच्चिच्छोकेन राघवः ।
कच्चिन्नान्यमना रामः कच्चिन्मां तारयिष्यति २३
कच्चिदक्षौहिणीं भीमां भरतो भ्रातृवत्सलः ।
ध्वजिनीं मन्त्रिभिर्गुप्तां प्रेषयिष्यति मत्कृते २४
वानराधिपते श्रीमान्सुग्रीवः कच्चिदेष्यति ।
मत्कृते हरिभिर्वीरैर्वृतो दन्तनखायुधैः २५
कच्चिच्च लक्ष्मणः शूरः सुमित्रानन्दवर्धनः ।
अस्त्रविच्छरजालेन राक्षसान्विधमिष्यति २६
रौद्रेण कच्चिदस्त्रेण रामेण निहतं रणे ।
द्रक्ष्याम्यल्पेन कालेन रावणं ससुहृज्जनम् २७
कच्चिन्न तद्धेमसमानवर्णं तस्याननं पद्मसमानगन्धि ।
मया विना शुष्यति शोकदीनं जलक्षये पद्ममिवातपेन २८

सुखों के योग्य और दुःखों से अपरिचित राम दुःख पाकर व्याकुल तो नहीं होते ? भला कौसल्या, सुमित्रा और भरत का कुशल संवाद तो निरंतर मिलता रहता है ? आदरणीय राम मेरे वियोग के शोक से सन्तप्त और विमना तो नहीं होते ? वह मेरा उद्धार तो करेंगे ? क्या भाई से प्यार करनेवाले भरत ने मेरे कारण मन्त्रियों से रक्षित भयङ्कर अक्षौहिणी सेना भेजी है ? क्या वानरराज सुग्रीव मेरे उद्धार के लिए दन्त और नख इन आयुधों से युक्त वानरोंसहित यहां आवेंगे ? (२१-२५)

क्या शूर सौमित्रि लक्ष्मण अस्त्रजाल बिछा राक्षसों को भस्म करेंगे ? क्या मैं शीघ्र ही मित्रोंसहित रावण को भयङ्कर अस्त्र से मरा देख सकूंगी ? कहीं स्वर्णतुल्य वर्णवाला राम का मुखमण्डल मेरे विना शोक से सूख

धर्मापदेशात्त्यजतः स्वराज्यं मां चाप्यरण्यं नयतः पदातेः ।
नासीद्यथा यस्य न भीर्न शोकः काङ्क्षित्स धैर्यं हृदये करोति २९
न चास्य माता न पिता न चान्यः स्नेहाद्विशिष्टोऽस्ति मया समो वा ।
तावद्धयहं दूत जिजीविषेयं यावत्प्रवृत्तिं शृणुयां प्रियस्य ३०
इतीव देवी वचनं महार्थं तं वानरेन्द्रं मधुरार्थमुक्त्वा ।
श्रोतुं पुनस्तस्य वचोऽभिरामं रामार्थयुक्तं विरराम रामा ३१

सीताया वचनं श्रुत्वा मारुतिर्भीमविक्रमः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ३२
न त्वामिहस्थां जानीते रामः कमललोचनः ।
तेन त्वां नानयत्याशु शचीमिव पुरन्दरः ३३
श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः ।
चमूं प्रकर्षन्महतीं हर्यृक्षगणसंयुताम् ३४
विष्टम्भयित्वा बाणौघैरक्षोभ्यं वरुणालयम्
करिष्यति पुरीं लङ्कां काकुत्स्थः शान्तराक्षसाम् ३५

तो नहीं गया ? धर्म के कारण राज्य छोड मुझे साथ ले पैदल वन में आने पर जिन्हें व्यथा, डर, शोक कुछ नहीं हुआ, उन राम का हृदय धैर्य तो धारता है ? हे दूत ! उन को मुझ से अधिक प्यारा माता, पिता वा अन्य कोई पुरुष नहीं; जबतक मैं परम प्रिय राम की कथा सुनती हूं, तबतक ही जीती हूं । (२६-३०)

मनोरमा सीता हनुमान्से इस प्रकार युक्तियुक्त मधुर वचन कह, उसके मुख से रामकथा सुनने की इच्छा से मौन हो रही । सीता का वचन सुन भीमविक्रम हनुमान् शिरपर को हाथ जोड बोला— हे कमलेक्षणे ! राम यह नहीं जानते कि तुम यहां हो, इस से जैसे इन्द्र शची का वैसे ही वे तुम्हारा उद्धार नहीं कर सके । मुझसे समाचार जान राघव शीघ्र वानर और ऋक्षों की बडी सेना ले यहां आवेंगे । अक्षोभ्य समुद्र को बाणों से पाट राम लङ्का को राक्षसों से खाली कर डालेंगे । (३१-३५)

तत्र यद्यन्तरा मृत्युर्यदि देवा महासुराः ।
स्थास्यन्ति पथि रामस्य स तानपि वधिष्यति ३६
तवादर्शनजेनार्ये शोकेन परिपूरितः ।
न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ३७
मन्दरेण च ते देवि शपे मूलफलेन च ।
मलयेन च विन्ध्येन मेरुणा दर्दुरेण च ३८
यथा सुनयनं वल्गु बिम्बोष्ठं चारुकुण्डलम् ।
मुखं द्रक्ष्यसि रामस्य पूर्णचन्द्रमिवोदितम् ३९
क्षिप्रं द्रक्ष्यसि वैदेहि रामं प्रस्रवणे गिरौ ।
शतक्रतुमिवासीनं नागपृष्ठस्य मूर्धनि ४०
न मांसं राघवो भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते ।
वन्यं सुविहितं नित्यं भक्तमश्नाति पञ्चमम् ४१
नैव दंशान्न मशकान्न कीटान्न सरीसृपान् ।
राघवोऽपनयेद्रात्रावद्वतेनान्तरात्मना ४२
नित्यं ध्यानपरो रामो नित्यं शोकपरायणः ।
नान्यच्चिन्तयते किंचित्स तु कामवशं गतः ४३

लङ्का पर चढाई करने में यदि असुरोंसहित देवता भी राम के रास्ते में पड़ेंगे, तो वह उन का भी वध कर डालेंगे । तुम्हारे अदर्शन के शोक से युक्त राम सिंहपीडित गज के समान सुख नहीं पाते । हे देवि ! मैं मलय, विंध्य, मेरु, मन्दर, दुर्दर पर्वत और कन्दमूल की शपथ खाता हूं कि तुम सुनयनयुक्त, मनोहर, सुन्दर कुण्डलों से युक्त पूर्णचन्द्रतुल्य राम के मुखमण्डल को देखोगी । हे वैदेहि ! शीघ्र ही तुम ऐरावत की पीठ पर इन्द्रवत् राम को प्रस्रवणगिरी पर बैठा देखोगी । (३६-४०)

श्रीराम मांस व मधुपान को त्याग वन के नियमानुसार नित्य संध्या के समय अन्नाहार किया करते हैं । उन का अन्तरात्मा तुम में इस प्रकार लगा हुआ है कि शरीर पर मच्छर के बैठने, या कीडेमकोडे सर्पादि के आ जाने पर उन को नहीं हटाते । नित्य तुम में ध्यान लगाए नित्य शोका-

अनिद्रः सततं रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः।
सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन्प्रतिबुध्यते ४४
दृष्ट्वा फलं वा पुष्पं वा यच्चान्यत्स्त्रीमनोहरम्।
बहुशो हा प्रियेत्येवं श्वसंस्त्वामभिभाषते ४५
स देवि नित्यं परितप्यमानस्त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः।
धृतव्रतो राजसुतो महात्मा तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः ४६
सा रामसंकीर्तनवीतशोका रामस्य शोकेन समानशोका।
शरन्मुखेनाम्बुदशेषचन्द्रा निशेव वैदेहसुता बभूव ४७
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः॥३६॥[१५४६]

कुल राम और किसी बात की चिंता नहीं करते। राम कभी सोते नहीं, सोते हुए भी 'सीते!' ऐसा मधुर वाणी से कह जाग उठते हैं। फल, पुष्प या अन्य मनोहर वस्तु देखते ही लम्बा श्वास ले 'हा प्रिये!' कह तुम को पुकारते हैं। (४१-४५)

फल, फूल या स्त्रियों के दिल को खींचनेवाली दूसरी कोई वस्तु देखते ही हे नृपपत्नी! वह 'हे प्रिये!' कह कर और ठंडी साँस लेकर शोक करता रहता है। तुझे ही लक्ष्य में रखकर वह 'सीता' कह पुकारता है और ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करता हुआ वह महान् राजकुमार तेरी प्राप्ति के लिए रातदिन चेष्टा करता है। (४६)

इस भाँति पहले ही रामचन्द्रजी का समाचार सुनकर उस का शोक दूर हुआ, लेकिन अपने लिए रामचंद्रजी शोकमग्न हो चुके हैं, ऐसा सुनने पर फिर वह उनके समान ही शोक करने लगी। उस विदेह नृपकन्या सीता की मुखाकृति क्षणक्षण में बदलने लगी, अतः वह मानों आकाश में कुछ कुछ मेघों के रहते शरत् ऋतु की चांदनी में धुली हुई रात्री के समान सुहाने लगी; क्योंकि रामचंद्रजी बराबर अपने नाम का जप कर रहे हैं, ऐसा सुनते ही वह हर्षित हो उठी, परन्तु वे अपने कारण शोकाकुल बन बैठे, ऐसा विदित होते ही उसके चेहरेपर हलकीसी विषादरेखा दौड गयी। इस प्रकार उस के मुखमंडलपर बार बार परिवर्तन होने से शरदृतुमें इधर-

सप्तत्रिंशः सर्गः ।

सा सीता वचनं श्रुत्वा पूर्णचन्द्रनिभानना ।
हनूमन्तमुवाचेदं धर्मार्थसहितं वचः १
अमृतं विषसंपृक्तं त्वया वानर भाषितम् ।
यच्च नान्यमना रामो यच्च शोकपरायणः २
ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे ।
रज्ज्वेव पुरुषं बद्ध्वा कृतान्तः परिकर्षति ३
विधिर्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम ।
सौमित्रिं मां च रामं च व्यसनैः पश्य मोहितान् ४
शोकस्यास्य कथं पारं राघवोऽधिगमिष्यति ।
प्लवमानः परिक्रान्तो हतनौः सागरे यथा ५
राक्षसानां वधं कृत्वा सूदयित्वा च रावणम् ।
लङ्कामुन्मथितां कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मां पतिः ६

उधर थोडे से मेघों के रहनेपर चांदनी रात में चन्द्रमा जैसे बार बार ढका हुआ तथा खुला दीख पडता है, उसी तरह पलपल में हर्षित एवं व्याकुल मुखाकृति के कारण सीता दिखाई देने लगी । (४७)

यहाँ छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

पूर्णचन्द्रतुल्य मुखवाली सीता यह सुन धर्मार्थयुक्त वचन बोली । यह कि श्रीराम का मन और किसी वस्तु में नहीं रमता और वह शोक-परायण हैं- यह तुम्हारा कथन विषयुक्त अमृत के तुल्य है । सुविस्तीर्ण ऐश्वर्य वा दारुण दुःख में काल रस्सी में बांध पुरुष को खींचा करता है । हे वानरश्रेष्ठ ! प्राणियों का प्रारब्ध अनिवारणीय होता है । देखो कि लक्ष्मण, राम और मैं किस दुःख में पडे हैं ? न मालूम नौका टूट जाने से उसपर से गिर समुद्र में तैरते हुए पुरुष के समान राम इस शोक को कब पार पायेंगे ? (१-५)

मेरे स्वामी राक्षसों व रावण का वध कर लङ्का को विध्वस्त कर कब

स वाच्यः संत्वरस्वेति यावदेव न पूर्यते ।
अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम् ७
वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवंगम ।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम ८
विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनं प्रति ।
अनुनीतः प्रयत्नेन न च तत्कुरुते मतिम् ९
मम प्रतिप्रदानं हि रावणस्य न रोचते ।
रावणं मार्गते सङ्ख्ये मृत्युः कालवशं गतम् १०
ज्येष्ठा कन्या कला नाम विभीषणसुता कपे ।
तया ममैतदाख्यातं मात्रा प्रहितया स्वयम् ११
अविन्ध्यो नाम मेधावी विद्वान्राक्षसपुङ्गवः ।
धृतिमाञ्छीलवान्वृद्धो रावणस्य सुसंमतः १२
रामक्षयमनुप्राप्तं रक्षसां प्रत्यचोदयत् ।
न च तस्य स दुष्टात्मा शृणोति वचनं हितम् १३
आशंसेयं हरिश्रेष्ठ क्षिप्रं मां प्राप्स्यते पतिः ।
अन्तरात्मा हि मे शुद्धस्तस्मिंश्च बहवो गुणाः १४

मुझे दर्शन देंगे? इस वर्ष के पूर्ण होने से पहले राम को आना चाहिए, कारण कि जबतक यह वर्ष है, तबतक ही मेरा जीवन है। दश मास बीत गए और दो शेष हैं- रावण ने यही मेरे जीवन का समय नियत किया है। भाई विभीषण से समझाया हुआ भी वह मुझे लौटा देने की मति नहीं करता। मेरा लौटा देना रावण को पसन्द नहीं है, क्योंकि युद्ध में मृत्यु उसे ढूंढ रही है। (६-१०)

स्वमाता से सुनी यह बात विभीषण की बड़ी कन्या कला ने मुझ से कही थी। अविंध्य नाम एक बड़ा विद्वान् और बुद्धिमान् राक्षस है और वह धैर्यवान्, शीलवान् और वृद्ध होने से रावण से भी बड़ी मान्यता पाता है। 'रामद्वारा राक्षसों का नाश होगा,' ऐसा उसने रावण को

उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानृशंस्यं कृतज्ञता ।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे १५
चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां जघान यः ।
जनस्थाने विना भ्रात्रा शत्रुः कस्तस्य नोद्विजेत् १६
न स शक्यस्तुलयितुं व्यसनैः पुरुषर्षभः ।
अहं तस्यानुभावज्ञा शक्रस्येव पुलोमजा १७
शरजालांशुमाञ्छूरः कपे रामदिवाकरः ।
शत्रुरक्षोमयं तोयमुपशोषं नयिष्यति १८
इति संजल्पमानां तां रामार्थे शोककर्शिताम् ।
अश्रुसंपूर्णवदनामुवाच हनुमान्कपिः १९
श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः ।
त्वमूं प्रकर्षन्महतीं हर्यृक्षगणसंकुलाम् २०
अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव स राक्षसात् ।
अस्माद् दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते २१
त्वां तु पृष्ठगतां कृत्वा संतरिष्यामि सागरम् ।

कहा; परन्तु दुरात्मा रावण ने उस का भी न माना। निश्चय राम मुझे शीघ्र मिलेंगे, क्योंकि मेरा अन्तरात्मा शुद्ध है और उनमें बहुतसे गुण है। उत्साह पौरुष, सत्त्व, अक्रूरता, कृतज्ञता, विक्रम, प्रभाव ये सब गुण राम में हैं। (११-१५)

जनस्थान में जिन राम ने अकेले चौदह सहस्र राक्षस मारे, उन से कौन शत्रु न डरेगा ? उस पुरुषश्रेष्ठ की व्यसनी राक्षसों से तुलना नहीं हो सकती, मैं उन का प्रभाव जानती हूं। सूर्यवत् राम किरणरूप बाणों से जलरूप राक्षस-वैरियों को विना श्रम ही सोख लेंगे। (१६-१८)

राम के कारण शोकार्त अश्रुपूर्ण आंखोंवाली तद्वत् कहती सीता से हनुमान् बोला कि मेरा वचन सुनते ही राम बडी वानरसेनासहित यहां शीघ्र आवेंगे। अथवा मेरी पीठ पर चढो, मैं आज ही इस दुःख से तुम्हें

शक्तिरस्ति हि मे वोढुं लङ्कामपि सरावणाम् २२
अहं प्रस्रवणस्थाय राघवायाद्य मैथिलि।
प्रापयिष्यामि शक्राय हव्यं हुतमिवानलः २३
द्रक्ष्यस्यद्यैव वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम्।
व्यवसायसमायुक्तं विष्णुं दैत्यवधे यथा २४
त्वद्दर्शनकृतोत्साहमाश्रमस्थं महाबलम्।
पुरन्दरमिवासीनं नगराजस्य मूर्धनि २५
पृष्ठमारोह मे देवि मा विकाङ्क्षस्व शोभने।
योगमन्विच्छ रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी २६
कथयन्तीव शशिना संगमिष्यसि रोहिणी।
मत्पृष्ठमधिरोह त्वं तराकाशं महार्णवम् २७
नहि मे संप्रयातस्य त्वामितो नयतोऽङ्कने।
अनुगन्तुं गतिं शक्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः २८
यथैवाहमिह प्राप्तस्तथैवाहमसंशयम्।
यास्यामि पश्य वैदेहि त्वामुद्यम्य विहायसम् २९

छुड़ा दूंगा। तुम्हें पीठ पर चढ़ा मैं सागर को उतर जाऊंगा, मुझ में रावण सहित लङ्का के ले जाने की भी शक्ति है। सो हे सीते! आज ही तुम्हें प्रस्रवण पर ठहरे श्रीराम के पास पहुंचा दूंगा। सो तुम आज ही लक्ष्मण-सहित राम को देख लोगी। वे राम तुम्हारे दर्शन के इच्छुक पर्वतोपरि इन्द्रवत् बैठे ही हैं। (२१-२५)

हे देवि! सोचविचार न कर पीठ पर चढ़ लो और राम से मिलने की रोहिणीवत् इच्छा करो। "राम के पास मुझे पहुँचा हो" यह तुम्हारे कहते ही चन्द्र से रोहिणी के समान तुम्हारा राम से मीलन होगा। मेरी पीठ पर चढ़ आकाशमार्ग से समुद्र उतरो। तुम्हें ले यहां से जाते हुए मेरे पीछे लङ्का का कोई निवासी नहीं जा सकता। जैसे आया निश्चय, वैसे ही तुम्हें ले चला जाऊंगा, देख लेना। (२६-२९)

मैथिली तु हरिश्रेष्ठाच्छ्रुत्वा वचनमद्भुतम् ।
हर्षविस्मितसर्वाङ्गी हनूमन्तमथाब्रवीत् ३०
हनूमन्दूरमध्वानं कथं मां नेतुमिच्छसि ।
तदेव खलु ते मन्ये कपित्वं हरियूथप ३१
कथं चाल्पशरीरस्त्वं मामितो नेतुमिच्छसि ।
सकाशं मानवेन्द्रस्य भर्तुर्मे प्लवगर्षभ ३२
सीतायास्तु वचः श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः ।
चिन्तयामास लक्ष्मीवान्नवं परिभवं कृतम् ३३
न मे जानाति सत्त्वं वा प्रभावं वासितेक्षणा ।
तस्मात्पश्यतु वैदेही यद्रूपं मम कामतः ३४
इति संचिन्त्य हनुमांस्तदा प्लवगसत्तमः ।
दर्शयामास सीतायाः स्वरूपमरिमर्दनः ३५
स तस्मात्पादपाद्धीमानाप्लुत्य प्लवगर्षभः ।
ततो वर्धितुमारेभे सीताप्रत्ययकारणात् ३६
मेरुमन्दरसंकाशो बभौ दीप्तानलप्रभः ।
अग्रतो व्यवतस्थे च सीताया वानरर्षभः ३७
हरिः पर्वतसंकाशस्ताम्रवक्त्रो महाबलः ।
वज्रदंष्ट्रनखो भीमो वैदेहीमिदमब्रवीत् ३८

हनुमान् से यह अद्भुत वचन सुन हर्ष और विस्मय से सीता बोली- हे हनुमन् ! दूर मार्ग से कैसे मुझे ले जाने की इच्छा करता है ? यह तो तेरा बन्दरपना ही मैं समझती हूं । अल्पशरीरवाला तू मुझे कैसे मेरे स्वामी तक ले जाया चाहता है ? (३०-३२)

सीता की बात सुन हनुमान् सोचने लगा कि सीताने मेरा अनादर किया । श्यामनयना सीता मेरे सत्त्व वा प्रभाव को नहीं जानती, अब यह नये रूपको देखें । यह सोच शत्रुनाशक हनुमान् ने अपना असल रूप दिखाया । वह धीमान् वृक्ष से कूद सीता के विश्वास के लिए बढने लगा । मेरुमन्दरतुल्य दीप्ताग्नि जैसा हो, वह सीता के आगे खडा हो

सपर्वतवनोद्देशां साट्टप्राकारतोरणाम् ।
लङ्कामिमां सनाथां वा नयितुं शक्तिरस्ति मे ३९

तदवस्थाप्यतां बुद्धिरलं देवि विकाङ्क्षया ।
विशोकं कुरु वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम् ४०

तं दृष्ट्वाचलसंकाशमुवाच जनकात्मजा ।
पद्मपत्रविशालाक्षी मारुतस्यौरसं सुतम् ४१

तव सत्त्वं बलं चैव विजानामि महाकपे ।
वायोरिव गतिश्चापि तेजश्चाग्नेरिवाद्भुतम् ४२

प्राकृतोऽन्यः कथं चेमां भूमिमागन्तुमर्हति ।
उदधेरप्रमेयस्य पारं वानरयूथप ४३

जानामि गमने शक्तिं नयने चापि ते मम ।
अवश्यं संप्रधार्याशु कार्यसिद्धिरिवात्मनः ४४

अयुक्तं तु कपिश्रेष्ठ मया गन्तुं त्वया सह ।
वायुवेगसवेगस्य वेगो मां मोहयेत्तव ४५

गया । पर्वततुल्य लालमुख वज्रवत् दाढ और नखवाले भीमरूप हनुमान् सीता से बोले– पर्वत और वनोंसहित अटारी और महलोंवाली इस लङ्का को ले जाने की शक्ति भी मुझ में है । सो बुद्धि स्थिर करो, विकांक्षा छोडो और चलकर राम-लक्ष्मण का शोक हरो । (३३-४०)

वह पर्वताकार भयानक रूप देख सीता हनुमान् से बोली– हे वानर-श्रेष्ठ ! तेरे सत्त्व, बल, वायुकीसी गति, और अग्नि केसे अद्भुत तेज को मैं जानती हूं । नहीं तो अन्य प्राकृत कपि इस अपार समुद्र के पार की भूमि में कैसे आ सकता ? जाने और मुझे ले जाने की तेरी शक्ति भी मैं जानती हूं । पर श्रीराम के कार्य की सिद्धि भी अवश्य विचारणीय है । हे पापरहित ! तुम्हारे साथ जाना उचित नहीं, क्योंकि वायु जैसा तुम्हारा वेग मुझे मोहित कर देगा । (४१-४५)

मुद्रिका दर्शन । (सुंदर० स. ३६, श्लो. ११४)

अहमाकाशमासक्ता उपर्युपरि सागरम् ।
प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद्भयो वेगेन गच्छतः ४६
पतिता सागरे चाहं तिमिनक्रझषाकुले ।
भवेयमाशु विवशा यादसामन्नमुत्तमम् ४७
न च शक्ष्ये त्वया सार्धं गन्तुं शत्रुविनाशन ।
कलत्रवति संदेहस्त्वयि स्यादप्यसंशयम् ४८
ह्रियमाणं तु मां दृष्ट्वा राक्षसा भीमविक्रमाः ।
अनुगच्छेयुरादिष्टा रावणेन दुरात्मना ४९
तैस्त्वं परिवृतः शूरैः शूलमुद्गरपाणिभिः ।
भवेस्त्वं संशयं प्राप्तो मया वीर कलत्रवान् ५०
सायुधा बहवो व्योम्नि राक्षसास्त्वं निरायुधः ।
कथं शक्ष्यसि संयातुं मां चैव परिरक्षितुम् ५१
युद्ध्यमानस्य रक्षोभिस्ततस्तैः क्रूरकर्मभिः ।
प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद्भयार्ता कपिसत्तम ५२
अथ रक्षांसि भीमानि महान्ति बलवन्ति च ।
कथंचित्सांपराये त्वां जयेयुः कपिसत्तम ५३
अथवा युद्ध्यमानस्य पतेयं विमुखस्य ते ।

वेगसे जाते हुए तुम्हारी पीठ पर से (शायद) भय से मैं समुद्र में गिर पड़ूं । तिमि और घड़ियालों से भरे समुद्र में गिरकर मैं शीघ्र ही उन का उत्तम भक्ष्य बन जाऊंगी । मैं तुम्हारे साथ नहीं जा सकती, क्योंकि स्त्री-युक्त तुम्हारे साथ जाने में भी मुझे सन्देह है । मुझे ले जाती देख रावण से आज्ञापित राक्षस तुम्हारे पीछे दौड़ेंगे । उन शूलादि हाथ में लिए शूरों से घिरे मुझ स्त्रीसहित तुम सन्देह में पड़ जाओगे । (४६-५०)

आकाश में वे राक्षस अस्त्रों से युक्त और तुम निरस्त्र होंगे । फिर कैसे तुम मेरी रक्षा कर आगे बढ़ सकोगे ? राक्षसों से युद्ध करते हुए तुम्हारी पीठ पर से मैं गिर पड़ूंगी । इस के अतिरिक्त राक्षस बड़े बलवान् हैं । तुम कैसे उन्हें जीत सकोगे ? वा तुम्हारे लड़ते हुए मैं पीठ पर से गिर पड़ूँ,

पतितां च गृहीत्वा मां नयेयुः पापराक्षसाः ५४
मां वा हरेयुस्त्वद्धस्ताद्विशसेयुरथापि वा।
अनवस्थौ हि दृश्येते युद्धे जयपराजयौ ५५
अहं वापि विपद्येयं रक्षोभिरभितर्जिता।
त्वत्प्रयत्नो हरिश्रेष्ठ भवेन्निष्फल एव तु। ५६
कामं त्वमपि पर्याप्तो निहन्तुं सर्वराक्षसान्।
राघवस्य यशो हीयेत्त्वया शस्तैस्तु राक्षसैः ५७
अथवादाय रक्षांसि न्यसेयुः संवृते हि माम्।
यत्र ते नाभिजानीयुर्हरयो नापि राघवः ५८
आरम्भस्तु मदर्थोऽयं ततस्तव निरर्थकः।
त्वया हि सह रामस्य महानागमने गुणः ५९
मयि जीवितमायत्तं राघवस्यामितौजसः।
भ्रातॄणां च महाबाहो तव राजकुलस्य च ६०
तौ निराशौ मदर्थं च शोकसंतापकर्शितौ।
सह सर्वर्क्षहरिभिस्त्यक्ष्यतः प्राणसंग्रहम् ६१
भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम ६२

तो वे पापी मुझे पकड ले जावेंगे। अथवा वे मुझे तुम्हारे हाथ से छीन लेवें वा मार डालें, क्योंकि युद्धमें जय-पराजय अनिश्चित होता है। (५१-५५)

वा मैं राक्षसों से तर्जित मर गई, तो तुम्हारा प्रयत्न ही निष्फल होगा। चाहे तुम राक्षसों को मारने में पर्याप्त हो, पर इस से राम का तो यश न होगा। अथवा तुम से छीन राक्षस मुझे कहीं और छिपा दें, जिसे न वानर, न राम-लक्ष्मण जान सकें, तो तुम्हारा आना ही निरर्थक होगा। सो तुम्हारे साथ राम के आने में ही बडा गुण है। राम, उन के भाई व तुम्हारे राजकुल का जीवन मेरे ही अधीन है। (५६-६०)

मेरे मर जाने पर निराश हुए वे दोनों रीछ वानरोंसहित प्राण छोड देंगे। पतिभक्ति के कारण राम से भिन्न मैं किसी पुरुष का शरीर छू भी

यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात् ।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती ६३
यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम् ।
मामितो गृह्य गच्छेत तत्तस्य सदृशं भवेत् ६४
श्रुताश्च दृष्टा हि मया पराक्रमा महात्मनस्तस्य रणावमर्दिनः ।
न देवगन्धर्वभुजङ्गराक्षसा भवन्ति रामेण समा हि संयुगे ६५
समीक्ष्य तं संयति चित्रकार्मुकं महाबलं वासवतुल्यविक्रमम् ।
सलक्ष्मणं को विषहेत राघवं हुताशनं दीप्तमिवानिलेरितम् ६६
सलक्ष्मणं राघवमाजिमर्दनं दिशागजं मत्तमिव व्यवस्थितम् ।
सहेत को वानरमुख्य संयुगे युगान्तसूर्यप्रतिमं शरार्चिषम् ६७
स मे कपिश्रेष्ठ सलक्ष्मणं प्रियं सयूथपं क्षिप्रमिहोपपादय ।

नहीं सकती । और रावण ने जो बलपूर्वक अपना शरीर छुआया तब मैं विवश और अनाथ थी । यदि राम राक्षसोंसहित रावण को मार मुझे यहां से ले जावें, तो उन के योग्य ही होगा । युद्ध में शत्रुदल को मटियामेट करने की क्षमता रखनेवाले उस महान् रामचंद्रजी के पराक्रमों के बारे में मैं सुन चुकी हूँ और वे मैंने साक्षात् देख भी लिए हैं । उस से मेरा निश्चय हो चुका है कि देव, गन्धर्व, भुजंग तथा राक्षसों में से कोई भी लडाई में रामचंद्रजी के समकक्ष हो ही नहीं सकता । वह अतिबलाढ्य, इन्द्र के समान पराक्रमी, अद्भुत धनुष्य हाथ में धारण करनेवाला राम लक्ष्मण के साथ धधकते हुए अग्नि के समान रणभूमि में खडा हुआ हो, तो उसे देखकर किस की भला इतनी मजाल कि उस से युद्ध ठान ले ? (६१-६६)

हे श्रेष्ठ वानर ! रणक्षेत्र में शत्रुओं की धज्जियाँ उडानेवाले, हर्षित दिग्गज जैसे अटल भाव से खडे हुए और बाणरूपी रश्मिजाल बिखेरने के कारण प्रलयकालीन सूर्यवत् दिखाई पडनेवाले रामचंद्रजी से भला कौन मुठभेड करने तैयार होगा ? हे वानरवर ! मैं रामचंद्र के लिए बहुत शोक करती हुई बिलकुल कृश तथा दुबली बन चुकी हूं, इसलिए

चिराय रामं प्रति शोककर्शितां कुरुष्व मां वानरवीर हर्षिताम् ६८
इत्यार्षे श्रीमद्रामा० वाल्मी० आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः॥३७॥[१६१४]

अष्टात्रिंशः सर्गः।

ततः स कपिशार्दूलस्तेन वाक्येन तोषितः।
सीतामुवाच तच्छ्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः १
युक्तरूपं त्वया देवि भाषितं शुभदर्शने।
सदृशं स्त्रीस्वभावस्य साध्वीनां विनयस्य च २
स्त्रीत्वान्न त्वं समर्थासि सागरं व्यतिवर्तितुम्।
मामधिष्ठाय विस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ३
द्वितीयं कारणं यच्च ब्रवीषि विनयान्विते।
रामादन्यस्य नार्हामि संसर्गमिति जानकि ४
एतत्ते देवि सदृशं पत्न्यास्तस्य महात्मनः।
का ह्यन्या त्वामृते देवि ब्रूयाद्वचनमीदृशम् ५
श्रोष्यते चैव काकुत्स्थः सर्वं निरवशेषतः।
चेष्टितं यत्त्वया देवि भाषितं च ममाग्रतः ६

तुम ही मेरे प्रिय राम को, लक्ष्मण तथा सैन्ययुक्त सुग्रीव के साथ शीघ्र इधर ले आओ और मुझ दुःखिनी को हर्षित करो। (६७-६८)

यहाँ सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

ततः वह कपिश्रेष्ठ यह बात सुन प्रसन्न हो सीता से बोला- देवि! तुम्हारा भाषण स्त्रीस्वभाव और पतिव्रताओं के विनय के अनुरूप ही है। सौ योजन चौडे समुद्र को मेरी पीठपर बैठ कोई स्त्री पार नहीं कर सकती। दूसरा कारण जो तुमने कहा कि राम को छोड अन्य जन को न छूऊंगी, वह भी उस महात्माकी पत्नी तुम्हारे सदृश ही है, तुम्हारे सिवा अन्य स्त्री कौन ऐसा वचन कहेगी? (१-५)

हे देवि! जो कुछ तुमने मेरे आगे कहा या चेष्टा की है, सो सब राम

कारणैर्बहुभिर्देवि रामप्रियचिकीर्षया।
स्नेहप्रस्कन्नमनसा मयैतत्समुदीरितम् ७
लङ्काया दुष्प्रवेशत्वाद्दुस्तरत्वान्महोदधेः।
सामर्थ्यादात्मनश्चैव मयैतत्समुदीरितम् ८
इच्छामि त्वां समानेतुमद्यैव रघुनन्दिना।
गुरुस्नेहेन भक्त्या च नान्यथा तदुदाहृतम् ९
यदि नोत्सहसे यातुं मया सार्धमनिन्दिते।
अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद्राघवो हि यत् १०
एवमुक्ता हनुमता सीता सुरसुतोपमा।
उवाच वचनं मन्दं वाष्पप्रग्रथिताक्षरम् ११
इदं श्रेष्ठमभिज्ञानं ब्रूयास्त्वं तु मम प्रियम्।
शैलस्य चित्रकूटस्य पादे पूर्वोत्तरे पदे १२
तापसाश्रमवासिन्याः प्राज्यमूलफलोदके।
तस्मिन्सिद्धाश्रिते देशे मन्दाकिन्यविदूरतः १३
तस्योपवनखण्डेषु नानापुष्पसुगन्धिषु।
विहृत्य सलिले क्लिन्नो ममाङ्के समुपाविशः १४

सुनेंगे। अनेक कारणों से राम के प्रिय करने की इच्छा से स्नेह में भर मैंने ऐसा कहा। लङ्काके दुष्प्रवेश्य और समुद्रके दुस्तर होनेसे तथा अपनी सामर्थ्य के बल पर मैंने ऐसा कह दिया। गुरुस्नेह व भक्ति से आज ही तुम्हें रामसमीप पहुंचाना चाहता था, अन्य किसी कारण से नहीं कहा। यदि मेरे साथ नहीं जाना चाहती, तो कोई चिह्न दे दो, जिससे राम जान लें। (६-१०)

हनुमान् के ऐसा कहने पर आंसू भर सीता मन्द मन्द बोली कि मेरा यही श्रेष्ठ चिह्न कहना कि पुरा चित्रकूट के पूर्वोत्तर पाद पर, जहां बहुत मूलफलादि विद्यमान थे व तपस्वी तप कर रहे थे। निकट ही मन्दाकिनी बह रही थी। वहां नाना पुष्पों की गन्धवाले वनों में घूम व जल-

ततो मां स समायुक्तो वायसः पर्यतुण्डयत्।
तमहं लोष्टमुद्यम्य वारयामि स्म वायसम् १५
दारयन्स च मां काकस्तत्रैव परिलीयते।
न चाप्युपारमन्मांसाद्भक्षार्थी बलिभोजनः १६
उत्कर्षन्त्यां च रशनां क्रुद्धायां मयि पक्षिणे।
स्रंसमाने च वसने ततो दृष्ट्वा त्वया ह्यहम् १७
त्वया विहसिता चाहं क्रुद्धा संलज्जिता तदा।
भक्ष्यगृद्धेन काकेन दारिता त्वामुपागता १८
ततः श्रान्ताहमुत्सङ्गमासीनस्य तवाविशम्।
क्रुध्यन्तीव प्रहृष्टेन त्वयाहं परिसान्त्विता १९
बाष्पपूर्णमुखी मन्दं चक्षुषी परिमार्जती।
लक्षिताहं त्वया नाथ वायसेन प्रकोपिता २०
परिश्रमाच्च सुप्ताहं राघवाङ्केऽस्म्यहं चिरम्।
पर्यायेण प्रसुप्तश्च ममाङ्के भरताग्रजः २१
स तत्र पुनरेवाथ वायसः समुपागमत्।
ततः सुप्तप्रबुद्धां मां राघवाङ्कात्समुत्थिताम्॥
वायसः सहसागम्य विरराद स्तनान्तरे २२

क्रीडा कर मैं तुम्हारी गोद में बैठ गई थी। तब एक कौवे ने मुझ पर चोंच चलाई, तो ढेला मार मैंने जसे भगाया था। (११-१५)

पर मुझे काटता हुआ वह छिप गया और मांसार्थी वह और कहीं न गया। तब क्रोध से उस पक्षी के ऊपर दौडने पर मेरा वस्त्र नीचे को खिसक गया, जिसे देख तुम हंस पडे और मैं लज्जित व क्रोधित और उस भक्षलोलुप कौवे से दारित तुम्हारे पास आई और थककर तुम्हारी गोद में बैठ गई थी, तब आपने मुझे समझाया था। उस समय उस कौवेसे कोपित होने के कारण मेरे आंसू बहते आपने देखे थे। (१६-२०)

थक कर मैं देरतक राम की गोद में सोती रही, फिर मेरी गोद में राम सो गए; वह कौवा फिर वहां आया। ततः उस कौवेने सहसा आ राम की

पुनः पुनरथोत्पत्य विरराद स मां भृशम् ।
ततः समुत्थितो रामो मुक्तैः शोणितबिन्दुभिः २३
स मां दृष्ट्वा महाबाहुर्वितुन्नां स्तनयोस्तदा ।
आशीविष इव क्रुद्धः श्वसन्वाक्यमभाषत २४
केन ते नागनासोरु विक्षतं वै स्तनान्तरम् ।
कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना २५
वीक्षमाणस्ततस्तं वै वायसं समवैक्षत ।
नखैः सरुधिरैस्तीक्ष्णैर्मामेवाभिमुखं स्थितम् २६
पुत्रः किल स शक्रस्य वायसः पततां वरः ।
धरान्तरं गतः शीघ्रं पवनस्य गतौ समः २७
ततस्तस्मिन्महाबाहुः कोपसंवर्तितेक्षणः ।
वायसे कृतवान्क्रूरां मतिं मतिमतां वरः २८
स दर्भसंस्तराद्गृह्य ब्रह्मणोऽस्त्रेण योजयत् ।
स दीप्त इव कालाग्निर्जज्वालाभिमुखो द्विजम् २९
स तं प्रदीप्तं चिक्षेप दर्भं तं वायसं प्रति ।
ततस्तु वायसं दर्भः सोऽम्बरेऽनुजगाम ह ३०

गोदमें सो कर उठी मेरे स्तनोंके बीच चोंच मारी और बार बार चोंच मारी। तो राम ने उठकर रक्त की बूंदें और स्तनों के बीच घाव लगा देख विषधर सर्ववत् सांस ले कहा था कि तेरे स्तनांतर में किसने घाव किया है ? कौन क्रुद्ध हुए पञ्चमुखवाले सर्प से क्रीडा करता है ? (१२-२५)

चारों ओर दृष्टि कर तब रामने सरुधिर नखों से मेरी ओर देखते कौवे को देखा । इन्द्र का पुत्र वह पक्षिश्रेष्ठ पवनसम गतिवाला शीघ्र नीचे आया । तब बुद्धिमानों में श्रेष्ठ रामने उसके ऊपर बडा क्रोध किया और चटाई में से कुश निकाल ब्रह्मास्त्र से युक्त कर उस प्रदीप्त दर्भ को कौवे के प्रति फेंक दिया, तब वह आकाश में उस कौवे के पीछे पीछे दौडने लगा । (२६-३०)

अनुसृष्टस्तदा काको जगाम विविधां गतिम्।
त्राणकाम इमं लोकं सर्वं वै विचचार ह ३१
स पित्रा च परित्यक्तः सर्वैश्च परमर्षिभिः।
त्रींल्लोकान्संपरिक्रम्य तमेव शरणं गतः ३२
स तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम्।
वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत् ३३
परिद्यूनं विवर्णं च पतमानं तमब्रवीत्।
मोघमस्त्रं न शक्यं तु ब्राह्मं कर्तुं तदुच्यताम् ३४
ततस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्ति स्म स दक्षिणम्।
दत्त्वा तु दक्षिणं नेत्रं प्राणेभ्यः परिरक्षितः ३५
स रामाय नमस्कृत्वा राज्ञे दशरथाय च।
विसृष्टस्तेन वीरेण प्रतिपेदे स्वमालयम् ३६
मत्कृते काकमात्रेऽपि ब्रह्मास्त्रं समुदीरितम्।
कस्माद्यो माहरत्त्वत्तः क्षमसे तं महीपते ३७
स कुरुष्व महोत्साहां कृपां मयि नरर्षभ।
त्वया नाथवती नाथ अनाथा इव दृश्यते ३८

तब वह कौवा बहुत चालों से उड़ा व अपनी रक्षा के लिए सब लोकों में घूमा। सुरोंसहित पिता से त्यक्त वह तीनों लोकों में घूम राम की ही शरणमें आया। जब वह पृथ्वी पर गिर शरणागत हुआ, तो वध्य होने पर भी रामने कृपा से उस की पालना की। जब वह विषण्ण हो चरणों में गिरा, तो रामने कहा कि ब्रह्मास्त्र निष्फल नहीं जा सकता, तो क्या करें? तब उस की दाहनी आंख फोड़ दी। दाहनी आंख दे, उसने प्राण बचा लिए। (३१-३५)

वह राम व दशरथ को नमस्कार कर विदा हो स्वस्थान को चला गया। तब मेरे लिए तो कौवे पर ही ब्रह्मास्त्र छोड़ा। अब मेरे हरनेवाले पर क्यों क्षमा करते हो? हे नरश्रेष्ठ! उत्साह कर मुझ पर कृपा करो। तुमसे सनाथ

आनृशंस्यं परो धर्मस्त्वत्त एव मया श्रुतम्।
जानामि त्वां महावीर्यं महोत्साहं महाबलम् ३९
अपारवारमक्षोभ्यं गाम्भीर्यात्सागरोपमम्।
भर्तारं ससमुद्राया धरण्या वासवोपमम् ४०
एवमस्त्रविदां श्रेष्ठो बलवान्सत्त्ववानपि।
किमर्थमस्त्रं रक्षःसु न योजयसि राघव ४१
न नागा नापि गन्धर्वा न सुरा न मरुद्गणाः।
रामस्य समरे वेगं शक्ताः प्रतिसमीहितुम् ४२
तस्य वीर्यवतः कच्चिद्यद्यस्ति मयि संभ्रमः।
किमर्थं न शरैस्तीक्ष्णैः क्षयं नयति राक्षसान् ४३
भ्रातुरादेशमादाय लक्ष्मणो वा परंतपः।
कस्य हेतोर्न मां वीरः परित्राति महाबलः ४४
यदि तौ पुरुषव्याघ्रौ वायुवेन्द्रसमतेजसौ।
सुराणामपि दुर्धर्षौ किमर्थं मामुपेक्षतः ४५
ममैव दुष्कृतं किंचिन्महदस्ति न संशयः।
समर्थावपि तौ यन्मां नावेक्षेते परंतपौ ४६

हो मैं अनाथवत् दीखती हूं। तुम से ही मैंने सुना है कि अक्रूरता परम धर्म है। मैं तुम्हें महावीर्य महाबल समुद्रवत् गम्भीर और समुद्रसहित सारी पृथ्वी का पति जानती हूं। (३६-४०)

शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ बली होकर राक्षसों पर अस्त्र क्यों नहीं छोड़ते ? नाग गन्धर्वादि कोई भी युद्ध में राम का वेग नहीं सह सकते। उन वीर्यवान् का यदि मेरी ओर कुछ प्रेम है, तो राक्षसों का नाश क्यों नहीं कर डालते ? वा भाई की आज्ञा से वीर लक्ष्मण ही मेरी क्यों नहीं रक्षा करते ? देवताओंसे भी परास्त न होनेवाले पवनाग्निसम वे दोनों क्यों मेरी उपेक्षा कर रहे हैं ? मेरे ही किसी पाप के कारण वे दोनों समर्थ होकर मेरी ओर नहीं देखते ! (४१-४६)

वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साश्रुभाषितम्।
अथाब्रवीन्महातेजा हनूमान्हरियूथपः ४७
त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे।
रामे दुःखाभिपन्ने तु लक्ष्मणः परितप्यते ४८
कथंचिद्भवती दृष्टा न कालः परिशोचितुम्।
इमं मुहूर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि शोभने ४९
तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ राजपुत्रौ महाबलौ।
त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लोकान्भस्मीकरिष्यतः ५०
हत्वा च समरक्रूरं रावणं सहबान्धवम्।
राघवस्त्वां विशालाक्षि स्वां पुरीं प्रति नेष्यति ५१
ब्रूहि यद्राघवो वाच्यो लक्ष्मणश्च महाबलः।
सुग्रीवो वापि तेजस्वी हरयो वा समागताः ५२
इत्युक्तवति तस्मिंश्च सीता पुनरथाब्रवीत्।
कौसल्या लोकभर्तारं सुषुवे यं मनस्विनी ५३
तं ममार्थे सुखं पृच्छ शिरसा चाभिवादय।
स्रजश्च सर्वरत्नानि प्रिया याश्च वराङ्गनाः ५४

अश्रुपूर्ण सीता का भाषण सुन हनुमान् बोला- देवि ! सत्य शपथ करता हूं कि, तुम्हारे शोक से राम और राम के दुःख से लक्ष्मण सन्तप्त हो रहे हैं। अब किसी तरह से तुम दीख पड़ी हो, यह शोक करनेका समय नहीं, अब तो दुःखों का अन्त आ गया। तुम्हारे देखने के इच्छुक वे दोनों राजपुत्र अब लंका को भस्म कर डालेंगे और रावण को युद्ध में मार राम तुम्हें स्वपुरी की ओर ले जावेंगे। राम, लक्ष्मण, सुग्रीव वा आए हुए वानरों से जो कुछ कहना हो, वह कहो। (४७-५२)

ऐसा कहने पर सीता दुःख से बोली- कौसल्यानन्दन को मेरी ओर से शिर से प्रणाम कर कुशल पूछना। जो सुमित्रानन्दन रत्नों, प्रिय स्त्रियों और पृथ्वी में दुर्लभ ऐश्वर्य तथा मातापिता के सुख को छोड़ राम के पीछे

ऐश्वर्यं च विशालायां पृथिव्यामपि दुर्लभम्।
पितरं मातरं चैव संमान्याभिप्रसाद्य च ५५
अनुप्रव्राजितो रामं सुमित्रा येन सुप्रजाः।
आनुकूल्येन धर्मात्मा त्यक्त्वा सुखमनुत्तमम् ५६
अनुगच्छति काकुत्स्थं भ्रातरं पालयन्वने।
सिंहस्कन्धो महाबाहुर्मनस्वी प्रियदर्शनः ५७
पितृवद्वर्तते रामे मातृवन्मां समाचरन्।
ह्रियमाणां तदा वीरो न तु मां वेद लक्ष्मणः ५८
वृद्धोपसेवी लक्ष्मीवाञ्शक्रो न बहुभाषिता।
राजपुत्रप्रियश्रेष्ठः सदृशः श्वशुरस्य मे ५९
मत्तः प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मणः।
न युक्तो धुरि यस्यां तु तामुद्वहति वीर्यवान् ६०
यं दृष्ट्वा राघवो नैव वृत्तमार्यमनुस्मरत्।
स ममार्थाय कुशलं वक्तव्यो वचनान्मम ६१
मृदुर्नित्यं शुचिर्दक्षः प्रियो रामस्य लक्ष्मणः।
यथा हि वानरश्रेष्ठ दुःखक्षयकरो भवेत् ६२
त्वमस्मिन्कार्यनिर्वाहे प्रमाणं हरियूथप।
राघवस्त्वत्समारम्भान्मयि यत्नपरो भवेत् ६३

वन में आया हैं, जो भक्ति से भाई की रक्षा करते उनके पीछे चलते हैं, जो राम में पितृवत् और मुझ में मातृवत् आचरण करते हैं, जो मुझे हरी हुई को नहीं जानते, जो लक्ष्मीवान् वृद्धोपसेवी मेरे श्वसुर के सदृश, मित भाषी, राम के भ्राता लक्ष्मण नामक हैं, जो कार्यभार उठाने में नियुक्त और वीर्यवान् हैं, जिन्हें देख राम पिता का दुःख भूल गये, उनसे मेरी ओर से कुशल पूछना। और जिससे हमारे दुःखों का नाश हो, वैसी व्यवस्था तुम करना। (५३-६२)

तुम्हारे उत्साह दिलाने से राम मेरे लिये यत्न करें। राम से यह बार

इदं ब्रूयाश्च मे नाथं शूरं रामं पुनः पुनः।
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ६४
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमि ते।
रावणेनोपरुद्धां मां निकृत्या पापकर्मणा।
त्रातुमर्हसि वीर त्वं पातालादिव कौशिकीम् ६५
ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम्।
प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ ६६
प्रतिगृह्य ततो वीरो मणिरत्नमनुत्तमम्।
अङ्गुल्या योजयामास न ह्यस्य प्राभवद्भुजः ६७
मणिरत्नं कपिवरः प्रतिगृह्याभिवाद्य च।
सीतां प्रदक्षिणं कृत्वा प्रणतः पार्श्वतः स्थितः ६८
हर्षेण महता युक्तः सीतादर्शनजेन सः।
हृदयेन गतो रामं लक्ष्मणं च सलक्षणम् ६९
मणिवरमुपगृह्य तं महार्हं जनकनृपात्मजया धृतं प्रभावात्।
गिरिवरपवनावधूतमुक्तः सुखितमनाः प्रतिसंक्रमं प्रपेदे ७०

इत्यार्षे श्रीमद्रामा० वाल्मी० आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टत्रिंशः सर्गः ॥३८॥ [१६८४]

बार कहना कि एक मास तक और जीऊंगी, एक मास के पश्चात् सत्य ही जीवन छोड़ दूंगी। हे वीर! तुम रावण की कैद से मेरी रक्षा करनेयोग्य हो। ततः वस्त्र ओढे ही सिर में से चूडामणि खोल राम के देने को हनुमान् को दी। उसे ग्रहण कर हनुमान् ने उसे अंगुली में पहन लिया, क्योंकि उसके छेद में हनुमान् की भुजा नहीं जा सकती थी। (६३-६७)

उसे ग्रहण कर, अभिवादन कर और सीता की प्रदक्षिणा कर हनुमान् पार्श्व में खडा हो गया। सीतादर्शन से बडे हर्ष से युक्त हो वह मन से राम के समीप पहुंचा। जनककन्या सीताद्वारा धारण किया हुआ वह बहुमूल्य रत्न लेकर हनुमान् अतीव हर्षित हुआ और वहाँसे वापिस जानेकी तैयारी करने लगा। (६८-७०)

यहाँ अडतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ।

मणिं दत्त्वा ततः सीता हनूमन्तमथाब्रवीत् ।
अभिज्ञानमभिज्ञातमेतद्रामस्य तत्त्वतः १
मणिं दृष्ट्वा तु रामो वै त्रयाणां संस्मरिष्यति ।
वीरो जनन्या मम च राज्ञो दशरथस्य च २
स भूयस्त्वं समुत्साहचोदितो हरिसत्तम ।
अस्मिन्कार्यसमुत्साहे प्रचिन्तय यदुत्तरम् ३
त्वमस्मिन्कार्यनिर्योगे प्रमाणं हरिसत्तम ।
तस्य चिन्तय यो यत्नो दुःखक्षयकरो भवेत् ४
हनूमन्यत्नमास्थाय दुःखक्षयकरो भव ।
स तथेति प्रतिज्ञाय मारुतिर्भीमविक्रमः ५
शिरसा वन्द्य वैदेहीं गमनायोपचक्रमे ।
ज्ञात्वा संप्रस्थितं देवी वानरं पवनात्मजम् ६
बाष्पगद्गदया वाचा मैथिली वाक्यमब्रवीत् ।
हनूमन्कुशलं ब्रूयाः सहितौ रामलक्ष्मणौ ७
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान्वृद्धांश्च वानरान् ।
ब्रूयास्त्वं वानरश्रेष्ठ कुशलं धर्मसंहितम् ८
यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः ।

मणि दे सीता बोली कि, राम इसे अच्छी तरह पहिचानते हैं। मणि को देख राम स्वमाता, राजा दशरथ और मुझ को याद करेंगे। मणि पा राम युद्धविषय में तुम्हें फिर प्रेरित करेंगे, इस कार्य में उत्साह बढाने को तुम उत्तर सोच रक्खो। हे वानरश्रेष्ठ! इस कार्य में तुम प्रमाण हो, यत्न करके मेरे दुःख का नाश करो। ऐसा ही करूंगा, यह कह मारुति शिर से प्रमाण कर जाने को उद्यत हुआ। (१-६)

मारुति को जाता जान गद्गद वाणी से सीता बोली- हे हनुमन्! राम-लक्ष्मण से कुशल कहना। हे वानरश्रेष्ठ! मन्त्रियोंसहित सुग्रीव और सब वृद्ध वानरों से भी धर्मयुक्त कुशल कहना, जिससे वह महाबाहु इस दुःख

अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात्त्वं समाधातुमर्हसि ९
जीवन्तीं मां यथा रामः संभावयति कीर्तिमान्।
तत्त्वया हनुमन्वाच्यं वाचा धर्ममवाप्नुहि १०
नित्यमुत्साहयुक्तस्य वाचः श्रुत्वा मयेरिताः।
वर्धिष्यते दाशरथेः पौरुषं मदवाप्तये ११
मत्संदेशयुता वाचस्त्वत्तः श्रुत्वैव राघवः।
पराक्रमे मतिं वीरो विधिवत्संविधास्यति १२
सीतायास्तद्वचः श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् १३
क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्वृतः।
यस्ते युधि विजित्यारीञ्शोकं व्यपनयिष्यति १४
न हि पश्यामि मर्त्येषु नासुरेषु सुरेषु वा।
यस्तस्य वमतो बाणान्स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः १५
अप्यर्कमपि पर्जन्यमपि वैवस्वतं यमम्।
स हि सोढुं रणे शक्तस्तव हेतोर्विशेषतः १६
स हि सागरपर्यन्तां महीं साधितुमर्हति।
त्वन्निमित्तो हि रामस्य जयो जनकनन्दिनि १७

से मुझे तारें। तुम वैसाही करना, जिससे राम मुझे जीती ही पावें, तुम वैसाही कहना, तुम्हें वाचिक धर्म प्राप्त होगा। नित्य उत्साहयुक्त वचन तुमसे सुन मेरी प्राप्त्यर्थ राम का पौरुष बढता रहेगा। तुम से मेरा सन्देश सुन वह वीर पराक्रमविधि का विधान करेंगे। (६-१२)

सीता का वचन सुन हनुमान् शिरपर से हाथ जोड बोला- राम शीघ्र रीछवानरों के साथ आवेंगे और युद्ध में वैरियों को जीत तुम्हारा शोक दूर करेंगे। मनुष्यों वा सुरासुरों में मैं किसी को ऐसा नहीं देखता, जो राम के बाणों के आगे ठहर सके। तुम्हारे लिये राम, सूर्य, मेघ और यमराज का भी सामना कर सकते हैं। वह सागरपर्यन्त मही का शासन कर सकते हैं, तुम्हारे कारण राम का जय होगा। (१३-१७)

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सम्यक्सत्यं सुभाषितम्।
जानकी बहु मेने तं वचनं चेदमब्रवीत् १८
ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्ष्यमाणा पुनः पुनः।
भर्तृस्नेहान्वितं वाक्यं सौहार्दादनुमानयत् १९
यदि वा मन्यसे वीर वसैकाहमरिन्दम।
कस्मिंश्चित्संवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि २०
मम चैवाल्पभाग्यायाः सांनिध्यात्तव वानर।
अस्य शोकस्य महतो मुहूर्तं मोक्षणं भवेत् २१
ततो हि हरिशार्दूल पुनरागमनाय तु।
प्राणानामपि संदेहो मम स्यान्नात्र संशयः २२
तवादर्शनजः शोको भूयो मां परितापयेत्।
दुःखाद्दुःखपरामृष्टां दीपयन्निव वानरः २३
अयं च वीर संदेहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः।
सुमहांस्त्वत्सहायेषु हर्यृक्षेषु हरीश्वरः २४
कथं नु खलु दुष्पारं तरिष्यति महोदधिम्।
तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ २५
त्रयाणामेव भूतानां सागरस्येह लङ्घने।
शक्तिः स्याद्वैनतेयस्य तव वा मारुतस्य वा २६

उसके सत्यभाषण को सुन सीता ने बहुत माना और कहा। उस जाते हुए को बार बार देख पतिस्नेह से युक्त वाक्य को विचार बोली-- यदि मेरा कहा मानो, तो एक दिन यहां किसी गुप्त स्थान में विश्राम ले कल चले जाना। मुझ अल्पभाग्या का शोक तुम्हारे सामीप्य से मुहूर्त भर को तो दूर हो जावेगा, क्योंकि तुम्हारे चले जाने पर फिर यदि तुम आये, भी तो मेरे तो प्राणों का ही सन्देह है। (१८-२२)

तुम्हारे अदर्शनसे उत्पन्न शोक तो मुझे और भी तपावेगा। हे वीर! एक मुझे बडा सन्देह हो रहा है कि वानरेश्वर सुग्रीव, वानरसेना और वे दोनों राजकुमार समुद्र को कैसे पार उतरेंगे? समस्त भूतों में गरुड, वायु वा

तदस्मिन्कार्यनिर्योगे वीरैवं दुरतिक्रमे ।
किं पश्यसे समाधानं त्वं हि कार्यविदां वरः २७
काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने ।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते फलोदयः २८
बलैः समग्रैर्युधि मां रावणं जित्य संयुगे ।
विजयी स्वपुरं यायात्तत्तस्य सदृशं भवेत् २९
बलैस्तु संकुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः ।
मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत् ३०
तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः ।
भवेदाहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ३१
तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् ।
निशम्य हनुमाञ्शेषं वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ३२
देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः ।
सुग्रीवः सत्यसंपन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः ३३
स वानरसहस्राणां कोटीभिरभिसंवृतः ।
क्षिप्रमेष्यति वैदेहि राक्षसानां निबर्हणः ३४
तस्य विक्रमसंपन्नाः सत्त्ववन्तो महाबलाः ।

तुम्हारी ही शक्ति समुद्र को लांघने की है । (२३-२६)

सो इस दुष्कर कार्य की पूर्ति का क्या समाधान तुमने विचारा है ? तुम तो अकेले ही इस काम को कर सकते हो, जिस से तुम्हें यश भी बहुत मिलेगा । समग्र सेना के साथ यदि राम युद्ध में रावण से मुझे जीत स्वपुरी की ओर जावें, तो यह उनके सदृश होगा । लङ्का को बाणों से ढक कर यदि राम मुझे ले जावें, तो यह उनके सदृश होगा । जो बात बली राम के अनुरूप हो वह तुम करना । (२७-३१)

हेतुयुक्त अर्थवान् वचन सुन हनुमान् बोला- देवि ! वानराधिपति सुग्रीव तुम्हारे लिये निश्चय कर चुके हैं । वे राक्षसों का नाश करने के लिये करोंडों वानरोंसहित शीघ्र आवेंगे । महाबली पराक्रमी स्वेच्छाचारी असंख्य

मनःसंकल्पसंपाता निदेशे हरयः स्थिताः ३५
येषां नोपरि नाधस्तान्न तिर्यक्सज्जते गतिः ।
न च कर्मसु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसः ३६
असकृत्तैर्महोत्साहैः ससागरधराधरा ।
प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमार्गानुसारिभिः ३७
मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः ।
मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसंनिधौ ३८
अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः ।
न हि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः ३९
तदलं परितापेन देवि शोको व्यपैतु ते ।
एकोत्पातेन ते लङ्कामेष्यन्ति हरियूथपाः ४०
मम पृष्ठगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ ।
त्वत्सकाशं महासङ्घौ नृसिंहावागमिष्यतः ४१
तौ हि वीरौ नरवरौ सहितौ रामलक्ष्मणौ ।
आगम्य नगरीं लङ्कां सायकैर्विधमिष्यतः ४२
सगणं रावणं हत्वा राघवो रघुनन्दनः ।
त्वामादाय वरारोहे स्वपुरीं प्रति यास्यति ४३

वानर इनकी आज्ञा में स्थित हैं । जिनकी गति ऊपर नीचे कहीं भी नहीं रुकती और जो बडे कर्म करने में भी दुःख नहीं मानते, जिन्होंने अनेक बार पृथ्वी की परिक्रमा की है और जो वायुमार्ग में चलनेवाले हैं, वे सब वानर मुझ से अधिक वा तुल्य हैं, न्यून कोई भी नहीं । (३२-३८)

जब मैं ही यहां चला आया, तो उनका क्या कहना, कार्य करनेके लिये छोटे ही भेजे जाते हैं । परिताप छोडो, तुम्हारा शोक दूर हो । वे वानर एक ही छलाङ्ग में लङ्का में आ जावेंगे और महाप्राण राम-लक्ष्मण मेरी पीठ पर चढ तुम्हारे समीप आ जायेंगे और आकर लंकानगरी को बाणों से विध्वस्त कर देंगे । (३९-४२)

हे सुन्दरी ! राम परिवारसहित रावण को मार तुम्हें ले स्वपुरी को चले

तदाश्वसिहि भद्रं ते भव त्वं कालकाङ्क्षिणी।
न चिराद्द्रक्ष्यसे रामं प्रज्वलन्तमिवानलम् ४४
निहते राक्षसेन्द्रे च सपुत्रामात्यबान्धवे।
त्वं समेष्यसि रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी ४५
क्षिप्रं त्वं देवि शोकस्य पारं द्रक्ष्यसि मैथिलि।
रावणं चैव रामेण द्रक्ष्यसे निहतं बलात् ४६
एवमाश्वास्य वैदेहीं हनूमान्मारुतात्मजः।
गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीं पुनरब्रवीत् ४७
तमरिघ्नं कृतात्मानं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम्।
लक्ष्मणं च धनुष्पाणिं लङ्काद्वारमुपागतम् ४८
नखदंष्ट्रायुधान्वीरान्सिंहशार्दूलविक्रमान्।
वानरान्वारणेन्द्राभान्क्षिप्रं द्रक्ष्यसि संगतान् ४९
शैलाम्बुदनिकाशानां लङ्कामलयसानुषु।
नर्दतां कपिमुख्यानामार्ये यूथान्यनेकशः ५०

जायगे। अतः विश्वास करो, कुछ काल और प्रतीक्षा करो, तुम शीघ्र राम को देखोगी। पुत्र, मन्त्री, बांधवोंसहित रावण के मरने पर तुम रामके साथ चन्द्रके साथ रोहिणीवत् शोभित होगी। हे देवि! तुम शीघ्र ही शोक का पार और राम द्वारा रावण को मरा हुआ देखोगी। (४३-४६)

इस तरह सीताको सान्त्वना देकर पवनतनय हनुमान् वहाँसे चले जाने का ख्याल करने लगा और वह फिर सीता से बोला- " तुम शीघ्रही शत्रु-विध्वंसकर्ता महात्मा रामचन्द्रजी तथा हाथमें धनुष उठानेवाले लक्ष्मणको लंकाके द्वार पर आ उपस्थित देखोगी। नख तथा दाढ़ोंको हथियारके समान काम में लानेवाले, सिंह तथा बाघ जैसे पराक्रमी और गजराजवत् वृहदाकार शरीर धारण करनेवाले वीर वानरों को वहाँ पर इकट्ठे होते हुए तुम शीघ्र देखोगी। हे पतिव्रता नारी! लंका के मलयपर्वत पर शिखरारूढ़ हो गर्जना करनेवाले और पर्वत तथा मेघवत् दृश्यमान बड़े बड़े वानरों के झुंड के झुंड तुम्हें दिखाई देंगे। (४७-५०)

स तु मर्मणि घोरेण ताडितो मन्मथेषुणा ।
न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ५१
रुद मा देवि शोकेन मा भूत्ते मनसो भयम् ।
शचीव भर्त्रा शक्रेण सङ्गमेष्यसि शोभने ५२
रामाद्विशिष्टः कोऽन्योऽस्ति काश्चित्सौमित्रिणा समः ।
अग्निमारुतकल्पौ तौ भ्रातरौ तव संश्रयौ ५३
नास्मिंश्चिरं वत्स्यसि देवि देशे रक्षोगणैरध्युषितेऽतिरौद्रे ।
न ते चिरादागमनं प्रियस्य क्षमस्व मत्संगमकालमात्रम् ५४

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ।३९।

चत्वारिंशः सर्गः । [१७३८]

श्रुत्वा तु वचनं तस्य वायुसूनोर्महात्मनः ।
उवाचात्महितं वाक्यं सीता सुरसुतोपमा १
त्वां दृष्ट्वा प्रियवक्तारं संप्रहृष्यामि वानर ।
अर्धसंजातसस्येव वृष्टिं प्राप्य वसुंधरा २

कामदेव के भीषण बाण से मर्माहत होने के कारण, सिंह के द्वारा व्यथित गजराज जैसे रामचन्द्रजी को तनिक भी सुख नहीं प्रतीत होता है। हे देवि ! तुम रुदन न करो और शोक के कारण धैर्यच्युत न बनो। हे शोभने ! इन्द्राणी जैसे इन्द्र से जुड जाती है, उसी प्रकार तुम अपने पति रामचन्द्रजी से अवश्य समागम करोगी। भला राम से बढ कर कौन प्रतापी है, कौन भला लक्ष्मण के समकक्ष हो सकता है ? तुम पर निर्भर रहनेवाले ये दोनों भाई अग्नि एवं वायुवत् हैं। देवि ! इस महाभयानक तथा राक्षसों से बसाये हुए स्थान में तुम अब बहुत दिन न रहोगी, तुम्हारे प्रियतम शीघ्र यहाँ पर आयेंगे और मेरी उन से मुलाकात होने तक का समय तुम प्रतीक्षा करती रहो। बस, इतना पर्याप्त होगा। (५१-५४)

यहाँ उन्तालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

मारुति का वचन सुन सीता आत्महितकर वाक्य बोली- तुम प्रियवक्ता को देख मैं बहुत प्रसन्न हुई हूं, जैसे अधूरे पके धान्यसे युक्त पृथ्वी वर्षासे ।

यथा तं पुरुषव्याघ्रं गात्रैः शोकाभिकर्शितैः।
संस्पृशेयं सकामाहं तथा कुरु दयां मयि ३
अभिज्ञानं च रामस्य दद्या हरिगणोत्तम।
क्षिप्तामिषीकां काकस्य कोपादेकाक्षिशातनीम् ४
मनःशिलायास्तिलको गण्डपार्श्वे निवेशितः।
त्वया प्रणष्टे तिलके तं किल स्मर्तुमर्हसि ५
स वीर्यवान्कथं सीतां हृतां समनुमन्यसे।
वसन्तीं रक्षसां मध्ये महेन्द्रवरुणोपम ६
एष चूडामणिर्दिव्यो मया सुपरिरक्षितः।
एतं दृष्ट्वा प्रहृष्यामि व्यसने त्वामिवानघ ७
एष निर्यातितः श्रीमान्मया ते वारिसंभवः।
अतः परं न शक्ष्यामि जीवितुं शोकलालसा ८
असह्यानि च दुःखानि वाचश्च हृदयच्छिदः।
राक्षसैः सह संवासं त्वत्कृते मर्षयाम्यहम् ९
धारयिष्यामि मासं तु जीवितं शत्रुसूदन।
मासादूर्ध्वं न जीविष्ये त्वया हीना नृपात्मज १०
घोरो राक्षसराजोऽयं दृष्टिश्च न सुखा मयि।

जिस से मैं शोक के मारे दुर्बल गात्रों से राम को छू सकूं, वैसा ही मुझ पर दया कर यत्न करो। राम को यह मणि दे, उस काक की आंख फोडने का वृत्तान्त कहना और यह भी याद दिलाना कि मेरा तिलक नष्ट होने पर मेरे गण्डस्थल पर तुमने मैनसिल का तिलक बना दिया था। (१–५)

इन्द्रतुल्य बली राम हरी सीता को राक्षसों के बीच बसती कैसे अच्छा समझते हैं ? इस चूडामणि को मैंने सुरक्षित रक्खा था, दुःख में इसे देख प्रसन्न हो लेती थी, यह मणि आप के चिह्न के लिये भेजा है। एक मास से अधिक मैं न जी सकूंगी, सोभी जानिये। असह्य दुःख और राक्षसियों के हृदयविदारक वचन तुम्हारे कारण सह रही हूं। एक मास तक और जीऊंगी, उसके पश्चात् तुम्हारे विना न जी सकूंगी। घोर रावणकी मुझ पर

त्वां च श्रुत्वा विषज्जन्तं न जीवेयमपि क्षणम् ११
वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साश्रुभाषितम् ।
अथाब्रवीन्महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः १२
त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे ।
रामे शोकाभिभूते तु लक्ष्मणः परितप्यते १३
दृष्ट्वा कथंचिद्भवती न कालः परिदेवितुम् ।
इमं मुहूर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि १४
तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ राजपुत्रावनिन्दितौ ।
त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः १५
हत्वा तु समरे रक्षो रावणं सहबान्धवैः ।
राघवौ त्वां विशालाक्षि स्वां पुरीं प्रति नेष्यतः १६
यत्तु रामो विजानीयादभिज्ञानमनिन्दिते ।
प्रीतिसंजननं भूयस्तस्य त्वं दातुमर्हसि १७

सुखद दृष्टि नहीं है, तुम्हें अन्यमनस्क सुन मैं क्षणभर न जीऊंगी। (६-११)

आँखों में आँसू भरकर सीताने जो यह शोकजनक भाषण किया, उसे सुनकर वायुपुत्र हनुमान् जो बड़ा ही तेजस्वी था, उस से कहने लगा- 'हे देवि! मैं तुम्हें शपथ खाकर बतलाना चाहता हूँ कि तुम्हारे लिए शोक करते करते रामचंद्रजी की मुखाकृति बिलकुल बदल गयी है और रामचंद्रजी को दुःखी पाकर लक्ष्मण भी व्यथितचित्त हो उठा है। लेकिन अब चूँकि किसी न किसी तरह मैं तुम्हें ढूंढ सका हूँ, इसलिए शोक मनाने का समय बीत चुका है। हे साधुप्रकृतिवाली स्त्री! इसी क्षण में तेरे दुःख की समाप्ति होगी। वे दोनों राजकुमार जो पुरुषों में श्रेष्ठ तथा अनिन्दनीय हैं, तुझे देखने के लिए अतीव उत्कंठित हुए हैं, अतः वे लंका को भस्मसात् कर देंगे। (१२-१५)

हे बड़ी बड़ी आँखोंवाली नारी! परिवारसहित रावण का वध कर चुकनेपर राम तथा लक्ष्मण तुम्हें अपने साथ अयोध्या राजधानी ले चलेंगे। हे दोषरहित सीता! जिसे रामचंद्रजी भली भाँति पहचान लेंगे और

साब्रवीद्दत्तमेवाहो मयाभिज्ञानमुत्तमम्।
एतदेव हि रामस्य दृष्ट्वा यत्नेन भूषणम् १८
श्रद्धेयं हनुमन्वाक्यं तव वीर भविष्यति।
स तं मणिवरं गृह्य श्रीमान्प्लवगसत्तमः १९
प्रणम्य शिरसा देवीं गमनायोपचक्रमे।
तमुत्पातकृतोत्साहमवेक्ष्य हरियूथपम् २०
वर्धमानं महावेगमुवाच जनकात्मजा।
अश्रुपूर्णमुखी दीना बाष्पगद्गदया गिरा २१
हनूमन्सिंहसंकाशौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान्ब्रूया अनामयम् २२
यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः।
अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात्त्वं समाधातुमर्हसि २३
इदं च तीव्रं मम शोकवेगं रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च।

जिस से उन्हें हर्ष एवं प्रसन्नता होगी, ऐसा कोई चिह्न तुम मुझे रामचंद्रजी के हाथ में रखने के लिए दे दें। (१६–१७)

इसपर सीता उससे बोली– मैंने तो तुझे सर्वश्रेष्ठ चिह्न देही डाला है। यही आभूषण, ठीक तरह निहारनेपर, हे वीर हनुमन्! रामचंद्रजी तेरे वचनोंपर विश्वास रखेंगे। सीताके यों कहनेपर कपिप्रवीर हनुमान्ने, वह मणि लेकर सीतादेवी को झुककर शीश नवाया और वह जानेके लिए तैयार हुआ। उस समय ऊँची उड़ान लेने के लिए कटिबद्ध हो बढ़नेवाले अति वेगवान् वानरसेनाधिपतिको देखकर दुःखिनी सीताकी आँखें डबडबा आयीं और गला रुँधा जानेके कारण वह रुक रुक कर बोलने लगी। (१८-२१)

हे हनुमन्! सिंह जैसे पराक्रमी राम तथा लक्ष्मण और सचिवसहित सुग्रीव से मेरी ओर से सकुशल प्रश्न पूछ लीजिए। वे पराक्रमशील रामचंद्रजी इस दुःखमहोदधिसे मुझे शीघ्र ऊपर उठा लें, ऐसी कोई आयोजना तू शीघ्रही कार्यान्वित करे। हे वानरवर! तू रामचंद्रजी के निकट चला जाकर मेरे तीव्र शोक का और इन राक्षसों की ओर से होने–

ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर २४
स राजपुत्र्या प्रतिवेदितार्थः कपिः कृतार्थः परिहृष्टचेताः ।
तदल्पशेषं प्रसमीक्ष्य कार्यं दिशं हयुदीचीं मनसा जगाम २५

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः । [१७६३]

स च वाग्भिः प्रशस्ताभिर्गमिष्यन्पूजितस्तया ।
तस्मादेशादपाक्रम्य चिन्तयामास वानरः १
अल्पशेषमिदं कार्यं दृष्टेयमसितेक्षणा ।
त्रीनुपायानतिक्रम्य चतुर्थ इह दृश्यते २
न साम रक्षःसु गुणाय कल्पते न दानमर्थोपचितेषु युज्यते ।
न भेदसाध्या बलदर्पिता जनाः पराक्रमस्त्वेष ममेह रोचते ३
न चास्य कार्यस्य पराक्रमादृते विनिश्चयः कश्चिदिहोपपद्यते ।
हतप्रवीराश्च रणे तु राक्षसाः कथंचिदीयुर्यदिहाद्य मार्दवम् ४

वाली मेरी कडी भर्त्सना का समाचार उन से कह दे । तेरा मार्ग तुझे सुखकर प्रतीत हो । इस भाँति राजकन्या से विदा हो जानेपर अन्तस्तल में अतीव प्रसन्न हो हनुमान् सीता के अन्वेषण में मनोनीत सफलता पाकर सोचने लगा कि, अब तो काम बहुत ही थोडा शेष रहा है, अतः उत्तर दिशा की ओर चल पडना ठीक जँचता है । (२२-२५)

यहाँ चालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

सीता द्वारा अच्छी वाणी से पूजित हनुमान् वहां से निकल सोचने लगा । सीता को देख लेने से अब एक छोटासा कार्य शेष है, वहां तीन उपायों को छोड चौथा दीख पडता है । इन राक्षसों में न तो समझाना गुण करेगा, न इन धनियों में दान करना योग्य है, बल से दर्पित ये भेद से भी साध्य नहीं, अतः यहां तो पराक्रम करना ही मुझे पसंद है। पराक्रम के सिवाय इस कार्य के लिए और कुछ निश्चय नहीं देख पडता। कुछ वीरों के मारे जाने पर शायद ये सीधी सीधी बातें करने लगें।

कार्ये कर्मणि निर्वृत्ते यो बहून्यपि साधयेत्।
पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति ५
न ह्येकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणः।
यो ह्यर्थं बहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने ६
इहैव तावत्कृतनिश्चयो ह्यहं व्रजेयमद्य प्लवगेश्वरालयम्।
परात्मसंमर्दविशेषतत्त्ववित्ततः कृतं स्यान्मम भर्तुशासनम् ७
कथं नु खल्वद्य भवेत्सुखागतं प्रसह्य युद्धं मम राक्षसैः सह।
तथैव खल्वात्मबलं च सारवत्समानयेन्मां च रणे दशाननः ८
ततः समासाद्य रणे दशाननं समन्त्रिवर्गं सबलं सयायिनम्।
हृदि स्थितं तस्य मतं बलं च सुखेन मत्वाहमितः पुनर्व्रजे ९
इदमस्य नृशंसस्य नन्दनोपममुत्तमम्।
वनं नेत्रमनःकान्तं नानाद्रुमलतायुतम् १०
इदं विध्वंसयिष्यामि शुष्कं वनमिवानलः।
अस्मिन्भग्ने ततः कोपं करिष्यति स रावणः ११

कर्तव्यकर्म के पूरा हो जाने पर उस से अविरुद्ध अन्य कार्यों को भी जो साधता है, वही अच्छा कार्यकर्ता है। (१-५)

जो अर्थसिद्धि करने के बहुत उपाय जानता है, वही अर्थ के साधन में समर्थ हो सकता है। राक्षसों का बल और अपने बल के अन्तर को भली भांति से जान यदि वानरराज के पास जाऊं, तो स्वामी की आज्ञा का पालन ही होगा। राक्षसों के साथ युद्ध करके मेरा आगमन सुखद कैसे हो? और कैसे रावण अपनी सेना और हमारे बल की तुलना कर सके? सेना और मन्त्रिवर्गसहित रावण के संग्राम में आते ही उस के हृदयस्थ बल को सरलता से जान इस स्थान से चला जाऊंगा। इस क्रूर का अत्युत्तम व नेत्र तथा मन का सुखदायक नाना द्रुमलतादि से युक्त नन्दनवन के सम यह उपवन अग्निवत् यदि मैं विध्वस्त कर डालूं, तो रावण कोप करेगा। (६-११)

ततो महत्साश्वमहारथद्विपं बलं समानेष्यति राक्षसाधिपः ।
त्रिशूलकालायसपट्टिशायुधं ततो महद्युद्धमिदं भविष्यति १२
अहं च तैः संयति चण्डविक्रमैः समेत्य रक्षोभिरभङ्गविक्रमः ।
निहत्य तद्रावणचोदितं बलं सुखं गमिष्यामि हरीश्वरालयम् १३

ततो मारुतवत्क्रुद्धो मारुतिर्भीमविक्रमः ।
ऊरुवेगेन महता द्रुमान्क्षेप्तुमथारभत् १४
ततस्तद्धनुमान्वीरो बभञ्ज प्रमदावनम् ।
मत्तद्विजसमाघुष्टं नानाद्रुमलतायुतम् १५
तद्वनं मथितैर्वृक्षैर्भिन्नैश्च सलिलाशयैः ।
चूर्णितैः पर्वताग्रैश्च बहुधा प्रियदर्शनैः १६
नानाशकुन्तविरुतैः प्रभिन्नसलिलाशयैः ।
ताम्रैः किसलयैः क्लान्तैः क्लान्तद्रुमलतायुतैः १७
न बभौ तद्वनं तत्र दावानलहतं यथा ।
व्याकुलावरणा रेजुर्विह्वला इव ता लताः १८
लतागृहैश्चित्रगृहैश्च सादितैर्व्यालैर्मृगैरार्तरवैश्च पक्षिभिः ।

वह रावण हाथी, घोड़े रथसहित त्रिशूलादि धारण किए किसी बड़ी सेना को भेजेगा, तब बड़ा युद्ध होगा । मैं प्रचण्डविक्रमवाली रावण-द्वारा प्रेरित सब सेना मार सुखपूर्वक सुग्रीव के स्थान को चला जाऊंगा । तदनन्तर वायुवत् क्रुद्ध हुए हनुमान् ने ऊरुवेग से वृक्षों को उखाड़ना शुरू किया । मत्त पक्षियों से युक्त और नाना द्रुमलताओंवाले उस प्रमदावन को हनुमान् ने तोड़ डाला । (१२-१५)

वह वन वृक्षों और सलिलाशयों के मथित और पर्वतों के चूर्णित होने से भयंकर हो गया । नाना पक्षियों के शब्द करने से और जलाशयों के खण्डित होने से व लाल कमलों के उखड़ जाने से और वृक्षों के क्लान्त होने से वह अग्नि से जलाये वन के सदृश शोभाहीन हो गया । टूटी फूटी लताएं वहां विह्वल स्त्रियों के समान दीख पड़ती थीं । (१६-१८)

उध्वस्त किए लतागृह और क्रीडागृह, मृग और पक्षियोंका आर्त स्वर,

शिलागृहैरुन्मथितैस्तथा गृहैः प्रनष्टरूपं तदभून्महद्वनम् १९
सा विह्वलाशोकलताप्रताना वनस्थली शोच्यलताप्रताना।
जाता दशास्यप्रमदावनस्य कपेर्बलाद्धि प्रमदावनस्य २०
ततः स कृत्वा जगतीपतेर्महान्महद्यलीकं मनसो महात्मनः।
युयुत्सुरेको बहुभिर्महाबलैः श्रिया ज्वलंस्तोरणमाश्रितः कपिः२१

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः॥४१॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः। [१७८४]

ततः पक्षिनिनादेन वृक्षभङ्गस्वनेन च।
बभूवुस्त्रासंसंभ्रान्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः १
विद्रुताश्च भयत्रस्ता निषेदुर्मृगपक्षिणः।
रक्षसां च निमित्तानि क्रूराणि प्रतिपेदिरे २
ततो गतायां निद्रायां राक्षस्यो विकृताननाः।
तद्वनं ददृशुर्भग्नं तं च वीरं महाकपिम् ३
स ता दृष्ट्वा महाबाहुर्महासत्त्वो महाबलः।
चकार सुमहद्रूपं राक्षसीनां भयावहम् ४

नष्ट हुए प्रासाद और गृह, इससे वह महावन नष्टप्राय हो गया। रावण की स्त्रियों का जिन में रक्षण होता था, ऐसे और प्रमदावनस्थ चंचल अशोकलताओं से युक्त उस वनप्रदेश के लतासमुदाय, कपि हनुमान् के बल के कारण शोचनीय दशा को प्राप्त हुए। इस प्रकार रावण का विप्रिय करके कांति से दीप्तिमान् वह अकेला कपि हनुमान् बलवान् राक्षसों से युद्ध करने की इच्छा से द्वारपर स्थित हुआ। (१९–२१)

यहाँ इकतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

ततः पक्षियों के निनाद और वृक्षों के टूटने के शब्द से सब लङ्का-निवासी भय से कांप उठे और मृगपक्षी भय के मारे भाग भाग शब्द करने लगे और राक्षसों को अपशकुन होने लगे। तब विकृत मुखवाली राक्षसियों ने जागकर वन की भग्नावस्था और महाकपि हनुमान् को देखा। उन्हें देख कर महाप्राण हनुमान् ने राक्षसियों को भय दिलानेवाला बड़ा

ततस्तु गिरिसंकाशमतिकायं महाबलम् ।
राक्षस्यो वानरं दृष्ट्वा पप्रच्छुर्जनकात्मजाम् ५
कोऽयं कस्य कुतो वायं किंनिमित्तमिहागतः ।
कथं त्वया सहानेन संवादः कृत इत्युत ६
आचक्ष्व नो विशालाक्षि मा भूत्ते सुभगे भयम् ।
संवादमसितापाङ्गि त्वया किं कृतवानयम् ७
अथाब्रवीत्तदा साध्वी सीता सर्वाङ्गशोभना ।
रक्षसां कामरूपाणां विज्ञाने का गतिर्मम ८
यूयमेवास्य जानीत योऽयं यद्वा करिष्यति ।
अहिरेव अहेः पादान्विजानाति न संशयः ९
अहमप्यतिभीतास्मि नैव जानामि को न्वयम् ।
वेद्मि राक्षसमेवैनं कामरूपिणमागतम् १०
वैदेह्या वचनं श्रुत्वा राक्षस्यो विद्रुता द्रुतम् ।
स्थिताः काश्चिद्द्रुताः काश्चिद्रावणाय निवेदितुम् ११
रावणस्य समीपे तु राक्षस्यो विकृताननाः ।
विरूपं वानरं भीमं रावणाय न्यवेदिषुः १२

रूप बना लिया। उस पर्वततुल्य अतिकाय वानर को देख राक्षसी सीता से पूछने लगीं। (१-५)

यह कौन है ? किस का है ? कहां से किस लिए यहां आया है और तुम्हारे साथ इसने बातचीत क्यों की है ? हे विशालाक्षि ! हम से कहो, डरो मत, हे सुभगे ! तुम से इसने क्या बात की है ? तब साध्वी सीता बोली कि भीमरूप राक्षसों के जानने में मेरी क्या गति है ? तुम्हीं जानो कि यह कौन है और क्या करेगा ! सर्प ही सर्प के पांव जान सकता है। मैं भी इस से बहुत डरी हुई हूं, मैं इसे नहीं जानती, यह भी कोई राक्षस यथेच्छ रूप धर कर यहां आया है। (६-१०)

सीता का वचन सुन व्याकुल राक्षसियां इधर उधर दौडने लगीं। कोई वहीं रही, कोई रावण के समीप में विरूप, भयङ्कर वानर का हाल कहने

अशोकवनिकामध्ये राजन्भीमवपुः कपिः ।
सीतया कृतसंवादस्तिष्ठत्यमितविक्रमः १३
न च तं जानकी सीता हरिं हरिणलोचना ।
अस्माभिर्बहुधा पृष्टा निवेदयितुमिच्छति १४
वासवस्य भवेद् दूतो दूतो वैश्रवणस्य वा ।
प्रेषितो वापि रामेण सीतान्वेषणकाङ्क्षया १५
तेनैवाद्भुतरूपेण यत्तत्तव मनोहरम् ।
नानामृगगणाकीर्णं प्रमृष्टं प्रमदावनम् १६
न तत्र कश्चिदुद्देशो यस्तेन न विनाशितः ।
यत्र सा जानकी देवी स तेन न विनाशितः १७
जानकीरक्षणार्थं वा श्रमाद्वा नोपलक्ष्यते ।
अथवा कः श्रमस्तस्य सैव तेनाभिरक्षिता १८
चारुपल्लवपत्राढ्यं यं सीता स्वयमास्थिता ।
प्रवृद्धः शिंशपावृक्षः स च तेनाभिरक्षितः १९
तस्योग्ररूपस्योग्रं त्वं दण्डमाज्ञातुमर्हसि ।
सीता संभाषिता येन वनं तेन विनाशितम् २०

गई । राजन् ! अशोकवाटिका में एक बड़ा पराक्रमी वानर सीता से बात करके वहां स्थित है । न उस का वृत्तांत मृगनयनी सीता बहुत बार पूछने पर कहना चाहती है । इन्द्र का वा कुबेर का अथवा सीताकी तलाशमें राम से भेजा दूत हो । (११-१५)

उस अद्भुत रूपवाले ने आप के मनोहर प्रमदावन को नष्ट कर दिया । उसने सब स्थान नष्ट कर डाले, जहां सीता है, वह स्थान नष्ट नहीं किया । सीता की रक्षा के लिये वा थक कर उसने वह स्थान नष्ट नहीं किया, पर थकावट उसे कहां ? सीता की रक्षा के लिये ही उसने उतना स्थान छोड दिया है । सुन्दर पुष्प और पत्तों से युक्त जिस वृक्ष के नीचे सीता बैठी है, वह शिंशुपा का पेड उससे रक्षित है । उस उग्र रूपवाले को आप दण्ड दीजिये, जिसने सीता से बात की है और वह वन नष्ट किया है । क्योंकि

मनःपरिगृहीतां तां तव रक्षोगणेश्वर ।
कः सीतामभिभाषेत यो न स्यात्त्यक्तजीवितः २१
राक्षसीनां वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
चिताग्निरिव जज्वाल कोपसंवर्तितेक्षणः २२
तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः ।
दीप्ताभ्यामिव दीपाभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः २३
आत्मनः सदृशान्वीरान्किङ्करान्नाम राक्षसान् ।
व्यादिदेश महातेजा निग्रहार्थं हनूमतः २४
तेषामशीतिसाहस्रं किङ्कराणां तरस्विनाम् ।
निर्ययुर्भवनात्तस्मात्कूटमुद्गरपाणयः २५
महोदरा महादंष्ट्रा घोररूपा महाबलाः ।
युद्धाभिमनसः सर्वे हनूमद्ग्रहणोन्मुखाः २६
ते कपिं तं समासाद्य तोरणस्थमवस्थितम् ।
अभिपेतुर्महाभागाः पतङ्गा इव पावकम् २७
ते गदाभिर्विचित्राभिः परिघैः काञ्चनाङ्गदैः ।
आजग्मुर्वानरश्रेष्ठं शरैरादित्यसंनिभैः २८

हे राजन् ! मन में आपसे ग्रहण की हुई सीता से ऐसा कौन है, जो बात करके जीता बच जाय । (१६-२१)

राक्षसियों का वचन सुनकर क्रोध से नेत्र संवर्तित हो गये हैं जिसके ऐसा वह रावण हुताग्नि के समान जलने लगा । उस क्रोधित रावण के नेत्रों से आंसुओं की बूंद गिरने लगीं, जैसे जलते हुए दीपक में तेल की बूंद गिरती हैं । अपने सदृश शूर किंकर नाम राक्षसोंको उसने हनुमान् के पकड़ने की आज्ञा दी । रावण के गृह से बड़े बड़े उदरवाले घोररूप महाबली युद्ध के लिये उत्सुक हनुमान् के पकड़ने में तत्पर अस्सी सहस्र राक्षस चले । (२२-२५)

तोरण पर बैठे हनुमान् पर वे बड़े वेग से ऐसे दौड़े, जैसे अग्नि पर पतंगे । विचित्र गदाओं, परिघों और सूर्यसम बाणों से उन्होंने हनुमान्

मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः प्रासतोमरपाणयः।
परिवार्य हनूमन्तं सहसा तस्थुरग्रतः २९
हनूमानपि तेजस्वी श्रीमान्पर्वतसंनिभः।
क्षितावाविद्ध्य लाङ्गूलं ननाद च महाध्वनिम् ३०
स भूत्वा तु महाकायो हनूमान्मारुतात्मजः।
पुच्छमास्फोटयामास लङ्कां शब्देन पूरयन् ३१
तस्यास्फोटितशब्देन महता चानुनादिना।
पेतुर्विहङ्गा गगनादुच्चैश्चेदमघोषयत् ३२
जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ३३
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ३४
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः ३५
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ३६

को आ घेरा। मुद्गर, पटा, शूल, भाला हाथ में ले ले हनुमान् को चारों ओर घेर खड़े हो गये। तब पर्वततुल्य तेजस्वी हनुमान् ने पृथ्वी पर पूंछ को फटकार बड़ा नाद किया। और अपनी पूंछ ऐसे जोर से दे मारी कि उसके शब्द से सारी लंका भर गई। उसकी पूंछ की फटकार और नाद से उड़ते पक्षी भूमि पर गिर पड़े। (२७-३२)

उस हनुमान् ने बड़े जोर से कहा कि महाबली राम, लक्ष्मण और राम से पालित राजा सुग्रीव की जय हो। मैं शत्रुसेना को मारनेवाला कोसलेन्द्र राम का दास पवनपुत्र हनुमान् हूं। शिला और पादपों से प्रहार करते हुए मेरे सामने युद्ध में सहस्र रावण भी नहीं ठहर सकते। लंका को मट्टियामेट करके और सीता को प्रणाम कर अर्थ को सिद्ध कर सब राक्षसों के देखते देखते चला जाऊंगा। (३३-३६)

तस्य सन्नादशब्देन तेऽभवन्भयशङ्किताः ।
ददृशुश्च हनूमन्तं सन्ध्यामेघमिवोन्नतम् ३७
स्वामिसन्देशनिःशङ्कास्ततस्ते राक्षसाः कपिम् ।
चित्रैः प्रहरणैर्भीमैरभिपेतुस्ततस्ततः ३८
स तैः परिवृतः शूरैः सर्वतः स महाबलः ।
आससादायसं भीमं परिघं तोरणाश्रितम् ३९
स तं परिघमादाय जघान रजनीचरान् ।
स पन्नगमिवादाय स्फुरन्तं विनतासुतः ४०
विचचाराम्बरे वीरः परिगृह्य च मारुतिः ।
सूदयामास वज्रेण दैत्यानिव सहस्रदृक् ४१
स हत्वा राक्षसान्वीरः किङ्करान्मारुतात्मजः ।
युद्धाकाङ्क्षी महावीरस्तोरणं समवस्थितः ४२
ततस्तस्माद्भयान्मुक्ताः कतिचित्तत्र राक्षसाः ।
निहतान्किङ्करान्सर्वान्रावणाय न्यवेदयन् ४३
स राक्षसानां निहतं महाबलं निशम्य राजा परिवृत्तलोचनः ।
समादिदेशाप्रतिमं पराक्रमे प्रहस्तपुत्रं समरे सुदुर्जयम् ४४

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ४२[१८२८]

उस के गर्जन से वे डर गये और हनुमान् को सन्ध्याकाल के मेघवत् ऊंचा देखा। स्वामिसन्देश से निःशंक हो, वे राक्षस भयानक अस्त्रों से हनुमान् पर प्रहार करने लगे। उन राक्षसों से चारों ओर से घिर हनुमान् तोरण में लगी परिघ को ले उससे राक्षसों को मारने लगा। मारुतिने गरुड जैसे फुंकारते हुए सर्प को तैसे उसे ग्रहण कर आकाश में विचरते हुए इन्द्रवज्र से जैसे दैत्यों को वैसे उससे राक्षसों को मार डाला। (३७-४१)

किंकर नाम उन राक्षसों को मार फिर वह वीर तोरण पर ही आ बैठा। कुछेक राक्षसों ने जो बच गये थे मरे हुए किंकरों का हाल रावण से जाकर कहा। राक्षसों का हनन सुन रावण ने आंखे घुमा प्रहस्तपुत्र को लडने के लिये भेजा। (४२-४४) यहाँ बयालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ।

ततः स किङ्करान्हत्वा हनूमान्ध्यानमास्थितः ।
वनं भग्नं मया चैत्यप्रासादो न विनाशितः १
तस्मात्प्रासादमद्यैवमिमं विध्वंसयाम्यहम् ।
इति संचिन्त्य हनुमान्मनसा दर्शयन्बलम् २
चैत्यप्रासादमुत्प्लुत्य मेरुशृङ्गमिवोन्नतम् ।
आरुरोह हरिश्रेष्ठो हनूमान्मारुतात्मजः ३
आरुह्य गिरिसंकाशं प्रासादं हरियूथपः ।
बभौ स सुमहातेजाः प्रतिसूर्य इवोदितः ४
संप्रधृष्य तु दुर्धर्षश्चैत्यप्रासादमुन्नतम् ।
हनूमान्प्रज्वलँल्लक्ष्म्या पारियात्रोपमोऽभवत् ५
स भूत्वा सुमहाकायः प्रभावान्मारुतात्मजः ।
धृष्टमास्फोटयामास लङ्कां शब्देन पूरयन् ६
तस्यास्फोटितशब्देन महता श्रोत्रघातिना ।
पेतुर्विहङ्गमास्तत्र चैत्यपालाश्च मोहिताः ७
अस्त्रविज्ञयतां रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ८

ततः किंकरों को मार हनुमान् सोचने लगा कि, बन तो मैंने भग्न कर डाला, पर यह चैत्यप्रासाद नष्ट नहीं किया, सो इसको भी विध्वस्त करूंगा। मनमें यह सोच बल दिखाते हनुमान् मेरुशृङ्गवत् ऊंचे उस प्रासाद पर चढ गया। गिरितुल्य प्रासाद पर चढ वह तेजस्वी द्वितीय सूर्यवत् शोभा देने लगा। उस दुर्धर्ष मन्दिर को आक्रान्त कर हनुमान् पारियात्र-पर्वतवत् शोभित हुआ। (१-५)

तब पर्वततुल्य तेजस्वी हनुमान् ने पृथ्वी पर पूंछ को फटकार बडा नाद किया और अपनी पूंछ ऐसे जोर से दे मारी कि उसके शब्द से सारी लंका भर गई। उसकी पूंछ की फटकार और नाद से उडते पक्षी भूमि पर

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ९
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः १०
धर्षयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ११
एवमुक्त्वा महाकायश्चैत्यस्थो हरियूथपः।
ननाद भीमनिर्ह्रादो रक्षसां जनयन्भयम् १२
तेन नादेन महता चैत्यपालाः शतं ययुः १३
गृहीत्वा विविधानस्त्रान्प्रासान्खड्गान्परश्वधान्।
विसृजन्तो महाकाया मारुतिं पर्यवारयन् १४
ते गदाभिर्विचित्राभिः परिघैः काञ्चनाङ्गदैः।
आजग्मुर्वानरश्रेष्ठं बाणैश्चादित्यसंनिभैः १५
आवर्त इव गङ्गायास्तोयस्य विपुलो महान्।
परिक्षिप्य हरिश्रेष्ठं स बभौ रक्षसां गणः १६
ततो वातात्मजः क्रुद्धो भीमरूपं समास्थितः।

गिर पडे। उस हनुमान् ने बडे जोरसे कहा कि महाबली राम, लक्ष्मण और राम से पालित राजा सुग्रीव की जय हो। मैं शत्रुसेना को मारनेवाला कोसलेन्द्र राम का दास पवनपुत्र हनुमान् हूं। शिला और पादपों से प्रहार करते हुए मेरे सामने युद्ध में सहस्र रावण भी नहीं ठहर सकते। लंका को मटियामेट करके और सीता को प्रणाम कर अर्थ को सिद्ध कर सब राक्षसों के देखते देखते चला जाऊंगा। (६-११)

यह कह प्रासाद पर बैठे हनुमान् ने राक्षसों को भयभीत करनेवाला बडा गर्जन किया। उस बडे शब्द से सैंकडो प्रासादरक्षकों ने विविध अस्त्रों को लेकर मारुति को घेर लिया। गङ्गाजल के बडे भारी कुण्ड के समान हनुमान् को घेर राक्षसों का गण शोभित हुआ। (१२-१६)

ततः हनुमान् ने क्रुद्ध हो भीमरूप धर प्रासाद का स्वर्णमय एक स्तम्भ

प्रासादस्य महांस्तस्य स्तम्भं हेमपरिष्कृतम् १७
उत्पाटयित्वा वेगेन हनूमान्मारुतात्मजः ।
ततस्तं भ्रामयामास शतधारं महाबलः १८
तत्र चाग्निः समभवत्प्रासादश्चाप्यदह्यत ।
दह्यमानं ततो दृष्ट्वा प्रासादं हरियूथपः १९
स राक्षसशतं हत्वा वज्रेणेन्द्र इवासुरान् ।
अन्तरिक्षस्थितः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् २०
मादृशानां सहस्राणि विसृष्टानि महात्मनाम् ।
बलिनां वानरेन्द्राणां सुग्रीववशवर्तिनाम् २१
अटन्ति वसुधां कृत्स्नां वयमन्ये च वानराः ।
दशनागबलाः केचित्केचिद्दशगुणोत्तराः २२
केचिन्नागसहस्रस्य बभूवुस्तुल्यविक्रमाः ।
सन्ति चौघबलाः केचित्सन्ति वायुबलोपमाः २३
अप्रमेयबलाः केचित्तत्रासन्हरियूथपाः ।
ईदृग्विधैस्तु हरिभिर्वृतो दन्तनखायुधैः २४
शतैः शतसहस्रैश्च कोटिभिश्चायुतैरपि ।
आगमिष्यति सुग्रीवः सर्वेषां वो निषूदनः २५

उखाड़ उस सौधारवाले खम्भे को बड़े वेग से घुमाया कि, उससे आग निकलने लगी और प्रासाद जल उठा । प्रासाद को जलता देख उस वानर-श्रेष्ठ ने सैकड़ों राक्षसों को मार अन्तरिक्ष में स्थित हो यह वचन कहा । (१७-२०)

मेरे समान सहस्रों महात्मा बली वानर जो सुग्रीवके वशवर्ती हैं, वे तथा मैं इस पृथिवी पर घूम रहे हैं । उनमें कोई दश हाथियों के बलवाले, कोई सौ और कोई सहस्र हाथियों के बलवाले हैं । उनमें कोई ओघबलवाले, कोई वायु के से बलवाले और कोई अप्रतिम बलवाले हैं । (२१-२४)

इस प्रकार के लाखों करोड़ों अरबों वानरों के साथ तुम सब का बल

नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूयं न च रावणः।
यस्य त्विक्ष्वाकुवीरेण बद्धं वैरं महात्मना २६

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः। [१८५४]

संदिष्टो राक्षसेन्द्रेण प्रहस्तस्य सुतो बली।
जम्बुमाली महादंष्ट्रो निर्जगाम धनुर्धरः १
रक्तमाल्याम्बरधरः स्रग्वी रुचिरकुण्डलः।
महान्विवृत्तनयनश्चण्डः समरदुर्जयः २
धनुः शक्रधनुःप्रख्यं महद्दृढचिरसायकम्।
विस्फारयाणो वेगेन वज्राशनिसमस्वनम् ३
तस्य विस्फारघोषेण धनुषो महता दिशः।
प्रदिशश्च नभश्चैव सहसा समपूर्यत ४
रथेन खरयुक्तेन तमागतमुदीक्ष्य सः।
हनूमान्वेगसंपन्नो जहर्ष च ननाद च ५
तं तोरणविटङ्कस्थं हनूमन्तं महाकपिम्।
जम्बुमाली महातेजा विव्याध निशितैः शरैः ६

नष्ट करनेवाले राजा सुग्रीव वहां आयेंगे। न यह लंका न तुम और न रावण रहेगा, क्योंकि तुमने महात्मा राम से वैर बांधा है। (२४-२६)

यहाँ तैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

रावण की आज्ञा से प्रहस्त का पुत्र धनुर्धर जम्बुमाली चला। जो रक्त-माला व वस्त्र धारे अन्य प्रकार की मालाओं से युक्त बडे बडे नेत्रोंवाला समर में दुर्जय और बडा चण्ड था। इन्द्रधनुसम रुचिर बाणोंवाले धनुष को टङ्कोर देता हुआ, जिसका शब्द वज्र के शब्द के तुल्य हो रहा था। उसके धनुष के शब्द से दिशा, प्रदिशा और आकाश सहसा पूर्ण हो गये। गदहे जुते रथ पर उसे आते देख हनुमान् ने प्रसन्न हो नाद किया। (१-५)

हनुमान् को छज्जे पर बैठा देख जम्बुमाली ने उसे बाणों से बींध डाला।

अर्धचन्द्रेण वदने शिरस्येकेन कर्णिना।
बाह्वोर्विव्याध नाराचैर्दशभिस्तु कपीश्वरम्॥ ७
तस्य तच्छुशुभे ताम्रं शरेणाभिहतं मुखम्।
शरदीवाम्बुजं फुल्लं विद्धं भास्कररश्मिना ८
तत्तस्य रक्तं रक्तेन रञ्जितं शुशुभे मुखम्।
यथाकाशे महापद्मं सिक्तं काञ्चनबिन्दुभिः ९
चुकोप बाणाभिहतो राक्षसस्य महाकपिः।
ततः पार्श्वेऽतिविपुलां ददर्श महतीं शिलाम् १०
तरसा तां समुत्पाट्य चिक्षेप जववद्बली।
तां शरैर्दशभिः क्रुद्धस्ताडयामास राक्षसः ११
विपन्नं कर्म तद्दृष्ट्वा हनूमांश्चण्डविक्रमः।
सालं विपुलमुत्पाट्य भ्रामयामास वीर्यवान् १२
भ्रामयन्तं कपिं दृष्ट्वा सालवृक्षं महाबलम्।
चिक्षेप सुबहून्बाणाञ्जम्बुमाली महाबलः १३
सालं चतुर्भिश्चिच्छेद वानरं पञ्चभिर्भुजे।
उरस्येकेन बाणेन दशभिस्तु स्तनान्तरे १४

अर्धचन्द्राकार तो मुख में व एक शिर में और बाहों में दश बाण मारे। हनुमान् का ताम्रवर्ण मुख उस बाण के लगने से ऐसा शोभित हुआ, जैसे शरद् ऋतुमें फूला कमल सूर्यकिरण लगने से शोभता है। राक्षस का बाण लगने से हनुमान् ने बड़ा कोप किया। ततः पास में पड़ी एक बड़ी शिला देखी, जिसे वेग से उठा हनुमान् ने जम्बुमाली की ओर फेंका, राक्षस ने उसमें दश बाण मारे। (६-११)

चण्डविक्रम हनुमान् यह कर्म निष्फल देख एक बड़े सालवृक्ष को उखाड़ घुमाने लगा। हनुमान् को सालवृक्ष घुमाते देख महाबली जम्बुमाली ने बहुतसे बाण छोड़े। चार बाण उस वृक्षमें, पांच हनुमान् की भुजामें, एक छाती में और दश स्तनान्तर में मारे। बाणों से बिंध क्रोधसे भर हनुमान्

स शरैः पूरिततनुः क्रोधेन महता वृतः ।
तमेव परिघं गृह्य भ्रामयामास वेगितः १५
अतिवेगोऽतिवेगेन भ्रामयित्वा महोत्कटः ।
परिघं पातयामास जम्बुमालेर्महोरसि १६
तस्य चैव शिरो नास्ति न बाहू जानुनी न च ।
न धनुर्न रथो नाश्वास्तत्राददृश्यन्त नेषवः १७
स हतस्तरसा तेन जम्बुमाली महारथः ।
पपात निहतो भूमौ चूर्णिताङ्ग इव द्रुमः १८
जम्बुमालिं सुनिहितं किङ्करांश्च महाबलान् ।
चुक्रोध रावणः श्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः १९
स रोषसंवर्तिततामलोचनः प्रहस्तपुत्रे निहते महाबले ।
अमात्यपुत्रानतिवीर्यविक्रमान्समादिदेशाशु निशाचरेश्वरः २०

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः । [१८७४]

ततस्ते राक्षसेन्द्रेण चोदिता मन्त्रिणः सुताः ।
निर्ययुर्भवनात्तस्मात्सप्त सप्तार्चिर्वर्चसः १

ने उसी परिघ को पकड वेग से घुमाया और बडे वेगसे उसे घुमाकर जम्बुमाली की छाती में मारा । (१२-१६)

उसके लगते ही न शिर, न बाहु, न जानु, न धनुष, न रथ, न अश्व और न बाण दीख पडे । उससे हत जम्बुमाली चूर्णिताङ्ग हो भूमि पर गिर पडा । जम्बुमाली और किंकरों का हनन सुन रावण ने बडा क्रोध किया । जम्बुमाली के मारे जाने पर रावण ने क्रोध से लाल नेत्र कर अति पराक्रमी अमात्यपुत्रों को लडने के लिये शीघ्र आज्ञा दी । (१७-२०)

यहाँ चौंतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

ततः रावणद्वारा प्रेरित मन्त्री के सात पुत्र अग्निवत् प्रकाशित उस भवन

महद्बलपरीवारा,धनुष्मन्तो महाबलाः ।
कृतास्त्रास्त्रविदां श्रेष्ठाः परस्परजयैषिणः २
हेमजालपरिक्षिप्तैर्ध्वजवद्भिः पताकिभिः ।
तोयदस्वननिर्घोषैर्वाजियुक्तैर्महारथैः ३
तप्तकाञ्चनचित्राणि चापान्यमितविक्रमाः ।
विस्फारयन्तः संहृष्टास्तडिद्वन्त इवाम्बुदाः ४
जनन्यस्तास्ततस्तेषां विदित्वा किङ्करान्हतान् ।
बभूवुः शोकसंभ्रान्ताः सबान्धवसुहृज्जनाः ५
ते परस्परसङ्घर्षास्तप्तकाञ्चनभूषणाः ।
अभिपेतुर्हनूमन्तं तोरणस्थमवस्थितम् ६
सृजन्तो बाणवृष्टिं ते रथगर्जितनिःस्वनाः ।
प्रावृट्काल इवाम्भोदा विचेरुर्नैर्ऋताम्बुदाः ७
अवकीर्णस्ततस्ताभिर्हनूमाञ्शरवृष्टिभिः ।
अभवत्संवृताकारः शैलराडिव वृष्टिभिः ८
स शरान्प्रश्चयामास तेषामाशुचरः कपिः ।
रथवेगांश्च वीराणां विचरन्विमलेऽम्बरे ९

से निकले। जो बडी सेना सङ्ग में लिये धनुषधारी महाबली शस्त्रविद्या-विशारदों में श्रेष्ठ और परस्पर जय की घोषणा करनेवाले थे। सुवर्णजाल से बने ध्वजापताकायुक्त मेघ के समान शब्द करते, उत्तम घोडे जुते बडे बडे रथों पर चढे, तपाये सुवर्ण से बेलबूटा कढे धनुष हाथों में लिये टङ्कोर देते हुए हर्षित हो बिजलीसहित मेघों के तुल्य चमकते बाहर निकले। किंकरों का हनन सुन उनकी माताएं शोक से सम्भ्रान्त हो गईं। (१-५)

तप्त सुवर्ण के भूषण धारे एक दूसरे से आगे लडने के लिये बढे जाते उन्होंने तोरणस्थ हनुमान् को घेर लिया। बाणवृष्टि छोडते हुए उनके रथों का गर्जन मेघशब्दके समान सुनाई देता था। उनकी बाणवृष्टि से हनुमान् वर्षा से आच्छादित पर्वतवत् शोभित हुआ। पर शीघ्रताके साथ उछल आकाश में जा उन वीरों के बाण व रथवेग से बच गया। आकाश में

स तैः क्रीडन्धनुष्मद्भिर्व्योम्नि वीरः प्रकाशते ।
धनुष्मद्भिर्यथा मेघैर्मारुतः प्रभुरम्बरे १०
स कृत्वा निनदं घोरं त्रासयंस्तां महाचमूम् ।
चकार हनुमान्वेगं तेषु रक्षःसु वीर्यवान् ११
तलेनाभिहनत्कांश्चित्पादैः कांश्चित्परन्तपः ।
मुष्टिभिश्चाहनत्कांश्चिन्नखैः कांश्चिद्व्यदारयत् १२
प्रममाथोरसा कांश्चिदूरुभ्यामपरानपि ।
केचित्तस्यैव नादेन तत्रैव पतिता भुवि १३
ततस्तेष्ववपन्नेषु भूमौ निपतितेषु च ।
तत्सैन्यमगमत्सर्वं दिशो दश भयार्दितम् १४
विनेदुर्विस्वरं नागा निपेतुर्भुवि वाजिनः ।
भग्ननीडध्वजच्छत्रैर्भूश्च कीर्णाभवद्रथैः १५
स्रवता रुधिरेणाथ स्रवन्त्यो दर्शिताः पथि ।
विविधैश्च स्वनैर्लङ्का ननाद विकृतं तदा १६
स तान्प्रवृद्धान्विनिहत्य राक्षसान्महाबलश्चण्डपराक्रमः कपिः ।

धनुषवाले मेघों के साथ मारुतवत् साथ क्रीडा करता हुआ, वह शोभित हुआ । (६-१०)

घोर नाद कर के उस बडी सेना को डराते हुए हनुमान्ने उन राक्षसों पर बडा वेग किया । किसी को थप्पड से, किसी को चरण से, और बहुतसों को नखों से चीर फाड डाला । किन्हीं को छाती से रगडा, किन्हीं को जांघों से और कोई उस के नाद से ही भूमि पर गिर पडे । उन के इस तरह भूमि पर गिरने पर वह सेना भयार्दित हो भाग निकली । (११-१४)

हाथी चिंघाड मारते हुए भाग गये, घोडे पृथ्वी पर गिर पडे और ध्वजा छत्रसहित चूर्णीभूत रथों से वहां की पृथ्वी पूर्ण हो गई । लंका के मार्ग में रुधिर की नदियां बह चलीं और नाना शब्दों से लंका में हाहाकार मच गया । उन राक्षसों को मार प्रचण्ड पराक्रमी हनुमान् अन्य

युयुत्सुरन्यैः पुनरेव राक्षसैस्तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणम् १७

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥४५॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः। [१८९१]

हतान्मन्त्रिसुतान्बुद्ध्वा वानरेण महात्मना।
रावणः संवृताकारश्चकारमतिमुत्तमाम् १
स विरूपाक्षयूपाक्षौ दुर्धरं चैव राक्षसम्।
प्रघसं भासकर्णं च पञ्चसेनाग्रनायकान् २
संदिदेश दशग्रीवो वीरान्नयविशारदान्।
हनूमद्ग्रहणेऽव्यग्रान्वायुवेगसमान्युधि ३
यात सेनाग्रगाः सर्वे महाबलपरिग्रहाः।
सवाजिरथमातङ्गाः स कपिः शास्यतामिति ४
यत्तैश्च खलु भाव्यं स्यात्तमासाद्य वनालयम्।
कर्म चापि समाधेयं देशकालाविरोधितम्।
न ह्यहं तं कपिं मन्ये कर्मणा प्रतितर्कयन् ५
सर्वथा तन्महद्भूतं महाबलपरिग्रहम्।
वानरोऽयमिति ज्ञात्वा न हि शुद्ध्यति मे मनः ६
नैवाहं तं कपिं मन्ये यथेयं प्रस्तुता कथा।
भवेदिन्द्रेण वा सृष्टमस्मदर्थं तपोबलात् ७

राक्षसों से युद्ध करने की इच्छा से फिर उसी तोरण पर जा बैठा।(१५-१७)

यहाँ पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

मन्त्री के पुत्रों को मरा हुआ जान, रावणने उदास हो उत्तम मति की। उसने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस और भासकर्ण इन पांच वीर नीति-विशारद हनुमान् के पकडने में व्यग्र योद्धाओं को आज्ञा दी कि, तुम सब बडी सेना के लाये हुए अश्व और रथ तथा हाथियों से युक्त हो उस वानर का शासन करो। परन्तु उस वानर के पास पहुंच देशकाल से अविरोधी काम करना चाहिये। उस के कर्म विचारता हुआ, उस अद्भुत बडी सेना का परिग्रह करनेवाले को मैं वानर नहीं मानता। शायद उसे इन्द्रने

सनागयक्षगन्धर्वदेवासुरमहर्षयः ।
युष्माभिः प्रहितैः सर्वैर्मया सह विनिर्जिताः ८
तैरवश्यं विधातव्यं व्यलीकं किंचिदेव नः ।
तदेव नात्र संदेहः प्रसह्य परिगृह्यताम् ९
यात सेनाग्रगाः सर्वे महाबलपरिग्रहाः ।
सवाजिरथमातङ्गाः स कपिः शास्यतामिति १०
नावमान्यो भवद्भिश्च कपिर्वीरपराक्रमः ।
दृष्टा हि हरयः शीघ्रं मया विपुलविक्रमाः ११
वाली च सह सुग्रीवो जाम्बवांश्च महाबलः ।
नीलः सेनापतिश्चैव ये चान्ये द्विविदादयः १२
नैव तेषां गतिर्भीमा न तेजो न पराक्रमः ।
न मतिर्न बलोत्साहो न रूपपरिकल्पनम् १३
महत्सत्त्वमिदं ज्ञेयं कपिरूपं व्यवस्थितम् ।
प्रयत्नं महदास्थाय क्रियतामस्य निग्रहः १४
कामं लोकास्त्रयः सेन्द्राः ससुरासुरमानवाः ।
भवतामग्रतः स्थातुं न पर्याप्ता रणाजिरे १५
तथापि तु नयज्ञेन जयमाकाङ्क्षता रणे ।
आत्मा रक्ष्यः प्रयत्नेन युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला १६

तपोबल से हमारे लिये सृजा हो ।(१-७)

अथवा नाग, यक्ष, गन्धर्व, देव आदिने जिनको हमारे भेजे तुमने एक ही समय में जीत लिया था, उन्होंने ही हमारे दुःख के लिये कुछ उपाय रचा है, अतः इसे बलात् पकड लो । इस पराक्रमी की अवमानना न करना। मैंने पूर्व भी वाली, सुग्रीव, जाम्बवान्, सेनापति नील और द्विविद आदि वानर देखे हैं, पर उनमें ऐसी गति, तेज, पराक्रम, बल, उत्साह, रूप का बदलना और मति नहीं है । कपिरूप धार के यह कोई बडा जीव आया है, बडे प्रयत्न से इसे बन्दी कर लो । युद्ध में इन्द्र और सुरासुरों-सहित तीनों लोक तुम्हारे सामने नहीं ठहर सकते । तो भी नीतिवान्

ते स्वामिवचनं सर्वे प्रतिगृह्य महौजसः।
समुत्पेतुर्महावेगा हुताशसमतेजसः १७
रथैश्च मत्तैर्नागैश्च वाजिभिश्च महाजवैः।
शस्त्रैश्च निशितैस्तीक्ष्णैः सर्वैश्चोपहिता बलैः १८
ततस्तु ददृशुर्वीरा दीप्यमानं महाकपिम्।
रश्मिमन्तमिवोद्यन्तं स्वतेजोरश्ममालिनम् १९
तोरणस्थं महावेगं महासत्त्वं महाबलम्।
महामतिं महोत्साहं महाकायं महाभुजम् २०
तं समीक्ष्यैव ते सर्वे दिक्षु सर्वास्ववस्थिताः।
तैस्तैः प्रहरणैर्भीमैरभिपेतुस्ततस्ततः २१
तस्य पञ्चायसास्तीक्ष्णाः सिताः पीतमुखाः शराः।
शिरस्युत्पलपत्राभा दुर्धरेण निपातिताः २२
स तैः पञ्चभिराविद्धः शरैः शिरसि वानरः।
उत्पपात नदन्व्योम्नि दिशो दश विनादयन् २३

जय की इच्छा करनेवाले को रण में प्रयत्न से अपनी रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि युद्धसिद्धि अनिश्चित होती है। (८-१६)

वे सब रावण का वचन ग्रहण कर बड़े तेज और वेगवाले वहां से चले। उन के साथ अनेक रथ व मतवाले हाथी व अति वेग से चलनेवाले घोड़े व तीक्ष्ण पैने नाना प्रकार के शस्त्र धारण किये बड़ी सेना चली और वहां पहुंच कर उन महावीरों ने अति दिसमान् महाकपिको देखा, जो कि किरण-सहित सूर्य के समान प्रकाशित हो महासत्त्व, महाबल, महापराक्रम धारण किये उसी प्रासाद के छज्जे पर बैठा था। (१६-२०)

उसे देख राक्षसोंने सब ओर से घेर लिया और जो जो अस्त्र, शस्त्र साथ लाये थे, वे सब उस के ऊपर चलाने लगे। उस के सिर पर कमलपत्र के समान दीप्तिवाले पांच लोहे के सफेद बाण पीतमुखवाले दुर्धरने मारे। उन पांचों बाण के सीर में लगने से हनुमान् दशों दिशाओं को नाद से

ततस्तु दुर्धरो वीरः सरथः सज्जकार्मुकः ।
किरञ्शरशतैर्नैकैरभिपेदे महाबलः २४
स कपिर्वारयामास तं व्योम्नि शरवर्षिणम् ।
वृष्टिमन्तं पयोदान्ते पयोदमिव मारुतः २५
अर्द्यमानस्ततस्तेन दुर्धरेणानिलात्मजः ।
चकार निनदं भूयो व्यवर्धत च वीर्यवान् २६
स दूरं सहसोत्पत्य दुर्धरस्य रथे हरिः ।
निपपात महावेगो विद्युद्राशिर्गिराविव २७
ततः स मथिताष्टाश्वं रथं भग्नाक्षकूबरम् ।
विहाय न्यपतद्भूमौ दुर्धरस्त्यक्तजीवितः २८
तं विरूपाक्षयूपाक्षौ दृष्ट्वा निपतितं भुवि ।
तौ जातरोषौ दुर्धर्षावुत्पेततुररिन्दमौ २९
स ताभ्यां सहसोत्प्लुत्य विष्ठितो विमलेऽम्बरे ।
मुद्गराभ्यां महाबाहुर्वक्षस्यभिहतः कपिः ३०
तयोर्वेगवतोर्वेगं निहत्य स महाबलः ।

पूरित करता हुआ आकाश में कूद गया । तब दुर्धर धनुष पर रोदा चढा अपने रथ पर खडा हो गया व सैकडों हजारों बाण उसने चलाये । पर हनुमान् उस के बाणों की वृष्टि बचाता रहा, जैसे बरसते बादल के पीछे और बादल को पवन बचाता है । (२१-२५)

जब दुर्धरने बहुत बाण मारे, तो उन से पीडित हो महावीर्यवान् हनुमान् बडा शब्द कर बडा लम्बा चौडा हो गया और बडी दूर ऊपर को उछल उस दुर्धर के रथ पर आ गिरा, जैसे वज्र पर्वत पर गिरता है । उस के बडे वेग से कूदने की चोट से आठों घोडे रथसहित चूर्ण हो गये व दुर्धर भी मर गया । दुर्धर को मरा देख, विरूपाक्ष व यूपाक्ष दोनों बडे वीर शत्रु के मारने के लिये कोप कर प्राप्त हुए । उन दोनोंने उछल आकाश में स्थित कपि की छाती में दो मुद्गर मारे । (२६-३०)

पर उन दोनों वेगवानों का वेग विनष्ट कर महाबली हनुमान् गरुड के

निपपात पुनर्भूमौ सुपर्ण इव वेगितः ३१
स सालवृक्षमासाद्य समुत्पाट्य च वानरः ।
नावुभौ राक्षसौ वीरौ जघान पवनात्मजः ३२
ततस्तांस्त्रीन्हतान्ज्ञात्वा वानरेण तरस्विना ।
अभिगम्य महावेगः प्रहस्य प्रघसो बली ३३
भासकर्णश्च संक्रुद्धः शूलमादाय वीर्यवान् ।
एकतः कपिशार्दूलं यशस्विनमवस्थितौ ३४
पट्टिशेन शिताग्रेण प्रघसः प्रत्यपोथयत् ।
भासकर्णश्च शूलेन राक्षसः कपिकुञ्जरम् ३५
स ताभ्यां विक्षतैर्गात्रैरसृग्दिग्धतनूरुहः ।
अभवद्वानरः क्रुद्धो वालसूर्यसमप्रभः ३६
समुत्पाट्य गिरेः शृङ्गं समृगव्यालपादपम् ।
जघान हनुमान्वीरो राक्षसौ कपिकुञ्जरः ३७
गिरिशृङ्गसुनिष्पिष्टौ तिलशस्तौ बभूवतुः ३८
ततस्तेष्ववसन्नेषु सेनापतिषु पञ्चसु ।
बलं तदवशेषं तु नाशयामास वानरः ३९

समान आकाश से फिर पृथ्वी पर कूद पड़ा और बड़ा भारी साल का वृक्ष उखाड उन दोनों को राक्षसों को मार डाला । तब महावेगवाले वानर से उन तीनों को मरा सुन प्रघस बल कर के वहां आया और क्रोधित हो, हाथ में शूल ले भासकर्ण दूसरी ओर से आकर हनुमान् को घेर खडा हो गया । प्रघसने पैने पट्टिश से और भासकर्णने शूल से हनुमान् को मारा । (३१-३५)

उन दोनों के प्रहार से क्रोधित हनुमान् अंगों में रुधिर लगने से बाल-सूर्यवत् शोभा देने लगा और मृग व्याल तथा पादपों से युक्त पर्वतशृंग को उखाड उन दोनों राक्षसों को मार डाला, उस पर्वतशृंग के लगने से वे चूर्ण हो गये । (३६-३८)

इस तरह पांचों सेनापतियों के मारने के पश्चात् उनके संग आई सेना

अश्वैरश्वान्गजैर्नागान्योधैर्योधान्रथै रथान् ।
स कपिर्नाशयामास सहस्राक्ष इवासुरान् ४०
हयैर्नागैस्तुरङ्गैश्च भग्नाक्षैश्च महारथैः ।
हतैश्च राक्षसैर्भूमी रुद्धमार्गा समन्ततः ४१
ततः कपिस्तान्ध्वजिनीपतीन्रणे निहत्य वीरान्सबलान्सवाहनान् ।
तथैव वीरः परिगृह्य तोरणं कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये ४२
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः । [१९३३]

सेनापतीन्पञ्च स तु प्रमापितान्हनूमता सानुचरान्सवाहनान् ।
निशम्य राजा समरोद्धतोन्मुखं कुमारमक्षं प्रसमैक्षताक्षम् १
स तस्य दृष्ट्यर्पणसंप्रचोदितः प्रतापवान्काञ्चनचित्रकार्मुकः ।
समुत्पपाताथ सदस्युदीरितो द्विजातिमुख्यैर्हविषेव पावकः २
ततो महान्बालदिवाकरप्रभं प्रतप्तजाम्बूनदजालसन्ततम् ।
रथं समास्थाय ययौ स वीर्यवान्महाहरिं तं प्रति नैर्ऋतर्षभः ३
ततस्तपःसंग्रहसंचयार्जितं प्रतप्तजाम्बूनदजालचित्रितम् ।
पताकिनं रत्नविभूषितध्वजं मनोजवाष्टाश्ववरैः सुयोजितम् ४

को भी मार डाला । घोडों के ऊपर घोडों को, हाथियों पर हाथियों को, योधाओं पर योधाओं को और रथ पर रथों को पटक पटक कर सब सेना ऐसे मार डाली, जैसे इन्द्र असुरों को । मरे हुए नागादि से सब ओर से पृथ्वीका मार्ग रुक गया । वाहन व सेनासहित समरमें उन सेनापतियोंको मार हनुमान् फिर उसी तोरण पर प्रलयकालके समान जा बैठा । (३८-४२)

यहाँ छयालिसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

सेना व वाहनसहित उन पांचों सेनापतियों को हनुमान् द्वारा मरा हुआ, सुन रावण समर करने में बडे उद्भट अपने पुत्र अक्ष की ओर देखने लगा । तब महाप्रतापवान् अक्ष रावण की दृष्टिमात्र से प्रेरित हो बीच सभा में कूद खडा हो गया । ततः बालसूर्यसम व स्वर्णजाल से शोभित रथ पर बैठ वह राक्षसश्रेष्ठ हनुमान् के प्रति चला । तपस्या से प्राप्त किये,

सुरासुराधृष्यमसङ्गचारिणं तडित्प्रभं व्योमचरं समाहितम् ।
सतूणमष्टासिनिबद्धबन्धुरं यथाक्रमावेशितशक्तितोमरम् ५
विराजमानं प्रतिपूर्णवस्तुना सहेमदाम्ना शशिसूर्यवर्चसा ।
दिवाकराभं रथमास्थितस्ततः स निर्जगामामरतुल्यविक्रमः ६
स पूरयन्खं च महीं च साचलां तुरङ्गमातङ्गमहारथस्वनैः ।
बलैः समेतैः सह तोरणस्थितं समर्थमासीनमुपागमत्कपिम् ७
स तं समासाद्य हरिं हरीक्षणो युगान्तकालाग्निमिव प्रजाक्षये ।
अवस्थितं विस्मितजातसंभ्रमं समैक्षताक्षो बहुमानचक्षुषा ८
स तस्य वेगं च कपेर्महात्मनः पराक्रमं चारिषु रावणात्मजः ।
विचारयन्स्वं च बलं महाबलो युगक्षये सूर्य इवाभिवर्धत ९
स जातमन्युः प्रसमीक्ष्य विक्रमं स्थितः स्थिरः संयति दुर्निवारणम् ।
समाहितात्मा हनुमन्तमाहवे प्रचोदयामास शितैः शरैस्त्रिभिः १०
ततः कपिं तं प्रसमीक्ष्य गर्वितं जितश्रमं शत्रुपराजयोचितम् ।
अवैक्षताक्षः समुदीर्णमानसं सबाणपाणिः प्रगृहीतकार्मुकः ११
स हेमनिष्काङ्गदचारुकुण्डलः समाससादाशुपराक्रमः कपिम् ।

स्वर्णजाल से शोभित पताकावाले मनोवेग आठ घोडे जुते हुए, सुरासुरों से अधृष्य, निराधार में चलनेवाले आठ खड्गों से युक्त, यथाक्रम शक्ति तोमरादि आवश्यक वस्तुओं से परिपूर्ण, चन्द्रसूर्य की दीप्ति के तुल्य प्रकाशित, सूर्यसम श्वेत रथ पर चढ देवतुल्य पराक्रमी अक्ष लंका से निकला। (१-६)

और हाथी घोडे रथोंके शब्दोंसे आकाश पृथ्वी को पूरित करता तोरणस्थ हनुमान् के पास पहुंचा व बडे मान की दृष्टि से प्रजाक्षय के लिये युगान्ताग्निवत् बैठे उसको देखा। वह रावणपुत्र महात्मा हनुमान् का और अपना बल विचारता हुआ, हिमक्षय के पश्चात् सूर्यवत् बढा और स्वस्थचित्त हो, बडा कोप कर दुर्निवारणीय हनुमान् को रण में स्थित देख तीन बाण चला युद्धार्थ उसे प्रेरा। (७-१०)

ततः कपि को गर्वित जितश्रम शत्रु के हराने के योग्य देख अक्षने धनुषबाण हाथ में लिया। स्वर्ण के चारु कुण्डल धारे आशुपराक्रमी वह

तयोर्बभूवाप्रतिमः समागमः सुरासुराणामपि संभ्रमप्रदः १२
ररास भूमिर्न ततापः भानुमान्ववौ न वायुः प्रचचाल चाचलः ।
कपेः कुमारस्य च वीर्यसंयुगं ननाद च द्यौरुदधिश्च चुक्षुभे १३
स तस्य वीरः सुमुखान्पतत्रिणः सुवर्णपुङ्खान्सविषानिवोरगान् ।
समाधिसंयोगविमोक्षतत्त्ववित्छरानथ त्रीन्कपिमूर्ध्न्यताडयत् १४
स तैः शरैर्मूर्ध्नि समं निपातितैः क्षरन्नसृग्दिग्धविवृत्तनेत्रः ।
नवोदितादित्यनिभः शरांशुमान्व्यराजतादित्य इवांशुमालिकः १५
ततः प्लवङ्गाधिपमन्त्रिसत्तमः समीक्ष्य तं राजवरात्मजं रणे ।
उदग्रचित्रायुधचित्रकार्मुकं जहर्ष चापूर्यत चाहवोन्मुखः १६
स मन्दराग्रस्थ इवांशुमाली विवृद्धकोपो बलवीर्यसंवृतः ।
कुमारमक्षं सबलं सवाहनं ददाह नेत्राग्निमरीचिभिस्तदा १७
ततः सबाणासनशक्रकार्मुकः शरप्रवर्षो युधि राक्षसाम्बुदः ।
शरान्मुमोचाशुहरीश्वराचले बलाहको वृष्टिमिवाचलोत्तमे १८
कपिस्ततस्तं रणचण्डविक्रमं प्रवृद्धतेजोबलवीर्यसंयुतम् ।
कुमारमक्षं प्रसमीक्ष्य संयुगे ननाद हर्षाद्धनतुल्यनिःस्वनः १९

कपि के पास आया, उन दोनों का युद्ध सुरासुरों को भी विस्मय देने लगा । उन दोनों का संग्राम देख भूमि शब्द करने लगी, सूर्य मलिन, वायु गतिहीन, पर्वत कम्पित, द्यौ नादयुक्त और समुद्र क्षुब्ध हो गया । तब बाण छोडने और उन्हें लौटा लेने में चतुर अक्षने विषधर सर्पों के समान तीन बाण हनुमान् के शिर में मारे । बाणों के लगने, रुधिर बहने और नेत्र घूम जाने के कारण हनुमान् किरणयुक्त बालसूर्यवत् शोभा देने लगा ।(११-१५)

सुग्रीव के मंत्रियों में श्रेष्ठ हनुमान् बडा भारी धनुषबाण हाथ में लिये अक्षको समर में देख अट्टहास से हंसा । मन्दरस्थ सूर्यवत् बली हनुमान् नेत्रों की अग्निकिरणों से सेनावाहनसहित अक्षको दग्ध करने लगा । तदनु बादलरूप वह राक्षस पर्वताकार हनुमान् पर बाणवर्षा करने लगा, जैसे मेघ उत्तम पर्वत पर । तब रणप्रचण्ड बली तेजस्वी अक्षको समर में देख

स बालभावाद्युधि वीर्यदर्पितः प्रवृद्धमन्युः क्षतजोपमेक्षणः।
समाससादाप्रतिमं रणे कपिं गजो महाकूपमिवावृतं तृणैः २०
स तेन बाणैः प्रसभं निपातितैश्चकार नादं घननादनिःस्वनः।
समुत्सहेनाशु नभः समारुजन्भुजोरुविक्षेपणघोरदर्शनः २१
तमुत्पतन्तं समभिद्रवद्बली स राक्षसानां प्रवरः प्रतापवान्।
रथी रथिश्रेष्ठतरः किरञ्छरैः पयोधरः शैलमिवाश्मवृष्टिभिः २२
स ताञ्छरांस्तस्य हरिर्विमोक्षयंश्चचार वीरः पथि वायुसेविते।
शरान्तरे मारुतवद्विनिष्पतन्मनोजवः संयति भीमविक्रमः २३
तमात्तबाणासनमाहवोन्मुखं खमास्तृणन्तं विविधैः शरोत्तमैः।
अवैक्षताक्षं बहुमानचक्षुषा जगाम चिन्तां स च मारुतात्मजः २४
ततः शरैर्भिन्नभुजान्तरः कपिः कुमारवर्येण महात्मना नदन्।
महाभुजः कर्मविशेषतत्त्वविद्विचिन्तयामास रणे पराक्रमम् २५
अबालवद्बालदिवाकरप्रभः करोत्ययं कर्म महान्महाबलः।
न चास्य सर्वाहवकर्मशालिनः प्रमापणे मे मतिरत्र जायते २६

हनुमान् हर्षित हो, बादलों के समान गर्जा। वह बालभाव से युद्ध में वीर्यदर्पित क्रोध से रक्तनेत्र गजवत् अक्ष समर में तृणाच्छादित कूपवत् हनुमान् को प्राप्त हुआ। (१६-२०)

उस के बाणों के लगने से उत्साहित हो, भुजा, जांघों को चलाता हुआ हनुमान् मेघवत् गर्ज आकाश में चला गया। उसे आकाश में उछलते देख महाबली अक्ष बाणों से ऐसे मारने लगा, जैसे मेघ पर्वत को ओलों की वर्षा से। तब उसके बाणजाल में पडा हनुमान् मनगति हो आकाश में ऐसा घूमा कि, एक भी बाण अंगों में न लगने पाया। धनुषबाण लिये रणोद्यत नाना बाणों से आकाश को ढकते हुए अक्षको देख मारुति चिंता करने लगा। महात्मा अक्षद्वारा भुजान्तर बाणों से बिंध गया है जिस का, ऐसा वह हनुमान् उस का पराक्रम विचारने लगा। (२१-२५)

महाबली अक्ष बालक के से कर्म नहीं करता है, इस से समर की सब

अयं महात्मा च महांश्च वीर्यतः समाहितश्चातिसहश्च संयुगे ।
असंशयं कर्मगुणोदयादयं सनागयक्षैर्मुनिभिश्च पूजितः २७
पराक्रमोत्साहविवृद्धमानसः समीक्षते मां प्रमुखोऽग्रतः स्थितः ।
पराक्रमो ह्यस्य मनांसि कम्पयेत्सुरासुराणामपि शीघ्रकारिणः २८
न खल्वयं नाभिभवेदुपेक्षितः पराक्रमो ह्यस्य रणे विवर्धते ।
प्रमापणं ह्यस्य ममाद्य रोचते न वर्धमानोऽग्निरुपेक्षितुं क्षमः २९
इति प्रवेगं तु परस्य तर्कयन्स्वकर्मयोगं च विधाय वीर्यवान् ।
चकार वेगं तु महाबलस्तदा मतिं च चक्रेऽस्य वधे तदानीम् ३०
स तस्य तानष्ट वरान्महाहयान्समाहितान्भारसहान्विवर्तने ।
जघान वीरः पथि वायुसेविते तलप्रहारैः पवनात्मजः कपिः ३१
ततस्तलेनाभिहतो महारथः स तस्य पिङ्गाधिपमन्त्रिनिर्जितः ।
स भग्ननीडः परिवृत्तकूबरः पपात भूमौ हतवाजिरम्बरात् ३२
स तं परित्यज्य महारथो रथं सकार्मुकः खड्गधरः खमुत्पतन् ।
ततोऽभियोगाद्दृषिरुग्रवीर्यवान्विहाय देहं मरुतामिवालयम् ३३

क्रिया जाननेवाले इस के नाश की मति नहीं सूझ पडती । यह महात्मा वीर्यवान् रण में सहिष्णु है, अतः कर्मगुणोदय से नागयक्षमुनियों से पूजित हो सकता है । पराक्रम व उत्साह से बढे मनवाला आगे खडा यह मुझे देखता है, इस का पराक्रम सुरासुरों के मनों को भी कँपावेगा । रण में इस का पराक्रम बढता जाता है, अतः यह उपेक्षणीय नहीं है, वर्धमान अग्नि उपेक्षणीय नहीं होती, अतः इस का नाश ही करना मुझे अच्छा लगता है । (२६-२९)

इस प्रकार शत्रु के वेग व वध के योग को विचार हनुमान्ने उस के वधार्थ वेग व मति धारण की । हनुमान् ने महाबली बडा भार ले जाने योग्य आठों घोडों को तलप्रहार से आकाश में ही मार डाला । उस के तलप्रहार से रथ टूट गया, घोडे मर गए और अक्ष भूमि पर आ पडा । वह महारथी रथ को छोड धनुष और खड्ग ले आकाश में उछलता हुआ तपः-प्रभाव से शरीर छोड अमरालय को जाता हुआ, ऋषिसा प्रतीत हुआ ।

कपिस्ततस्तं विचरन्तमम्बरे पतत्त्रिराजानिलसिद्धसेविते ।
समेत्य तं मारुतवेगविक्रमः क्रमेण जग्राह च पादयोर्दृढम् ३४
स तं समाविद्ध्य सहस्रशः कपिर्महोरगं गृह्य इवाण्डजेश्वरः ।
मुमोच वेगात्पितृतुल्यविक्रमो महीतले संयति वानरोत्तमः ३५
स भग्नबाहूरुकटीपयोधरः क्षरन्नसृङ्निर्मथितास्थिलोचनः ।
संभिन्नसंधिः प्रविकीर्णबन्धनो हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः ३६
महाकपिर्भूमितले निपीड्य तं चकार रक्षोधिपतेर्महद्भयम् ।
महर्षिभिश्चक्रचरैः समागतैः समेत्य भूतैश्च सयक्षपन्नगैः ।
सुरैश्च सेन्द्रैर्भृशजातविस्मयैर्हते कुमारे स कपिर्निरीक्षितः ३७
निहत्य तं वज्रिसुतोपमं रणे कुमारमक्षं क्षतजोपमेक्षणम् ।
तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणं कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये ३८
इत्यार्षे श्रीम० वाल्मी० आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ।४७।[१९७१]

तब आकाश में विचरते हुए उस के दोनों पैरों को मारुतिने जोर से पकड लिये । (३१-३४)

गरुड जैसे सर्प को तैसे हनुमानने उसे आकाश ही में बहुत वार झिटका और घुमाकर समरभूमि पर जोर से पटक दिया । जिस से उस के अंग चूर्ण हो गये, रुधिर बह निकला, देह के सब जोड उखड गये । इस तरह वायुसुतने उसे पृथ्वी में पटक कर मार डाला । अस्तु । महाकपि हनुमान्‌ने अक्ष को भूमि पर पटक कर मार डाल, राक्षसाधिप रावण के अंतःकरण में महा भय की उत्पत्ति की । उस समय ग्रह, महर्षि, भूत, यक्ष, पन्नग और इंद्र के साथ देव भी विस्मित हो, हनुमान् को देखने लगे । इन्द्रपुत्र जयन्तवत् अक्ष को मार महावीर हनुमान् अन्यों से युद्ध की इच्छा से उसी तोरण पर प्रजाओं के नाश समय के कालसमान जा बैठा । (३५-३८)

यहाँ सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ।

ततस्तु रक्षोधिपतिर्महात्मा हनूमताक्षे निहते कुमारे ।
मनः समाधाय स देवकल्पं समादिदेशेन्द्रजितं सरोषः १
त्वमस्त्रविच्छस्त्रभृतां वरिष्ठः सुरासुराणामपि शोकदाता ।
सुरेषु सेन्द्रेषु च दृष्टकर्मा पितामहाराधनसंचितास्त्रः २
त्वदस्त्रबलमासाद्य ससुराः समरुद्गणाः ।
न शेकुः समरे स्थातुं सुरेश्वरसमाश्रिताः ३
न कश्चित्त्रिषु लोकेषु संयुगे न गतश्रमः ।
भुजवीर्याभिगुप्तश्च तपसा चाभिरक्षितः ।
देशकालप्रधानश्च त्वमेव मतिसत्तमः ४
न तेऽस्त्यशक्यं समरेषु कर्मणां न तेऽस्त्यकार्यं मतिपूर्वमन्त्रणे ।
न सोऽस्ति कश्चित्त्रिषु संग्रहेषु न वेद यस्तेऽस्त्रबलं बलं च ५
ममानुरूपं तपसो बलं च ते पराक्रमश्चास्त्रबलं च संयुगे ।
न त्वा समासाद्य रणावमर्दे मनः श्रमं गच्छति निश्चितार्थम् ६

ततः रावण ने अक्षके मारे जानेपर क्रोध में भर इन्द्रसम इन्द्रजित् को आज्ञा दी कि, तुम शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ सुरासुरों को भी शोक देनेवाले हो, इन्द्रसहित देवताओं के प्रति तुम्हारा कर्म देखा जा चुका है और ब्रह्मा की आराधना से तुमने अस्त्र प्राप्त किये हैं । तुम्हारे अस्त्रबल के आगे युद्ध में इन्द्राश्रित असुर और मरुद्गण भी नहीं ठहर सके । तीनों लोकों में युद्ध में तुम्हारे हाथ से कोई नहीं बचा, भुजवीर्य से तथा तपद्वारा तुम रक्षित हो, देशकाल का विभाग जाननेवाले और उत्तम मतिवाले हो । (१–४)

युद्ध के मौके पर करनेयोग्य कार्यों में ऐसा कोई कार्य नहीं, जो तुम्हारे लिए असंभव साबित हो । सोचसमझ कर राजनैतिक कार्यों का ख्याल करनेका समय आ जाए, तो भी तुम्हारी बुद्धि जिस की थाह नहीं पा सके ऐसी बात नहीं है । तुम्हारी शक्ति एवं शस्त्रबल को न जाननेवाला समूचे संसार में कोई नहीं है । लडाई के समय मेरे समानही तुम्हारे पराक्रम, अस्त्रबल एवं तपश्चर्या हैं, इसलिए घमासान लडाई होते समय भी विजय

निहताः किङ्कराः सर्वे जम्बुमाली च राक्षसः।
अमात्यपुत्रा वीराश्च पञ्च सेनाग्रगामिनः ७
बलानि सुसमृद्धानि साश्वनागरथानि च।
महोदरश्च शयितः कुमारोऽक्षश्च सूदितः ८
न तु तेष्वेव मे सारो यस्त्वय्यरिनिषूदन ९
इदं च दृष्ट्वा निहतं महद्बलं कपेः प्रभावं च पराक्रमं च।
त्वमात्मनश्चापि निरीक्ष्य सारं कुरुष्व वेगं स्वबलानुरूपम् १०
बलावमर्दैस्त्वयि संनिकृष्टे यथागते शाम्यति शान्तशत्रुः।
तथा समीक्ष्यात्मबलं परं च समारभस्वास्त्रभृतां वरिष्ठ ११
न वीर सेना गणशो व्यवन्ति न वज्रमादाय विशालसारम्।
न मारुतस्यास्ति गतिप्रमाणं न चाग्निकल्पः करणेन हन्तुम् १२
तमेवमर्थं प्रसमीक्ष्य सम्यक्स्वकर्मसाम्याद्धि समाहितात्मा।
स्मरंश्च दिव्यं धनुषोऽस्य वीर्यं व्रजाक्षतं कर्म समारभस्व १३

के संबंध में संशयरहित मेरा मन तुम पर निर्भर रहने के कारण सन्देह-दोलारूढ नहीं बन जाता है। देखो, उस वानर ने किंकरों को, जम्बुमाली, अमात्यपुत्रों और पांचों सेनापतियों को मार डाला। हाथी घोड़ों रथोंसहित बहुतसी सेना मारी गई, तुम्हारा सहोदर प्रिय अक्ष भी मारा गया, पर जो सार तुम में है, उनमें नहीं था। (५-९)

इससे अब यह बडी भारी सेना मरी देख व वानर का प्रभावबल देख और अपने शरीर का पौरुष समझ स्वबलानुसार वेग करो। जैसा करने से बहुत सेना न मारी जाय और शत्रु शान्त हो जाय, वैसी युक्ति विचारो और अपना तथा शत्रु का बल जान कार्य आरम्भ करो। वीर सेना जो रणसे भागती नहीं, विशाल सारवाले शस्त्र, वायुवत् वेगवाले वाहन और अग्निसम तेज अस्त्र संग लेने चाहियें। (१०-१२)

अच्छी तरह यह अर्थ देख व अपने कर्मों की समता से सावधान हो और अपने इस दिव्य धनुष का बल स्मरण कर जाओ और कार्य आरम्भ

न खल्वियं मतिश्रेष्ठ यत्त्वां संप्रेषयाम्यहम् ।
इयं च राजधर्माणां क्षत्रस्य च मतिर्मता १४
नानाशास्त्रेषु सङ्ग्रामे वैशारद्यमरिन्दम ।
अवश्यमेव बोद्धव्यं काम्यश्च विजयो रणे १५
ततः पितुस्तद्वचनं निशम्य प्रदक्षिणं दक्षसुतप्रभावः ।
चकार भर्तारमतित्वरेण रणाय वीरः प्रतिपन्नबुद्धिः १६
ततस्तैः स्वगणैरिष्टैरिन्द्रजित्प्रतिपूजितः ।
युद्धोद्धतकृतोत्साहः सङ्ग्रामं संप्रपद्यत १७
श्रीमान्पद्मविशालाक्षो राक्षसाधिपतेः सुतः ।
निर्जगाम महातेजाः समुद्र इव पर्वणि १८
स पक्षिराजोपमतुल्यवेगैर्व्यालैश्चतुर्भिः स तु तीक्ष्णदंष्ट्रैः ।
रथं समायुक्तमसह्यवेगः समारुरोहेन्द्रजिदिन्द्रकल्पः १९
स रथी धन्विनां श्रेष्ठः शस्त्रज्ञोऽस्त्रविदां वरः ।
रथेनाभिययौ क्षिप्रं हनूमान्यत्र सोऽभवत् २०
स तस्य रथनिर्घोषं ज्यास्वनं कार्मुकस्य च ।
निशम्य हरिवीरोऽसौ संप्रहृष्टतरोऽभवत् २१

करो । जिस मति से मैं वहां तुम को भेजता हूं, वह मति श्रेष्ठ नहीं है, पर यह राजधर्मवाले पुरुषों व क्षत्रियों की मति कहाती है । हे अरिन्दम ! रण में विजयाकांक्षा अवश्य रखना और समर में नाना प्रकार की शस्त्र-चातुरी का ध्यान रखना । (१३-१५)

पिता का वचन सुन देवसमप्रभाववाला अदीनसत्त्व प्रतिपन्नबुद्धि इन्द्रजित् ने रण में जाने के लिये पिताकी प्रदक्षिणा की । ततः स्वगणों से पूजित युद्धार्थ उत्साह कर संग्राम के लिये तैयार हुआ और पूर्णमासी में समुद्रवत् वह लङ्का से बाहर निकला । वह इन्द्रोपम गरुड के से वेगवाले चार सर्प जुते रथ पर सवार हुआ । वह धनुर्धारियों में श्रेष्ठ रथ पर चढ हनुमान् के पास शीघ्र पहुंचा (१६-२०)

उसके रथ व धनुष की प्रत्यञ्चा का शब्द सुन हनुमान् बडा प्रसन्न

इन्द्रजिच्चापमादाय शितशल्यांश्च सायकान्।
हनूमन्तमभिप्रेत्य जगाम रणपण्डितः २२
तस्मिंस्ततः संयति जातहर्षे रणाय निर्गच्छति बाणपाणौ।
दिशश्च सर्वाः कलुषा बभूवुर्मृगाश्च रौद्रा बहुधा विनेदुः २३
समागतास्तत्र तु नागयक्षा महर्षयश्चक्रचराश्च सिद्धाः।
नभः समावृत्य च पक्षिसङ्घा विनेदुरुच्चैः परमप्रहृष्टाः २४
आयान्तं सरथं दृष्ट्वा पूर्णमिन्द्रध्वजं कपिः।
ननाद च महानादं व्यवर्धत च वेगवान् २५
इन्द्रजित्स रथं दिव्यमाश्रिताश्चित्रकार्मुकः।
धनुर्विस्फारयामास तडिदूर्जितनिःस्वनम् २६
ततः समेतावतितीक्ष्णवेगौ महाबलौ तौ रणनिर्विशङ्कौ।
कपिश्च रक्षोधिपतेस्तनूजः सुरासुरेन्द्राविव बद्धवैरौ २७
स तस्य वीरस्य महारथस्य धनुष्मतः संयति संमतस्य।
शरप्रवेगं व्यहनत्प्रवृद्धश्चचार मार्गे पितुरप्रमेयः २८

हुआ। रथयुक्त इन्द्रजित् को शीघ्रता से आता देख वेगवान् हनुमान् अतीव हर्षित हुआ। वह युद्ध में अति कुशल इन्द्रजित् तेज नोकवाले बाण एवं धनुष्य लेकर हनुमान् की ओर चला गया। हाथ में बाण धारण करता हुआ इन्द्रजित् बड़ी प्रसन्नता से लड़ाई के क्षेत्र की ओर जा रहा था और इधर समूची दिशाएँ अंधेरे से ढकसी गयीं। डरावने पशु भाँति भाँति के शब्द करने लगे और उसी प्रकार वहाँ के नाग, यक्ष, महर्षि, ग्रह, सिद्ध तथा आकाश को व्यापनेवाले पंछियों के झुंड अत्यन्त हर्षित हो ऊँची आवाज में कूजन करने लगे। रथ पर चढकर आते हुए उस इन्द्रध्वज को देखकर वह वानर बड़ी गंभीर गर्जना करने लगा और प्रतिपक्ष बढने लगा। (२१-२५)

इन्द्रजित् भी उस दिव्य रथ पर बैठा धनुष से विद्युत् केसा शब्द करने लगा। वे तीक्ष्ण वेग महाबली रण में निःशंक हनुमान् और इन्द्रजित् देव-दैत्यवत् वैर बांध खड़े हो गये। उस वीर महारथी धनुषधारी के शरप्रवेग

ततः शरानायततीक्ष्णशल्यान्सुपत्रिणः काञ्चनचित्रपुङ्खान् ।
मुमोच वीरः परवीरहन्ता सुसन्ततान्वज्रसमानवेगान् २९
ततः स तत्स्यन्दननिःस्वनं च मृदङ्गभेरीपटहस्वनं च ।
विकृष्यमाणस्य च कार्मुकस्य निशम्य घोषं पुनरुत्पपात ३०
शराणामन्तरेष्वाशु व्यावर्तत महाकपिः ।
हरिस्तस्याभिलक्ष्यस्य मोक्षयँल्लक्ष्यसंग्रहम् ३१
शराणामग्रतस्तस्य पुनः समभिवर्तत ।
प्रसार्य हस्तौ हनुमानुत्पपातानिलात्मजः ३२
तावुभौ वेगसंपन्नौ रणकर्मविशारदौ ।
सर्वभूतमनोग्राहि चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ३३
हनूमतो वेद न राक्षसोऽन्तरं न मारुतिस्तस्य महात्मनोऽन्तरम् ।
परस्परं निर्विषहौ बभूवतुः समेत्य तौ देवसमानविक्रमौ ३४
ततस्तु लक्ष्ये स विहन्यमाने शरेष्वमोघेषु च संपतत्सु ।
जगाम चिन्तां महतीं महात्मा समाधिसंयोगसमाहितात्मा ३५
ततो मतिं राक्षसराजसूनुश्चकार तस्मिन्हरिवीरमुख्ये ।

को बचा हनुमान् आकाश में विचरने लगा । तब इन्द्रजित् ने स्वर्ण के विचित्र फोंक लगे वज्रसम वेगवाले बहुत बाण छोडे । हनुमान् उसके रथ मृदंग भेरी नगारों का और खींचे हुए धनुष का शब्द सुन फिर आकाशमें कूद गया । (२६-३०)

और उसके लक्ष्य को बचाता हुआ फुर्ती से इधरउधर घूमने लगा । फिर हनुमान् अपने दोनों हाथ आगे को फैला उसके सामने आया । वेग-सम्पन्न और रण में विशारद उन दोनों ने बडा उत्तम युद्ध किया । हनुमान् ने राक्षस का भेद और इन्द्रजित् ने हनुमान् का भेद न पाया । इससे वे देवविक्रमवाले एक दूसरे को न सह सके । हनुमान् के अमोघ बाण लगने पर भी उसे मरा हुआ न देख महात्मा इन्द्रजित् बडी चिन्ता करने लगा । (३१-३५)

रावणपुत्र ने बडी देर में सोचा कि, यह बानर किसी से मारा नहीं

अवध्यतां तस्य कपेः समीक्ष्य कथं निगच्छेदिति निग्रहार्थम् ३६
ततः पैतामहं वीरः सोऽस्त्रमस्त्रविदां वरः।
संदधे सुमहातेजास्तं हरिप्रवरं प्रति ३७
अवध्योऽयमिति ज्ञात्वा तमस्त्रेणास्त्रतत्त्ववित्।
निजग्राह महाबाहुं मारुतात्मजमिन्द्रजित् ३८
तेन बद्धस्ततोऽस्त्रेण राक्षसेन स वानरः।
अभवन्निर्विचेष्टश्च पपात च महीतले ३९
ततोऽथ बुद्ध्वा स तदस्त्रबन्धं प्रभोः प्रभावाद्विगताल्पवेगः।
पितामहानुग्रहमात्मनश्च विचिन्तयामास हरिप्रवीरः ४०
ततः स्वायंभुवैर्मन्त्रैर्ब्रह्मास्त्रं चाभिमन्त्रितम्।
हनूमांश्चिन्तयामास वरदानं पितामहात् ४१
न मेऽस्य बन्धस्य च शक्तिरस्ति विमोक्षणे लोकगुरोः प्रभावात्।
इत्येवमेवं विहितोऽस्त्रबन्धो मयात्मयोनेरनुवर्तितव्यः ४२
स वीर्यमस्त्रस्य कपिर्विचार्य पितामहानुग्रहमात्मनश्च।
विमोक्षशक्तिं परिचिन्तयित्वा पितामहाज्ञामनुवर्तते स्म ४३
अस्त्रेणापि हि बद्धस्य भयं मम न जायते।
पितामहमहेन्द्राभ्यां रक्षितस्यानिलेन च ४४

जा सकता, तब इसे कैसे पकड़ें ? तब उसने हनुमान् पर ब्रह्मास्त्र चलाने को धारण किया। उसे अवध्य जान महाबाहु इन्द्रजित् ने उस अस्त्र से हनुमान् को पकड लिया। उस अस्त्र से बंधकर हनुमान् निश्चेष्ट हो भूमि-पर गिर पडा। तब हनुमान् सोचने लगा कि, यह अस्त्र ब्राह्म मन्त्रों से अभिमन्त्रित और ब्रह्माद्वारा वरदान दिया हुआ है। लोकगुरु ब्रह्मा के प्रभाव से इस बन्धन से छूटने की शक्ति मुझ में नहीं है, इससे इस अस्त्र के अनुकूल मुझे चलना चाहिये। (३६-४२)

फिर हनुमान् ने अस्त्र का बल विचार अपने ऊपर ब्रह्मा का अनुग्रह माना और उसकी विमोक्षशक्ति को सोच ब्रह्मा की आज्ञा का पालन करने लगा। ब्रह्मा, इन्द्र, और पवन से रक्षित मुझे इस अस्त्र से बँधने से भय

ग्रहणे चापि रक्षोभिर्महन्मे गुणदर्शनम्।
राक्षसेन्द्रेण संवादस्तस्माद्रक्षन्तु मां परे ४५
स निश्चितार्थः परवीरहन्ता समीक्ष्यकारी विनिवृत्तचेष्टः।
परैः प्रसह्याभिगतैर्निगृह्य ननाद तैस्तैः परिभर्त्स्यमानः ४६
ततस्ते राक्षसा दृष्ट्वा विनिश्चेष्टमरिन्दमम्।
बबन्धुः शणवल्कैश्च द्रुमचीरैश्च संहतैः ४७
स रोचयामास परैश्च बन्धं प्रसह्य वीरैरभिगर्हणं च।
कौतूहलान्मां यदि राक्षसेन्द्रो द्रष्टुं व्यवस्येदिति निश्चितार्थः ४८
स बद्धस्तेन वल्केन विमुक्तोऽस्त्रेण वीर्यवान्।
अस्त्रबन्धः स चान्यं हि न बन्धमनुवर्तते ४९
अथेन्द्रजित्तं द्रुमचीरबद्धं विचार्य वीरः कपिसत्तमं तम्।
विमुक्तमस्त्रेण जगाम चिन्तामन्येन बद्धोऽप्यनुवर्ततेऽस्त्रम् ५०
अहो महत्कर्म कृतं निरर्थं न राक्षसैर्मन्त्रगतिर्विमृष्टा।
पुनश्च नास्त्रे विहतेऽस्त्रमन्यत्प्रवर्तते संशयिताः स्म सर्वे ५१

नहीं उत्पन्न होता। राक्षसों से पकड़े जाने पर भी बड़ा लाभ है, जिससे रावण के साथ बातचीत हो सकेगी। यह विचार उसने चेष्टा करनी कम कर दी और राक्षसों के धमकाने और कुवचन कहने पर बड़ा शब्द किया। (४३-४६)

तब राक्षसों ने उसे निश्चेष्ट देख सन व वृक्षों की छाल की रस्सियोंसे अच्छी तरह बांध लिया। तब "कुतूहल से राक्षसराज रावण एक बार तो मुझे देखेगा," ऐसा निश्चित विचार मन में धारण कर, राक्षस वीरों द्वारा बद्ध और निर्भर्त्सित वह हनुमान् चुप ही रहा। उन रस्सियों से बंधे हुए हनुमान् को अस्त्र ने विमुक्त कर दिया, क्योंकि वह ब्रह्मास्त्र अन्य बन्धन का अनुवर्तन नहीं करता। तब इन्द्रजित् द्रुमचीर से बंधे पर अस्त्र से विमुक्त हनुमान् के विषय में विचार चिन्ता करने लगा कि, अन्य बन्धनों से बँधे पर यह अस्त्रबन्धन से छूट गया। अहो! राक्षसों ने मन्त्रगति को न जान यह बड़ा कर्म निरर्थक कर दिया, पुनः मन्त्र पढ

अस्त्रेण हनुमान्मुक्तो नात्मानमवबुध्यते।
कृष्यमाणस्तु रक्षोभिस्तैश्च बन्धैर्निपीडितः ५२
हन्यमानस्ततः क्रूरै राक्षसैः कालमुष्टिभिः।
समीपं राक्षसेन्द्रस्य प्राकृष्यत स वानरः ५३
अथेन्द्रजित्तं प्रसमीक्ष्य मुक्तमस्त्रेण बद्धं द्रुमचीरसूत्रैः।
व्यदर्शयत्तत्र महाबलं तं हरिप्रवीरं सगणाय राज्ञे ५४
तं मत्तमिव मातङ्गं बद्धं कपिवरोत्तमम्।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ५५
कोऽयं कस्य कुतो वापि किं कार्यं कोऽभ्युपाश्रयः।
इति राक्षसवीराणां दृष्ट्वा संजज्ञिरे कथाः ५६
हन्यतां दह्यतां वापि भक्ष्यतामिति चापरे।
राक्षसास्तत्र संक्रुद्धाः परस्परमथाब्रुवन् ५७
अतीत्य मार्गं सहसा महात्मा स तत्र रक्षोऽधिपपादमूले।
ददर्श राज्ञः परिचारवृद्धान्गृहं महारत्नविभूषितं च ५८

इसकी योजना हो नहीं सकती, अतः हम सब सन्देहमें पड़े हैं। (४७-५१)

अस्त्र से छूटे हनुमान् ने अपने को वैसा न समझा, राक्षसों से खींचा हुआ वह पीडित होने लगा। फिर सब राक्षस उसको घूंसों से मारते पीटते व घसीटते रावण के पास ले चले। तब वृक्षों की रस्सियों से बद्ध वह हनुमान्, अस्त्रबंधों से प्रमुक्त हुआ देख, उस महाबलाढ्य वानरवीर को, इंद्रजित् ने राक्षसराज रावण को दिखाया। राक्षसों ने मत्त हस्तीके समान बंधे उस वानरश्रेष्ठ को राक्षसेन्द्र से निवेदित किया। (५२-५५)

उसे देख सब राक्षसलोग आपस में पूछने लगे कि, यह कौन है, किसका पुत्र है, किस कार्य के लिये आया है और किसके निकट रहता है? राक्षस लोग क्रोध कर आपस में कहने लगे कि, इसको मारो, भस्म करो, भक्षण कर लो। मार्ग काट कर महात्मा हनुमान् ने सहसा रावण के चरणों के निकट बैठे राजा के वृद्ध सेवकों व महारत्नों से विभूषित राज-

स ददर्श महातेजा रावणः कपिसत्तमम् ।
रक्षोभिर्विकृताकारैः कृष्यमाणमितस्ततः ५९
राक्षसाधिपतिं चापि ददर्श कपिसत्तमः ।
तेजोबलसमायुक्तं तपन्तमिव भास्करम् ६०
स रोषसंवर्तिताम्रदृष्टिर्दशाननस्तं कपिमन्ववेक्ष्य ।
अथोपविष्टान्कुलशीलवृद्धान्समादिशत्तं प्रतिमुख्यमन्त्रीन् ६१
यथाक्रमं तैः स कपिश्च पृष्टः कार्यार्थमर्थस्य च मूलमादौ ।
निवेदयामास हरीश्वरस्य दूतः सकाशादहमागतोऽस्मि ६२

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥४८॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः । [२०३३]

ततः स कर्मणा तस्य विस्मितो भीमविक्रमः ।
हनूमान्क्रोधताम्राक्षो रक्षोधिपमवैक्षत १
भ्राजमानं महार्हेण काञ्चनेन विराजता ।

मन्दिर को देखा । रावण ने देखा कि, हनुमान् को विकृताकार राक्षस घसीट लिये आते हैं । हनुमान् ने भी राक्षसराज को तेजोबल से युक्त सूर्यवत् प्रकाशित देखा । (५६-६०)

उस वानर को देख चुकने पर क्रोध के मारे आँखें लाल करते हुए रावण ने वहाँ पर बैठे हुए तथा कुल और शील में ऊँचे पद पर विराजमान अपने प्रमुख सचिवों से कहा कि, ये उसकी जाँच कर लें । जब उन्होंने उस वानर से पूछा कि, वह किस उद्देश्य से वहाँ पर आया । इसका मूल कार्य क्या था, आदि बातें पूछ लेने पर उसने उत्तर दिया कि, 'मैं वानराधीश सुग्रीव का दूत हूँ और वहीं से इधर आ चुका हूँ ।' (६१-६२)

यहाँ अड़तालिसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

भीमविक्रमवाला हनुमान् इन्द्रजित् के कर्म से विस्मित हो क्रोध से लाल नेत्र कर रावण को देखने लगा । वह रावण कीमती स्वर्णभूषणों

मुक्ताजालवृतेनाथ मुकुटेन महाद्युतिम् २
वज्रसंयोगसंयुक्तैर्महार्हमणिविग्रहैः।
हैमैराभरणैश्चित्रैर्मनसेव प्रकल्पितैः ३
महार्हक्षोमसंवीतरक्तचन्दनरूषितम्।
स्वनुलिप्तं विचित्राभिर्विविधाभिश्च भक्तिभिः ४
विचित्रं दर्शनीयैश्च रक्ताक्षैर्भीमदर्शनैः।
दीप्ततीक्ष्णमहादंष्ट्रं प्रलम्बं दशनच्छदैः ५
शिरोभिर्दशभिर्वीरो भ्राजमानं महौजसम्।
नानाव्यालसमाकीर्णैः शिखरैरिव मन्दरम् ६
नीलाञ्जनचयप्रख्यं हारेणोरसि राजता।
पूर्णचन्द्राभवक्त्रेण सबालार्कमिवाम्बुदम् ७
बाहुभिर्बद्धकेयूरैश्चन्दनोत्तमरूषितैः।
भ्राजमानाङ्गदैर्भीमैः पञ्चशीर्षैरिवोरगैः ८
महति स्फाटिके चित्रे रत्नसंयोगचित्रिते।
उत्तमास्तरणास्तीर्णे सूपविष्टं वरासने ९

और मोतियों की सुन्दर लगे मुकुट से अति शोभित था। और स्वर्णाभरण जिनमें मूल्यवान् मोती जडे और बीच बीच में गुंदे हुए थे, उन से युक्त था। कीमती रेशमी कपडे पहिने लाल चन्दन लगाए, विविध प्रकार की रचनाओं से अच्छी तरह अनुलिप्त, दर्शनीय पदार्थ धारण करने से विचित्ररूप व भीमनेत्रों से आश्चर्यरूप बडे बडे होठों और प्रकाशित तीक्ष्णदांतों से युक्त, और दश शिरों से ऐसे शोभित जैसे मन्दरपर्वत सर्पयुक्त शिखरों से, छाती पर हार पहिरे, नीलाञ्जन की राशि के समान काला, पूर्णमासी के चन्द्रमा की आभा के समान मुख से शोभित, प्रातःकाल के बादलसहित सूर्य की तरह प्रकाशित, उत्तम चन्दन लगी हुई बाहों में बजुल्लाबन्धन से पांचमुंह के भयङ्कर सर्पों के समान शोभित, चित्रविचित्र स्फटिकादि मणियों व रत्नों से बने उत्तम आसन पर विराजमान, सब

अलंकृताभिरत्यर्थं प्रमदाभिः समन्ततः ।
वालव्यजनहस्ताभिरारात्समुपसेवितम् १०
दुर्धरेण प्रहस्तेन महापार्श्वेन रक्षसा ।
मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैर्निकुम्भेन च मन्त्रिणा ११
उपोपविष्टं रक्षोभिश्चतुर्भिर्बलदर्पितम् ।
कृत्स्नं परिवृतं लोकं चतुर्भिरिव सागरैः १२
मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैरन्यैश्च शुभदर्शिभिः ।
आश्वास्यमानं सचिवैः सुरैरिव सुरेश्वरम् १३
अपश्यद्राक्षसपतिं हनूमानतितेजसम् ।
वेष्टितं मेरुशिखरे सतोयमिव तोयदम् १४
स तैः संपीड्यमानोऽपि रक्षोभिर्भीमविक्रमैः ।
विस्मयं परमं गत्वा रक्षोधिपमवैक्षत १५
भ्राजमानं ततो दृष्ट्वा हनूमान्राक्षसेश्वरम् ।
मनसा चिन्तयामास तेजसा तस्य मोहितः १६
अहो रूपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः ।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता १७
यद्यधर्मो न बलवान्स्यादयं राक्षसेश्वरः ।

भूषणवस्त्रों से अतिशय और समीप में चमर हाथ में लिए स्त्रियों से सेवित, तथा दुर्धर, प्रहस्त, महापार्श्व और निकुम्भ इन चार मन्त्र जानने-वाले मन्त्रियों से सेवित तथा इन चार बलदर्पित राक्षसों से ऐसा शोभित जैसे पृथ्वी चार समुद्रों से आवृत्त, शुभ बुद्धिवाले मन्त्रतत्त्ववित् अन्य मन्त्रियों से ऐसे उपसेवित जैसे इन्द्र देवताओं से, ऐसे राक्षसराज को हनुमान् ने मेरुशिखर पर बादलवत् बैठे देखा। (१-१४)

उन राक्षसों से पीडित होता हुआ भी हनुमान् बडे आश्चर्य में भर रावण को देखने लगा। हनुमान् राक्षसेश्वरको विराजमान देख उसके तेज से मोहित हो मन में सोचने लगा। अहो इस का रूप, धैर्य, सत्त्व, द्युति और सर्वलक्षणयुक्तता। यदि यह बलवान् रावण अधर्मी न हो, तो यह

स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता १८
अस्य क्रूरैर्नृशंसैश्च कर्मभिर्लोककुत्सितैः।
सर्वे बिभ्यति खल्वस्माल्लोकाः सामरदानवाः॥
अयं हयुत्सहते क्रुद्धः कर्तुमेकार्णवं जगत् १९
इति चिन्तां बहुविधामकरोन्मतिमान्कपिः।
दृष्ट्वा राक्षसराजस्य प्रभावममितौजसः २०

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥४९॥

पञ्चाशः सर्गः। [२०५३]

तमुद्वीक्ष्य महाबाहुः पिङ्गाक्षं पुरतः स्थितम्।
रोषेण महताविष्टो रावणो लोकरावणः १
शङ्काहतात्मा दध्यौ स कपीन्द्रं तेजसावृतम्।
किमेष भगवान्नन्दी भवेत्साक्षादिहागतः २
येन शप्तोऽस्मि कैलासे मया प्रहसिते पुरा।
सोऽयं वानरमूर्तिः स्यात्किंस्विद्बाणोऽपि वासुरः ३
स राजा रोषताम्राक्षः प्रहस्तं मन्त्रिसत्तमम्।
कालयुक्तमुवाचेदं वचो विपुलमर्थवत् ४

इन्द्रसहित सुरलोक का भी रक्षक होवे।। इस के क्रूर नृशंस कर्मों से देव-दानवोंसहित सब लोग डरते हैं। कदाचित् वह क्रोध करे, तो संसारभर को समुद्रमय कर डाले, राक्षसराज का अमित वीर्य व प्रभाव देख हनुमान् इस प्रकार की विविध चिन्ता करने लगा। (१५-२०)

यहाँ उनञ्चासवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

पिङ्गाक्ष आगे स्थित हनुमान् को देख लोकरावण रावण बडे क्रोध में भर, तेज से आवृत कपीन्द्र को देख मन में शंका करने लगा कि, यह साक्षात् भगवान् नन्दी तो यहां नहीं आ गए? जिसने पूर्व मुझ से हंसे जानेपर मुझे शाप दिया था, वही वानररूप तो यह नहीं है? वा यह बाणासुर है? रोष से लाल नेत्र कर वह मन्त्रिश्रेष्ठ प्रहस्त से कालयुक्त व

दुरात्मा पृच्छ्यतामेष कुतः किं वास्य कारणम्।
वनभङ्गे च कोऽस्यार्थो राक्षसानां च तर्जने ५
मत्पुरीमप्रधृष्यां वै गमने किं प्रयोजनम्।
आयोधने वा किं कार्यं पृच्छ्यतामेष दुर्मतिः ६
रावणस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्तो वाक्यमब्रवीत्।
समाश्वसिहि भद्रं ते न भीः कार्या त्वया कपे ७
यदि तावत्त्वमिन्द्रेण प्रेषितो रावणालयम्।
तत्त्वमाख्याहि मा ते भूद्भयं वानर मोक्ष्यसे ८
यदि वैश्रवणस्य त्वं यमस्य वरुणस्य च।
चारुरूपमिदं कृत्वा प्रविष्टो नः पुरीमिमाम् ९
विष्णुना प्रेषितो वापि दूतो विजयकाङ्क्षिणा।
न हि ते वानरं तेजो रूपमात्रं तु वानरम् १०
तत्त्वतः कथयस्वाद्य ततो वानर मोक्ष्यसे।
अनृतं वदतश्चापि दुर्लभं तव जीवितम् ११
अथ वा यन्निमित्तस्ते प्रवेशो रावणालये।
एवमुक्तो हरिवरस्तदा रक्षोगणेश्वरम् १२

अर्थयुक्त वचन बोला। इस दुष्टात्मा से पूछो कि कहां से किस कारण से आया है और किस अभिप्राय से इसने वनभंग और राक्षसों का तर्जन किया है। अगम्य मेरी पुरी में आने का और युद्ध करने का इस का क्या प्रयोजन था? (१-६)

रावण का वचन सुन प्रहस्त बोला, हे वानर! डर न करो और आश्वस्त हो जाओ। यदि तुम इन्द्र से भेजे यहां आए हो, तो कहो, डरो नहीं, तुम्हें छोड दिया जायगा। वा तुम कुबेर, यम, वरुण से प्रेषित यह सुन्दर रूप धर इस पुरी में आए हो अथवा विजयाकांक्षी विष्णु के भेजे हुए दूत हो? तुम्हारा तेज वानरके जैसा नहीं है, केवल रूप ही वानरका है, ठीक ठीक कहो तभी तुम्हारा छुटकारा होगा। झूठ बोलकर तुम्हारा जीना भी दुर्लभ है। जिस कारणसे भी तुम यहां आए हो, सो कहो।(७-१२)

अब्रवीन्नास्मि शक्रस्य यमस्य वरुणस्य च।
धनदेन न मे सख्यं विष्णुना नास्मि चोदितः १३
जातिरेव मम त्वेषा वानरोऽहमिहागतः।
दर्शने राक्षसेन्द्रस्य तदिदं दुर्लभं मया १४
वनं राक्षसराजस्य दर्शनार्थे विनाशितम्।
ततस्ते राक्षसाः प्राप्ता बलिनो युद्धकाङ्क्षिणः १५
रक्षणार्थं च देहस्य प्रतियुद्धा मया रणे।
अस्त्रपाशैर्न शक्योऽहं बद्धुं देवासुरैरपि १६
पितामहादेष वरो ममापि हि समागतः।
राजानं द्रष्टुकामेन मयास्त्रमनुवर्तितम् १७
विमुक्तोऽप्यहमस्त्रेण राक्षसैस्त्वभिवेदितः।
केनचिद्रामकार्येण आगतोऽस्मि तवान्तिकम् १८
दूतोऽहमिति विज्ञाय राघवस्यामितौजसः।
श्रूयतामेव वचनं मम पथ्यमिदं प्रभो १९

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

ऐसा कहे जानेपर हनुमान् बोला कि मैं इन्द्र, यम, वरुण किसी का भी दूत नहीं हूं। न कुबेर का मैं मित्र हूं, न विष्णु से प्रेरित हुआ हूं, मैं तो जाति से ही वानर हूं। राक्षसराज रावण के दर्शन दुर्लभ होनेपर दर्शनों की इच्छा से मैंने यह वन विनष्ट किया है। तदनन्तर तुम्हारे बली युद्ध-कांक्षी राक्षस मेरे पास आये, देह की रक्षा के लिये मैंने उनके साथ युद्ध किया। अस्त्र और पाश से मुझे देव और असुर भी नहीं बांध सकते, क्योंकि ब्रह्मा ने मुझे भी वर दे रक्खा है। राजा को देखने की इच्छा से मैंने अस्त्रबन्धन स्वीकार किया, पर राक्षसों से पीडित होने पर वह बन्धन छूट गया। बडे पराक्रमी राम का मैं दूत हूं और राजकार्य के कारण मैं तुम्हारे यहां आया हूं। मेरा वचन जो आप के लिये हितकर है, वह सुनिये। (१३-१९)

यहाँ पचासवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

रावणके दरबारमें हनुमान् (सुंदर० स. ५०, श्लो. १०)

एकपञ्चाशः सर्गः ।

तं समीक्ष्य महासत्त्वं सत्त्ववान्हरिसत्तमः ।
वाक्यमर्थवदव्यग्रस्तमुवाच दशाननम् १
अहं सुग्रीवसंदेशादिह प्राप्तस्तवान्तिके ।
राक्षसेश हरीशस्त्वां भ्राता कुशलमब्रवीत् २
भ्रातुः शृणु समादेशं सुग्रीवस्य महात्मनः ।
धर्मार्थसहितं वाक्यमिह चामुत्र च क्षमम् ३
राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान् ।
पितेव बन्धुर्लोकस्य सुरेश्वरसमद्युतिः ४
ज्येष्ठस्तस्य महाबाहुः पुत्रः प्रियतरः प्रभुः ।
पितुर्निदेशान्निष्क्रान्तः प्रविष्टो दण्डकावनम् ५
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह भार्यया ।
रामो नाम महातेजा धर्म्ये पन्थानमाश्रितः ६
तस्य भार्या जनस्थाने भ्रष्टा सीतेति विश्रुता ।
वैदेहस्य सुता राज्ञो जनकस्य महात्मनः ७
मार्गमाणस्तु तां देवीं राजपुत्रः सहानुजः ।
ऋष्यमूकमनुप्राप्तः सुग्रीवेण च सङ्गतः ८

हरिश्रेष्ठ महाप्राण हनुमान् रावण को देख अर्थयुक्त वाक्य बोला—राक्षसेन्द्र ! सुग्रीव का संदेश लेकर मैं यहां आया हूं । आप के भाई वानरराजने आप का कुशल पूछा है । इस लोक व पर लोक में हितधर्मार्थसहित वचन जो तुम्हारे भाई महात्मा सुग्रीव ने कहा है, सो सुनो । पिता के समान सारे संसार के बन्धु इन्द्रसम प्रकाशित राजा दशरथ हुए हैं । उनका ज्येष्ठ पुत्र राम पिता की आज्ञा से घर से निकल दण्डकवन में प्रविष्ट हुआ । (१-५)

उनके साथ भाई लक्ष्मण और भार्या सीता भी आई, वह तेजस्वी धर्म मार्ग में चलनेवाले हैं । विदेहराज की पुत्री सीता नाम उनकी भार्या बन में खो गई है । इस देवी को ढूंढते हुए छोटे भाईसहित वह राजपुत्र

तस्य तेन प्रतिज्ञातं सीतायाः परिमार्गणम्।
सुग्रीवस्यापि रामेण हरिराज्यं निवेदितम् ९
ततस्तेन मृधे हत्वा राजपुत्रेण वालिनम्।
सुग्रीवः स्थापितो राज्ये हर्यृक्षाणां गणेश्वरः १०
त्वया विज्ञातपूर्वश्च वाली वानरपुङ्गवः।
स तेन निहतः सङ्ख्ये शरेणैकेन वानरः ११
स सीतामार्गणेऽव्यग्रः सुग्रीवः सत्यसङ्गरः।
हरीन्संप्रेषयामास दिशः सर्वा हरीश्वरः १२
तां हरीणां सहस्राणि शतानि नियुतानि च।
दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते ह्यधश्चोपरि चाम्बरे १३
वैनतेयसमाः केचित्केचित्तत्रानिलोपमाः।
असङ्गगतयः शीघ्रा हरिवीरा महाबलाः १४
अहं तु हनुमान्नाम मारुतस्यौरसः सुतः।
सीतायास्तु कृते तूर्णं शतयोजनमायतम् १५
समुद्रं लङ्घयित्वैव त्वां दिदृक्षुरिहागतः।
भ्रमता च मया दृष्टा गृहे ते जनकात्मजा १६

ऋष्यमूकपर्वत पर आया और सुग्रीव से भेट की। सीताकी तलाश करूंगा ऐसी प्रतिज्ञा करने पर राम ने भी सुग्रीव को वानरराज बनाने की प्रतिज्ञा की। तब राम ने वाली को मार सुग्रीव को ऋक्षवानरों का राजा बना दिया। (६-१०)

तुम्हें तो पहले ही से ज्ञात है कि, वाली कैसा वानरश्रेष्ठ था, राम ने उसे युद्ध में एकही बाण से मार डाला। सीता की तलाश में व्यग्र सत्य-प्रतिज्ञ सुग्रीव ने सब ओर वानरों को भेजा। सहस्रों, सैंकडों अरबों वानर ऊपर नीचे सब दिशाओं में उस देवी को ढूंढ रहे हैं। कोई उनमें गरुड, कोई वायुकेसी उपमावाले हैं। पवन का औरस पुत्र हनुमान् नामवाला मैं सीता की तलाश में १०० योजन चौडे समुद्र को लांघ यहां आया और घूमते हुए मैंने तुम्हारे वर में सीता को देखा है। (११-१६)

तद्भवान्दृष्टधर्मार्थस्तपःकृतपरिग्रहः ।
परदारान्महाप्राज्ञ नोपरोद्धुं त्वमर्हसि १७
न हि धर्मविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु ।
मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः १८
कश्च लक्ष्मणमुक्तानां रामकोपानुवर्तिनाम् ।
शराणामग्रतः स्थातुं शक्तो देवासुरेष्वपि १९
न चापि त्रिषु लोकेषु राजन्विद्येत कश्चन ।
राघवस्य व्यलीकं यः कृत्वा सुखमवाप्नुयात् २०
तत्त्रिकालहितं वाक्यं धर्म्यमर्थानुयायि च ।
मन्यस्व नरशार्दूले जानकी प्रतिदीयताम् २१
दृष्टा हीयं मया देवी लब्धं यदिह दुर्लभम् ।
उत्तरं कर्म यच्छेषं निमित्तं तत्र राघवः २२
लक्षितेयं मया सीता तथा शोकपरायणा ।
गृहे यां नाभिजानासि पञ्चास्यामिव पन्नगीम् २३
नेयं जरयितुं शक्या सा सुरैरमरैरपि ।
विषसंस्पृष्टमत्यर्थं भुक्तमन्नमिवौजसा २४

सो आप धर्मार्थ के जाननेवाले और बडा तप करनेवाले हैं । हे महाप्राज्ञ ! तुम परस्त्री को अपने यहां रोकने के योग्य नहीं हो । आपसमान बुद्धिमान् लोग धर्मविरुद्ध अनर्थयुक्त मूलनाशक कर्मों में आसक्त नहीं होते । राम के कोप के अनुवर्ती लक्ष्मण से छोडे बाणों के आगे देवासुरों में भी कौन ठहर सकता है ? हे राजन् ! तीनों लोक में ऐसा कोई नहीं है, जो राघव का अप्रिय करके सुख पा सके । (१६–२०)

सो तीनों कालों में हितकर धर्मार्थयुक्त मेरा वचन मान सीता को राम को दे दो । सीता को मैंने यहां देख लिया, जो बात दुर्लभ थी, वह प्राप्त कर ली । जो कर्म अवशेष है, उसको राम पूरा करेंगे । शोकपरायण सीता को मैंने देख लिया, जिसको ग्रहण कर पांच मुख की सर्पिणी के समान तुम नहीं पहिचानते । सीता को देवता वा दैत्य भी अपने यहां नहीं पचा

तपःसन्तापलब्धस्ते सोऽयं धर्मपरिग्रहः ।
न स नाशयितुं न्याय्य आत्मप्राणपरिग्रहः २५
अवध्यतां तपोभिर्यां भवान्समनुपश्यति ।
आत्मनः सासुरैर्देवैर्हेतुस्तत्राप्ययं महान् २६
सुग्रीवो न च देवोऽयं न यक्षो न च राक्षसः ।
मानुषो राघवो राजन्सुग्रीवश्च हरीश्वरः ॥
तस्मात्प्राणपरित्राणं कथं राजन्करिष्यसि २७
न तु धर्मोपसंहारमधर्मफलसंहितम् ।
तदेव फलमन्वेति धर्मश्चाधर्मनाशनः २८
प्राप्तं धर्मफलं तावद्भवता नात्र संशयः ।
फलमस्याप्यधर्मस्य क्षिप्रमेव प्रपत्स्यसे २९
जनस्थानवधं बुद्ध्वा वालिनश्च वधं तथा ।
रामसुग्रीवसख्यं च बुध्यस्व हितमात्मनः ३०
कामं खल्वहमप्येकः सवाजिरथकुञ्जराम् ।
लङ्कां नाशयितुं शक्तस्तस्यैष तु न निश्चयः ३१

सकते, विष मिले अन्न के समान बडा तप करके जो तुमने धर्म पाया है, उसे नष्ट न करो, ऐसा करना न्याय नहीं है । (२१-२५)

तपके कारण असुर और देवों से जो तुम अपने को अवध्य मानते हो, उस में भी यह बडा कारण है । सुग्रीव न देव है न असुर है और न राक्षस, हे राजन् ! राम मानुष हैं और सुग्रीव हरीश्वर, सो उनसे प्राणों की रक्षा कैसे करोगे ? अधर्मकारी पुरुष धर्मफलको नहीं पाता, तब यह अधर्म-रूपी कर्मफल क्या धर्म को न नाशेगा ? इस में सन्देह नहीं कि तुमने जो धर्म किया, उस का फल पा चुके, अब जो अधर्म किया है, उस का फल भी शीघ्र पाओगे । जनस्थानवासी राक्षसों का वध और वाली का वध जान राम-सुग्रीव की मित्रता में ही अपना हित समझो । (२६-३०)

मैं अकेला ही रथघोडेहाथियोंसहित इस लङ्काका नाश कर सकता हूं, पर

रामेण हि प्रतिज्ञातं हर्यृक्षगणसंनिधौ ।
उत्सादनममित्राणां सीता यैस्तु प्रधर्षिता ३१
अपकुर्वन्हि रामस्य साक्षादपि पुरंदरः ।
न सुखं प्राप्नुयादन्यः किं पुनस्त्वद्विधो जनः ३२
यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे ।
कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलङ्काविनाशिनीम् ३४
तदलं कालपाशेन सीताविग्रहरूपिणा ।
स्वयं स्कन्धावसक्तेन क्षेममात्मनि चिन्त्यताम् ३५
सीतायास्तेजसा दग्धां रामकोपप्रदीपिताम् ।
दह्यमानामिमां पश्य पुरीं साट्टप्रतोलिकाम् ३६
स्वानि मित्राणि मन्त्रींश्च ज्ञातीन्भ्रातॄन्सुतान्हितान् ।
भोगान्दारांश्च लङ्कां च मा विनाशमुपानय ३७
सत्यं राक्षसराजेन्द्र शृणुष्व वचनं मम ।
रामदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषतः ३८
सर्वाँल्लोकान्समुत्सृज्य स भूतान्सचराचरान् ।

राम की ऐसी आज्ञा नहीं है । जिन शत्रुओंने सीता को दुःखी किया है, उन को ऋक्ष-वानरों के सामने अपने हाथ से ही मारने की प्रतिज्ञा रामने की है । राम का अपकार कर इन्द्र भी सुख नहीं पा सकता, फिर तुम जैसे आदमियों की कौन कहे ? जिस को तुम सीता समझते हो और जो तुम्हारे घर में स्थित है, उस को सारी लङ्का का नाश करनेवाली कालरात्रि जानो । सो अपने कंधों पर सवार विग्रह अथवा कालपाशरूप सीता से अपने क्षेम का विचार करो । (३१-३५)

सीता के तेज से भस्म और राम के कोप से अटारी प्रासादों से युक्त यह लङ्का भस्मसात् हो जायगी । अपने मित्र, मन्त्री, जाति के लोग, भाई, पुत्र, नाना प्रकार के भोग, स्त्रियाँ व लङ्कापुरी इन सबका नाश मत करो । हे राक्षसेन्द्र मेरा सत्यवचन सुनो, मैं राम का दास और दूत हूं, विशेष कर वानर हूं । चर, अचर सब भूतोंसहित सारे लोकों का संहार

पुनरेव तथा कर्तुं शक्तो रामो महायशाः ३९
देवासुरनरेन्द्रेषु यक्षरक्षोरगेषु च ।
विद्याधरेषु नागेषु गन्धर्वेषु मृगेषु च ४०
सिद्धेषु किंनरेन्द्रेषु पतत्रिषु स सर्वतः ।
सर्वत्र सर्वभूतेषु सर्वकालेषु नास्ति सः ४१
यो रामं प्रतियुध्येत विष्णुतुल्यपराक्रमम् ४२
सर्वलोकेश्वरस्येह कृत्वा विप्रियमीदृशम् ।
रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम् ४३
देवाश्च दैत्याश्च निशाचरेन्द्र गन्धर्वविद्याधरनागयक्षाः ।
रामस्य लोकत्रयनायकस्य स्थातुं न शक्ताः समरेषु सर्वे ४४
ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा ।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ४५
स सौष्ठवोपेतमदीनवादिनः कपेर्निशम्याप्रतिमोऽप्रियं वचः ।
दशाननः कोपविवृत्तलोचनः समादिशत्तस्य वधं महाकपेः ४६

इत्यार्षे श्री० वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥५१॥ [२११८]

कर राम फिर वैसे ही सृष्टि बना सकते हैं । देवता, दैत्य, नरेन्द्र, यक्ष, राक्षस, विद्याधर, गन्धर्व, सर्प, सिद्ध, किन्नर और पक्षी आदि सब प्राणियों में सर्वत्र किसी काल में भी कोई ऐसा नहीं हो सकता, जो विष्णुतुल्य पराक्रमी राम का सामना करे । (३९-४१)

इसलिए सारे लोकों के ईश्वर राजसिंह राम का अप्रिय कर तुम्हारा जीना दुर्लभ है । हे राक्षसेंद्र ! देव, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग और यक्ष ये सब मिलकर भी संग्राम में रामचंद्रके सामने नहीं ठहर सकते । स्वयंभु चतुर्मुख ब्रह्मदेव, त्रिपुरनाशक त्रिलोचन रुद्र, विष्णु या देवाधिपति इंद्र भी राम का सामना नहीं कर सकते । (४३-४५)

इस प्रकार हनुमान् का सौष्ठवयुक्त, युक्तियुक्त लेकिन अदीन तथा अप्रिय भाषण सुन अतुलपराक्रमी रावण कोपाविष्ट हुआ और उसने उस महाकपि हनुमान्का वध करनेकी आज्ञा दी । (४६) यहाँ इक्यावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

द्विपञ्चाशः सर्गः ।

स तस्य वचनं श्रुत्वा वानरस्य महात्मनः ।
आज्ञापयद्वधं तस्य रावणः क्रोधमूर्च्छितः १
वधे तस्य समाज्ञप्ते रावणेन दुरात्मना ।
निवेदितवतो दौत्यं नानुमेने बिभीषणः २
तं रक्षोधिपतिं क्रुद्धं तच्च कार्यमुपस्थितम् ।
विदित्वा चिन्तयामास कार्ये कार्यविधौ स्थितः ३
निश्चितार्थस्ततः साम्ना पूज्यं शत्रुजिदग्रजम् ।
उवाच हितमत्यर्थं वाक्यं वाक्यविशारदः ४
क्षमस्व रोषं त्यज राक्षसेन्द्र प्रसीद मे वाक्यमिदं शृणुष्व ।
वधं न कुर्वन्ति परावरज्ञा दूतस्य सन्तो वसुधाधिपेन्द्राः ५
राजन्धर्मविरुद्धं च लोकवृत्तेश्च गर्हितम् ।
तव चासदृशं वीर कपेरस्य प्रमापणम् ६
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च राजधर्मविशारदः ।
परावरज्ञो भूतानां त्वमेव परमार्थवित् ७
गृह्यन्ते यदि रोषेण त्वादृशोऽपि विचक्षणाः ।
ततः शास्त्रविपश्चित्त्वं श्रम एव हि केवलम् ८

महात्मा वानर का वचन सुन क्रोधमें भर रावणने उस के वधकी आज्ञा दी । दुरात्मा रावण से वध की आज्ञा दी जानेपर बिभीषणने दूत का मारना अच्छा नहीं समझा । रावणको क्रुद्ध हो, उस कार्यके लिए उपस्थित जान उचित कार्य बताने के लिए बिभीषण विचार करने लगा । निश्चितार्थ हो वह वाक्यविशारद साम उपाय से अत्यर्थ हितवाक्य बोला । (१-४)

हे राक्षसेन्द्र ! क्षमा करो, क्रोध छोडो, प्रसन्न हो, मेरा वचन सुनो, परावरज्ञ राजेन्द्र दूत को नहीं मारा करते । इस कपि का मारना राजधर्म से विरुद्ध, लोकाचार से निन्दित और तुम्हारे अयोग्य है । आप धर्मज्ञ, कृतज्ञ और राजधर्म में चतुर, प्राणियों के ऊंचनीच और परमार्थ को जाननेवाले हैं । यदि आपके समान पण्डित भी क्रोध से जल उठें, तो शास्त्रज्ञान

तस्मात्प्रसीद शत्रुघ्न राक्षसेन्द्र दुरासद।
युक्तायुक्तं विनिश्चित्य दूतदण्डो विधीयताम् ९
बिभीषणवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः।
कोपेन महताविष्टो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् १०
न पापानां वधे पापं विद्यते शत्रुसूदन।
तस्मादिमं वधिष्यामि वानरं पापकारिणम् ११
अधर्ममूलं बहुदोषयुक्तमनार्यजुष्टं वचनं निशम्य।
उवाच वाक्यं परमार्थतत्त्वं बिभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः १२
प्रसीद लङ्केश्वर राक्षसेन्द्र धर्मार्थतत्त्वं वचनं शृणुष्व।
दूता न वध्याः समयेषु राजन्सर्वेषु सर्वत्र वदन्ति सन्तः १३
असंशयं शत्रुरयं प्रवृद्धः कृतं ह्यनेनाप्रियमप्रमेयम्।
न दूतवध्यां प्रवदन्ति सन्तो दूतस्य दृष्टा बहवो हि दण्डाः १४
वैरूप्यमङ्गेषु कशाभिघातो मौण्ड्यं तथा लक्षणसंनिपातः।
एतान्हि दूते प्रवदन्ति दण्डान्वधस्तु दूतस्य न नः श्रुतोऽस्ति १५

केवल श्रममात्र ही है। तो हे शत्रुघ्न! प्रसन्न हो, कर्तव्याकर्तव्य को विचार दूत को दण्ड दीजिये। (५-९)

बिभीषण की बात सुन क्रोध से भर रावणने उत्तर दिया– हे शत्रुसूदन! पापियों के वध में कुछ पाप नहीं है, इससे इस पापी का वध करूंगा। बुद्धिमानों में श्रेष्ठ बिभीषण अधर्ममूलक क्रोधसे कहा गया यह वचन सुन परमार्थतत्त्वयुक्त यह वचन बोला– लङ्केश्वर! प्रसन्न होओ, धर्मार्थयुक्त वचन सुनो, सज्जन लोग कहते हैं कि, दूत किसी समय और कहीं भी वध्य नहीं होते। निश्चय यह शत्रु बहुत बढा हुआ है, इसने आपका अतुल अप्रिय किया है, तो भी सज्जनों का कहना है कि दूत अवध्य है, उसके लिये अन्य बहुतसे दण्ड हैं। (१०-१४)

जैसे विरूप कर डालना, लौहशलाका आदिसे पीटना, भौं मुंडा डालना आदि दूत के लिये दण्ड हैं, पर दूतका वध तो हमने कभी सुनाभी नहीं।

कथं च धर्मार्थविनीतबुद्धिः परावरप्रत्ययनिश्चितार्थः ।
महद्विधः कोपवशे हि तिष्ठेत्कोपं न गच्छन्ति हि सत्त्ववन्तः १६
न धर्मवादे न च लोकवृत्ते न शास्त्रबुद्धिग्रहणेषु वापि ।
विद्येत कश्चित्तव वीर तुल्यस्त्वं ह्युत्तमः सर्वसुरासुराणाम् १७
न चाप्यस्य कपेर्घाते कञ्चित्पश्याम्यहं गुणम् ।
तेष्वयं पात्यतां दण्डो यैरयं प्रेषितः कपिः १८
साधुर्वा यदि वासाधुः परैरेष समर्पितः ।
ब्रुवन्परार्थं परवान्न दूतो वधमर्हति १९
अपि चास्मिन्हते नान्यं राजन्पश्यामि खेचरम् ।
तस्मान्नास्य वधे यत्नः कार्यः परपुरञ्जय ।
भवान्सेन्द्रेषु देवेषु यत्नमास्थातुमर्हति २०
अस्मिन्विनष्टे न हि भूतमन्यं पश्यामि यस्तौ नरराजपुत्रौ ।
युद्धाय युद्धप्रिय दुर्विनीतावुद्योजयेद्वै भवता विरुद्धौ २१
पराक्रमोत्साहमनस्विनां च सुरासुराणामपि दुर्जयेन ।
त्वया मनोनन्दन नैर्ऋतानां युद्धाय निर्नाशयितुं न युक्तम् २२

फिर धर्मार्थ से विनीतबुद्धि आपके समान पुरुष कोप करें, यह ठीक नहीं । महानुभाव लोग कोप नहीं किया करते । वीर ! धर्मवाद, लोकवृत्त, शास्त्र-बुद्धिग्रहण में तुम्हारे समान कोई नहीं, तुम सुरासुरों में सर्वोत्तम हो । मैं इस कपि के मारने में तो कोई गुण नहीं देखता, इससे इसके भेजनेवाले को ही यह दण्ड दिया जाये । साधु हो वा असाधु, यह दूसरों का भेजा हुआ, उनके अर्थ कहता है, पराधीन होनेसे दूत वधयोग्य नहीं । (१५-१९)

इसके सिवा इसके मारे जानेपर ऐसा और कोई दूत भी तो नहीं, जो आकाशमार्गसे फिर यहां आ सके, अतः बडे शत्रुओंको जीतनेवाले राजन् ! इसके वधार्थ यत्न न करके इन्द्रसहित देवताओं के जीतने का यत्न कीजिये । इस दूतके नष्ट होने पर अन्य दूत दिखाई नहीं पडता, जो उन दोनों दुर्विनीत राजकुमारों को युद्धार्थ प्रेरित करे । अतः पराक्रम और उत्साह से मनस्वी सुरासुरों से भी दुर्जय तुमको युद्ध के लिये तय्यार

हिताश्च शूराश्च समाहिताश्च कुलेषु जाताश्च महागुणेषु ।
मनस्विनः शस्त्रभृतां वरिष्ठाः कोपप्रशस्ताः सुभृताश्च योधाः २३
तदेकदेशेन बलस्य तावत्केचित्त्वादेशकृतोऽद्य यान्तु ।
तौ राजपुत्रावुपगृह्य मूढौ परेषु ते भावयितुं प्रभावम् २४
निशाचराणामधिपोऽनुजस्य बिभीषणस्योत्तमवाक्यनिष्ठम् ।
जग्राह बुद्ध्या सुरलोकशत्रुर्महाबलो राक्षसराजमुख्यः २५
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः॥५२॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः । [२१४३]

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दशग्रीवो महात्मनः ।
देशकालहितं वाक्यं भ्रातुरुत्तरमब्रवीत् १
सम्यगुक्तं हि भवता दूतवध्या विगर्हिता ।
अवश्यं तु वधायान्यः क्रियतामस्य निग्रहः २
कपीनां किल लाङ्गूलमिष्टं भवति भूषणम् ।
तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु ३
ततः पश्यन्त्वसुं दीनमङ्गवैरूप्यकर्शितम् ।
सुमित्रज्ञातयः सर्वे बान्धवाः ससुहृज्जनाः ४

राक्षसों का मन न तोडना चाहिये । (२०–२२)

किन्तु हित शूर एकाग्रचित्त व महागुणयुक्त कुलों में उत्पन्न मनस्वी शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ तुम्हारे करोडों योद्धा हैं । सो उन में से सेना का कोई भाग तुम्हारी आज्ञा से चला जावे और स्त्रीवियोग से मूढ उन दोनों राजपुत्रोंको पकड लावे । छोटे भाई बिभीषण का उत्तम व हितवचन सुन सुरलोकशत्रु महाबली रावणने बुद्धिसे उसे ग्रहण कर लिया । (२३–२५)

यहाँ बावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

बिभीषण का वचन सुन, महाबली रावण देशकाल के अनुसार वाक्य बोला– तुम ठीक कहते हो, दूत का वध निन्दनीय है, वध से अन्य इसे अवश्य दण्ड दिया जाय । वानरोंको पूंछ बडी प्यारी होती है, सो उस में शीघ्र आग लगा दो, जिस से यह जली पूंछ से यहां से जाय और इस के

आज्ञापयद्राक्षसेन्द्रः पुरं सर्वं सचत्वरम् ।
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन रक्षोभिः परिणीयताम् ५
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसाः कोपकर्कशाः ।
वेष्टन्ते तस्य लाङ्गूलं जीर्णैः कार्पासिकैः पटैः ६
संवेष्ट्यमाने लाङ्गूले व्यवर्धत महाकपिः ।
शुष्कमिन्धनमासाद्य वनेष्विव हुताशनम् ७
तैलेन परिषिच्याथ तेऽग्निं तत्रोपपादयन् ।
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन राक्षसांस्तानताडयत् ८
रोषामर्षपरीतात्मा बालसूर्यसमाननः ।
स भूयः सङ्गतैः क्रूरै राक्षसैर्हरिपुङ्गवः ९
सहस्त्रीबालवृद्धाश्च जग्मुः प्रीतिं निशाचराः ।
निबद्धः कृतवान्वीरस्तत्कालसदृशीं मतिम् १०
कामं खलु न मे शक्ता निबद्धस्यापि राक्षसाः ।
छित्त्वा पाशान्समुत्पत्य हन्यामहमिमान्पुनः ११
यदि भर्तृहितार्थाय चरन्तं भर्तृशासनात् ।

सब बान्धव मित्र और जातिवाले इसे अङ्गभङ्ग से दीन देखें । यह कह फिर रावणने आज्ञा दी कि, इसकी पूंछमें आग लगा राक्षस इसे लङ्काकी गलियों में घुमावें । (१-५)

यह आज्ञा सुन क्रोध से भरे राक्षसोंने उसकी पूंछ से जीर्ण चिथडे लपेटे । पूंछमें कपडों के लपेटे जानेपर हनुमान् और बढ गया, जैसे वनोंमें सूखा ईन्धन पा आग । तेल लगा, फिर पूंछमें उन्होंने आग लगा दी । पूंछ के जलने पर क्रोध में भर उसने उन राक्षसों को मार डाला । हनुमान् की पूंछको जलती देख स्त्री, बालक, वृद्ध राक्षस बडे प्रसन्न हुए । क्रूर राक्षसोंद्वारा इस प्रकार निबद्ध हनुमान् ने उस समय के अनुसार बुद्धि की । (६-१०)

मैं बन्धा हुआ भी पाशों को तोड इन राक्षसों को फिर से हनन कर डालूं । राम के हित के लिये प्रवर्तमान मुझे रावण की आज्ञा से बांधकर

निबध्नन्ते दुरात्मानो न तु मे निष्कृतिः कृता ११
सर्वेषामेव पर्याप्तो राक्षसानामहं युधि ।
किं तु रामस्य प्रीत्यर्थं विषहिष्येऽहमीदृशम् १२
लङ्का चारयितव्या मे पुनरेव भवेदिति ।
रात्रौ न हि सुदृष्टा मे दुर्गकर्मविधानतः १३
अवश्यमेव द्रष्टव्या मया लङ्का निशाक्षये ।
कामं बध्नन्तु मे भूयः पुच्छस्योद्दीपनेन च १४
पीडां कुर्वन्ति रक्षांसि न मेऽस्ति मनसः श्रमः १५
ततस्ते संवृताकारं सत्त्ववन्तं महाकपिम् ।
परिगृह्य ययुर्हृष्टा राक्षसाः कपिकुञ्जरम् १६
शङ्खभेरीनिनादैश्च घोषयन्तः स्वकर्मभिः ।
राक्षसाः क्रूरकर्माणश्चारयन्ति स्म तां पुरीम् १७
अन्वीयमानो रक्षोभिर्ययौ सुखमरिन्दमः ।
हनूमांश्चारयामास राक्षसानां महापुरीम् १८
यथाप्रश्यद्विमानानि विचित्राणि महाकपिः ।
संवृतान्भूमिभागांश्च सुविभक्तांश्च चत्वरान् १९

भी ये दुरात्मा राक्षस बदला नहीं पा सके । मैं युद्ध में सर्व राक्षसों को अकेला मार सकता हूं, पर राम की प्रीति के लिये यह सब सहता हूं । लङ्का में यदि फिर से घूमना होवे, तो रात्रि में घुसने से जो पूर्व मैं दुर्गम स्थानों को अच्छी तरह नहीं देख पाया, अब दिनमें अवश्य लंका को देख लूंगा । जितना चाहें ये राक्षस मुझे बांध पूंछ में आग लगावें, पर मेरे मन को कुछ क्षोभ नहीं है । (११-१६)

ततः हनुमान् को पकड वे मुदित हुए राक्षस शंखभेरी के निनादों से घोषणा करते हुए उसे नगरी में घुमाने लगे । राक्षसों के आगे पीछे हो जाने से हनुमान् सुखसे चला जाता था । उस महाकपिने वहां पर विचित्र विमान, संवृत भूमिभाग और सुविभक्त चबूतरे देखे । (१७-२०)

रथ्याश्च गृहसंबाधाः कपिः शृङ्गाटकानि च ।
तथा रथ्योपरथ्याश्च तथैव च गृहान्तरान् २१
चत्वरेषु चतुष्केषु राजमार्गे तथैव च ।
घोषयन्ति कपिं सर्वे चार इत्येव राक्षसाः २२
दीप्यमाने ततस्तस्य लाङ्गूलाग्रे हनूमतः ।
राक्षस्यस्ता विरूपाक्ष्यः शंसुर्देव्यास्तदप्रियम् २३
यस्त्वया कृतसंवादः सीते ताम्रमुखः कपिः ।
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन स एष परिणीयते २४
श्रुत्वा तद्वचनं क्रूरमात्मापहरणोपमम् ।
वैदेही शोकसंतप्ता हुताशनमुपागमत् २५
मङ्गलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ।
उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् २६
यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः ।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः २७
ततस्तीक्ष्णार्चिरव्यग्रः प्रदक्षिणशिखोऽनलः ।
जज्वाल मृगशावाक्ष्याः शंसन्निव शुभं कपेः २८

गृहोंसे सम्बाधित वीथियां, चौराहे और घरों के बीच की गलियां और आवचकें देखीं । राजमार्ग में राक्षस घोषणा करते जाते थे, कि यह वानर वही दूत है । हनुमान् की पूंछ का अगला भाग दीप्यमान् होने पर विरूपाक्ष राक्षसियों ने सीतासे यह अप्रिय बात कही कि, जिस लाल मुखवाले वानर ने तुम्हारे साथ बातचीत की थी, वह पूंछ जला कर घुमाया जा रहा है । यह क्रूर वार्ता सुन शोक से सन्तप्त हो सीता अग्नि के समीप पहुंची । (२१–२५)

उस मङ्गल–मुखीने पवित्र हो अग्निकी उपासना की और कहा कि यदि मैंने अपने पति की सेवा और तप किया है और यदि मुझ में पातिव्रत्य है, तो हनुमान् की पूंछकी अग्नि शांत हो जावे । ततः तीक्ष्ण ज्वालावाली हनुमान् की पूंछकी अग्नि शिखा घुमाती और कल्याण बताती हुई सीता के

हनूमज्जनकश्चैव पुच्छानलयुतोनिलः।
बभौ स्वास्थ्यकरो देव्याः प्रालेयानिलशीतलः २९
दह्यमाने च लाङ्गूले चिन्तयामास वानरः।
प्रदीप्तोऽग्निरयं कस्मान्न मां दहति सर्वतः ३०
दृश्यते च महाज्वालः करोति च न मे रुजम्।
शिशिरस्येव संपातो लाङ्गूलाग्रे प्रतिष्ठितः ३१
अथवा तदिदं व्यक्तं यदृष्टं प्लवता मया।
रामप्रभावादाश्चर्यं पर्वतः सरितां पतौ ३२
यदि तावत्समुद्रस्य मैनाकस्य च धीमतः।
रामार्थं संभ्रमस्तादृक्किमग्निर्न करिष्यति ३३
सीतायाश्चानृशंस्येन तेजसा राघवस्य च।
पितुश्च मम सख्येन न मां दहति पावकः ३४
भूयः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः।
कथमस्मद्विधस्येह बन्धनं राक्षसाधमैः।
प्रतिक्रियास्य युक्ता स्यात्सति मह्यं पराक्रमे ३५

समीप आ पहुंची। और हनुमान् का पिता वायु पुच्छानलयुक्त हुआ भी हिममारुतवत् शीतल हो सीताके लिये स्वास्थ्यकर बन बहने लगा।(२६–२९)

पूंछ के जल उठने पर हनुमान् सोचने लगा कि यह प्रदीप्त अग्नि मुझे सब ओरसे क्यों नहीं जला डालती? बहुत ज्वाला निकल रही हैं, पर मुझे पीडा नहीं होती, मेरी पूंछ के आगे शिशिर ऋतु जान पडती है। अथवा यह वैसी ही बात है कि, जब मैं समुद्रको लांघ रहा था, तो रामके प्रभाव से समुद्र में पर्वतरूप आश्चर्य देख पडा था। जब राम के लिये धीमान् समुद्र और मैनाक को इस प्रकार सम्भ्रम हुआ, तो क्या अग्नि आदर न करेगा? अथवा सीता के सौम्य स्वभाव, राम के तेज और मेरे पिता की मित्रता के कारण यह अग्नि मुझे नहीं जलाता। कपिश्रेष्ठ हनुमान् फिर सोचने लगा कि मुझ जैसे राम के दास को राक्षसाधमों ने कैसे बांध लिया, इस समय यदि मैं प्रतिक्रिया करूं तो युक्त होगा। (३०–३५)

ततश्छित्त्वा च तान्पाशान्वेगवान्वै महाकपिः ।
उत्पपाताथ वेगेन ननाद च महाकपिः ३६
पुरद्वारं ततः श्रीमाञ्शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ।
विभक्तरक्षःसंबाधमाससादानिलात्मजः ३७
स भूत्वा शैलसंकाशः क्षणेन पुनरात्मवान् ।
ह्रस्वतां परमां प्राप्तो बन्धनान्यवशातयत् ३८
विमुक्तश्चाभवच्छ्रीमान्पुनः पर्वतसंनिभः ।
वीक्षमाणश्च ददृशे परिघं तोरणाश्रितम् ३९
स तं गृह्य महाबाहुः कालायसपरिष्कृतम् ।
रक्षिणस्तान्पुनः सर्वान्सूदयामास मारुतिः ४०
स तान्निहत्वा रणचण्डविक्रमः समीक्षमाणः पुनरेव लङ्काम् ।
प्रदीप्तलाङ्गूलकृतार्चिमाली प्रकाशितादित्य इवार्चिमाली ४१

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥५३॥[२१८४]

चतुःपञ्चाशः सर्गः ।

वीक्षमाणस्ततो लङ्कां कपिः कृतमनोरथः ।
वर्धमानसमुत्साहः कार्यशेषमचिन्तयत् १

यह सोच हनुमान् ने सब बंधनों को तोड डाला और बडे वेग से उछल घोर नाद किया । पर्वत के शृंग के समान ऊंचे पुरद्वार पर जिस पर बहुत से राक्षस खडे थे, हनुमान् चढ गया और पहले पर्वताकार हो फिर बहुत छोटा हो गया, जिस से सब बंधन टूट गये । विमुक्त हो फिर वह पर्वताकार हो गया और चारों ओर दृष्टि कर तोरण में लगे एक परिघ को देखा । उस महाबाहु ने उसे ग्रहण कर फिर सब रक्षकों को मार डाला । प्रचण्डविक्रमी हनुमान् ने उन्हें मार लङ्का का फिर से निरीक्षण कर प्रदीप्त लांगूल को घुमाता हुआ सूर्यवत् वह प्रकाशित हुआ । (३६-४१)

यहाँ तिरपनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

हनुमान् तब लंका को देखता हुआ सफलमनोरथ हो, उत्साहपूर्वक शेष

किं नु खल्ववशिष्टं मे कर्तव्यमिह साम्प्रतम्।
यदेषां रक्षसां भूयः संतापजननं भवेत् १
वनं तावत्प्रमथितं प्रकृष्टा राक्षसा हताः।
बलैकदेशः क्षपितः शेषं दुर्गविनाशनम् २
दुर्गे विनाशिते कर्म भवेत्सुखपरिश्रमम्।
अल्पयत्नेन कार्येऽस्मिन्मम स्यात्सफलः श्रमः ४
यो ह्ययं मम लाङ्गूले दीप्यते हव्यवाहनः।
अस्य संतर्पणं न्याय्यं कर्तुमेभिर्गृहोत्तमैः ५
ततः प्रदीप्तलाङ्गूलः सविद्युदिव तोयदः।
भवनाग्रेषु लङ्काया विचचार महाकपिः ६
गृहाद्गृहं राक्षसानामुद्यानानि च वानरः।
वीक्षमाणो ह्यसंत्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः ७
अवप्लुत्य महावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम्।
अग्निं तत्र विनिक्षिप्य श्वसनेन समो बली ८
ततोऽन्यत्पुप्लुवे वेश्म महापार्श्वस्य वीर्यवान्।
मुमोच हनुमानग्निं कालानलशिखोपमम् ९

कार्य की चिन्ता करने लगा कि अब क्या करना चाहिये, जो इस समय पुनः राक्षसों को सन्ताप पहुंचे। बनका विध्वंस, बलवान् राक्षसों का हनन और सेना के एक भाग का नाश करके अब दुर्ग का नाश शेष रहा है। दुर्ग के नाश से हमारा परिश्रम सफल हो जायगा और अल्प यत्न से ही कार्यसिद्धि हो जायगी। इस जलती हुई लांगूल की अग्नि की तृप्ति इन उत्तम उत्तम गृहों से ही करनी चाहिये। (१-५)

तब विद्युद्युक्त बादल के समान जलती हुई पूंछसहित हनुमान् लंका के भवनों पर विचरने लगा। निर्भय हो वह एक घर से दूसरे घर पर प्रासाद और वाटिकाओं को देखता हुआ घूमता रहा। पवनवत् बलवान् महावेगवाला हनुमान् प्रहस्त के भवनमें कूद और वहां अग्नि लगा, फिर

लंकादहन । (सुंदर० स. ५४ श्लो. ४७)

वज्रदंष्ट्रस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ।
शुकस्य च महातेजाः सारणस्य च धीमतः १०
तथा चेन्द्रजितो वेश्म ददाह हरियूथपः ।
जम्बुमालेः सुमालेश्च ददाह भवनं ततः ११
रश्मिकेतोश्च भवनं सूर्यशत्रोस्तथैव च ।
ह्रस्वकर्णस्य दंष्ट्रस्य रोमशस्य च रक्षसः १२
युद्धोन्मत्तस्य मत्तस्य ध्वजग्रीवस्य रक्षसः ।
विद्युज्जिह्वस्य घोरस्य तथा हस्तिमुखस्य च । १३
करालस्य विशालस्य शोणिताक्षस्य चैव हि ।
कुम्भकर्णस्य भवनं मकराक्षस्य चैव हि १४
नरान्तकस्य कुम्भस्य निकुम्भस्य महात्मनः ।
यज्ञशत्रोश्च भवनं ब्रह्मशत्रोस्तथैव च १५
वर्जयित्वा महातेजा विभीषणगृहं प्रति ।
क्रममाणः क्रमेणैव ददाह हरिपुङ्गवः १६
तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः ।
गृहेष्वृद्धिमतामृद्धिं ददाह कपिकुञ्जरः १७
सर्वेषां समतिक्रम्य राक्षसेन्द्रस्य वीर्यवान् ।
आससादाथ लक्ष्मीवान्रावणस्य निवेशनम् १८

महापार्श्व के मकान में कूद उसमें अग्नि लगा दी । वहां वज्रदंष्ट्र के, उसके बाद शुक और सारण के फिर इन्द्रजित्, जम्बुमाली और सुमाली के घरों को जला डाला । (६-११)

रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, रोमश, युद्धोन्मत्त, मत्त, विद्युज्जिह्व, हस्तिमुख, कराल, पिशाच, शोणिताक्ष, कुम्भकर्ण, मकराक्ष, यज्ञशत्रु, ब्रह्मशत्रु, नरांतक, कुंभ, निकुंभ, इन सब के घरोंको, विभीषणके घरको छोड, हरिश्रेष्ठ हनुमान् ने क्रम से जला डाला । इन नाना गृहों में जो उत्तम उत्तम सामग्री रक्खी थी, वह भी जला डाली । (१२-१७)

तदनु वीर्यवान् और लक्ष्मीवान् हनुमान् रावण के मन्दिर पर कूदा ।

ततस्तस्मिन्गृहे मुख्ये नानारत्नविभूषिते ।
मेरुमन्दरसंकाशे नानामङ्गलशोभिते १९
प्रदीप्तमग्निमुत्सृज्य लाङ्गूलाग्रे प्रतिष्ठितम् ।
ननाद हनुमान्वीरो युगान्तजलदो यथा २०
श्वसनेन च संयोगादतिवेगो महाबलः ।
कालाग्निरिव जज्वाल प्रावर्धत हुताशनः २१
प्रदीप्तमग्निं पवनस्तेषु वेश्मसु चारयन् ।
तानि काञ्चनजालानि मुक्तामणिमयानि च २२
भवनानि व्यशीर्यन्त रत्नवन्ति महान्ति च ।
तानि भग्नविमानानि निपेतुर्वसुधातले २३
भवनानीव सिद्धानामम्बरात्पुण्यसंक्षये ।
संजज्ञे तुमुलः शब्दो राक्षसानां प्रधावताम् २४
स्वे स्वे गृहपरित्राणे भग्नोत्साहोज्झितश्रियाम् ।
नूनमेषोऽग्निरायातः कपिरूपेण हा इति २५
क्रन्दन्त्यः सहसा पेतुः स्तनन्धयधराः स्त्रियः ।
काश्चिदग्निपरीताङ्ग्यो हर्म्येभ्यो मुक्तमूर्धजाः २६
पतन्त्यो रेजिरेऽभ्रेभ्यः सौदामन्य इवाम्बरात् ।

नाना रत्नों से विभूषित सारे मंगलों से शोभित उस मुख्य गृह पर लांगूल में लगी अग्नि छोड हनुमान् युगांत के मेघ के समान गर्जा । वायु चलने के कारण वह अग्नि कालाग्नि के समान प्रचंड हो गई और पवनने उस प्रदीप्त अग्निको सब घरों में फैला दिया । रत्नों से युक्त स्वर्णजालोंवाले उन बडे घरों को अग्निने दग्ध कर दिया और उनमें से टूटे हुए विमान पृथ्वी पर गिर पडे । (१८-२३)

दौडते हुए राक्षसों का तुमुल शब्द होने लगा, क्योंकि वे अपने अपने घरों की रक्षा करने में भग्नोत्साह हो गए थे और कहते थे कि, निश्चय वानर का रूप धारण कर यह अग्नि ही आया है । और राक्षसियाँ अग्नि से जलती हुई अपने अपने दूध पीते बच्चों को लिए रोती हुई बाल खोले बडे

वज्रविद्रुमवैदूर्यमुक्तारजतसंहतान् २७
विचित्रान्भवनाद्धातून्स्यन्दमानान्ददर्श सः ।
नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां तृणानां च यथा तथा २८
हनूमान्राक्षसेन्द्राणां वधे किंचिन्न तृप्यति ।
न हनूमद्विशस्तानां राक्षसानां वसुंधरा २९
हनूमता वेगवता वानरेण महात्मना ।
लङ्कापुरं प्रदग्धं तद्रुद्रेण त्रिपुरं यथा ३०
ततः स लङ्कापुरपर्वताग्रे समुत्थितो भीमपराक्रमोऽग्निः ।
प्रसार्य चूडावलयं प्रदीप्तो हनूमता वेगवतोपसृष्टः ३१
युगान्तकालानलतुल्यरूपः स मारुतोऽग्निर्ववृधे दिवस्पृक् ।
विधूमरश्मिर्भवनेषु सद्यो रक्षःशरीराज्यसमर्पितार्चिः ३२
आदित्यकोटीसदृशः सुतेजा लङ्कां समस्तां परिवार्य तिष्ठन् ।
शब्दैरनेकैरशनिप्ररूढैर्भिन्दन्निवाण्डं प्रबभौ महाग्निः ३३

बड़े मंदिरों के ऊपर से कूदती हुई आकाश से गिरती हुई बिजली के समान शोभित हुई । (२४-२७)

वज्र, मूंगा, वैडूर्य, मोती, चांदीसहित गृहों से बहते नाना प्रकार के धातु हनुमान् ने देखे । जैसे अग्नि तृण-काष्ठों के भस्म करने से तृप्त नहीं होता वैसे ही हनुमान् राक्षसों के बध से तृप्त नहीं हुए और न मरे हुए राक्षसों से पृथ्वी तृप्त हुई । वेगवाले हनुमान् ने लङ्का को ऐसे जला दिया, जैसे महादेवने त्रिपुर को । तदनु लङ्कापुरी के पर्वतपर अति भयङ्कर पराक्रमवाला अग्नि उठा, जो हनुमान् के छोडने से भभक कर जलने लगा, राक्षसों के घरों में लगा, निशाचरों के शरीर को जलाता निर्धूम और पवनसहित अग्नि युगांत की अग्नि के समान आकाश को छूने को बढा । (२७-३२)

करोडों सूर्यों के समान प्रकाशित तेजस्वी महाग्नि लङ्का को चारों ओर से घेर नाना प्रचण्ड ध्वनियों से ब्रह्मांड को भेदन करता हुआ शोभित

तत्राम्बरादग्निरतिप्रवृद्धो रूक्षप्रभः किंशुकपुष्पचूडः।
निर्वाणधूमाकुलराजयश्च नीलोत्पलाभाः प्रचकाशिरेऽभ्राः ३४
वज्री महेन्द्रस्त्रिदशेश्वरो वा साक्षाद्यमो वा वरुणोऽनिलो वा।
रौद्रोऽग्निरर्को धनदश्च सोमो न वानरोऽयं स्वयमेव कालः ३५
किं ब्रह्मणः सर्वपितामहस्य लोकस्य धातुश्चतुराननस्य।
इहागतो वानररूपधारी रक्षोपसंहारकरः प्रकोपः ३६
किं वैष्णवं वा कपिरूपमेत्य रक्षोविनाशाय परं सुतेजः।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तमेकं स्वमायया सांप्रतमागतं वा ३७
इत्येवमूचुर्बहवो विशिष्टा रक्षोगणास्तत्र समेत्य सर्वे।
सप्राणिसङ्घां सगृहां सवृक्षां दग्धां पुरीं तां सहसा समीक्ष्य ३८
ततस्तु लङ्का सहसा प्रदग्धा सराक्षसा साश्वरथा सनागा।
सपक्षिसङ्घा समृगा सवृक्षा रुरोद दीना तुमुलं सशब्दम् ३९
हा तात हा पुत्रक कान्त मित्र हा जीवितेशाङ्क हतं सुपुण्यम्।
रक्षोभिरेवं बहुधा ब्रुवद्भिः शब्दः कृतो घोरतरः सुभीतः ४०

हुआ। उस समय अतिरुखे टेसूके फूलके समान शिखावान् अग्नि आकाशमें वृद्धि को प्राप्त हुआ और नील कमलके समान धुएं की किरणराशि आकाश को प्रकाशित करने लगी। तब राक्षस आपस में कहने लगे कि, यह वानर वज्रपाणि देवेन्द्र अथवा यम, वरुण, पवन, रुद्र, अग्नि, सूर्य, कुबेर व चन्द्रमा है; अन्यथा यह स्वयं काल ही है। क्या सब के पितामह, लोक के धारण करनेवाले ब्रह्मा का कोप है, जो वानररूप धर राक्षससंहार के लिये यहां आया है? अथवा वानर का रूप धर अचिन्त्य, सब का कारणभूत, अनन्त विष्णु का सुन्दर तेज अपनी माया से इस समय प्राप्त हुआ है? (३३-३७)

इस तरह प्राणियों, मन्दिरों व वृक्षोंसहित लङ्का को उजडी देख राक्षस आपस में कह रहे थे। ततः राक्षस, घोडे, हाथी, रथ, पशु, पक्षी, मृग, वृक्षसहित जल जानेके कारण हाहाकार कर मानो लंका रुदन करने लगी। हा तात, हा पुत्र, हा कान्त, हा मित्र! राक्षसों का पुण्य व भोग सब हत हो गया, इस तरह राक्षसों ने भीत हो घोर शब्द किया।

हुताशनज्वालसमावृता सा हतप्रवीरा परिवृत्तयोधा ।
हनूमतः क्रोधबलाभिभूता बभूव शापोपहतेव लङ्का ४१
ससंभ्रमं त्रस्तविषण्णराक्षसां समुज्ज्वलज्ज्वालहुताशनाङ्किताम् ।
ददर्श लङ्कां हनुमान्महामनाः स्वयम्भुरोषोपहतामिवावनिम् ४२
भङ्क्त्वा वनं पादपरत्नसंकुलं हत्वा तु रक्षांसि महान्ति संयुगे ।
दग्ध्वा पुरीं तां गृहरत्नमालिनीं तस्थौ हनूमान्पवनात्मजः कपिः ४३
स राक्षसांस्तान्सुबहूंश्च हत्वा वनं च भङ्क्त्वा बहुपादपं तत् ।
विसृज्य रक्षोभवनेषु चाग्निं जगाम रामं मनसा महात्मा ४४
ततस्तु तं वानरवीरमुख्यं महाबलं मारुततुल्यवेगम् ।
महामतिं वायुसुतं वरिष्ठं प्रतुष्टुवुर्देवगणाश्च सर्वे ४५
देवाश्च सर्वे मुनिपुङ्गवाश्च गन्धर्वविद्याधरपन्नगाश्च ।
भूतानि सर्वाणि महान्ति तत्र जग्मुः परां प्रीतिमतुल्यरूपाम् ४६
भङ्क्त्वा वनं महातेजा हत्वा रक्षांसि संयुगे ।
दग्ध्वा लङ्कापुरीं भीमां रराज स महाकपिः ४७

अग्निज्वाला से संयुक्त मृतवीर योधाओं से घिरी हुई हनुमान् के क्रोध से अनादृत लंका शाप से मानो हत हो गई । (३८-४१)

मारे भय के व्याकुल राक्षसों से युक्त, अग्निज्वालाओं से चिह्नित लंका को हनुमान् ने महाकोप के वेग से भस्म पृथ्वी के समान देखा । वृक्षरत्नों से युक्त वनको तोड, समरमें राक्षसों को मार, रत्नसमूह से बनी लंका को जला हनुमान् स्थित हो गया । बहुत राक्षसों को मार, वृक्षसहित वन उजाड, राक्षसों के भवनों में अग्नि लगा, हनुमान् मनसे राम के समीप पहुंचा । महाबली मारुततुल्य वेगवाले वानरश्रेष्ठ हनुमान् की सब देवता स्तुति करने लगे । (४२-४५)

सब देवता, मुनिश्रेष्ठ, गंधर्व, विद्याधर, नाग, यक्ष और अन्य सब प्राणी अपरिमित प्रसन्नता को प्राप्त हुए । वन विध्वंस कर, समरमें राक्षसों को मार रम्य लंकापुरी को जला हनुमान् शोभित हुआ । हनुमान्, जो वानरों में सिंहवत् श्रेष्ठ थे, एक ऊँचे प्रासाद के आश्चर्यकारक शिखर पर जा बैठे और

गृहाग्र्यशृङ्गाग्रतले विचित्रे प्रतिष्ठितो वानरराजसिंहः ।
प्रदीप्तलाङ्गूलकृतार्चिमाली व्यराजतादित्य इवार्चिमाली ४८

लङ्कां समस्तां संपीड्य लाङ्गूलाग्निं महाकपिः ।
निर्वापयामास तदा समुद्रे हरिपुङ्गवः ४९

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
दृष्ट्वा लङ्कां प्रदग्धां तां विस्मयं परमं गताः ५०

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः । [२२३४]

संदीप्यमानां वित्रस्तां त्रस्तरक्षोगणां पुरीम् ।
अवेक्ष्य हनुमाँल्लङ्कां चिन्तयामास वानरः १

तस्याभूत्सुमहांस्त्रासः कुत्सा चात्मन्यजायत ।
लङ्कां प्रदहता कामं किंस्वित्कृतमिदं मया २

धन्याः खलु महात्मानो ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम् ।
निरुन्धन्ति महात्मानो दीप्तमग्निमिवाम्भसा ३

क्रुद्धः पापं न कुर्यात्कः क्रुद्धो हन्याद्गुरूनपि ।
क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत् ४

पुच्छभाग में धधकती हुई अग्नि की लपटों के कारण किरणों से देदीप्यमान सूर्यवत् सुहाने लगे। समूची लंका—नगरी को जला कर श्रेष्ठ वानरने पूँछ में लगी हुई अग्नि को समुद्रजल में बुझा दिया। तब सब देवता, गन्धर्व, सिद्ध व परमर्षि लंका को जली देख बडे विस्मय को प्राप्त हुए। (४९-५०)

यहाँ चौपनवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

जली हुई, विध्वस्त, डरे हुए राक्षसों से युक्त लंका को देख हनुमान् चिन्ता करने लगा— उसको बडा दुःख हुआ व स्वयं अपनी निन्दा करने लगा कि, लंका भस्म कर मैंने यह क्या कुत्सित कर्म किया ? वे महात्मा लोग धन्य हैं, जो उठे हुए क्रोधको बुद्धि से रोक लेते हैं। क्रुद्ध हो मनुष्य

वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित् ।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित् ५
यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयैव निरस्यति ।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते ६
धिगस्तु मां सुदुर्बुद्धिं निर्लज्जं पापकृत्तमम् ।
अचिन्तयित्वा तां सीतामग्निदं स्वामिघातकम् ७
यदि दग्धा त्वियं सर्वा नूनमार्यापि जानकी ।
दग्धा तेन मया भर्तुर्हितं कार्यमजानता ८
यदर्थमयमारम्भस्तत्कार्यमवसादितम् ।
मया हि दहता लङ्कां न सीता परिरक्षिता ९
ईषत्कार्यमिदं कार्यं कृतमासीन्न संशयः ।
तस्य क्रोधाभिभूतेन मया मूलक्षयः कृतः १०
विनष्टा जानकी व्यक्तं न ह्यदग्धः प्रदृश्यते ।
लङ्कायाः कश्चिदुद्देशः सर्वा भस्मीकृता पुरी ११

कौनसा पाप नहीं करता ? क्रुद्ध पुरुष गुरुजनों को भी मार डालता है और साधु पुरुषों को भी कठोर बात कह बैठता है । कहने और न कहनेयोग्य बात को क्रुद्ध हुआ मनुष्य नहीं जानता, क्रुद्ध हुए के लिये कुछ अकार्य और अवाच्य नहीं रहता । (१-५)

जो उत्पन्न क्रोध को क्षमा से दूर कर देता है, वही पुरुष कहाता है । मुझ निर्लज्ज दुर्बुद्धि पापी को धिक्कार है, जिसने सीता की चिन्ता न करके लंका जला दी । यदि इस लंका के साथ सीता भी जल गई हो, तो मैंने स्वामी का सब कार्य नष्ट कर दिया । जिस कार्य के लिये वह सब आरम्भ किया था, वह कार्य ही नष्ट कर दिया । लंकादहन के समय सीता की रक्षा मैंने न की । यह कार्य निश्चय बहुत तुच्छ हो गया, क्योंकि क्रोध से अन्ध हो मैंने मूल ही नाश कर दिया । (६-१०)

निश्चय सीता भी भस्म हो गई, क्योंकि लंका में कोई स्थान भी

यदि तद्विहतं कार्यं मया प्रज्ञाविपर्ययात्।
इहैव प्राणसंन्यासो ममापि ह्यद्य रोचते ११
किमग्नौ निपताम्यद्य आहोस्विद्बडवामुखे।
शरीरमिह सत्त्वानां दद्मि सागरवासिनाम् १२
कथं नु जीवता शक्यो मया द्रष्टुं हरीश्वरः।
तौ वा पुरुषशार्दूलौ कार्यसर्वस्वघातिना १३
मया खलु तदेवेदं रोषदोषात्प्रदर्शितम्।
प्रथितं त्रिषु लोकेषु कपित्वमनवस्थितम् १४
धिगस्तु राजसं भावमनीशमनवस्थितम्।
ईश्वरेणापि यद्रागान्मया सीता न रक्षिता १५
विनष्टायां तु सीतायां तावुभौ विनशिष्यतः।
तयोर्विनाशे सुग्रीवः सबन्धुर्विनशिष्यति १६
एतदेव वचः श्रुत्वा भरतो भ्रातृवत्सलः।
धर्मात्मा सहशत्रुघ्नः कथं शक्ष्यति जीवितुम् १७
इक्ष्वाकुवंशे धर्मिष्ठे गते नाशमसंशयम्।
भविष्यन्ति प्रजाः सर्वाः शोकसंतापपीडिताः १८

अदग्ध नहीं दिखाई पडता, जो बुद्धिविपर्यय से ऐसा ही कर्म किया होगा, तो मैं भी अपने प्राण यहीं छोड दूंगा। मैं भी अग्नि में गिर पडूं वा बडवानल में गिर पडूं अथवा समुद्र में डूब जाऊं। क्योंकि कार्य का नाश करके जीता हुआ मैं सुग्रीव व उन दोनों भाइयों को क्यों कर देख सकता हूं? जो तीनों लोक में वानर का स्वभाव प्रसिद्ध है, मैंने क्रोध से वह सत्य सत्य करके दिखा दिया। (११-१५)

जिस रजोगुणी चेष्टाके वश समर्थ होकर भी सीता की रक्षा न की, उस अव्यवस्थित रजोगुण को धिक्कार है। सीता के नष्ट होनेपर राम तथा लक्ष्मण, उन दोनों के नाश होनेपर बन्धुसहित सुग्रीव नष्ट हो जायंगे। ये समाचार सुन धर्मात्मा भरत और शत्रुघ्न कैसे जी सकेंगे? धार्मिक इक्ष्वाकुवंश के नष्ट होनेपर सब प्रजा दुःखार्ता हो जायगी।

तदहं भाग्यरहितो लुप्तधर्मार्थसंग्रहः ।
रोषदोषपरीतात्मा व्यक्तं लोकविनाशनः २०
इति चिन्तयतस्तस्य निमित्तान्युपपेदिरे ।
पूर्वमप्युपलब्धानि साक्षात्पुनरचिन्तयत् २१
अथ वा चारुसर्वाङ्गी रक्षिता स्वेन तेजसा ।
न नशिष्यति कल्याणी नाग्निरग्नौ प्रवर्तते २२
न हि धर्मात्मनस्तस्य भार्यामिततेजसः ।
स्वचरित्राभिगुप्तां तां स्प्रष्टुमर्हति पावकः २३
नूनं रामप्रभावेण वैदेह्याः सुकृतेन च ।
यन्मां दहनकर्मायं नादहद्धव्यवाहनः २४
त्रयाणां भरतादीनां भ्रातॄणां देवता च या ।
रामस्य च मनःकान्ता सा कथं विनशिष्यति २५
यद्वा दहनकर्मायं सर्वत्र प्रभुरव्ययः ।
न मे दहति लाङ्गूलं कथमार्यां प्रधक्ष्यति २६
पुनश्चाचिन्तयत्तत्र हनूमान्विस्मितस्तदा ।
हिरण्यनाभस्य गिरेर्जलमध्ये प्रदर्शनम् २७

तब मैं भाग्यहीन क्रोधके कारण लोक का नाश करनेवाला कहा जाऊंगा । (१६-२०)

यह सोचते हुए हनुमान् को शुभ शकुन दिखाई पड़े, सो वह फिर सोचने लगा । अथवा वह सुन्दर अंगोंवाली अपने तेज से रक्षित नष्ट न हुई होगी, क्योंकि अग्नि अग्निको नहीं जलाता । उस धर्मात्मा तेजस्वी राम की स्वचरित्र से रक्षित भार्या को अग्नि नहीं छू सकता । रामप्रभाव और सीताके सुकृत से अग्निने मुझे नहीं जलाया, सो उसे भी नहीं जलाया होगा । भरतादि तीनों भाइयों की देवता, राम की प्रिया कैसे नष्ट हो जायगी ? (२१-२५)

यदि कहो कि अग्नि का स्वभाव सर्वत्र ही जलाने का है, तो मेरी पूंछ नहीं जली, फिर सीता कैसे जल जायगी ? फिर उस हनुमान् ने समुद्र

तपसा सत्यवाक्येन अनन्यत्वाच्च भर्तरि ।
असौ विनिर्दहेदग्निं न तामग्निः प्रधक्ष्यति २८
स तथा चिन्तयंस्तत्र देव्या धर्मपरिग्रहम् ।
शुश्राव हनुमांस्तत्र चारणानां महात्मनाम् २९
अहो खलु कृतं कर्म दुर्विगाहं हनूमता ।
अग्निं विसृजता तीक्ष्णं भीमं राक्षससद्मनि ३०
प्रपलायितरक्षःस्त्रीबालवृद्धसमाकुला ।
जनकोलाहलाध्माता क्रन्दतीवाद्रिकन्दरैः ३१
दग्धेयं नगरी लङ्का साट्टप्राकारतोरणा ।
जानकी न च दग्धेति विस्मयोऽद्भुत एव नः ३२
इति शुश्राव हनुमान्वाचं तामृतोपमाम् ।
बभूव चास्य मनसो हर्षस्तत्कालसंभवः ३३
स निमित्तैश्च दृष्टार्थैः कारणैश्च महागुणैः ।
ऋषिवाक्यैश्च हनुमानभवत्प्रीतमानसः ३४
ततः कपिः प्राप्तमनोरथार्थस्तामक्षतां राजसुतां विदित्वा ।
प्रत्यक्षतस्तां पुनरेव दृष्ट्वा प्रतिप्रयाणाय मतिं चकार ३५

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदि० सुन्दरकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥५५॥[२२६९]

के बीचमें मैनाक के दर्शन का स्मरण कर आश्चर्य किया। तप, सत्य और पातिव्रत्यसे सीता अग्नि को जला दे, अग्नि उसे नहीं जलावेगी। उस देवीके विषय में चिंता करते हुए हनुमान् ने चारणों का शब्द सुना। (२६-२९)

'अहो निश्चय ही यह बड़ा दुष्कर कर्म हनुमान् ने किया कि, राक्षसों के गृहों में भयानक अग्नि छोड प्रलाप करती हुई राक्षसों की स्त्री बालक वृद्धोंसे समाकुल, जनकोलाहल से पूरित, अटारी प्राकार तोरणोंसहित यह सारी लङ्का जल गई, पर सीता नहीं जली—यही हमें आश्चर्य है।' अमृततुल्य यह वचन सुन हनुमान् को बड़ा हर्ष हुआ। देखे हुए शकुनों और ऋषियों के वचनों से हनुमान् प्रसन्न हो गया। तब सफलमनोरथ

षट्पञ्चाशः सर्गः।

ततस्तु शिंशपामूले जानकीं पर्यवस्थिताम्।
अभिवाद्याब्रवीद्दिष्ट्या पश्यामि त्वामिहाक्षताम् १
ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्षमाणा पुनः पुनः।
भर्तुः स्नेहान्विता वाक्यं हनूमन्तमभाषत २
यदि त्वं मन्यसे तात वसैकाहमिहानघ।
क्वचित्सुसंवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ३
मम चैवाल्पभाग्यायाः सांनिध्यात्तव वानर।
शोकस्यास्याप्रमेयस्य मुहूर्तं स्यादपि क्षयः ४
गते हि हरिशार्दूल पुनः संप्राप्तये त्वयि।
प्राणेष्वपि न विश्वासो मम वानरपुङ्गव ५

इसने सीता को अक्षत जान उसे फिर से प्रत्यक्ष देख लौटने की मति स्थिर की। (३१–३५)

यहाँ पचपनवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

ततः शिंशुपा की जड में बैठी जानकी को अभिवादन कर हनुमान् बोला कि, मैं भाग्य से ही तुम को अक्षत देख रहा हूं। इतना कह चुकने पर जब हनुमान् वापिस चलने लगा, तब सीता उस की ओर बारबार देखने लगी और अपने पति के बारे में असीम प्रेमभाव मन में रखती हुई, वह उस से बोली। हे पापरहित हनुमन्! यदि तुम चाहो, तो तुम आज के दिन किसी अच्छे तथा सुरक्षित स्थान में आराम कर लो और कल यहाँ से चले जाओ। क्योंकि, हे वानर! तुझे अपने निकट देखकर मुझ जैसी अभागिनी नारी का असीम दुःखावेग एक क्षण-मात्र के लिए ही क्यों न सही पर घट जायेगा। हे श्रेष्ठ वानर! एक बार तुम्हारे इधर से चले जाने पर यदि मैं ऐसा भी मानूँ कि, फिर से तुम्हारी मुलाकात होगी, तो भी हे वानरराज! मुझे स्वयं इस बात पर विश्वास नहीं होता कि, तबतक मेरे प्राण शरीर में रहेंगे। (१–५)

अदर्शनं च ते वीर भूयो मां दारयिष्यति।
दुःखाद्दुःखतरं प्राप्तां दुर्मनःशोककर्शिताम् ६
अयं च वीर संदेहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः।
सुमहत्सु सहायेषु हर्यृक्षेषु महाबल ७
कथं नु खलु दुष्पारं संतरिष्यन्ति सागरम्।
तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ ८
त्रयाणामेव भूतानां सागरस्यातिलङ्घने।
शक्तिः स्याद्वैनतेयस्य तव वा मारुतस्य वा ९
तदत्र कार्यनिर्बन्धे समुत्पन्ने दुरासदे।
किं पश्यसि समाधानं त्वं हि कार्यविशारदः १०
काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते बलोदयः ११

हे वीर! तुम्हारे आँखों से ओझल हो जाने पर पहले बार के दुःख की अपेक्षा अधिक दारुण दुःख भोगने के कारण शोक एवं खेद के मारे मैं जर्जर हो जाऊँगी और मेरा हृदय सौ बार टूक टूक हो जायेगा। इस के अतिरिक्त हे वीर! मेरे सामने यह एक बड़ा भारी सन्देह उठ खड़ा हुआ है कि, यद्यपि रामचन्द्रजी को बड़े बड़े वानर एवं ऋक्ष सहायता देते हों, तो भी वह बड़ी भारी ऋक्ष तथा वानरों की सेना और राजकुमार राम तथा लक्ष्मण राह में आ पड़नेवाले एवं लाँघकर जाने में अति कठिन समुद्र को भला कैसे पार कर लेंगे? मेरी धारणा है कि, समुद्र के परे चले जाने की क्षमता केवल तीनों में ही है, वे तीन अर्थात् ही तुम, गरुड तथा वायु हैं। (६-९)

ऐसी यह अनुल्लंघनीय कठिनाई हमारे सामने मुँहबायें खड़ी है, जब कि हम यह कार्य पूरा करना चाहते हैं। भला तुम्हें कोई युक्ति सूझती है? तुम अंगीकृत कार्य को निभाने में बहुत चतुर हो। हे शत्रुदल के वीरों को परास्त करनेवाले! इस कार्य को सफलतापूर्वक पूरा करने में सचमुच तुम ही अकेले पूर्णतया सुयोग्य हो और तुम्हारे बल का ही

बलैस्तु संकुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः ।
मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत् ११
तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः ।
भवत्याहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय १२
तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् ।
निशम्य हनुमान्वीरो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् १४
देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः ।
सुग्रीवः सत्त्वसंपन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः १५
स वानरसहस्राणां कोटीभिरभिसंवृतः ।
क्षिप्रमेष्यति वैदेहि सुग्रीवः प्लवगाधिपः १६
तौ च वीरौ नरवरौ सहितौ रामलक्ष्मणौ ।
आगम्य नगरीं लङ्कां सायकैर्विधमिष्यतः १७
सगणं राक्षसं हत्वा न चिराद्रघुनन्दनः ।

प्रभाव यशस्विता प्रदान करनेवाला है । तिस पर भी, शत्रु की सेना को मटियामेट करनेवाला राम अपनी सेना के साथ लंका में अपूर्व खलबली मचा कर मुझे साथ लेकर इधर से लौट जायेंगे, तो यही कार्य उन के लिए ठीक है, ऐसा जान पडता है । इसलिए उस युद्ध में कुशल तथा वीर एवं महान रामचन्द्रजी से सुहानेयोग्य पराक्रम हो जाय, ऐसी आयोजना तुम करो । (१०-१३)

अर्थ, विनय एवं हेतु से भरा यह भाषण सुनकर वीर हनुमान् उस से बोला । हे देवि ! सुग्रीव वानर तथा ऋक्ष सेना का अधिपति है और वह बलिष्ठ तुम्हारे कार्य के सम्बन्ध में निश्चय कर चुका है । वह वानरराज सुग्रीव शीघ्र ही सहस्रों वानरों की कोटिशः सेना संग ले शीघ्र इधर आयेगा । उन के साथ ही पुरुषश्रेष्ठ राम तथा लक्ष्मण आकर बाणों से लंका को नष्टभ्रष्ट कर देंगे । शीघ्र ही बांधवसहित रावण का वध कर के राम तुझे साथ लेकर अपनी राजधानी लौटेंगे । (१४-१७)

तुम्हारा कल्याण होवे । तुम धैर्यपूर्वक उचित वेला की राह देखती रहो

त्वामादाय वरारोहे स्वां पुरीं प्रति यास्यति १८
समाश्वसिहि भद्रं ते भव त्वं कालकाङ्क्षिणी।
क्षिप्रं द्रक्ष्यसि रामेण निहतं रावणं रणे १९
निहते राक्षसेन्द्रे च सपुत्रामात्यबान्धवे।
त्वं समेष्यसि रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी २०
क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्युतः।
यस्ते युधि विनिर्जित्य शोकं व्यपनयिष्यति २१
एवमाश्वास्य वैदेहीं हनूमान्मारुतात्मजः।
गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीमभ्यवादयत् २२
राक्षसान्प्रवरान्हत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः।
समाश्वास्य च वैदेहीं दर्शयित्वा परं बलम् २३
नगरीमाकुलां कृत्वा वञ्चयित्वा च रावणम्।
दर्शयित्वा बलं घोरं वैदेहीमभिवाद्य च २४

और तुम शीघ्र ही रावण को राम के हाथों मौतके घाट उतरते देख लोगी। राक्षसराज रावण, पुत्र, सचिव तथा बांधवोंसहित मारने पर तुम रामचन्द्रजी से इसी तरह जुड जाओगी जैसे रोहिणी चन्द्रमा से सम्मिलित हो जाती है। अगर मैं थोडे में कह दूँ, तो उच्च कोटि के वानरों तथा ऋक्ष याने रीछों को साथ ले ककुत्स्थ के परिवार में उत्पन्न रामचन्द्रजी बहुत जल्द इधर आयेंगे और समर में राक्षसों को जीतकर तुम्हारे शोक को हटा देंगे। (१८–२१)

इस भाँति वायुपुत्र हनुमानजीने सीता को सान्त्वना देकर मन में वापिस लौट जाना ठान लिया। पश्चात् सीता को प्रणाम किया। इस भाँति चुने हुए श्रेष्ठ राक्षसों को मारकर, अपने नाम को चहूँ ओर विख्यात कर के, सीता को दिलासा देकर, अपना असीम बल सब के सामने प्रकट कर के, लंकानगरी में अति भीषण तहलका मचाकर, रावण को धोखा देकर, भयावह सामर्थ्य व्यक्त कर के और सीता को प्रणाम कर चुकने पर हनुमानने ठान लिया कि, समुद्र के बीच में से उल्लंघन करते हुए लौट

प्रतिगन्तुं मनश्चक्रे पुनर्मध्येन सागरम् ।
ततः स कपिशार्दूलः स्वामिसंदर्शनोत्सुकः १५
आरुरोह गिरिश्रेष्ठमरिष्टमरिमर्दनः ।
तुङ्गपद्मकजुष्टाभिर्नीलाभिर्वनराजिभिः १६
सोत्तरीयमिवाम्भोदैः शृङ्गान्तरविलम्बिभिः ।
बोध्यमानमिव प्रीत्या दिवाकरकरैः शुभैः १७
उन्मिषन्तमिवोद्धूतैर्लोचनैरिव धातुभिः ।
तोयौघनिःस्वनैर्मन्द्रैः प्राधीतमिव सर्वतः १८
प्रगीतमिव विस्पष्टं नानाप्रस्रवणस्वनैः ।
देवदारुभिरुद्धूतैरूर्ध्वबाहुमिव स्थितम् १९
प्रपातजलनिर्घोषैः प्राकृष्टमिव सर्वतः ।
वेपमानमिव श्यामैः कम्पमानैः शरद्भवैः ३०
वेणुभिर्मारुतोद्धूतैः कूजन्तमिव कीचकैः ।
निःश्वसन्तमिवामर्षाद्घोरैराशीविषोत्तमैः ३१

जाना चाहिए । (२२-२४)

ततः वह कपिश्रेष्ठ राम के दर्शनों का उत्सुक अरिष्ट नामक पर्वतश्रेष्ठपर चढ गया । जो पर्वत ऊंची व कमल सेवित श्याम पंक्तियों से शृङ्गों के मध्यस्थित मेघों से मानों समुद्र को अपना वस्त्र ही बना रहा था और मानों शुभ सूर्य की किरणें प्रीति से डसे जता रहीं थीं और धातुओं की चमक से वह मानो बार बार आंख खोलता और बन्द करता था और मन्द मन्द जलके शब्दों से मानो वह कुछ पढ रहा था, नाना प्रकारके झरनों के शब्दोंसे गाता हुआसा प्रतीत हो रहा था, बडे बडे देवदारुके वृक्षोंसे ऊर्ध्व बाहु जैसा दिखाई देता था, बडे बडे ऊंचे स्थानों से जल गिरने के कारण जैसे कोई उसे पुकार रहा हो, शरद् ऋतु में उत्पन्न श्यामवर्ण शतावरी आदि वृक्ष के पकने से मानों मारे जाडे के कांप रहा था । (२४-३०)

बांसों में पवन लगने के कारण गूंजसा रहा था, विषधर सर्पों के श्वास लेने से मानों ऊर्ध्वश्वास ले रहा था, अधियारी गुफाओं के होने से

नीहारकृतगम्भीरैर्व्यायन्तमिव गह्वरैः ।
मेघपादनिभैः पादैः प्रक्रान्तमिव सर्वतः ३२
जृम्भमाणमिवाकाशे शिखरैरभ्रमालिभिः ।
कूटैश्च बहुधाकीर्णं शोभितं बहुकन्दरैः ३३
सालतालैश्च कर्णैश्च वंशैश्च बहुभिर्वृतम् ।
लतावितानैर्विततैः पुष्पवद्भिरलंकृतम् ३४
नानामृगगणैः कीर्णं धातुनिष्पन्दभूषितम् ।
बहुप्रस्रवणोपेतं शिलासंचयसङ्कटम् ३५
महर्षियक्षगन्धर्वकिन्नरोरगसेवितम् ।
लतापादपसंबाधं सिंहाधिष्ठितकन्दरम् ३६
व्याघ्रादिभिः समाकीर्णं स्वादुमूलफलद्रुमम् ।
आरुरोहानिलसुतः पर्वतं प्लवगोत्तमः ३७
रामदर्शनशीघ्रेण प्रहर्षेणाभिचोदितः ।
तेन पादतलक्रान्ता रम्येषु गिरिसानुषु ३८
सघोषाः समशीर्यन्त शिलाश्चूर्णीकृतास्ततः ।
स तमारुह्य शैलेन्द्रं व्यवर्धत महाकपिः ३९
दक्षिणादुत्तरं पारं प्रार्थयँल्लवणाम्भसः ।
अधिरुह्य ततो वीरः पर्वतं पवनात्मजः ४०

मानो ध्यान कर रहा था, मेघमाली बडे बडे शिखिरों के होने से मानों आकाश में जंभाई ले रहा था, बहुतसी कंदरा व छोटे छोटे पत्थरों से शोभित था; साल, ताल, अश्वकर्ण, वांस आदि वृक्षों से घिरा हुआ, पुष्प-युक्त लता वितानों से अलंकृत, नाना मृग और धातुओंसे आकीर्ण, बहुतसे झरनों और शिलाओं के ढेरसे युक्त, यक्ष–गन्धर्वादिसे सेवित, लता, पादप, सिंह, व्याघ्र, स्वादु, मूल, फल इन सब से परिपूरित ऐसे पर्वतपर राम-दर्शन की शीघ्रता के कारण प्रसन्न हुआ हनुमान् चढ गया । (३१–३८)

उस पर्वत के सुन्दर कन्दरों पर पडी हुई शिलायें हनुमान् के पैर के नीचे दब कर चूर्णित हो गई । उस पर्वतपर चढ समुद्र के दक्षिण से

ददर्श सागरं भीमं भीमोरगनिषेवितम् ।
स मारुत इवाकाशं मारुतस्यात्मसंभवः ४१
प्रपेदे हरिशार्दूलो दक्षिणादुत्तरां दिशम् ।
स तदा पीडितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः ४२
ररास विविधैर्भूतैः प्राविशद्वसुधातलम् ।
कम्पमानैश्च शिखरैः पतद्भिरपि च द्रुमैः ४३
तस्योरुवेगोन्मथिताः पादपाः पुष्पशालिनः ।
निपेतुर्भुवि तले भग्नाः शक्रायुधहता इव ४४
कन्दरोदरसंस्थानां पीडितानां महौजसाम् ।
सिंहानां निनदो भीमो नभो भिन्दन्निव शुश्रुवे ४५
त्रस्तव्याविद्धवसना व्याकुलीकृतभूषणाः ।
विद्याधर्यः समुत्पेतुः सहसा धरणीधरात् ४६
अतिप्रमाणा वलिनो दीप्तजिह्वा महाविषाः ।
विपीडितशिरोग्रीवा व्यवेष्टन्त महाहयः ४७
किंनरोरगगन्धर्वयक्षविद्याधरास्तथा ।

उत्तर किनारे पर आने की प्रार्थना करता हुआ हनुमान् बढ गया। उस पर्वतपर चढ हनुमान् ने मछली और सर्पों से सेवित भीमसागर को देखा। पवनपुत्र हनुमान् दक्षिण दिशा से उत्तर को वायुवत् आकाश में उडा। उस कपि से पीडित वह पर्वतश्रेष्ठ सब प्राणियों और कांपते हुए शिखरों और गिरते हुए वृक्षोंसहित चिघाड उठा और पृथ्वी में धस गया। उस के ऊरु वेग से मथित पुष्पवाले वृक्ष पृथ्वी पर गिर पडे, कंदराओं में स्थित पीडित हुए तेजस्वी सिंहों की दहाड आकाश को भेदती हुई हनुमान् ने सुनी। (३८-४५)

और उसपर की विद्याधरों की स्त्रियां त्रास से वस्त्रभूषणरहित हो पृथ्वी पर गिर पडीं। बडे बलवान् महा विषधर सर्प पत्थर की चोट लगने से कुंडलीभूत हो गिर पडे, उन में किसी के शिर और किसी के गल कुचले गए। पीडित हो उस पर्वतको छोड छोड किन्नर, नाग, गन्धर्व, यक्ष,

पीडितं तं नगवरं त्यक्त्वा गगनमास्थिताः ४८
स च भूमिधरः श्रीमान्बलिना तेन पीडितः।
सवृक्षशिखरोदग्रः प्रविवेश रसातलम् ४९
दशयोजनविस्तारस्त्रिंशद्योजनमुच्छ्रितः।
धरण्यां समतां यातः स बभूव धराधरः ५०
स लिलङ्घयिषुर्भीमं सलिलं लवणार्णवम्।
कल्लोलास्फालवेलान्तमुत्पतात नभो हरिः ५१

इत्यार्षे श्रीम० वाल्मी० आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥५६॥ [२३२०]

सप्तपञ्चाशः सर्गः।

आप्लुत्य च महावेगः पक्षवानिव पर्वतः।
भुजङ्गयक्षगन्धर्वप्रबुद्धकमलोत्पलम् १
सचन्द्रकुमुदं रम्यं सार्ककारण्डवं शुभम्।
तिष्यश्रवणकादम्बमभ्रशैवलशाद्वलम् २
पुनर्वसुमहामीनं लोहिताङ्गमहाग्रहम्।
ऐरावतमहाद्वीपं स्वातीहंसविलासितम् ३

विद्याधर आकाश को भाग खड़े हुए। उस महाबली हनुमान् से पीडित वह पर्वत वृक्ष लम्बी चोटियोंसहित पाताल को चला गया। यह पर्वत ४० कोस के घेरे में था और १२० कोश ऊंचा था। वह पृथ्वी में ऐसा चला गया कि, वहां की भूमि भी समान हो गई। लीलापूर्वक क्षारसमुद्र के लांघने की इच्छा से मारे कल्लोल के फरफराते बडी बडी लहरें उठते हुए समुद्र के ऊपर आकाश को हनुमान् उछला। (४६-५१)

यहाँ छप्पनवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

तब उस पर्वत पर से आकाश को सपक्ष पर्वत के समान महावेगवान् हनुमान् उछला, तो ऐसी शोभा हुई कि कुमुदरूप चन्द्र, जलमुर्ग सूर्य, श्रवण नक्षत्र घास व सिवालरूप बादल, महामीन पुनर्वसु, महाग्रास मङ्गल, महाद्वीप ऐरावत, हंस से शोभित स्वाति, पवनसमूहरूपी लहरें, किरणरूपी चन्द्रमा के शिशिरकाल के शीतल जलयुक्त आकाश में विना

वातसंघातजालोर्मिचन्द्रांशुशिशिराम्बुमत्।
हनूमानपरिश्रान्तः पुप्लुवे गगनार्णवम् ४
ग्रसमान इवाकाशं ताराधिपमिवोल्लिखन्।
हरन्निव सनक्षत्रं गगनं सार्कमण्डलम् ५
अपारमपरिश्रान्तश्चाम्बुधिं समगाहत।
हनूमान्मेघजालानि विकर्षन्निव गच्छति ६
पाण्डुरारुणवर्णानि नीलमाञ्जिष्ठकानि च।
हरितारुणवर्णानि महाभ्राणि चकाशिरे ७
प्रविशन्नभ्रजालानि निष्क्रमंश्च पुनःपुनः।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च चन्द्रमा इव दृश्यते ८
विविधाभ्रघनापन्नगोचरो धवलाम्बरः।
दृश्यादृश्यतनुर्वीरस्तथा चन्द्रायतेऽम्बरे ९
तार्क्ष्यायमाणो गगने स बभौ वायुनन्दनः १०
दारयन्मेघवृन्दानि निष्पतंश्च पुनःपुनः।
नदन्नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः ११

थके हनुमान् पैर रहे हो। उस समय मानो अंतरिक्षको लीलता व चन्द्रमा को उल्लिखित करता नक्षत्रसूर्यसहित आकाश को हनुमान् हरे ही लेता था। (१-५)

और मानो मेघसमूह को खींचे लिए जाता था, महावेगवान् हनुमान् इस तरह विना थके थकाए समुद्रको लांघने लगा। उस समय श्वेत, लाल, नीले, मजीठ रंग के व हरित और अरुण रंग के बडे बडे बादल शोभा दे रहे थे। उन बादलोंमें कभी तो छिप जाता, कभी निकल आता, इस प्रकार कभी प्रकाशित, कभी अप्रकाशित चन्द्रमा के समान हनुमान् दिखाई पडता था। नाना बादलों का श्वेत वस्त्र बनाए हनुमान् आकाशमें चन्द्रमा के समान कभी दिखाई देता और कभी छिप जाता था। मेघों के समूह को चीरता फाडता उन में से फिर निकल आने से पवनात्मज हनुमान् आकाश में गरुडवत् शोभित हुआ। (६-११)

※

प्रवरान्राक्षसान्हत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः।
आकुलां नगरीं कृत्वा व्यथयित्वा च रावणम् १२
अर्दयित्वा महावीरान्वैदेहीमभिवाद्य च।
आजगाम महातेजाः पुनर्मध्येन सागरम् १३
पर्वतेन्द्रं सुनाभं च समुपस्पृश्य वीर्यवान्।
ज्यामुक्त इव नाराचो महावेगोऽभ्युपागमत् १४
स किंचिदारात्संप्राप्तः समालोक्य महागिरिम्।
महेन्द्रमेघसंकाशो ननाद स महाकपिः १५
स पूरयामास कपिर्दिशो दश समन्ततः।
नदन्नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः
स तं देशमनुप्राप्तः सुहृद्दर्शनलालसः।
ननाद सुमहानादं लाङ्गूलं चाप्यकम्पयत् १७
तस्य नानद्यमानस्य सुपर्णाचरिते पथि।
फलतीवास्य घोषेण गगनं सार्कमण्डलम् १८
ये तु तत्रोत्तरे कूले समुद्रस्य महाबलाः।
पूर्वं संविष्टिताः शूरा वायुपुत्रदिदृक्षवः १९

मेघवत् गरज हनुमान् बडे बडे राक्षसों को मार, अपना नाम सब को सुना, लङ्का को व्याकुल कर, रावण को दुःख दे, घोर राक्षससेनाका नाश कर, वैदेही को अभिवादन कर, सागर को बीचमें लांघ वापिस आ गया। सुनाभपर्वत को छू कर कमानसे छूटे तीरके समान बडे वेग से वह आया। मेघतुल्य महेन्द्रपर्वत को देख उस के समीप में पहुंच हनुमान् ने बडा नाद किया। (११-१५)

मेघ के तुल्य शब्द करते हुए उसने दशों दिशाओं को नाद से पूरित कर दिया। उस देश में पहुंच मित्रों के दर्शन की लालसावाले हनुमान् ने नाद करके पूंछ को हिलाया। आकाश में उस नाद करते हुए के घोष से सूर्यमंडलसहित गगन मानो फटा जाता था। हनुमान् को देखने की इच्छावाले जो महाबली वानर पूर्व से ही समुद्र के उत्तर तीरपर बैठे थे,

महतो वायुनुन्नस्य तोयदस्येव निःस्वनम् ।
शुश्रुवुस्ते तदा घोषमूरुवेगं हनूमतः २०
ते दीनमनसः सर्वे शुश्रुवुः काननौकसः ।
वानरेन्द्रस्य निर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् २१
निशम्य नदतो नादं वानरास्ते समन्ततः ।
बभूवुरुत्सुकाः सर्वे सुहृद्दर्शनकाङ्क्षिणः २२
जाम्बवान्स हरिश्रेष्ठः प्रीतिसंहृष्टमानसः ।
उपामन्त्र्य हरीन्सर्वानिदं वचनमब्रवीत् २३
सर्वथा कृतकार्योऽसौ हनूमान्नात्र संशयः ।
न ह्यस्याकृतकार्यस्य नाद एवंविधो भवेत् २४
तस्य बाहूरुवेगं च निनादं च महात्मनः ।
निशम्य हरयो हृष्टाः समुत्पेतुर्यतस्ततः २५
ते नगाग्रान्नगाग्राणि शिखराच्छिखराणि च ।
प्रहृष्टाः समपद्यन्त हनूमन्तं दिदृक्षवः २६
ते प्रीताः पादपाग्रेषु गृह्य शाखामवस्थिताः ।
वासांसि च प्रकाशानि समाविध्यन्त वानराः २७

उन्होंने प्रचण्ड वायु से प्रेरित मेघगर्जन के समान हनुमान् का गर्जन सुना । (१५-२०)

उन दीन मनवालोंने बादल की गरज के समान हनुमान् का शब्द सुना । उस के दर्शनों के इच्छुक उस का नाद सुन वे सब वानर उस के देखने को छटपटाने लगे । तब हरिश्रेष्ठ जाम्बवान् उन सब से बोला- इस में सन्देह नहीं कि हनुमान् कृतकार्य हो गया है, असफल हुए का इस प्रकार नाद नहीं हो सकता । उस के बाहु व ऊरुवेग तथा निनाद को सुन प्रसन्न हुए वानर जहां तहां से कूद इकट्ठे होने लगे । (२१-२५)

पर्वत के एक कूंगूरे से दूसरेपर और एक शिखर से दूसरेपर कूद कर वे सबके सब हनुमान् के देखने की इच्छासे बडे प्रसन्न हुए और बडी प्रीति से वृक्षशाखा पकड पकड लटकने लगे और टहनियां कपडोंके समान हिलने

गिरिगह्वरसंलीनो यथा गर्जति मारुतः।
एवं जगर्ज बलवान्हनूमान्मारुतात्मजः २८
तमभ्रघनसंकाशमापतन्तं महाकपिम्।
दृष्ट्वा ते वानराः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा २९
ततस्तु वेगवान्वीरो गिरेर्गिरिनिभः कपिः।
निपपात गिरेस्तस्य शिखरे पादपाकुले ३०
हर्षेणापूर्यमाणोऽसौ रम्ये पर्वतनिर्झरे।
छिन्नपक्ष इवाकाशात्पपात धरणीधरः ३१
ततस्ते प्रीतमनसः सर्वे वानरपुङ्गवाः।
हनूमन्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ३२
परिवार्य च ते सर्वे परां प्रीतिमुपागताः।
प्रहृष्टवदनाः सर्वे तमागतमुपागमन् ३३
उपायनानि चादाय मूलानि च फलानि च।
प्रत्यर्चयन्हरिश्रेष्ठं हरयो मारुतात्मजम् ३४
विनेदुर्मुदिताः केचित्केचित्किलकिलां तथा।
हृष्टाः पादपशाखाश्च आनिन्युर्वानरर्षभाः ३५

लगीं। जैसे पर्वत की कन्दरा में प्रविष्ट वायु गूंजता है, ऐसे ही हनुमान् ने गर्जन किया। मेघाकार हनुमान् को आता देख सब वानर हाथ जोड खडे हो गए। ततः वह वेगवाला हनुमान् वृक्षों से व्याप्त महेंद्रशिखरपर आकर उतरा। (२६-३०)

पर्वत के रम्य निर्झरस्थान में पंख कटे पर्वतवत् वह आकाश से गिरा। तब वे प्रसन्न मनवाले सब वानर श्रेष्ठ हनुमान् को घेरकर खडे हो गए। उस नीरोग आगत मारुति को घेर करके परम प्रीति को प्राप्त वानर-गण मूलफल भेटादि ला ला कर उसे पूजने लगे। कोई वानर प्रहृष्ट हुए, कोई किलकिल नाद करने लगे और कोई प्रमुदित हुए वानर वृक्षशाखाएँ लेकर उसके पास आए।। (३१-३५)

हनूमांस्तु गुरून्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा।
कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः ३६
स ताभ्यां पूजितः पूज्यः कपिभिश्च प्रसादितः।
दृष्टा देवीति विक्रान्तः संक्षेपेण न्यवेदयत् ३७
निषसाद च हस्तेन गृहीत्वा वालिनः सुतम्।
रमणीये वनोद्देशे महेन्द्रस्य गिरेस्तदा ३८
हनूमानब्रवीत्पृष्टस्तदा तान्वानरर्षभान्।
अशोकवनिकासंस्था दृष्टा सा जनकात्मजा ३९
रक्ष्यमाणा सुघोराभी राक्षसीभिरनिन्दिता।
एकवेणीधरा बाला रामदर्शनलालसा ४०
उपवासपरिश्रान्ता मलिना जटिला कृशा।
ततो दृष्टेति वचनं महार्थममृतोपमम् ४१
निशम्य मारुतेः सर्वे मुदिता वानराभवन्।
क्ष्वेडन्त्यन्ये नदन्त्यन्ये गर्जन्त्यन्ये महाबलाः ४२
चक्रुः किलकिलामन्ये प्रतिगर्जन्ति चापरे।
केचिदुच्छ्रितलाङ्गूलाः प्रहृष्टाः कपिकुञ्जराः ४३

महाकपि हनुमान् ने जाम्बवान् प्रभृति वृद्ध वानरों और कुमार अंगद की वंदना की। जाम्बवान्, अङ्गद और अन्य कपियों से पूजित विक्रान्त हनुमान् ने संक्षेप से निवेदन किया कि, मैं सीता को देख आया हूं। अङ्गद का हाथ पकड महेंद्रपर्वत के उस रमणीय स्थल पर वह बैठ गया और प्रसन्न हो, उन वानरों से बोला कि अशोकवाटिका में स्थित मैंने जानकी को देखा, जिस अनिन्दित की घोर राक्षसियां रक्षा करती हैं और बालों की एक वेणी धारे वह बाला रामदर्शन की लालसा कर रही है, तथा उपवास से कृश और मलिन हो रही है। (३६-४१)

देख लेने की अमृततुल्य वार्ता सुन सब वानर बडे प्रसन्न हुए। तथा उनमें कोई हंसने, गर्जने और नाद करने तथा दूसरे किलकिल शब्द करने

आयताश्चितदीर्घाणि लाङ्गूलानि प्रविव्यधुः ।
अपरे तु हनूमन्तं श्रीमन्तं वानरोत्तमम् ४४
आप्लुत्य गिरिशृङ्गेषु संस्पृशन्ति स्म हर्षिताः ।
उक्तवाक्यं हनूमन्तमङ्गदस्तु तदाब्रवीत् ४५
सर्वेषां हरिवीराणां मध्ये वाचमनुत्तमाम् ।
सत्त्वे वीर्ये न ते कश्चित्समो वानर विद्यते ४६
यदवप्लुत्य विस्तीर्णं सागरं पुनरागतः ।
जीवितस्य प्रदाता नस्त्वमेको वानरोत्तम ४७
त्वत्प्रसादात्समेष्यामः सिद्धार्था राघवेण ह ।
अहो स्वामिनि ते भक्तिरहो वीर्यमहो धृतिः ४८
दिष्ट्या दृष्टा त्वया देवी रामपत्नी यशस्विनी ।
दिष्ट्या त्यक्ष्यति काकुत्स्थः शोकं सीतावियोगजम् ४९
ततोऽङ्गदं हनूमन्तं जाम्बवन्तं च वानराः ।
परिवार्य प्रमुदिता भेजिरे विपुलाः शिलाः ५०
उपविष्टा गिरेस्तस्य शिलासु विपुलासु ते ।
श्रोतुकामाः समुद्रस्य लङ्घनं वानरोत्तमाः ५१

लगे । कोई कोई कपिश्रेष्ठ प्रसन्न हो पूंछ ऊपर को उठाने, कोई तिरछी, कोई सीधी करने लगे । अन्य हर्षित हुए वानर गिरिशृङ्गों से कूदकर हनुमान् को छूने लगे । (४१-४५)

हनुमान् के वार्ता कह चुकनेपर सब वानरों के बीच अङ्गद यह उत्तम वचन बोला– तुम्हारे समान सत्त्व व वीर्य में कोई भी वानर नहीं कि, तुम विस्तीर्ण सागर को कूद फिर वापिस आ गये । अहो तेरी स्वामिभक्ति ! अहो तेरा वीर्य और धैर्य ! भाग्य से ही तूने रामपत्नी को देख पाया और भाग्य से ही राम सीता के वियोग से उत्पन्न शोक का त्याग करेंगे । (४५-४९)

ततः हनुमान्, अङ्गद और जाम्बवान् को चारों ओर से घेर वानरगण विविध शिलाएं बैठने को ले आए । उन विपुल शिलाओंपर बैठे समुद्र का

दर्शनं चापि लङ्कायाः सीताया रावणस्य च ।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे हनूमद्वदनोन्मुखाः ५२
तस्थौ तत्राङ्गदः श्रीमान्वानरैर्बहुभिर्वृतः ।
उपास्यमानो विविधैर्दिवि देवपतिर्यथा ५३
हनूमता कीर्तिमता यशस्विना तथाङ्गदेनाङ्गदनद्धबाहुना ।
मुदा तदाध्यासितमुन्नतं महन्महीधराग्रं ज्वलितं श्रियाभवत् ५४

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः । [२३७४]

ततस्तस्य गिरेः शृङ्गं महेन्द्रस्य महाबलाः ।
हनुमत्प्रमुखाः प्रीतिं हरयो जग्मुरुत्तमाम् १
प्रीतिमत्सूपविष्टेषु वानरेषु महात्मसु ।
तं ततः प्रतिसंहृष्टः प्रीतियुक्तं महाकपिम् २
जाम्बवान्कार्यवृत्तान्तमपृच्छदनिलात्मजम् ।
कथं दृष्टा त्वया देवी कथं वा तत्र वर्तते ३

लङ्घन, लङ्का, सीता और रावण के दर्शन की वार्ता सुनने के अभिलाषी हनुमान् के मुख की ओर को देखते हुए हाथ जोड वे सब वानर स्थित हो गए । वहीं श्रीमान् अङ्गद भी वानरों से घिरा हुआ ऐसे बैठ गया, जैसे स्वर्ग में देवताओं से घिरा इन्द्र बैठा हो । तब कीर्तिमान् हनुमान् और यशस्वी अङ्गद उस पर्वतशिखरपर बैठे । तब वह शिखर उनकी कांति से शोभित हुआ । (५०–५४)

यहाँ सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

—०—

तब उस महेंद्रपर्वत के शृंग पर हनुमान् प्रभृति महाबली वानर बडी प्रसन्नता को प्राप्त हुए । उन प्रीतियुक्त बैठे हुए वानरों में महाकपि हनुमान् से प्रीति से प्रसन्न हुए जाम्बवान् ने कार्य का वृत्तान्त पूछा– तुमने उस देवी को कैसे देखा ? वह वहां किस अवस्था में है और क्रूर रावण

तस्यां चापि कथं वृत्तः क्रूरकर्मा दशाननः।
तत्त्वतः सर्वमेतन्नः प्रब्रूहि त्वं महाकपे ४
संमार्गिता कथं देवी किं च सा प्रत्यभाषत।
श्रुतार्थाश्चिन्तयिष्यामो भूयः कार्यविनिश्चयम् ५
यश्चार्थस्तत्र वक्तव्यो गतैरस्माभिरात्मवान्।
रक्षितव्यं च यत्तत्र तद्भवान्व्याकरोतु नः ६
स नियुक्तस्ततस्तेन संप्रहृष्टतनूरुहः।
नमस्यञ्शिरसा देव्यै सीतायै प्रत्यभाषत ७
प्रत्यक्षमेव भवतां महेन्द्राग्रात्खमाप्लुतः।
उदधेर्दक्षिणं पारं काङ्क्षमाणः समाहितः ८
गच्छतश्च हि मे घोरं विघ्नरूपमिवाभवत्।
काञ्चनं शिखरं दिव्यं पश्यामि सुमनोहरम् ९
स्थितं पन्थानमावृत्य मेने विघ्नं च तं नगम्।
उपसंगम्य तं दिव्यं काञ्चनं नगमुत्तमम् १०
कृता मे मनसा बुद्धिर्भेत्तव्योऽयं मयेति च।
प्रहृतस्य मया तस्य लाङ्गूलेन महागिरेः ११

उसके प्रति कैसा व्यवहार करता है? यह सब हमसे ठीक ठीक कहो। तुमने सीताजी का कैसे शोध किया, तथा उन्होंने तुम से क्या कहा? यह सब सुनकर फिर हम सोचेंगे कि, क्या करना चाहिए। रामके समीप जाकर जो कुछ हमें सुनाना चाहिए और जो नहीं सुनाना चाहिए, वह सब कहो। (१-६)

हर्ष से रोमांचित हो हनुमान् ने सीता को शिर से प्रणाम कर कहना आरम्भ किया। यह आप लोगों को ज्ञात ही है कि, महेंद्र के अग्रभाग से समुद्र के दक्षिण तट पर जानेकी इच्छा से मैं आकाश को उड गया। जाते हुए घोर विघ्नरूप मुझे दिखाई दिया, जो स्वर्णशिखरवाला एक मनोहर पर्वत था, वह मेरा मार्ग रोक खडा हो गया। उस दिव्य पर्वत के पास जा मैंने मन में विचारा कि इसे डराना चाहिए। मेरी पूंछ से उस पर्वत का सूर्यतुल्य शिखर प्रहृत किया जाकर सहस्रों टुकडे हो गया। (७-१२)

शिखरं सूर्यसंकाशं व्यशीर्यत सहस्रधा ।
व्यवसायं च तं बुद्ध्वा स होवाच महागिरिः १२
पुत्रेति मधुरां वाणीं मनः प्रह्लादयन्निव ।
पितृव्यं चापि मां विद्धि सखायं मातरिश्वनः १३
मैनाकमिति विख्यातं निवसन्तं महोदधौ ।
पक्षवन्तः पुरा तत्र बभूवुः पर्वतोत्तमाः १४
छन्दतः पृथिवीं चेरुर्बाधमानाः समन्ततः ।
श्रुत्वा नगानां चरितं महेन्द्रः पाकशासनः १५
वज्रेण भगवान्पक्षौ चिच्छेदैषां सहस्रशः ।
अहं तु मोचितस्तस्मात्तव पित्रा महात्मना १६
मारुतेन तदा वत्स प्रक्षिप्तो वरुणालये ।
राघवस्य मया साह्ये वर्तितव्यमरिन्दम १७
रामो धर्मभृतां श्रेष्ठो महेन्द्रसमविक्रमः ।
एतच्छ्रुत्वा मया तस्य मैनाकस्य महात्मनः १८
कार्यमावेद्य च गिरेरुद्यतं वै मनो मम ।
तेन चाहमनुज्ञातो मैनाकेन महात्मना १९
स चाप्यन्तर्हितः शैलो मानुषेण वपुष्मता ।
शरीरेण महाशैलः शैलेन च महोदधौ २०

मेरे इस कार्य को जान मनको प्रसन्न करता हुआसा मधुर वाणी से वह पर्वत बोला कि, हे पुत्र ! मुझे पवन का मित्र अपना चचा जानो । समुद्र में वास करता हुआ मैं मैनाक पर्वत हूं । पुत्र ! पुराकाल में पर्वत पंख-वाले होते थे और पृथ्वी को बाधा पहुंचाते हुए, वे स्वच्छन्द घूमा करते थे । पर्वतों का ऐसा चरित्र सुन भगवान् इन्द्रने वज्र से उन सहस्रों के पंख काट डाले । हे वत्स ! मुझे तुम्हारे पिता मारुतने इन्द्र से छुडा लिया और यहां समुद्र में ढकेल दिया । (१२-१८)

राम धर्मधारियों में श्रेष्ठ इन्द्रवत् पराक्रमी हैं, मैं उनकी सहायता करूंगा । मैनाकका यह वचन सुन जब मैंने उसे बताया कि कार्य किए

उत्तमं जवमास्थाय शेषमध्वानमास्थितः ।
ततोऽहं सुचिरं कालं जवेनाभ्यगमं पथि २१
ततः पश्याम्यहं देवीं सुरसां नागमातरम् ।
समुद्रमध्ये सा देवी वचनं चेदमब्रवीत् २२
मम भक्ष्यः प्रदिष्टस्त्वममरैर्हरिसत्तम ।
ततस्त्वां भक्षयिष्यामि विहितस्त्वं हि मे सुरैः २३
एवमुक्तः सुरसया प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ।
विवर्णवदनो भूत्वा वाक्यं चेदमुदीरयन् २४
रामो दाशरथिः श्रीमान्प्रविष्टो दण्डकावनम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च परन्तपः २५
तस्य सीता हृता भार्या रावणेन दुरात्मना ।
तस्याः सकाशं दूतोऽहं गमिष्ये रामशासनात् २६
कर्तुमर्हसि रामस्य साहाय्यं विषये सति ।
अथवा मैथिलीं दृष्ट्वा रामं चाक्लिष्टकारिणम् २७
आगमिष्यामि ते वक्त्रं सत्यं प्रतिशृणोमि ते ।
एवमुक्ता मया सा तु सुरसा कामरूपिणी २८

बिना बीच में रुकूंगा नहीं, तो मैं उसकी आज्ञा से आगे बढा और मनुष्य का शरीर धारे हुए वह महापर्वत समुद्र में ही अन्तर्हित हो गया । मैं उत्तम बल धारण करके शेष मार्ग व्यतीत करने लगा और देर तक बडे वेग से चला गया । तब मैंने सर्पों की माता देवी सुरसा को देखा, समुद्र के बीच में स्थित वह देवी मुझ से बोली कि, हे वानरश्रेष्ठ ! देवताओंने तुझे मेरा भक्ष्य बताया है, अतः मैं तुझे भक्षण करूंगी । (१९-२३)

सुरसा के ऐसा कहने पर हाथ जोड प्रणाम कर उदास मन हो उस से बोला कि, दशरथपुत्र राम; भाई लक्ष्मण और भार्या सीता सहित दण्डकवन में आए थे । उनकी भार्या को दुरात्मा रावणने हर लिया है, रामकी आज्ञा से दूत बन कर मैं वहां जा रहा हूं, इस विषय में तुम रामकी सहायता करो अथवा मैथिली को देख और राम से उस का संवाद कह, मैं तुम्हारे

अब्रवीन्नातिवर्तेत कश्चिदेष वरो मम ।
एवमुक्तः सुरसया दशयोजनमायतः २९
ततोऽर्धगुणविस्तारो बभूवाहं क्षणेन तु ।
मत्प्रमाणाधिकं चैव व्यादितं तु मुखं तया ३०
तद् दृष्ट्वा व्यादितं त्वास्यं ह्रस्वं ह्यकरवं पुनः ।
तस्मिन्मुहूर्ते च पुनर्बभूवाङ्गुष्ठसंमितः ३१
अभिपत्याशु तद्वक्त्रं निर्गतोऽहं ततः क्षणात् ।
अब्रवीत्सुरसा देवी स्वेन रूपेण मां पुनः ३२
अर्थसिद्धौ हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम् ।
समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना ३३
सुखी भव महाबाहो प्रीतास्मि तव वानर ।
ततोऽहं साधुसाध्वीति सर्वभूतैः प्रशंसितः ३४
ततोऽन्तरिक्षं विपुलं प्लुतोऽहं गरुडो यथा ।
छाया मे निगृहीता च न च पश्यामि किंचन ३५

मुख में आ घुसूंगा, सत्य जानिये । (२३-२८)

इस पर सुरसा बोली कि, मुझे तो वरदान ही यह है कि, कोई मेरा अतिवर्तन न कर सके । यह कह सुरसाने दश योजन चौडा मुंह कर लिया, तब मैं क्षणभर में दश योजन विस्तारवाला हो गया । मेरे परिमाण के अनुरूप उसने भी मुंह बढा लिया । यह देख मैं छोटा शरीर कर अंगूठे के समान बन उस के मुंह में घुस उसी क्षण बाहर निकल आया । (२९-३२)

तब अपने रूप में स्थित सुरसादेवी बोली कि, हे सौम्य ! अर्थसिद्धि करने के लिये यथासुख चले जाओ और जानकी को लाकर राम से मिलाओ, और सुखी हो । हे वानर ! मैं तुझ से बहुत प्रसन्न हूं । तब सब प्राणियोंने साधु साधु कह मेरी प्रशंसा की । तब मैं फिर गरुडवत् आकाश में उडने लगा कि, इतने में किसीने मेरी छाया पकड ली, पर कोई दिखाई

सोऽहं विगतवेगस्तु दिशो दश विलोकयन् ।
न किंचित्तत्र पश्यामि येन मे विहता गतिः ३६
अथ मे बुद्धिरुत्पन्ना किंनाम गमने मम ।
ईदृशो विघ्न उत्पन्नो रूपमत्र न दृश्यते ३७
अधोभागे तु मे दृष्टिः शोचतः पतिता तदा ।
तत्राद्राक्षमहं भीमां राक्षसीं सलिलेशयाम् ३८
प्रहस्य च महानादमुक्तोऽहं भीमया तया ।
अवस्थितमसंभ्रान्तमिदं वाक्यमशोभनम् ३९
क्वासि गन्ता महाकाय क्षुधिताया ममेप्सितः ।
भक्षः प्रीणय मे देहं चिरमाहारवर्जितम् ४०
बाढमित्येव तां वाणीं प्रत्यगृह्णामहं ततः ।
आस्यप्रमाणादधिकं तस्याः कायमपूरयम् ४१
तस्याश्चास्यं महद्भीमं वर्धते मम भक्षणे ।
न तु मां सा तु बुबुधे मम वा विकृतं कृतम् ४२
ततोऽहं विपुलं रूपं संक्षिप्य निमिषान्तरात् ।
तस्या हृदयमादाय प्रपतामि नभस्थलम् ४३

न पड़ा । गतिरहित हो, मैं दशों दिशाएं देखने लगा, पर कोई दिखाई न पड़ा । (३२-३६)

मैं सोचने लगा कि, आकाश में यह कौन विघ्न उपस्थित हुआ है, जिस का रूप दिखाई नहीं पड़ता ? सोच करते हुए मेरी दृष्टि नीचे नहीं गई थी, नीचे दृष्टि कर मैंने एक जलशायी भीम राक्षसी को देखा । बड़े जोर से हंसकर उसने मुझ अवस्थित असम्भ्रान्त से यह वचन कहा- हे महाकाय ! तुम कहां जाओगे ? तुम तो मुझ भूखी को भोजनरूप प्राप्त हुए हो, सो मेरे देह को तृप्त करो । (३७-४०)

मैंने उस से कहा कि, बहुत अच्छा और उस के मुख से अपनी देह को अधिक बड़ा बना लिया । उस का मुंह भी मेरे भक्षणार्थ बढ़ गया, उसने

सा विसृष्टभुजा भीमा पपात लवणाम्भसि ।
मया पर्वतसंकाशा निकृत्तहृदया सती ४४
शृणोमि खगतानां च वाचः सौम्या महात्मनाम् ।
राक्षसी सिंहिका भीमा क्षिप्रं हनुमता हता ४५
तां हत्वा पुनरेवाहं कृत्यमात्ययिकं स्मरन् ।
गत्वा च महदध्वानं पश्यामि नगमण्डितम् ४६
दक्षिणं तीरमुदधेर्लङ्का यत्र गता पुरी ।
अस्तं दिनकरे याते रक्षसां निलयं पुरीम् ४७
प्रविष्टोऽहमविज्ञातो रक्षोभिर्भीमविक्रमैः ।
तत्र प्रविशतश्चापि कल्पान्तघनसप्रभा ४८
अट्टहासं विमुञ्चन्ती नारी काप्युत्थिता पुरः ।
जिघांसन्तीं ततस्तां तु ज्वलदग्निशिरोरुहाम् ४९
सव्यमुष्टिप्रहारेण पराजित्य सुभैरवाम् ।
प्रदोषकाले प्रविशं भीतयाहं तयोदितः ५०

मेरी सामर्थ्य नहीं जानी । तब मैं अपने बडे रूप को छोटा कर उस के हृदय को ग्रहण कर आकाश में चला गया । तब वह भयंकर पर्वततुल्य राक्षसी बाहें फैला समुद्र में गिर पडी । तब मैंने आकाशस्थ सिद्ध चारणों का वचन सुना कि, हनुमान्ने सिंहिका राक्षसी को बडी शीघ्रता से मार डाला । (४१-४५)

उसको मार फिर मैं अपने कार्यका स्मरण करता हुआ चला और बहुत दूर जा पर्वतयुक्त समुद्र का दक्षिणी किनारा देखा, जहां लंका नाम की पुरी है। सूर्यास्त होने पर मैंने राक्षसोंके बिना जाने पुरीमें प्रवेश किया। वहां प्रवेश करते ही प्रलयकाल के मेघ के समान एक राक्षसी अट्टहास करती हुई उठ खडी हुई और मुझको मारने को उद्यत हुई । तब भयंकर शब्द करनेवाली उस राक्षसी को बाईं मुष्टी के प्रहार से पराजित कर संध्यासमय में नगरी में घुसा, वह डरी हुई मुझ से कहने लगी । (४६-५०)

अहं लङ्कापुरी वीर निर्जिता विक्रमेण ते।
यस्मात्तस्माद्विजेतासि सर्वरक्षांस्यशेषतः ५१
तत्राहं सर्वरात्रं तु विचरञ्जनकात्मजाम्।
रावणान्तःपुरगतो न चापश्यं सुमध्यमाम् ५२
ततः सीतामपश्यंस्तु रावणस्य निवेशने।
शोकसागरमासाद्य न पारमुपलक्षये ५३
शोचता च मया दृष्टं प्राकारेणाभिसंवृतम्।
काञ्चनेन विकृष्टेन गृहोपवनमुत्तमम् ५४
सप्राकारमवप्लुत्य पश्यामि बहुपादपम्।
अशोकवनिकामध्ये शिंशपापादपो महान् ५५
तमारुह्य च पश्यामि काञ्चनं कदलीवनम्।
अदूराच्छिंशपावृक्षात्पश्यामि वरवर्णिनीम् ५६
श्यामां कमलपत्राक्षीमुपवासकृशाननाम्।
तदेकवासःसंवीतां रजोध्वस्तशिरोरुहाम् ५७
शोकसंतापदीनाङ्गीं सीतां भर्तृहिते स्थिताम्।
राक्षसीभिर्विरूपाभिः क्रूराभिरभिसंवृताम् ५८

हे वीर! मैं लङ्कापुरी हूं, विक्रम से तूने मुझे जीत लिया, सो तुम सब राक्षसों को जीतोगे। वहाँ मैं रात्रिभर रावण के रनवास को ढूंढता रहा, पर जानकी को नहीं देखा। रावण के घर में सीता को न देख मैं अथाह अशोकसागर में डूब गया। सोच करते हुए मैंने चहारदीवारी से घिरा हुआ स्वर्णका बना हुआ एक उपवन देखा। उसके प्राकार पर चढ मैंने उसे बहुत वृक्षों से युक्त देखा। (५१-५५)

अशोकवाटिका के बीच एक शिंशुपाका पेड था, उस पर चढ मैंने सुनहरे रंग का कदलीवन देखा। शिंशुपावृक्ष के पास ही मैंने उपवास से दुबली हुई कमलनयनी सीता को देखा। जो एक वस्त्र पहिरे धूल लगे बालोंवाली, शोक और सन्तापसे दीन अंगवाली, पतिहितमें स्थित, क्रूर

मांसशोणितभक्ष्याभिर्व्याघ्रीभिर्हरिणीं यथा ।
सा मया राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ५९
एकवेणीधरा दीना भर्तृचिन्तापरायणा ।
भूमिशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ६०
रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्ये कृतनिश्चया ।
कथंचिन्मृगशावाक्षी तूर्णमासादिता मया ६१
तां दृष्ट्वा तादृशीं नारीं रामपत्नीं यशस्विनीम् ।
तत्रैव शिंशपावृक्षे पश्यन्नहमवस्थितः ६२
ततो हलहलाशब्दं काञ्चीनूपुरमिश्रितम् ।
शृणोम्यधिकगम्भीरं रावणस्य निवेशने ६३
ततोऽहं परमोद्विग्नः स्वरूपं प्रत्यसंहरम् ।
अहं च शिंशपावृक्षे पक्षीव गहने स्थितः ६४
ततो रावणदाराश्च रावणश्च महाबलः ।
तं देशमनुसंप्राप्तो यत्र सीताभवत्स्थिता ६५
तं दृष्ट्वाथ वरारोहा सीता रक्षोगणेश्वरम् ।
संकुच्योरू स्तनौ पीनौ बाहुभ्यां परिरभ्य च ६६

विरूप राक्षसियों से ऐसे घिरी हुई थी, जैसे मांस और रुधिर खानेवाली व्याघ्रियों से हरिणी घिरी हो । राक्षसियों के बीच में बार बार धमकायी हुई एक वेणी धारण किये, दीन, पतिचिन्ता में परायण, भूमि पर सोने-वाली रावण से चित्त हटाये मरने का निश्चय किये हुए ऐसी सीता के पास मैं जैसे तैसे शीघ्रता से पहुंच गया । (५६-६१)

रामपत्नी यशस्विनी तादृश नारी देख, मैं शिंशुपावृक्ष पर ही बैठ गया। तदनन्तर रावण के गृह में क्षुद्रघंटिका, नूपुरों आदि भूषणों का बडा भारी शब्द मैंने सुना । ततः परम उद्विग्न हुआ, अपना रूप छोटा कर पक्षी के समान लुक उस वृक्ष पर बैठ गया । तब रावण और उस की स्त्रियां जहां सीता थी, वहां आईं ; रावण को देख सीताने अपने हाथों से दोनों स्तनों

विस्रस्तां परमोद्विग्नां वीक्षमाणामितस्ततः।
त्राणं कंचिदपश्यन्तीं वेपमानां तपस्विनीम् ६७
तामुवाच दशग्रीवः सीतां परमदुःखिताम्।
अवाक्शिराः प्रपतितो बहुमन्यस्व मामिति ६८
यदि चेत्त्वं तु मां दर्पान्नाभिनन्दसि गर्विते।
द्विमासानन्तरं सीते पास्यामि रुधिरं तव ६९
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रावणस्य दुरात्मनः।
उवाच परमक्रुद्धा सीता वचनमुत्तमम् ७०
राक्षसाधम रामस्य भार्यामिततेजसः।
इक्ष्वाकुवंशनाथस्य स्नुषां दशरथस्य च ७१
अवाच्यं वदतो जिह्वा कथं न पतिता तव।
किंस्विद्वीर्यं तवानार्य यो मां भर्तुरसंनिधौ ७२
अपहृत्यागतः पाप तेनादृष्टो महात्मना।
न त्वं रामस्य सदृशो दास्येऽप्यस्य न युज्यसे ७३
अजेयः सत्यवाक्शूरो रणश्लाघी च राघवः।
जानक्या परुषं वाक्यमेवमुक्तो दशाननः ७४

को डर लिया और सिकुड कर डरी हुई बडी उद्विग्न इधर उधर देखती हुई, तपस्विनी सीता कांपने लगी। (६२-६७)

परम दुःखित सीता से रावण बोला कि, तू मुझे बहुत मान। हे गर्विते! यदि तू दर्प से मुझे प्रसन्न नहीं करेगी, तो दो मास पीछे मैं तेरा रुधिर पी जाऊंगा। दुरात्मा रावण का यह वचन सुन बडा क्रोध कर सीता बोली- राक्षसाधम! अमितपराक्रमी राम की भार्या और महाराज दशरथकी पुत्रवधू से यह अवाच्य बात कहते, तेरी जिह्वा क्यों न गिर पडी? हे अनार्य! तुझ में कुछ भी बल नहीं कि, तू मुझे उन महात्मा से विना देखे, हर कर ले आया। तू राम के समान नहीं, तू उन का दास होनेयोग्य भी नहीं। राम अजेय, सत्यवादी और रण में प्रशंसनीय है। (६८-७४)

जज्वाल सहसा कोपाच्चितास्थ इव पावकः ।
विवृत्य नयने क्रूरे मुष्टिमुद्यम्य दक्षिणम् ७५
मैथिलीं हन्तुमारब्धः स्त्रीभिर्हाहाकृतं तदा ।
स्त्रीणां मध्यात्समुत्पत्य तस्य भार्या दुरात्मनः ७६
वरा मन्दोदरी नाम तया स प्रतिषेधितः ।
उक्तश्च मधुरां वाणीं तया स मदनार्दितः ७७
सीतया तव किं कार्यं महेन्द्रसमविक्रम ।
मया सह रमस्वाद्य मद्विशिष्टा न जानकी ७८
देवगन्धर्वकन्याभिर्यक्षकन्याभिरेव च ।
सार्धं प्रभो रमस्वेति सीतया किं करिष्यसि ७९
ततस्ताभिः समेताभिर्नारीभिः स महाबलः ।
उत्थाप्य सहसा नीतो भवनं स्वं निशाचरः ८०
याते तस्मिन्दशग्रीवे राक्षस्यो विकृताननाः ।
सीतां निर्भर्त्सयामासुर्वाक्यैः क्रूरैः सुदारुणैः ८१
तृणवद्भाषितं तासां गणयामास जानकी ।
गर्जितं च तथा तासां सीतां प्राप्य निरर्थकम् ८२

सीता का यह कठोर वचन सुन रावण चिताग्नि के समान जल उठा और आंखें टेढी कर दाहिनी मुट्ठी उठा, सीता के मारने को उद्यत हुआ, यह देख स्त्रियोंने हाहाकार मचा दिया। उन स्त्रियों के बीचमें से उठ, उस दुरात्मा की भार्या मन्दोदरीने उसे रोका और उस कामातुर से मधुर वाणी से बोली कि, हे इन्द्रसम विक्रमवाले ! सीता से तुम्हे कौन काम है ? मेरे साथ रमण करो, सीता मुझ से अच्छी नहीं है । देव गन्धर्व और यक्षकन्याओं के साथ रमण करो, सीता को लेकर क्या करोगे ? (७४-७९)

तदनन्तर सब स्त्रियां रावण को अपने भवन को ले गईं । उस के चले जाने पर राक्षसियोंने सीता को कठोर वचनों से धमकाना शुरू किया । सीताने उन का कथन तृणवत् समझा और उनका गर्जना भी सीता के

*

वृथागर्जितनिश्चेष्टा राक्षस्यः पिशिताशनाः।
रावणाय शशंसुस्ताः सीताव्यवसितं महत् ८३
ततस्ताः सहिताः सर्वा विहताशा निरुद्यमाः।
परिक्लिश्य समस्तास्ता निद्रावशमुपागताः ८४
तासु चैव प्रसुप्तासु सीता भर्तृहिते रता।
विलप्य करुणं दीना प्रशुशोच सुदुःखिता ८५
तासां मध्यात्समुत्थाप्य त्रिजटा वाक्यमब्रवीत्।
आत्मानं खादत क्षिप्रं न सीतामसितेक्षणाम् ८६
जनकस्यात्मजां साध्वीं स्नुषां दशरथस्य च।
स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः ८७
रक्षसां च विनाशाय भर्तुरस्या जयाय च।
अलमस्मान्परित्रातुं राघवाद्राक्षसीगणम् ८८
अभियाचाम वैदेहीमेतद्धि मम रोचते।
यदि ह्येवंविधः स्वप्नो दुःखितायाः प्रदृश्यते ८९
सा दुःखैर्विविधैर्मुक्ता सुखमाप्नोत्यनुत्तमम्।
प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा ९०

सामने निरर्थक हो गया। मांसभक्षी राक्षसियों की गर्जना वृथा होने पर उदास हो, उन्होंने जाकर सीता का विचार रावण से कहा। (८०-८३)

तदनन्तर वे सब निराश और निरुद्यम हो, बडा क्लेश कर सो गईं। उन के सोने पर स्वामिहित में रत सीताने विलाप कर बडा शोक किया। उन के बीच में त्रिजटा नाम राक्षसी उठ कहने लगी। दशरथपुत्रवधू जनकनन्दिनी सीता को नहीं किन्तु अपने आपको खा डालो। राक्षसों के नाश और इस के पति की जय का द्योतक मैंने एक दारुण स्वप्न देखा है। मुझे तो अब तो अच्छा लगता है कि, हम सीता से याचना करें कि, वह राक्षसियों की राम से रक्षा करें। (८४-८९)

यदि इस प्रकार का स्वप्न किसी दुःखिता के विषयमें देखा जाता है,

अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात् ।
ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता ९१
अवोचद्यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः ।
तां चाहं तादृशीं दृष्ट्वा सीताया दारुणां दशाम् ९२
चिन्तयामास विश्रान्तो न च मे निर्वृतं मनः ।
संभाषणार्थं च मया जानक्याश्चिन्तितो विधिः ९३
इक्ष्वाकुकुलवंशस्तु स्तुतो मम पुरस्कृतः ।
श्रुत्वा तु गदितां वाचं राजर्षिगणभूषिताम् ९४
प्रत्यभाषत मां देवी बाष्पैः पिहितलोचना ।
कस्त्वं केन कथं चेह प्राप्तो वानरपुङ्गव ९५
का च रामेण ते प्रीतिस्तन्मे शंसितुमर्हसि ।
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा अहमप्यब्रुवं वचः ९६
देवि रामस्य भर्तुस्ते सहायो भीमविक्रमः ।
सुग्रीवो नाम विक्रान्तो वानरेन्द्रो महाबलः ९७
तस्य मां विद्धि भृत्यं त्वं हनूमन्तमिहागतम् ।
भर्त्रा संप्रहितस्तुभ्यं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ९८

तो वह दुःख से छुट सुख को प्राप्त करती है । सीता विनय से प्रसन्न हो जायगी और वह राक्षसियों को बडे भय से बचाने को समर्थ है । तब पति के विजय से हर्षित सीता बोली कि, यदि तुम्हारा कहना ठीक हो, तो मैं तुम्हारी रक्षा करूंगी । सीता की यह दारुण दशा देख मैं भी दुःखी हो, चिन्ता करने लगा । उस के साथ बात करने की विधि मैंने सोच ली और इक्ष्वाकुवंश का बखान मैं करने लगा । (८९-९४)

उस कुल के राजर्षियों की स्तुति सुन सीता आंसूभर बोली- हे वानर-श्रेष्ठ ! तुम कौन हो, किसने तुम्हें भेजा है, कैसे आये हो, राम से तुम्हें कौन प्रीति है, सो सब कहो । उस का यह वचन सुन मैंने उत्तर दिया- देवि ! तुम्हारे पति राम के सहायक बडे बलवाले सुग्रीव नाम वानरेन्द्र हैं, मैं उन का सेवक हनुमान् नामवाला तुम्हारे पति से भेजा हुआ यहां

इदं तु पुरुषव्याघ्रः श्रीमान्दाशरथिः स्वयम्।
अङ्गुलीयमभिज्ञानमदात्तुभ्यं यशस्विनि ९९
तदिच्छामि त्वयाज्ञप्तं देवि किं करवाण्यहम्।
रामलक्ष्मणयोः पार्श्वे नयामि त्वां किमुत्तरम् १००
एतच्छ्रुत्वा विदित्वा च सीता जनकनन्दिनी।
आह रावणमुत्पाट्य राघवो मां नयत्विति १०१
प्रणम्य शिरसा देवीमहमार्यामनिन्दिताम्।
राघवस्य मनोह्लादमभिज्ञानमयाचिषम् १०२
अथ मामब्रवीत्सीता गृह्यतामयमुत्तमः।
मणिर्येन महाबाहू रामस्त्वां बहु मन्यते १०३
इत्युक्त्वा तु वरारोहा मणिप्रवरमुत्तमम्।
प्रायच्छत्परमोद्विग्ना वाचा मां संदिदेश ह १०४
ततस्तस्यै प्रणम्याहं राजपुत्र्यै समाहितः।
प्रदक्षिणं परिक्रामामिहाभ्युद्गतमानसः १०५

आया हूं और पुरुषश्रेष्ठ श्री दशरथपुत्रने यह अंगूठी तुम्हारी पहिचान के लिये दी है। देवि! तुम्हारी क्या आज्ञा है सो मैं जानना चाहता हूं। राम लक्ष्मण के समीप तुम्हें ले जाऊंगा, इस विषय में तुम क्या कहती हो। (९४-१००)

यह सुन और मुझे जान जनकपुत्री बोली कि, रावण का नाश कर राम मुझे यहां से ले जावें। मैंने उस देवि को शिर से प्रणाम कर राम के मन को आह्लादित करनेवाला चिह्न मांगा। तब सीता मुझ से बोली कि, यह उत्तम मणि ले जाओ, जिसे देख राम तुम्हें बहुत मानेंगे। यह कह सीताने वह उत्तम मणि दे दी और बडे उद्वेग से मुझे लौटने की आज्ञा दी। ततः उस राजपुत्री को प्रणाम व प्रदक्षिणा कर यहां लौटने का इरादा किया। (१०१-१०५)

उत्तरं पुनरेवाह निश्चित्य मनसा तदा ।
हनूमन्मम वृत्तान्तं वक्तुमर्हसि राघवे १०६
यथा श्रुत्वैव न चिरात्तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
सुग्रीवसहितौ वीरावुपेयातां तथा कुरु १०७
यदन्यथा भवेदेतद्यौ मासौ जीवितं मम ।
न मां द्रक्ष्यति काकुत्स्थो म्रिये साहमनाथवत् १०८
तच्छ्रुत्वा करुणं वाक्यं क्रोधो मामभ्यवर्तत ।
उत्तरं च मया दृष्टं कार्यशेषमनन्तरम् १०९
ततोऽवर्धत मे कायस्तदा पर्वतसंनिभः ।
युद्धाकाङ्क्षी वनं तस्य विनाशयितुमारभे ११०
तद्भग्नं वनखण्डं तु भ्रान्तत्रस्तमृगद्विजम् ।
प्रतिबुद्ध्य निरीक्षन्ते राक्षस्यो विकृताननाः १११
मां च दृष्ट्वा वने तस्मिन्समागम्य ततस्ततः ।
ताः समभ्यागताः क्षिप्रं रावणायाचचक्षिरे ११२
राजन्वनमिदं दुर्गं तव भग्नं दुरात्मना ।
वानरेण ह्यविज्ञाय तव वीर्यं महाबल ११३

तब जानकी बोली कि, हे हनुमन् ! राम से मेरा सन्देशा ऐसी युक्तिसे कहना कि, जिसे सुनते ही राम-लक्ष्मण सुग्रीवसहित तुरन्त यहां आवें। यदि इस के विपरीत हुआ, तो केवल दो मास का मेरा जीवन शेष है, मैं अनाथवत् मर जाऊंगी और राम मुझे न देख पायेंगे। यह करुण-वाक्य सुन मुझे बडा क्रोध हुआ और मैंने विचारा कि, थोडा कार्य अभी शेष है, उसे भी करता चलूं। ततः मेरा शरीर पर्वततुल्य बढ गया और युद्ध की इच्छा से मैंने रावण का वन नष्ट करना शुरू किया। (१०६-११०)

वन के नष्ट होने पर जाग कर उठी राक्षसियोंने उस वन में मुझे देख रावण से निवेदन किया कि, हे राजन् ! एक दुरात्मा वानरने तुम्हारा बल न जान कर वन नष्ट कर दिया। राजेन्द्र ! इस अनिष्टकारी दुर्बुद्धि के वध

तस्य दुर्बुद्धिना राजंस्तव विप्रियकारिणः ।
वधमाज्ञापय क्षिप्रं यथासौ न पुनर्व्रजेत् ११४
तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रेण विसृष्टा बहुदुर्जयाः ।
राक्षसाः किङ्करा नाम रावणस्य मनोनुगाः ११५
तेषामशीतिसाहस्रं शूलमुद्गरपाणिनाम् ।
मया तस्मिन्वनोद्देशे परिघेण निषूदितम् ११६
तेषां तु हतशिष्टा ये ते गता लघुविक्रमाः ।
निहतं च मया सैन्यं रावणायाचचक्षिरे ११७
ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना चैत्यप्रासादमुत्तमम् ।
तत्रस्थान्राक्षसान्हत्वा शतं स्तम्भेन वै पुनः ११८
ललामभूतो लङ्काया मया विध्वंसितो रुषा ।
ततः प्रहस्तस्य सुतं जम्बुमालिनमादिशत् ११९
राक्षसैर्बहुभिः सार्धं घोररूपैर्भयानकैः ।
तमहं बलसंपन्नं राक्षसं रणकोविदम् १२०
परिघेणातिघोरेण सूदयामि सहानुगम् ।
तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्तु मन्त्रिपुत्रान्महाबलान् १२१

की आज्ञा दीजिये, जिस से वह फिर न आवे। यह सुन रावणने अपने अनुवर्ती किङ्कर नाम दुर्जय राक्षस भेजे। मैंने उन शूलमुद्गरधारी अस्सी सहस्र राक्षसों को उसी वनस्थान में एक परिघ से मार डाला। (१११-११६)

बचे हुओंने रावण से जाकर कहा कि, वह बडी सेना मारी गई। तब मेरे मन में आया कि, चैत्यप्रासाद को नष्ट करूं, सो एक स्तम्भसे वहां के रक्षक राक्षसों को मार लङ्का के उस ललितमंदिर को विध्वस्त कर दिया। ततः रावणने प्रहस्त के पुत्र जम्बुमाली को बहुतसी राक्षससेना के साथ भेजा। उस रणकुशल राक्षस को मैंने अतिघोर परिघ से सेनासहित मार डाला। (११७-१२१)

पदातिबलसंपन्नान्प्रेषयामास रावणः ।
परिघेणैव तान्सर्वान्नयामि यमसादनम् १२२
मन्त्रिपुत्रान्हताञ्छ्रुत्वा समरे लघुविक्रमान् ।
पञ्च सेनाग्रगाञ्छूरान्प्रेषयामास रावणः १२३
तानहं सहसैन्यान्वै सर्वानेवाभ्यसूदयम् ।
ततः पुनर्दशग्रीवः पुत्रमक्षं महाबलम् १२४
बहुभी राक्षसैः सार्धं प्रेषयामास संयुगे ।
तं तु मन्दोदरीपुत्रं कुमारं रणपण्डितम् १२५
सहसा खं समुद्यन्तं पादयोश्च गृहीतवान् ।
तमासीनं शतगुणं भ्रामयित्वा व्यपेषयम् १२६
तमक्षमागतं भग्नं निशम्य स दशाननः ।
ततश्चेन्द्रजितं नाम द्वितीयं रावणः सुतम् १२७
व्यादिदेश सुसंक्रुद्धो बलिनं युद्धदुर्मदम् ।
तच्चाप्यहं बलं सर्वं तं च राक्षसपुङ्गवम् १२८
नष्टौजसं रणे कृत्वा परं हर्षमुपागतः ।
महतापि महाबाहुः प्रत्ययेन महाबलः १२९
प्रहितो रावणेनैव सह वीरैर्मदोद्धतैः ।

यह सुन रावणने महाबली मंत्री के पुत्रों को पैदल सेनाके साथ भेजा। उसी परिघ से उन सब को भी यमालय को पहुंचा दिया। मन्त्री के पुत्रों को मरा हुआ, सुन पांच शूर सेनानियों को रावणने भेजा। उन सब को सेनासमेत मैंने मार डाला। तब रावणने बहुत से राक्षसों के साथ अपने पुत्र अक्ष को भेजा। उस रणकुशल मन्दोदरी के पुत्र के आकाश में उडते हुए के दोनों पैर पकड घुमाकर उसे मार डाला। (१२१-१२६)

अक्षको भी मरा सुन क्रोध में भर रावणने दूसरे पुत्र इंद्रजित् को आज्ञा दी। उस राक्षसपुङ्गव और उस के साथ की सेना को भी रण में पराक्रम-हीन कर मैं बडा प्रसन्न हुआ। उस महाबली को रावणने उत्कट वीरों के साथ बडे विश्वास से भेजा था। सो उसने अपनी सेना को अतमर्दित और

सोऽविषह्यं हि मां बुद्ध्वा स्वसैन्यं चावमर्दितम् १३०
ब्रह्मणोऽस्त्रेण स तु मां प्रबद्ध्वा चातिवेगितः।
रज्जुभिश्चापि बध्नन्ति ततो मां तत्र राक्षसाः १३१
रावणस्य समीपं च गृहीत्वा मामुपागमन्।
दृष्ट्वा संभाषितश्चाहं रावणेन दुरात्मना १३२
पृष्टश्च लङ्कागमनं राक्षसानां च तं वधम्।
तत्सर्वं च रणे तत्र सीतार्थमुपजल्पितम् १३३
तस्यास्तु दर्शनाकाङ्क्षी प्राप्तस्त्वद्भवनं विभो।
मारुतस्यौरसः पुत्रो वानरो हनुमानहम् १३४
रामदूतं च मां विद्धि सुग्रीवसचिवं कपिम्।
सोऽहं दौत्येन रामस्य त्वत्सकाशमिहागतः १३५
शृणु चापि समादेशं यदहं ब्रवीमि ते।
राक्षसेश हरीशस्त्वां वाक्यमाह समाहितम् १३६
सुग्रीवश्च महाभाग स त्वां कौशलमब्रवीत्।
धर्मार्थकामसहितं हितं पथ्यमुवाच ह १३७
वसतो ऋष्यमूके मे पर्वते विपुलद्रुमे।
राघवो रणविक्रान्तो मित्रत्वं समुपागतः १३८

मुझे असह्य जान मुझे ब्रह्मास्त्र में बांध लिया। तदनन्तर राक्षसोंने भी मुझे रस्सियों से बांध लिया और रावण के पास को ले चले। (१२७-१३२)

दुरात्मा रावणने मुझे देख पूछा कि, तुम लङ्का में क्यों आये हो और राक्षसों का वध क्यों किया है? मैंने कहा कि, यह सब कुछ सीता के लिये किया है। सीता के देखने की इच्छा से मैं तुम्हारे भवन में आया था, मैं पवन का औरस पुत्र हनूमान् नाम हूं। मैं राम का दूत और सुग्रीव का मन्त्री हूं और राम का सन्देशा लेकर तुम्हारे पास आया हूं। जो कुछ मैं कहता हूं, सो सुनो। (१३३-१३६)

राक्षसेन्द्र! वानरराजने तुम्हें हितवाक्य कहला भेजा है। सुग्रीवने तुम्हारा कुशल पूछा है और धर्मार्थकामसहित हितकारी पथ्य वचन कहा

तेन मे कथितं राजन्भार्या मे रक्षसा हृता ।
तत्र साहाय्यहेतोर्मे समयं कर्तुमर्हसि १३९
वालिना हृतराज्येन सुग्रीवेण सह प्रभुः ।
चक्रेऽग्निसाक्षिकं सख्यं राघवः सहलक्ष्मणः १४०
तेन वालिनमाहत्य शरेणैकेन संयुगे ।
वानराणां महाराजः कृतः संप्लवतां प्रभुः १४१
तस्य साहाय्यमस्माभिः कार्यं सर्वात्मना त्विह ।
तेन प्रस्थापितस्तुभ्यं समीपमिह धर्मतः १४२
क्षिप्रमानीयतां सीता दीयतां राघवस्य च ।
यावन्न हरयो वीरा विधमन्ति बलं तव १४३
वानराणां प्रभावोऽयं न केन विदितः पुरा ।
देवतानां सकाशं च ये गच्छन्ति निमन्त्रिताः १४४
इति वानरराजस्त्वामाहेत्यभिहितो मया ।
मामैक्षत ततो रुष्टश्चक्षुषा प्रदहन्निव १४५

है । ऋष्यमूक पर्वत पर बसते हुए पराक्रमी राम से मेरी मित्रता हुई। उन्होंने मुझसे कहा कि, राक्षसने हमारी भार्या हर ली है, इस विषय में तुम सहायता की प्रतिज्ञा करो । वालीद्वारा राज्य से निकाले सुग्रीवने अग्नि को साक्षी करके राम-लक्ष्मण से मित्रता कर ली । रामने एक ही बाण से वाली को मार सुग्रीव को वानर-राज बना दिया । (१३९-१४१)

उन राम की सहायता हम लोगों को करनी है । इस से उनका भेजा मैं तुम्हारे समीप आया हूं । पूर्व इस के कि, वानर तुम्हारी सेना को विध्वस्त करें, तुम सीता को शीघ्र ला राम को दे दो । वानरों के प्रभाव को कौन नहीं जानता, वे निमन्त्रित हो, देवताओं तक के पास जाते हैं । यह सुग्रीवने तुम्हें कहला भेजा है । यह सुन रावणने कोपदृष्टि से मेरी ओर देखा । (१४२-१४५)

तेन वध्योऽहमाज्ञप्तो रक्षसा रौद्रकर्मणा ।
मत्प्रभावमविज्ञाय रावणेन दुरात्मना १४६
ततो बिभीषणो नाम तस्य भ्राता महामतिः ।
तेन राक्षसराजश्च याचितो मम कारणात् १४७
नैवं राक्षसशार्दूल त्यज्यतामेष निश्चयः ।
राजशास्त्रव्यपेतो हि मार्गः संलक्ष्यते त्वया १४८
दूतवध्या न दृष्टा हि राजशास्त्रेषु राक्षस ।
दूतेन वेदितव्यं च यथाभिहितवादिना १४९
सुमहत्यपराधेऽपि दूतस्यातुलविक्रम ।
विरूपकरणं दृष्टं न वधोऽस्ति हि शास्त्रतः १५०
बिभीषणेनैवमुक्तो रावणः संदिदेश तान् ।
राक्षसानेतदेवाद्य लाङ्गूलं दह्यतामिति १५१
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा मम पुच्छं समन्ततः ।
वेष्टितं शणवल्कैश्च पट्टैः कार्पासकैस्तथा १५२
राक्षसाः सिद्धसंनाहास्ततस्ते चण्डविक्रमाः ।
तदादीप्यन्त मे पुच्छं हनन्तः काष्ठमुष्टिभिः १५३
बद्धस्य बहुभिः पार्श्वैर्यन्त्रितस्य च राक्षसैः ।
न मे पीडाऽभवत्काचिद्दिदृक्षोर्नगरीं दिवा १५४

मेरे प्रभाव को न जान रावणने मेरे वध की आज्ञा दी। तब उस के भाई बिभीषणने मेरे कारण उस की याचना की कि, राक्षसेन्द्र! इस निश्चय को छोड दो, यह राजनीति के विरुद्ध है। दूत का वध राजशास्त्रों में नहीं देखा जाता, हितवादी दूत को यथार्थ बात कहनी चाहिये। बडे अपराधमें शास्त्रमें दूतका विरूप करना ही लिखा है, न कि वध। (१४६-१५०)

बिभीषण की बात सुन रावणने राक्षसों को आज्ञा दी कि इस की पूंछ जला डालो। यह सुन उन्होंने मेरी पूंछ को फटे चिथडे व सन लपेट दिया। कवचधारी राक्षसोंने तब मेरी पूंछ में आग लगा दी और मुझे दण्डोंसे मारने लगे। बहुत से पाशों से बंधे यन्त्रित हुए मुझे दिनमें नगरी

ततस्ते राक्षसाः शूरा बद्धं मामग्निसंवृतम् ।
अघोषयन्राजमार्गे नगरद्वारमागताः १५५
ततोऽहं सुमहद्रूपं संक्षिप्य पुनरात्मनः ।
विमोचयित्वा तं बन्धं प्रकृतिस्थः स्थितः पुनः १५६
आयसं परिघं गृह्य तानि रक्षांस्यसूदयम् ।
ततस्तन्नगरद्वारं वेगेन प्लुतवानहम् १५७
पुच्छेन च प्रदीप्तेन तां पुरीं साट्टगोपुराम् ।
दहाम्यहमसंभ्रान्तो युगान्ताग्निरिव प्रजाः १५८
विनष्टा जानकी व्यक्तं न ह्यदग्धः प्रदृश्यते ।
लङ्कायाः कश्चिदुद्देशः सर्वो भस्मीकृता पुरी १५९
दहता च मया लङ्कां दग्धा सीता न संशयः ।
रामस्य च महत्कार्यं मयेदं विफलीकृतम् १६०
इति शोकसमाविष्टश्चिन्तामहमुपागतः ।
ततोऽहं वाचमश्रौषं चारणानां शुभाक्षराम् १६१
जानकी न च दग्धेति विस्मयोदन्तभाषिणाम् ।
ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना श्रुत्वा तामद्भुतां गिरम् १६२

देखने की इच्छा से कुछ पीडा न हुई । तब वे राक्षस मुझ अग्नियुक्त को बांध राजमार्ग में घोषणा करते हुए नगरद्वार पर आये । (१५१-१५५)

तब मैंने बडा रूप करके उसे सूक्ष्म कर लिया और उन बन्धनों को तुडा प्रकृतिस्थ हो गया । और लोहे का परिघ ग्रहण कर उन राक्षसों को मार डाला । प्रदीप्त लांगूल से मैंने अटारी और गोपुरवाली उस नगरी को जला डाला । लङ्का के जलने पर मैंने समझा कि, जानकी भी नष्ट हो गई, क्योंकि वहां कोई स्थान अदग्ध नहीं दिखाई पडता था । मैं समझा कि, लङ्का के साथ ही सीता भी जल गई और राम का बडा कार्य विफल हो गया, यह शोक करता हुआ मैं चिन्ता में पड गया । (१५६-१६१)

तदनु मैंने चारणों का यह वचन सुना कि, हमें बडा विस्मय है कि,

अदग्धा जानकीत्येव निमित्तैश्चोपलक्षितम् ।
दीप्यमाने तु लाङ्गूले न मां दहति पावकः १६३
हृदयं च प्रहृष्टं मे वाताः सुरभिगन्धिनः ।
तैर्निमित्तैश्च दृष्टार्थैः कारणैश्च महागुणैः १६४
ऋषिवाक्यैश्च दृष्टार्थैरभवं हृष्टमानसः ।
पुनर्दृष्टा च वैदेही विसृष्टश्च तया पुनः १६५
ततः पर्वतमासाद्य तत्रारिष्टमहं पुनः ।
प्रतिप्लवनमारेभे युष्मद्दर्शनकाङ्क्षया १६६
ततः श्वसनचन्द्रार्कसिद्धगन्धर्वसेवितम् ।
पन्थानमहमाक्रम्य भवतो दृष्टवानिह १६७
राघवस्य प्रसादेन भवतां चैव तेजसा ।
सुग्रीवस्य च कार्यार्थं मया सर्वमनुष्ठितम् १६८
एतत्सर्वं मया तत्र यथावदुपपादितम् ।
तत्र यन्न कृतं शेषं तत्सर्वं क्रियतामिति १६९

इत्यार्षे श्रीमद्रामा० वाल्मी० आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

सीता अक्षत रह गई । उनकी अद्भुत वाणी सुन मैं समझा कि, सीता नहीं जली और मैंने सुशकुन भी देखे । लांगूल का कपडा जल उठने पर भी मैं नहीं जला, मेरा चित्त प्रसन्न हो रहा था, सुगन्ध वायु चल रहा था, इन शकुनों, अन्य कारणों और ऋषिवाक्यों को सुन मेरा मन प्रफुल्ल हो गया और जानकी को फिरसे देख उससे बिदा हुआ । (१६१–१६५)

ततः अरिष्ट पर्वत पर पहुंच मैंने तुम्हारे दर्शनों की इच्छा से लौटना शुरू किया । तदनन्तर पवन, चन्द्र, सूर्य, सिद्ध, गन्धर्वों से सेवित मार्ग को काट मैं तुम्हारे पास आ गया । रामप्रभाव व तुम्हारे तेज से और सुग्रीव के कार्यार्थ मैंने यह सब कुछ किया । यह सब तो कर चुका, अब जो न किया हो, सो तुम करो । (१६६–१६९)

यहाँ अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

एकोनषष्टितमः सर्गः ।

एतदाख्याय तत्सर्वं हनूमान्मारुतात्मजः ।
भूयः समुपचक्राम वचनं वक्तुमुत्तरम् १
सफलो राघवोद्योगः सुग्रीवस्य च संभ्रमः ।
शीलमासाद्य सीताया मम च प्रीणितं मनः २
आर्यायाः सदृशं शीलं सीतायाः प्लवगर्षभाः ।
तपसा धारयेल्लोकान्क्रुद्धा वा निर्दहेदपि ३
सर्वथातिप्रकृष्टोऽसौ रावणो राक्षसेश्वरः ।
यस्य तां स्पृशतो गात्रं तपसा न विनाशितम् ४
न तदग्निशिखा कुर्यात्संस्पृष्टा पाणिना सती ।
जनकस्य सुता कुर्याद्यत्क्रोधकलुषीकृता ५
जाम्बवत्प्रमुखान्सर्वाननुज्ञाप्य महाकपीन् ।
अस्मिन्नेवंगते कार्ये भवतां च निवेदिते ।
न्याय्यं स्म सह वैदेह्या द्रष्टुं तौ पार्थिवात्मजौ ६
अहमेकोऽपि पर्याप्तः साराक्षसगणां पुरीम् ।
तां लङ्कां तरसा हन्तुं रावणं च साराक्षसम् ७

यह सब कह चुकने पर हनुमान् और भी कहने लगा- राम का उद्योग व सुग्रीव का मेल सफल हुआ और सीता के शील से मेरा मन बड़ा प्रसन्न हुआ । सीता तप से लोकों को धारण और क्रोध से उन्हें जला सकती है। रावण भी बड़ा प्रतापी है, हरणसमय सीता के गात्रों को छूने पर उसके तप से वह नष्ट नहीं हो गया, यही आश्चर्य है । क्रोध में भर जो कार्य सीता कर सकती है, हाथ से छुई अग्निशिखा भी वह नहीं कर सकती । (१-५)

अब यह वार्ता तुम से निवेदन करना मैं चाहता हूं कि, जाम्बवान् आदि महाकपियों की आज्ञा ले जानकी को ला राम-लक्ष्मण से मिला दूं । मैं अकेला ही राक्षसोंसहित लङ्का व रावण को मार सकता हूं । फिर

किं पुनः सहितो वीरैर्बलवद्भिः कृतात्मभिः ।
कृतास्त्रैः प्लवगैः शक्तैर्भवद्भिर्विजयैषिभिः ८
अहं तु रावणं युद्धे ससैन्यं सपुरःसरम् ।
सहपुत्रं वधिष्यामि सहोदरयुतं युधि ९
ब्राह्ममस्त्रं च रौद्रं च वायव्यं वारुणं तथा १०
यदि शक्रजितोऽस्त्राणि दुर्निरीक्ष्याणि संयुगे ।
तान्यहं निहनिष्यामि विधमिष्यामि राक्षसान् ११
भवतामभ्यनुज्ञातो विक्रमो मे रुणद्धि तम् ।
मयातुला विसृष्टा हि शैलवृष्टिर्निरन्तरा १२
देवानपि रणे हन्यात्किं पुनस्तान्निशाचरान् ।
भवतामननुज्ञातो विक्रमो मे रुणद्धि माम् १३
सागरोऽप्यतियाद्वेलां मन्दरः प्रचलेदपि ।
न जाम्बवन्तं समरे कम्पयेदरिवाहिनी १४
सर्वराक्षससङ्घानां राक्षसा ये च पूर्वजाः ।
अलमेकोऽपि नाशाय वीरो वालिसुतः कपिः १५
प्लवगस्योरुवेगेन नीलस्य च महात्मनः ।
मन्दरोऽप्यवशीर्येत किं पुनर्युधि राक्षसाः १६

तुम जैसे वीर, बली, कृतास्त्र, विजय की इच्छावाले वानरों के साथ होकर तो कहना ही क्या ? मैं युद्ध में सेना, सेनापति, भाई, पुत्रसहित रावण को मार डालूंगा । जो इन्द्रजित् ब्रह्मास्त्र आदि का युद्ध में प्रयोग करेगा, तोभी उन सब का और राक्षसों का नाश कर दूंगा । मेरा विक्रम आप लोगों की आज्ञा पा, उसे मार सकता है । (६-१२)

मेरी छोडी हुई लगातार अतुल पाषाण की वृष्टि समर में देवताओं का भी नाश कर सकती है, फिर राक्षसों की तो गिनती ही क्या ? परन्तु आप लोगों की अनुज्ञा के विना मैं यह सब नहीं कर सकता हूं । समुद्र अमर्यादित हो जाय, मन्दराचल चलने लगे, पर शत्रुसेना जाम्बवान् को नहीं कंपा सकती । राक्षसयूथ को केवल अङ्गदही नष्ट करने को पर्याप्त

सदेवासुरयक्षेषु गन्धर्वोरगपक्षिषु ।
मैन्दस्य प्रतियोद्धारं शंसत द्विविदस्य वा १७
अश्विपुत्रौ महावेगावेतौ प्लवगसत्तमौ ।
एतयोः प्रतियोद्धारं न पश्यामि रणाजिरे १८
मयैव निहता लङ्का दग्धा भस्मीकृता पुरी ।
राजमार्गेषु सर्वेषु नाम विश्रावितं मया १९
जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः २०
अहं कोसलराजस्य दासः पवनसंभवः ।
हनूमानिति सर्वत्र नाम विश्रावितं मया २१
अशोकवनिकामध्ये रावणस्य दुरात्मनः ।
अधस्ताच्छिंशपामूले साध्वी करुणमास्थिता २२
राक्षसीभिः परिवृता शोकसंतापकर्शिता ।
मेघरेखापरिवृता चन्द्ररेखेव निष्प्रभा २३
अचिन्तयन्ती वैदेही रावणं बलदर्पितम् ।
पतिव्रता च सुश्रोणी अवष्टब्धा च जानकी २४
अनुरक्ता हि वैदेही रामे सर्वात्मना शुभा ।
अनन्यचिन्ता रामेण पौलोमीव पुरन्दरे २५

है । महात्मा नील के ऊरुवेग से मन्दरपर्व भी चूर्ण हो जाय, फिर राक्षसों का क्या कहना ? देवासुर-गन्धर्वादि में भी मैन्द और द्विविद का प्रतिद्वन्द्वी कौन है ? इन दोनों अश्विनीकुमारों के साथ युद्ध में लडनेवाला मुझे दिखाई नहीं पडता । (१३-१८)

मैंने लङ्का जलाई, राक्षस मारे और सर्वत्र राजमार्गों में अपना नाम सब को सुना दिया कि राम से पालित सुग्रीव की जय हो ! मैं राम का दास पवनपुत्र हनुमान् हूं । तदनु दुरात्मा रावण की अशोकवाटिका में शिंशुपाके नीचे बैठी, दुःखी राक्षसियों से घिरी, शोकसन्तापयुक्त, मेघलेखा से परिवृत चन्द्ररेखावत् निष्प्रभ, रावण की पर्वाह न करती, पतिव्रता,

तदेकवासःसंवीता रजोध्वस्ता तथैव च।
सा मया राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः २६
राक्षसीभिर्विरूपाभिर्दृष्टा हि प्रमदावने।
एकवेणीधरा दीना भर्तृचिन्तापरायणा २७
अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमोदये।
रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया २८
कथंचिन्मृगशावाक्षी विश्वासमुपपादिता।
ततः संभाषिता चैव सर्वमर्थं प्रकाशिता २९
रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा प्रीतिमुपागता।
नियतः समुदाचारो भक्तिर्भर्तरि चोत्तमा ३०
यन्न हन्ति दशग्रीवं स महात्मा दशाननः।
निमित्तमात्रं रामस्तु वधे तस्य भविष्यति ३१
सा प्रकृत्यैव तन्वङ्गी तद्वियोगाच्च कर्शिता।
प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गता ३२
एवमास्ते महाभागा सीता शोकपरायणा।
यदत्र प्रतिकर्तव्यं तत्सर्वमुपकल्प्यताम् ३३

इत्यार्षे श्रीमद्रामा० वाल्मी० आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥५९॥

[२५७६]

रावण से कैद की गई, पूरे मन से राम में अनुरक्त, जैसी शची इन्द्र में, तैसी वह राम में अनन्यचित्त, एक वस्त्र पहरे, धूल में लिपटी, राक्षसियोंसे बार बार धमकाई हुई सीता को मैंने देखा था। (१९-२७)

एक वेणी धारे, दीन, पतिकी चिन्ता में मग्न, भूमिशायी, हिमपात के समय में वर्णहीन पद्मिनीसमान, रावण की ओर से निवृत्त, मरने को उद्यत उस मृगनयनी को जैसे तैसे मैंने विश्वास दिलाया। फिर उस को सब अर्थ कहकर समझाया, राम सुग्रीव की मित्रता सुन वह प्रसन्न हुई। सीता का नियताचार और उत्तम पतिभक्ति जो रावण को न मारे, तो वह अवश्य धर्मात्मा है, उसके वधमें

षष्टितमः सर्गः ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वालिसूनुरभाषत ।
अश्विपुत्रौ महावेगौ बलवन्तौ प्लवङ्गमौ १
पितामहवरोत्सेकात्परमं दर्पमास्थितौ ।
अश्विनोर्माननार्थं हि सर्वलोकपितामहः २
सर्वाबध्यत्वमतुलमनयोर्दत्तवान्पुरा ।
वरोत्सेकेन मत्तौ च प्रमथ्य महतीं चमूम् ३
सुराणाममृतं वीरौ पीतवन्तौ महाबलौ ।
एतावेव हि संक्रुद्धौ सवाजिरथकुञ्जराम् ४
लङ्कां नाशयितुं शक्तौ सर्वे तिष्ठन्तु वानराः ।
अहमेकोऽपि पर्याप्तः सराक्षसगणां पुरीम् ५
तां लङ्कां तरसा हन्तुं रावणं च महाबलम् ।
किं पुनः सहितो वीरैर्बलवद्भिः कृतात्मभिः ६

राम तो निमित्तमात्र ही होंगे । सीतास्वभाव से ही कोमलांगी इसपर राम के वियोग से दुबली हो रही है, जैसे प्रतिपदा को पाठ करनेवाले की विद्या । शोकपरायण सीता की यह दशा है, अब जो कुछ कर्तव्य हो वह सब मिलकर करो । (२८-३३)

यहाँ उनसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

हनुमान् का वह भाषण सुन लेने पर वाली के सुपुत्र अङ्गदने कहा- ये मैंद तथा द्विविद अति वेगवान्, बलिष्ठ और अश्विनी-कुमार से उत्पन्न हैं । ब्रह्माजी के दिए वरों के परिणामस्वरूप इन्हें बडा घमंड हो चुका है । अश्विनीकुमारों का सम्मान तथा गौरव करने के लिए सर्वाधिपति ब्रह्माजीने इन्हें वर दिया था कि, 'तुम्हें किसी से भी कष्ट नहीं पहुँचेगा' । इस श्रेष्ठ वरदान के कारण अति मत-वाले बनकर तथा प्रचंड सेना का पराभव करके इन बलिष्ठ वानरोंने देवों का अमृत पी लिया था । अन्य सभी वानर भले ही चुपचाप बैठे रहें, अगर ये दो वानर आगबबूले हो जायँ तो अश्व, रथ तथा हाथीसह

कृतास्त्रैः प्लवगैः शक्तैर्भवद्भिर्विजयैषिभिः ।
वायुसूनोर्बलेनैव दग्धा लङ्केति नः श्रुतम् ७
दृष्टा देवी न चानीता इति तत्र निवेदितुम् ।
न युक्तमिव पश्यामि भवद्भिः ख्यातपौरुषैः ८
न हि वः प्लवने कश्चिन्नापि कश्चित्पराक्रमे ।
तुल्यः सामरदैत्येषु लोकेषु हरिसत्तमाः ९
जित्वा लङ्कां सरक्षौघां हत्वा तं रावणं रणे ।
सीतामादाय गच्छामः सिद्धार्था हृष्टमानसाः १०
तेष्वेवं हतशेषेषु राक्षसेषु हनूमता ।
किमन्यदत्र कर्तव्यं गृहीत्वा याम जानकीम् ११
रामलक्ष्मणयोर्मध्ये न्यस्याम जनकात्मजाम् ।
किं व्यलीकैस्तु तान्सर्वान्वानरान्वानरर्षभान् १२
वयमेव हि गत्वा तान्हत्वा राक्षसपुङ्गवान् ।
राघवं द्रष्टुमर्हामः सुग्रीवं सहलक्ष्मणम् १३

विद्यमान लंका का विध्वंस करने में पर्याप्त हैं । मैं अकेला ही राक्षसोंसहित लङ्का और महाबली रावण को मार सकता हूं, फिर वीर, कृतार्थ, विजय-कांक्षी तुम लोगों के साथ क्या कहना ? (१-७)

हम सबने सुन लिया है कि, हनुमान् के बल से लङ्का दग्ध हो गई। हनुमान् ने सीता को देख लिया, पर वह उसे लाया नहीं, यह बात रामके समीप जाकर कहना उचित नहीं होगा । हम लोगों के समान प्लवन और पराक्रममें तीनों लोकोंमें तथा देवताओंमें भी कोई नहीं है । लङ्काको जीत रावण को मार सीता को ले सिद्धार्थ होकर ही हम चलेंगे । हनुमान् से वीर राक्षसों के मारे जाने पर अब और क्या करना शेष है ? चलो सीताको लेकर चलें और रामलक्ष्मणके बीच में उसे बैठा दें । शेष वानरों को क्यों कष्ट दें ? हम ही जाकर उन राक्षसों को मार सुग्रीव और राम-लक्ष्मण को देख सकते हैं । (७-१३)

तमेवं कृतसंकल्पं जाम्बवान्हरिसत्तमः ।
उवाच परमप्रीतो वाक्यमर्थवदर्थवित् १४
नैषा बुद्धिर्महाबुद्धे यद्ब्रवीषि महाकपे ।
विचेतुं वयमाज्ञप्ता दक्षिणां दिशमुत्तमाम् १५
नानेतुं कपिराजेन नैव रामेण धीमता ।
कथंचिन्निर्जितां सीतामस्माभिर्नाभिरोचयेत् १६
राघवो नृपशार्दूलः कुलं व्यपदिशन्स्वकम् ।
प्रतिज्ञाय स्वयं राजा सीताविजयमग्रतः १७
सर्वेषां कपिमुख्यानां कथं मिथ्या करिष्यति ।
विफलं कर्म च कृतं भवेत्तुष्टिर्न तस्य च १८
वृथा च दर्शितं वीर्यं भवेद्वानरपुङ्गवाः ।
तस्माद्गच्छाम वै सर्वे यत्र रामः सलक्ष्मणः ।
सुग्रीवश्च महातेजाः कार्यस्यास्य निवेदने १९
न तावदेषा मतिरक्षमा नो यथा भवान्पश्यति राजपुत्र ।
यथा तु रामस्य मतिर्निविष्टा तथा भवान्पश्यतु कार्यसिद्धिम् २०

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥६०॥

[२५९६]

ऐसे सङ्कल्पवाले अङ्गद से अर्थवित् जाम्बवान् वाणी बोला– हे महाकपे! जो तुम कहते हो, यह बुद्धि नहीं है, क्योंकि हम तो दक्षिण दिशा ढूंढने को ही भेजे गए हैं। न सुग्रीव और न राम को सीता का हमारे द्वारा ले जाया जाना पसन्द होगा। क्योंकि नृपशार्दूल राघवने स्वयं सीताके विजय की प्रतिज्ञा की है। सब वानरश्रेष्ठों के सामने की हुई प्रतिज्ञाको वह कैसे मिथ्या करेंगे? यदि उनकी तुष्टि न हुई, तो किया हुआ कर्म और बल-प्रदर्शन विफल होगा। सो हम सब रामलक्ष्मण और सुग्रीव के पास चल कार्यका निवेदन करें। जो तुम कहते हो ठीक है, पर रामकी मतिके अनुकूल कार्य करना श्रेष्ठ होगा, अतः वैसा ही करना चाहिए। (१४-२०)

यहाँ साठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

एकषष्टितमः सर्गः ।

ततो जाम्बवतो वाक्यमगृह्णन्त वनौकसः ।
अङ्गदप्रमुखा वीरा हनूमांश्च महाकपिः १
प्रीतिमन्तस्ततः सर्वे वायुपुत्रपुरःसराः ।
महेन्द्राग्रात्समुत्पत्य पुप्लुवुः प्लवगर्षभाः २
मेरुमन्दरसंकाशा मत्ता इव महागजाः ।
छादयन्त इवाकाशं महाकाया महाबलाः ३
सभाज्यमानं भूतैस्तमात्मवन्तं महाबलम् ।
हनूमन्तं महावेगं वहन्त इव दृष्टिभिः ४
राघवे चार्थनिर्वृत्तिं कर्तुं च परमं यशः ।
समाधाय समृद्धार्थाः कर्मसिद्धिभिरुन्नताः ५
प्रियाख्यानोन्मुखाः सर्वे सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।
सर्वे रामप्रतीकारे निश्चितार्था मनस्विनः ६
प्लवमानाः खमाप्लुत्य ततस्ते काननौकसः ।
नन्दनोपममासेदुर्वनं द्रुमशतायुतम् ७
यत्तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम् ।
अधृष्यं सर्वभूतानां सर्वभूतमनोहरम् ८

तब अङ्गदादि वानरों और हनुमान् ने जाम्बवान् की बात मान ली और प्रसन्न हो मारुति को आगे कर महेंद्रपर्वत के अग्रभाग से उछल आगे को बढे । मेरु और मन्दरपर्वत तुल्य मत्त महागजों के समान वे आकाश को आच्छादित करते चले । और प्राणियों से प्रशंसित हनुमान् को वे मानों आंखों पर उठाये लिए जाते थे। कार्यसिद्धि से उन्नतमनवाले सिद्धार्थ हो सूचना देने को राम के निकट चले । (१-५)

सब वानर प्रिय संवाद सुनाने को उद्यत, युद्धाभिलाषी और राम के प्रतिकार का निश्चय किए हुए थे । तब वे आकाश में उडते हुए नन्दनतुल्य द्रुमलताओं से युक्त एक बन में पहुंचे, जो मधुवननाम का प्राणियों से

यद्रक्षति महावीरः सदा दधिमुखः कपिः ।
मातुलः कपिमुख्यस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ९
ते तद्वनमुपागम्य बभूवुः परमोत्कटाः ।
वानरा वानरेन्द्रस्य मनःकान्तं महावनम् १०
ततस्ते वानरा हृष्टा दृष्ट्वा मधुवनं महत् ।
कुमारमभ्ययाचन्त मधूनि मधुपिङ्गलाः ११
ततः कुमारस्तान्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखान्कपीन् ।
अनुमान्य ददौ तेषां निसर्गं मधुभक्षणे १२
ते निसृष्टाः कुमारेण धीमता वालिसूनुना ।
हरयः समपद्यन्त द्रुमान्मधुकराकुलान् १३
भक्षयन्तः सुगन्धीनि मूलानि च फलानि च ।
जग्मुः प्रहर्षं ते सर्वे बभूवुश्च मदोत्कटाः १४
ततश्चानुमताः सर्वे सुसंहृष्टा वनौकसः ।
मुदिताश्च ततस्ते च प्रनृत्यन्ति ततस्ततः १५
गायन्ति केचित्प्रहसन्ति केचिन्नृत्यन्ति केचित्प्रणमन्ति केचित् ।
पठन्ति केचित्प्रचरन्ति केचित्प्लवन्ति केचित्प्रलपन्ति केचित् १६

अदृष्य बडा मनोहर सुग्रीव का वन था । और जिस की सुग्रीव का मामा महाबली दधिमुख रक्षा किया करता था । सुग्रीव के मनोरम उपवन में पहुंच वे बडे उत्कट हो गए । (६-१०)

मधुवन को देख हर्षित हुए उन्होंने मधु खाने की अङ्गद से याचना की । तब अङ्गदने जाम्बवान् प्रभृति वानरों का आदर कर उन्हें मधुभक्षण की आज्ञा दे दी । धीमान् अङ्गद से आज्ञप्त वानर भ्रमराच्छादित वृक्षोंपर चढ गए और सुगन्धित मूलफलों को खाते हुए बडे प्रसन्न हुए । फिर सब एकमत तथा आनन्दित हो बडे हर्ष से इधर उधर नाचने लगे । (११-१५)

कुछ लोग गानेबजाने में प्रवृत्त हुए, तो कुछ हँसने लगे, कोई नाचने लगे तो कोई नमन करने लगे, कोई पढ रहे थे, तो कोई घूम रहे थे, कुछ

परस्परं केचिदुपाश्रयन्ति परस्परं कोंचिदतिब्रुवन्ति ।
द्रुमाद्द्रुमं केचिदभिद्रवन्ति क्षितौ नगाग्रान्निपतन्ति केचित् १७
महीतलात्केचिदुदीर्णवेगा महाद्रुमाग्राण्यभिसंपतन्ति ।
गायन्तमन्यः प्रहसन्नुपैति रुदन्तमन्यः प्ररुदन्नुपैति १८
तुदन्तमन्यः प्रणुदन्नुपैति समाकुलं तत्कपिसैन्यमासीत् ।
न चात्र कश्चिन्न बभूव मत्तो न चात्र कश्चिन्न बभूव दृप्तः १९
ततो वनं तत्परिभक्ष्यमाणं द्रुमांश्च विध्वंसितपत्रपुष्पान् ।
समीक्ष्य कोपाद्दधिवक्त्रनामा निवारयामास कपिः कपींस्तान् २०
स तैः प्रबुद्धैः परिभर्त्स्यमानो वनस्य गोप्ता हरिवृद्धवीरः ।
चकार भूयो मतिमुग्रतेजा वनस्य रक्षां प्रति वानरेभ्यः २१

कूदने लगे, तो कुछ आपस में बात चीत करने लगे । कुछ एक दूसरे के निकट जाने लगे, तो कुछ वार्तालापमें परस्पर होड करने लगे । कुछ वानर इस पेडपर से उस पेडपर कूदने लगे, तो कुछ पेड के अगले भाग से जमीनपर गिरने लगे और कुछ अति वेगवाले वानर भूमिपर से बडे बडे पेडों के शिखरोंपर उडान लेने लगे । जब कोई गाने लगा, तो दूसरा हँसते हँसते उसके निकट आ रहा था और यदि कोई रोने लगता, तो दूसरा भी दिल्लगी के लिए बिलखते उसके पास चला जाता, अगर कोई नोंचने या मरोडने लगता, तो दूसरा भी वैसे ही करने के लिए उस के समीप चला जाता । इस भाँति समूची वानरसेना में एक ही खलबली मच गयी थी। उस सेना में ऐसा एक भी वानर न पाया जाता था, जो मतवाला बना न हो या जिसे अपनी शक्ति के बारे में घमंड प्रतीत न हो । (१६-१९)

इस तरह वहाँपर इकट्ठे हुए वानर उस वन में उपलब्ध वस्तुजात को यथेष्ट सेवन कर रहे हैं । पेडोंपर पाई जानेवाली पत्तियाँ एवं फूल धूल में मिलाए जा रहे हैं, यह दृश्य देख चुकनेपर दधिमुख नामवाला वानर क्रोध में आकर उन वानरों को वहाँ से हटाने लगा । पर वे मधुसेवन से मतवाले बने वानर उल्टे उसी को डाँटने लगे । उग्र तेजवाला तथा बूढा वह वीर वानर, जो वन की रक्षा कर करने के लिए नियुक्त हुआ था, मन

उवाच कांश्चित्परुषाण्यभीतमसक्तमन्यांश्च तलैर्जघान ।
समेत्य कैश्चित्कलहं चकार तथैव साम्नोपजगाम कांश्चित् २२
स तैर्मदादप्रतिवार्यवेगैर्बलाच्च तेन प्रतिवार्यमाणैः ।
प्रधर्षणे त्यक्तभयैः समेत्य प्रकृष्यते चाप्यनवेक्ष्य दोषम् २३
नखैस्तुदन्तो दशनैर्दशन्तस्तलैश्च पादैश्च समापयन्तः ।
मदात्कपिं ते कपयः समन्तान्महावनं निर्विषयं च चक्रुः २४

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदि० सुन्दरकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥६१॥[२६२०]

द्विषष्टितमः सर्गः ।

तानुवाच हरिश्रेष्ठो हनूमान्वानरर्षभः ।
अव्यग्रमनसो यूयं मधु सेवत वानराः १

में दृढनिश्चपूर्वक सोचने लगा कि, इस मधुवन की रक्षा उन वानरों के आक्रमण से अवश्यमेव करनी चाहिए । निडर बन वह कुछ वानरों से तीखे वचन कहने लगा । तनिक भी उपेक्षा न करके वह कुछ वानरों को थप्पड मारने लगा तथा कई वानरों के निकट जाकर वह झगडे करने लगा । कुछ ऐसे भी थे कि जिन से वह सामोपचारपूर्वक बातचीत करने लगा । (२०-२२)

पर चूँकि वानर अतीव मतवाले बन चुके थे, इसलिए उन की क्रीडाएँ रोकना असंभव हुआ, तथा वे अपने विरुद्ध कार्य करनेवालों और राह में रोडे अटकानेवालों पर टूट पडने में लेशमात्र भी भय का अनुभव न करते थे । वह संरक्षक दधिमुख वानर अपनी शक्ति के सहारे उन वानरों को हटाने लगा । तब तनिक भी न सोचते हुए वे सभी वानर उल्टे इकट्ठे हो, उसे खींचने लगे । नाखूनों से उसे नोचने लगे और कोई कोई तो उसे दाँतों से काटकर मुट्ठियों एवं तलुओं से पीटने लगे । वह मानों निचेष्टसा हो गया । इस तरह नशा चढने के कारण उन वानरोंने उस वनमें एक भी वस्तु उपभोग करने योग्य दशा में शेष नहीं छोड दी । (२३-२४)

यहाँ इकसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

तब हरिश्रेष्ठ हनुमान् उन से बोला कि हे वानरों ! तुम निश्चिन्त मन

अहमावर्जयिष्यामि युष्माकं परिपन्थिनः।
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं हरीणां प्रवरोऽङ्गदः २
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पिबन्तु हरयो मधु।
अवश्यं कृतकार्यस्य वाक्यं हनुमतो मया ३
अकार्यमपि कर्तव्यं किमङ्ग पुनरीदृशम्।
अङ्गदस्य मुखाच्छ्रुत्वा वचनं वानरर्षभाः ४
साधुसाध्विति संहृष्टा वानराः प्रत्यपूजयन्।
पूजयित्वाङ्गदं सर्वे वानरा वानरर्षभम् ५
जग्मुर्मधुवनं यत्र नदीवेग इव द्रुमम्।
ते प्रविष्टा मधुवनं पालानाक्रम्य शक्तितः ६
अतिसर्गाच्च पटवो दृष्ट्वा श्रुत्वा च मैथिलीम्।
पपुः सर्वे मधु तदा रसवत्फलमाददुः ७
उत्पत्य च ततः सर्वे वनपालान्समागतान्।
ते ताडयन्तः शतशः सक्ता मधुवने तदा ८
मधूनि द्रोणमात्राणि बाहुभिः परिगृह्य ते।
पिबन्ति कपयः केचित्सङ्घशस्तत्र हृष्टवत् ९

हो मधुपान करो, तुम्हारे रोकनेवाले का मैं निवारण करूंगा। हनुमान् का वाक्य सुन प्रसन्न हो अङ्गद बोला कि, वानर मधु पीवें, कृतकार्य हुए हनुमान् का वचन अकार्य होनेपर भी मुझे मानना चाहिए, इस तरह के वचनों का तो कहना ही क्या? अंगद की बात सुन वानर साधु साधु कह उस की पूजा करने लगे और नदीवेग के समान मधुवन में पहुंचे। (१-६)

वन में प्रविष्ट हो रक्षकों को पकड जानकी को देखे सुने वानर मधु पी पी मधुर फल खाने लगे। उस समय जो रक्षक आए, उनको कूद कूद सब वानरोंने मारा, बहुत से वानर अंजलियों में मधु पीते थे और कोई कोई आपस में मारपीट करते थे। कोई कोई मधु पीकर लडते झगडते और कोई कोई मधु के छातों से आपस में मारते थे। बहुत से वृक्षों के नीचे डाल पकड झूलते थे, फिर सब के सब अति मदमत्त हो, वृक्षों के

घ्नन्तिं स्म सहिताः सर्वे भक्षयन्ति तथापरे।
केचित्पीत्वापविध्यन्ति मधूनि मधुपिङ्गलाः १०
मधूच्छिष्टेन केचिच्च जघ्नुरन्योन्यमुत्कटाः।
अपरे वृक्षमूलेषु शाखा गृह्य व्यवस्थिताः ११
अत्यर्थं च मदग्लानाः पर्णान्यास्तीर्य शेरते।
उन्मत्तवेगाः प्लवगा मधुमत्ताश्च हृष्टवत् १२
क्षिपन्त्यपि तथान्योन्यं स्खलन्ति च तथापरे।
केचित्क्ष्वेडान्प्रकुर्वन्ति केचित्कूजन्ति हृष्टवत् १३
हरयो मधुना मत्ताः केचित्सुप्ता महीतले।
धृष्टाः केचिद्धसन्त्यन्ये केचित्कुर्वन्ति चेतरत् १४
कृत्वा केचिद्धदन्त्यन्ये केचिद्बुध्यन्ति चेतरत्। १५
येऽप्यत्र मधुपालाः स्युः प्रेष्या दधिमुखस्य तु।
तेऽपि तैर्वानरैर्भीमैः प्रतिषिद्धा दिशो गताः १६
जानुभिश्च प्रघृष्टाश्च देवमार्गं च दर्शिताः।
अब्रुवन्परमोद्विग्ना गत्वा दधिमुखं वचः १७
हनूमता दत्तवरैर्हतं मधुवनं बलात्।
वयं च जानुभिर्घृष्टा देवमार्गं च दर्शिताः १८

पत्ते बिछा बिछा सोने लगे, फिर मदवेग से एक दूसरे के ऊपर गिरते, कोई कोई मतवालापन दिखाते, कोई कोई हर्षित हो पक्षियोंकेसा शब्द करते, कोई कोई मधुमत्त हो महीतल में पड सो गए, कोई धृष्टता से बार बार हंसते, कोई और ही कुछ करते, कोई कुछ करते, कोई कुछ कहते, कोई कुछ मानते। (७-१५)

जो दधिमुख के वनरक्षक थे, वानरोंने उन्हें इधर उधर भगा दिया, किसी को जांघ से रगडा, बहुतसों को आकाश में फेंक दिया, इस से वे बडे उद्विग्न हो दधिमुख के पास जाकर बोले कि, हनुमान् के कहने से वानरोंने जबदस्ती मधुवन विध्वंस कर दिया और हम लोगों को जंघाओं

तदा दधिमुखः क्रुद्धो वनपस्तत्र वानरः ।
हतं मधुवनं दृष्ट्वा सान्त्वयामास तान्हरीन् १९
एतागच्छत गच्छामो वानरानतिदर्पितान् ।
बलेनावारयिष्यामि प्रभुञ्जानान्मधूत्तमम् २०
श्रुत्वा दधिमुखस्येदं वचनं वानरर्षभाः ।
पुनर्वीरा मधुवनं तेनैव सहिता ययुः २१
मध्ये चैषां दधिमुखः सुप्रगृह्य महातरुम् ।
समभ्यधावन्वेगेन सर्वे ते च प्लवङ्गमाः २२
ते शिलाः पादपांश्चैव पाषाणानपि वानराः ।
गृहीत्वाभ्यागमन्क्रुद्धा यत्र ते कपिकुञ्जराः २३
बलान्निवारयन्तश्च आसेदुर्हरयो हरीन् ।
संदष्टोष्ठपुटाः क्रुद्धा भर्त्सयन्तो मुहुर्मुहुः २४
अथ दृष्ट्वा दधिमुखं क्रुद्धं वानरपुङ्गवाः ।
अभ्यधावन्त वेगेन हनुमत्प्रमुखांस्तदा २५
सवृक्षं तं महाबाहुमापतन्तं महाबलम् ।
वेगवन्तं जिजग्राह बाहुभ्यां कुपितोऽङ्गदः २६
मदान्धो न कृपां चक्रे आर्यकोऽयं ममेति सः ।
अथैनं निष्पिपेषाशु वेगेन वसुधातले २७

से मार आकाश को फेंक दिया । तब वन को उजडा देख क्रुद्ध हुए दधिमुखने उन वानरों को समझाया और कहा, यहां आओ, चलो बलसे मधु खाते अतिदर्पित वानरों को रोकेंगे । दधिमुख का वचन सुन वे वानर फिर उस के साथ मधुवन में पहुंचे । दधिमुख वृक्ष उखाड दौडा, उस के पीछे वेग से वे वानर भी गये । शिलावृक्ष पाषाणों को ले ले क्रुद्ध हुए वे वहां पहुंचे, जहां वानर थे और बलात् सब वानरों को धमकाते दांत पीस पीस क्रोध कर रोकने लगे । (१६-२४)

तब क्रुद्ध दधिमुख को देख हनुमान् आदि वानर दौडे । वृक्ष लिये दधिमुख को आता देख अङ्गदने क्रोध कर दौड कर पकड लिया । मदान्ध

स भग्नबाहूरुमुखो विह्वलः शोणितोक्षितः।
प्रमुमोह महावीरो मुहूर्तं कपिकुञ्जरः २८

स कथंचिद्विमुक्तस्तैर्वानरैर्वानरर्षभः।
उवाचैकान्तमागत्य स्वान्भृत्यान्समुपागतान् २९

एतागच्छत गच्छामो भर्ता नो यत्र वानरः।
सुग्रीवो विपुलग्रीवः सह रामेण तिष्ठति ३०

सर्वं चैवाङ्गदे दोषं श्रावयिष्याम पार्थिवे।
अमर्षी वचनं श्रुत्वा घातयिष्यति वानरान् ३१

इष्टं मधुवनं ह्येतत्सुग्रीवस्य महात्मनः।
पितृपैतामहं दिव्यं देवैरपि दुरासदम् ३२

स वानरानिमान्सर्वान्मधुलुब्धान्गतायुषः।
घातयिष्यति दण्डेन सुग्रीवः ससुहृज्जनान् ३३

वध्या ह्येते दुरात्मानो नृपाज्ञापरिपन्थिनः।
अमर्षप्रभवो रोषः सफलो मे भविष्यति ३४

हो, पिताके मामा पर कुछ कृपा न की और उसे जोर से पृथ्वी में पटक दिया। वह बाहू आदि टूटा हुआ विह्वल हो, कुछ देर के लिये मोहित हो गया। (२५-२८)

उन से येनकेन प्रकार से छुटकारा पा, वह एकान्तमें आ अपने नौकरोंसे बोला कि, चलो हम सब वहाँ चलें, जहां रामसहित सुग्रीव बैठे हैं। वहां चल सारा दोष अगन्द का ही बताऊंगा, असहिष्णु सुग्रीव वचन सुन इन वानरों को मार डालेंगे। यह मधुवन जो बापदादों का लगाया हुआ, दिव्य और देवताओं को भी अधृष्य है, महात्मा सुग्रीव को बडा प्यारा है। सुग्रीव इन मधुलोलुप वानरों को इष्टमित्रोंसहित दंड दे मार डालेंगे। ये दुरात्मा राजाज्ञा का अनादर करनेवाले वध्य हैं, हमारा गम खाना सफल हो जायगा। (२९-३४)

एवमुक्त्वा दधिमुखो वनपालान्महाबलः।
जगाम सहसोत्पत्य वनपालैः समन्वितः ३५
निमेषान्तरमात्रेण स हि प्राप्तो वनालयः।
सहस्रांशुसुतो धीमान्सुग्रीवो यत्र वानरः ३६
रामं च लक्ष्मणं चैव दृष्ट्वा सुग्रीवमेव च।
समप्रतिष्ठां जगतीमाकाशान्निपपात ह ३७
स निपत्य महावीरः सर्वैस्तैः परिवारितः।
हरिर्दधिमुखः पालैः पालानां परमेश्वरः ३८
स दीनवदनो भूत्वा कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्।
सुग्रीवस्याशु तौ मूर्ध्ना चरणौ प्रत्यपीडयत् ३९

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः॥६२॥

त्रिषष्टितमः सर्गः। [२६५९]

ततो मूर्ध्ना निपतितं वानरं वानरर्षभः।
दृष्ट्वोद्विग्नहृदयो वाक्यमेतदुवाच ह १
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कस्मात्त्वं पादयोः पतितो मम।
अभयं ते प्रदास्यामि सत्यमेवाभिधीयताम् २

यह कह दधिमुख वनपालों को साथ ले झटपट सुग्रीव के पास गया। पलक मारते वह वन में रहनेवाला वहां पहुंच गया, जहां सुग्रीव थे। राम लक्ष्मण व सुग्रीव को देख वह आकाशसे पृथ्वी पर उतरा। वनरक्षकों के स्वामी दधिमुखने सब वानरों के साथ उतर उदास हो शिर पर हाथ जोडे अंजलि किये सुग्रीव के चरणों पर मस्तक धर दिया। (३५-३९)

यहाँ बासठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

दधिमुख को चरणों पर गिरता देख वानरश्रेष्ठ सुग्रीव उद्विग्न हो बोला— उठो उठो, चरणों पर क्यों गिरते हो, तुम्हें अभयदान देता हूं। बात क्या

किं संभ्रमाद्धितं कृत्स्नं ब्रूहि यद्वक्तुमर्हसि ।
कच्चिन्मधुवने स्वस्ति श्रोतुमिच्छामि वानर ३
स समाश्वासितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना ।
उत्थाय स महाप्राज्ञो वाक्यं दधिमुखोऽब्रवीत् ४
नैवर्क्षजरसा राजन्न त्वया न च वालिना ।
वनं निसृष्टपूर्वं ते नाशितं तत्तु वानरैः ५
न्यवारयमहं सर्वान्सहैभिर्वनचारिभिः ।
अचिन्तयित्वा मां हृष्टा भक्षयन्ति पिबन्ति च ६
एभिः प्रधर्षणायां च वारितं वनपालकैः ।
मामप्यचिन्तयन्देव भक्षयन्ति वनौकसः ७
शिष्टमत्रापविध्यन्ति भक्षयन्ति तथापरे ।
निवार्यमाणास्ते सर्वे भ्रुकुटिं दर्शयन्ति हि ८
इमे हि संरब्धतरास्तदा तैः संप्रधर्षिताः ।
निवार्यन्ते वनात्तस्मात्क्रुद्धैर्वानरपुङ्गवैः ९
ततस्तैर्बहुभिर्वीरैर्वानरैर्वानरर्षभाः ।
संरक्तनयनैः क्रोधाद्धरयः संप्रधर्षिताः १०
पाणिभिर्निहताः केचित्केचिज्जानुभिराहताः ।
प्रकृष्टाश्च तदा कामं देवमार्गं च दर्शिताः ११

है, सो कहो । किस भीति से तुम यहाँ आये हो ? जो कुछ हितकर हो सो मुझे कहो । मधुवनमें सब कुछ ठीक है ना ? यह सब मुझे कहो । (१-३)

सुग्रीव से इस प्रकार विश्वासित उठकर दधिमुख बोला- हे राजन् ! जो बन ऋक्षराजा, तुम और वालीने नहीं भोगा, सर्वदा से रक्षित वह वन वानरोंने खा डाला । इन रक्षक वानरों से प्रधर्षित वे वानर इनकी कुछ चिन्ता न कर के वहां मधु खा पी रहे हैं । फलों को खा उच्छिष्ट को इधर-उधर फेंक रहे हैं और रोकने पर भौंहें दिखाते हैं । क्रोध में भर जब इन्होंने रोका, तो इनको वन से निवारण कर दिया और क्रोध से लाल आंख कर इनको मारा पीटा । बहुतसों को हाथों से, किन्हीं को जानुओंसे

एवमेते हताः शूरास्त्वयि तिष्ठति भर्तरि।
कृत्स्नं मधुवनं चैव प्रकामं तैश्च भक्ष्यते १२
एवं विज्ञाप्यमानं तं सुग्रीवं वानरर्षभम्।
अपृच्छत्तं महाप्राज्ञो लक्ष्मणः परवीरहा १३
किमयं वानरो राजन्वनपः प्रत्युपस्थितः।
किं चार्थमभिनिर्दिश्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत् १४
एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना।
लक्ष्मणं प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः १५
आर्य लक्ष्मण संप्राह वीरो दधिमुखः कपिः।
अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्भक्षितं मधु वानरैः १६
नैषामकृतकार्याणामीदृशः स्याद्व्यतिक्रमः।
वनं यदभिपन्नास्ते साधितं कर्म तद्ध्रुवम् १७
वारयन्तो भृशं प्राप्ताः पाला जानुभिराहताः।
तथा न गणितश्चायं कपिर्दधिमुखो बली १८
पतिर्मम वनस्यायमस्माभिः स्थापितः स्वयम्।
दृष्ट्वा देवीं न संदेहो न चान्येन हनूमता १९

मारा और उठा उठा कर फेंक दिया। तुम स्वामी के होते, ये शूर मारे गये और सारा वन वे यथारुचि खा रहे हैं। (४-१२)

इस प्रकार विज्ञापित सुग्रीव से महाप्राज्ञ लक्ष्मण पूछने लगे। राजन्! क्या यह किसी वन का रक्षक वानर आया है और किस प्रयोजन से दुःखित हो कह रहा है! लक्ष्मण के इस प्रकार पूछने पर वाक्यविशारद सुग्रीव बोला- आर्य! दधिमुख कहता है कि, अंगद प्रमुख वानरोंने मधु-वन खा डाला। अकृतकृत्य हुए इस प्रकार का व्यतिक्रम वे न करते। उन्होंने सारा वन धर्षित कर दिया, सो उपयुक्त ही है। उन का निवारण करने गये वनपालों को उन्होंने ताडन किया और नियुक्त रक्षक दधिमुख को भी उन्होंने न माना। (१३-१९)

न ह्यन्यः साधने हेतुः कर्मणोऽस्य हनूमतः ।
कार्यसिद्धिर्हनुमति मतिश्च हरिपुङ्गवे २०
व्यवसायश्च वीर्यं च श्रुतं चापि प्रतिष्ठितम् ।
जाम्बवान्यत्र नेता स्यादङ्गदश्च महाबलः २१
हनूमांश्चाप्यधिष्ठाता न तत्र गतिरन्यथा ।
अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्हतं मधुवनं किल २२
विचित्य दक्षिणामाशामागतैर्हरिपुङ्गवैः ।
आगतैश्च प्रहृष्टं तद्यथा मधुवनं हि तैः २३
धर्षितं च वनं कृत्स्नमुपयुक्तं तु वानरैः ।
पातिता वनपालास्ते तदा जानुभिराहताः २४
एतदर्थमयं प्राप्तो वक्तुं मधुरवागिह ।
नाम्ना दधिमुखो नाम हरिः प्रख्यातविक्रमः २५
दृष्टा सीता महाबाहो सौमित्रे पश्य तत्त्वतः ।
अभिगम्य यथा सर्वे पिबन्ति मधु वानराः २६
न चाप्यदृष्ट्वा वैदेहीं विश्रुताः पुरुषर्षभ ।
वनं दत्तवरं दिव्यं धर्षयेयुर्वनौकसः २७

और कोई नहीं किंतु हनुमान् सीता देख आया है, इसमें सन्देह नहीं। इस कर्म के साधन में हनुमान् से अन्य और कोई कारण नहीं है। हनुमान् में कार्यसिद्धि और बुद्धि है, व्यवसाय, वीर्य और पांडित्य यह सब उस में हैं। जिनके प्रेरक जाम्बवान् और अङ्गद हैं और हनुमान् अधिष्ठाता है, उन की गति अन्यथा नहीं हो सकती। अंगद-प्रमुख वीरोंने मधुवन नष्ट कर दिया है और रोकनेपर इन रक्षकों को जंघाओं से मारा है। इस निमित्त यह दधिमुख मुझे सूचना देने आया है। सो सौमित्रे! आप निश्चय जानिये कि, वानर सीता को देख आए, जिस से वे सब वहां जा मधु पी रहे हैं। क्योंकि विना जानकी को देखे ये वानररक्षित मधुवन न उजाड़ते। (२०-२७)

ततः प्रहृष्टो धर्मात्मा लक्ष्मणः सहराघवः।
श्रुत्वा कर्णसुखां वाणीं सुग्रीववदनाच्युताम् ॥
प्राहृष्यत भृशं रामो लक्ष्मणश्च महायशाः २८
श्रुत्वा दधिमुखस्यैवं सुग्रीवस्तु प्रहृष्य च।
वनपालं पुनर्वाक्यं सुग्रीवः प्रत्यभाषत २९
प्रीतोऽस्मि सोऽहं यद्भक्तं वनं तैः कृतकर्मभिः।
धर्षितं मर्षणीयं च चेष्टितं कृतकर्मणाम् ३०
गच्छ शीघ्रं मधुवनं संरक्षस्व त्वमेव हि।
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तान्हनूमत्प्रमुखान्कपीन् ३१
इच्छामि शीघ्रं हनुमत्प्रधानाञ्शाखामृगांस्तान्मृगराजदर्पान्।
प्रष्टुं कृतार्थान्सह राघवाभ्यां श्रोतुं च सीनाधिगमे प्रयत्नम् ३२
प्रीतिस्फीताक्षौ संप्रहृष्टौ कुमारौ दृष्ट्वा सिद्धार्थां वानराणां च राजा।
अङ्गैः प्रहृष्टैः कार्यसिद्धिं विदित्वा वाह्लोरासन्नामतिमात्रं ननन्द ३३
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदि० सुन्दरकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ [२६९२]

सुग्रीव के मुख से कानों को सुख देनेवाली यह वाणी सुन राम और लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हुए। दधिमुख का वचन सुन सुग्रीव प्रसन्न हो, वनपालसे कहने लगा कि मैं प्रसन्न हूं कि उन्होंने कृतकर्मा हो वनको खा डाला, उनकी यह सब चेष्टा क्षमायोग्य है, शीघ्र जाओ और तुमही वनकी रक्षा करो तथा हनुमानादि उन सब वानरों को शीघ्र यहां भेज दो। (२८-३१)

उन सिंहवत् प्रतीत होनेवाले, मानी हनुमान् आदि सफल प्रयत्नवाले वानरों से मैं राम तथा लक्ष्मण के साथ शीघ्र प्रश्न पूछना चाहता हूँ और सीताके लिए उनके किए प्रयत्न मैं सुन लेना चाहता हूँ। हर्ष के कारण प्रफुल्ल नेत्रवाले राम एवं लक्ष्मण को इच्छापूर्ति होनेके फलस्वरूप प्रसन्न देखकर और अपने शरीर को हर्षोचित पाकर वानराधीश सुग्रीव समझने लगा कि अपना स्वीकृत कार्य सफलतापूर्वक समाप्त होने की वेला निकट आ पहुँची है। इस कारण से उसे महान् हर्ष हुआ। (३२-३३)

यहाँ तिरसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

चतुःषष्टितमः सर्गः।

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु हृष्टो दधिमुखः कपिः।
राघवं लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं चाभ्यवादयत् १
स प्रणम्य च सुग्रीवं राघवौ च महाबलौ।
वानरैः सहितः शूरैर्दिवमेवोत्पपात ह २
स यथैवागतः पूर्वं तथैव त्वरितं गतः।
निपत्य गगनाद्भूमौ तद्वनं प्रविवेश ह ३
स प्रविष्टो मधुवनं ददर्श हरियूथपान्।
विमदानुद्धतान्सर्वान्मेहमानान्मधूदकम् ४
स तानुपागमद्धीरो बद्ध्वा करपुटाञ्जलिम्।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमिदं हृष्टवदङ्गदम् ५
सौम्य रोषो न कर्तव्यो यदेभिः परिवारणम्।
अज्ञानाद्रक्षिभिः क्रोधाद्धवन्तः प्रतिषेधिताः ६
श्रान्तो दूरादनुप्राप्तो भक्षयस्व स्वकं मधु।
युवराजस्त्वमीशश्च वनस्यास्य महाबल ७
मौर्ख्यात्पूर्वं कृतो रोषस्तद्भवान्क्षन्तुमर्हति।
यथैव हि पिता तेऽभूत्पूर्वं हरिगणेश्वरः ८

सुग्रीवके यह वचन सुन प्रसन्न हुआ दधिमुख राम, लक्ष्मण और सुग्रीव को अभिवादन कर वानरों के साथ आकाश को उछला। जिस शीघ्रता से आया था, वैसी ही शीघ्रता से जो आकाश से भूमिपर उतर उस वन में प्रविष्ट हुआ। मधुवनमें प्रविष्ट हो, उसने देखा कि सब वानर विमद उद्धत हो वन में मूत्र पुरीष कर रहे हैं। उन के पास जा, हाथ जोड अङ्गद से प्रसन्नतायुक्त मधुर वचन बोला। (१-५)

हे सौम्य! जो इन रखवालोंने अज्ञान और क्रोधसे आप लोगोंको रोका, सो उसमे क्रुद्ध न हूजिए। आप थके माँदे हो दूरसे इधर आये हैं अतः मधु सेवन कीजिये। हे युवराज! तुम इस वनके स्वामी हो, मूर्खतासे पूर्व किए हुए दोषको आप क्षमा करें। तुम्हारे पिताके समान तुम ही वानरसमुदायके अधिपति हो,

तथा त्वमपि सुग्रीवो नान्यस्तु हरिसत्तम।
आख्यातं हि मया गत्वा पितृव्यस्य तवानघ ९
इहोपयानं सर्वेषामेतेषां वनचारिणाम्।
भवदागमनं श्रुत्वा सहैर्भिर्वनचारिभिः १०
प्रहृष्टो न तु रुष्टोऽसौ वनं श्रुत्वा प्रधर्षितम्।
प्रहृष्टो मां पितृव्यस्ते सुग्रीवो वानरेश्वरः ११
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तानिति होवाच पार्थिवः।
श्रुत्वा दधिमुखस्यैतद्वचनं श्लक्ष्णमङ्गदः
अब्रवीत्तान्हरिश्रेष्ठो वाक्यं वाक्यविशारदः। १२
शङ्के श्रुतोऽयं वृत्तान्तो रामेण हरियूथपाः
अयं च हर्षादाख्याति तेन जानामि हेतुना। १३
तत्क्षमं नेह नः स्थातुं कृते कार्ये परन्तपाः
पीत्वा मधु यथाकामं विश्रान्ता वनचारिणः। १४
किं शेषं गमनं तत्र सुग्रीवो यत्र वानरः
सर्वे यथा मां वक्ष्यन्ति समेत्य हरिपुङ्गवाः। १५
तथास्मि कर्ता कर्तव्ये भवद्भिः परवानहम्
नाज्ञापयितुमीशोऽहं युवराजोऽस्मि यद्यपि। १६
अयुक्तं कृतकर्माणो यूयं धर्षयितुं बलात् १७

तुम सुग्रीव ही हो। हे पापरहित! मैंने जाकर तुम्हारे चचा से कहा, इन सब वानरों के साथ आप का आगमन मधुवन में सुन सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुए और वनविध्वंस सुन उन्होंने क्रोध नहीं किया। वरन् हर्षित हो सुग्रीवने मुझ से कहा कि, उन सब को शीघ्र यहां भेज दो। (९-११)

दधिमुख का वचन सुन अंगद उन वानरों से बोला कि शायद यह वृत्तांत रामने सुन लिया है और दधिमुख भी हर्षसे कह रहा है, इससे यह मेरा अनुमान है। इस कारण अकार्य कर अब हमें यहां ठहरना न चाहिए। यथाकाम मधु पी लिया और इन वानरोंकी थकावट दूर हुई, अब क्या शेष है, जहां सुग्रीव हैं, चलो वहां चलें। सब मिलकर जैसा आप कहें वैसा मैं

ब्रुवतश्चाङ्गदस्यैवं श्रुत्वा वचनमुत्तमम् ।
प्रहृष्टमनसो वाक्यमिदमूचुर्वनौकसः १८
एवं वक्ष्यति को राजन्प्रभुः सन्वानरर्षभ ।
ऐश्वर्यमदमत्तो हि सर्वोहमिति मन्यते १९
तव चेदं सुसदृशं वाक्यं नान्यस्य कस्यचित् ।
सन्नतिर्हि तवाख्याति भविष्यच्छुभयोग्यताम् २०
सर्वे वयमपि प्राप्तास्तत्र गन्तुं कृतक्षणाः ।
स यत्र हरिवीराणां सुग्रीवः पतिरव्ययः २१
त्वया ह्यनुक्तैर्हरिभिर्नैव शक्यं पदात्पदम् ।
कचिद्गन्तुं हरिश्रेष्ठ ब्रूमः सत्यमिदं तु ते २२
एवं तु वदतां तेषामङ्गदः प्रत्यभाषत ।
साधु गच्छाम इत्युक्त्वा खमुत्पेतुर्महाबलाः २३
उत्पतन्तमनूत्पेतुः सर्वे ते हरियूथपाः ।
कृत्वाकाशं निराकाशं यन्त्रोत्क्षिप्ता इवोपलाः २४
अङ्गदं पुरतः कृत्वा हनूमन्तं च वानरम् ।
तेऽम्बरं सहसोत्पत्य वेगवन्तः प्लवङ्गमाः २५

करूंगा । यद्यपि मैं युवराज हूं, पर आप लोगों को आज्ञा नहीं दे सकता, क्योंकि आप कामयाब होकर आ रहे हैं । (११-१७)

अंगदका वचन सुन प्रसन्न मन हुए वानर बोले, राजन्! प्रभु होकर ऐसा दीन वचन कौन कहेगा, क्योंकि ऐश्वर्य के मद से मत्त हो सब यही कहते हैं कि, हमीं सब कुछ हैं । यह वचन तुम्हारे ही कहने के योग्य है, यह नम्रता तुम्हारी भावी योग्यता को कहती है । हम सब भी वहां जाने को तैयार हैं, जहां वानरराज सुग्रीव हैं । हे वानरश्रेष्ठ ! तुम्हारी आज्ञा के बिना एक पद नहीं उठा सकते, यह हम सत्य ही कहते हैं । (१८-२२)

उनके ऐसा कहनेपर अंगद बोला कि, अच्छा, चलो चलें, यह कह वे आकाश को उडे । अंगद को आकाश को कूदता देख अन्य वानर भी आकाश को अवकाशरहित कर यन्त्र से फेंके पत्थरों के समान उडे ।

विनदन्तो महानादं घना वातेरिता यथा
अङ्गदे समनुप्राप्ते सुग्रीवो वानरेश्वरः २६
उवाच शोकसंतप्तं रामं कमललोचनम्।
समाश्वसिहि भद्रं ते दृष्टा देवी न संशयः २७
नागन्तुमिह शक्यं तैरतीतसमयैरिह।
अङ्गदस्य प्रहर्षाच्च जानामि शुभदर्शन २८
न मत्सकाशमागच्छेत्कृत्ये हि विनिपातिते।
युवराजो महाबाहुः प्लवतामङ्गदो वरः २९
यद्यप्यकृतकृत्यानामीदृशः स्यादुपक्रमः।
भवेत्तु दीनवदनो भ्रान्तविप्लुतमानसः ३०
पितृपैतामहं चैतत्पूर्वकैरभिरक्षितम्।
न मे मधुवनं हन्याददृष्ट्वा जनकात्मजाम् ३१
कौसल्या सुप्रजा राम समाश्वसिहि सुव्रत।
दृष्टा देवी न संदेहो न चान्येन हनूमता ३२
न ह्यस्य कर्मणो हेतुः साधने तद्विधो भवेत्।
हनूमतीह सिद्धिश्च मतिश्च मतिसत्तम ३३

अंगद को आगे कर वे वेगवाले प्रचण्डपवन से प्रेरित बादलों की तरह महानाद करते चले। (२३-२६)

अंगद को पास आता देख, सुग्रीव शोकार्त राम से बोले कि, आप प्रसन्न हूजिए, सीता को देख आए हैं, इस में संशय नहीं, समय बिताकर बिना जानकी को देखे, वे यहां नहीं आ सकते थे और कार्य नाश कर युवराज अंगद मेरे समीप न आता। अकृतकृत्य हुओं का इस प्रकार का व्यतिक्रम न होता और अंगद दीनवदन तथा भ्रांतचित्त होता और पूर्वजोंसे रक्षित इस मधुवन को भी अदृष्ट हुआ वह न उखाडता। हे सुव्रत! आप आश्वस्त हूजिए, हनुमान् सीता को अवश्य देख आया। (२६-३२)

हनुमान् ही इस साधन का कारण है, उस में सिद्धि, मति, वीर्य आदि

व्यवसायश्च शौर्यं च श्रुतं चापि प्रतिष्ठितम् ।
जाम्बवान्यत्र नेता स्यादङ्गदश्च हरीश्वरः ३४
हनूमांश्चाप्यधिष्ठाता न तत्र गतिरन्यथा ।
मा भूश्चिन्तासमायुक्तः संप्रत्यमितविक्रम ३५
यदा हि दर्पितोदग्राः संगताः काननौकसः ।
नैषामकृतकार्याणामीदृशः स्यादुपक्रमः ३६
वनभङ्गेन जानामि मधूनां भक्षणेन च ।
ततः किलकिलाशब्दं शुश्रावासन्नमम्बरे ३७
हनूमत्कर्मदृप्तानां नदतां काननौकसाम् ।
किष्किन्धामुपयातानां सिद्धिं कथयतामिव ३८
ततः श्रुत्वा निनादं तं कपीनां कपिसत्तमः ।
आयताञ्चितलाङ्गूलः सोऽभवद्धृष्टमानसः ३९
आजग्मुस्तेऽपि हरयो रामदर्शनकाङ्क्षिणः ।
अङ्गदं पुरतः कृत्वा हनूमन्तं च वानरम् ४०
तेऽङ्गदप्रमुखा वीराः प्रहृष्टाश्च मदान्विताः ।
निपेतुर्हरिराजस्य समीपे राघवस्य च ४१
हनूमांश्च महाबाहुः प्रणम्य शिरसा ततः ।
नियतामक्षतां देवीं राघवाय न्यवेदयत् ४२

सब हैं। जाम्बवान् व अंगद के नेता, हनुमान् के अधिष्ठाता होनेपर अन्यथा गति नहीं हो सकती थी। सो अमितविक्रम ! अब चिंता छोडिए। जिस से सब गर्वोद्धत वानर संमिलित हुए हैं, तथा वनभंग और मधु-भक्षण इस से भी अनुमान होता है कि, कार्यसिद्धि हुई है। (३३-३५)

ततः आकाश में हनुमान् कर्म से दर्पित, नाद करते, किष्किन्धा में सिद्धि की सूचना देते वानरों का किलकिल शब्द सुनाई पडा। उन का निनाद सुन सुग्रीव अपनी पूंछ हिलाने लगा। रामदर्शनकांक्षी वे वानर अंगद व हनुमान् को आगे कर आ गए और प्रसन्न हुए वे सब सुग्रीव

दृष्ट्वा देवीति हनुमद्वदनादमृतोपमम् ।
आकर्ण्य वचनं रामो हर्षमाप सलक्ष्मणः ४३
निश्चितार्थं ततस्तस्मिन्सुग्रीवं पवनात्मजे ।
लक्ष्मणः प्रीतिमान्प्रीतो बहुमानादवैक्षत ४४
प्रीत्या च परमोपेतो राघवः परवीरहा ।
बहुमानेन महता हनूमन्तमवैक्षत ४५

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः॥६४॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः । [२७३७]

ततः प्रस्रवणं शैलं ते गत्वा चित्रकाननम् ।
प्रणम्य शिरसा रामं लक्ष्मणं च महाबलम् १
युवराजं पुरस्कृत्य सुग्रीवमभिवाद्य च ।
प्रवृत्तिमथ सीतायाः प्रवक्तुमुपचक्रमे २
रावणान्तःपुरे रोधं राक्षसीभिश्च तर्जनम् ।
रामे समनुरागं च यथा च नियमः कृतः ३
एतदाख्याय ते सर्वे हरयो रामसंनिधौ ।
वैदेह्यमक्षतां श्रुत्वा रामस्तूत्तरमब्रवीत् ४

और राम के समीपमें उतरे । हनुमान् ने शिर से प्रणाम कर राम से निवेदन किया कि, नियताचारिणी सीता अक्षत है । तब लक्ष्मणसहित राम हर्षित हुआ । तब हनुमान् में निश्चितार्थ सुग्रीव को जान प्रीतिमान् लक्ष्मण उसे बडे मान से देखने लगे और शत्रुओं को मारनेवाले राम भी बडे मान से हनुमान् को देखने लगे । (३७-४४)

यहाँ चौसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

ततः प्रस्रवणपर्वत पर जा रामलक्ष्मण को शिर से प्रणाम कर, अङ्गद को आगे कर, सुग्रीव को अभिवादन कर वानर सीता का समाचार कहने लगे । रावण के रनवास में उनका अवरोध, राक्षसियों से धमकाया जाना और राम में अनुराग और सीता का मृत्युसमय निर्दिष्ट किया जाना, इन

क्व सीता वर्तते देवी कथं च मयि वर्तते ।
एतन्मे सर्वमाख्यात वैदेहीं प्रति वानराः ५
रामस्य गदितं श्रुत्वा हरयो रामसंनिधौ ।
चोदयन्ति हनूमन्तं सीतावृत्तान्तकोविदम् ६
श्रुत्वा तु वचनं तेषां हनूमान्मारुतात्मजः ।
प्रणम्य शिरसा देव्यै सीतायै तां दिशं प्रति ७
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः सीताया दर्शनं यथा ।
तं मणिं काञ्चनं दिव्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ८
दत्त्वा रामाय हनुमांस्ततः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
समुद्रं लङ्घयित्वाहं शतयोजनमायतम् ९
अगच्छं जानकीं सीतां मार्गमाणो दिदृक्षया ।
तत्र लङ्केति नगरी रावणस्य दुरात्मनः १०
दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे ।
तत्र सीता मया दृष्टा रावणान्तःपुरे सती ११
त्वयि संन्यस्य जीवन्ती रामा राम मनोरथम् ।
दृष्टा मे राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः १२

सब बातों को राम से वानरों ने कहा । सीता को जीती सुन राम बोले कि, हे वानरो ! सीता इस समय कहां है और उसका हममें कैसा भाव है, सो सब कहो । (१–५)

यह सुन वानर सीतावृतान्त को जाननेवाले हनुमान् को प्रेरणा करने लगे । उनका वचन सुन हनुमान् दक्षिणदिशा की ओर सीता को शिरसे प्रणाम कर सीता के दर्शन का वृत्तान्त कहने लगा । सुवर्णजडित तथा तेजोयुक्त वह सीताजी का दिया हुआ रत्न रामको देकर और हाथ जोडकर हनुमान् कहने लगा । (६–९)

सौ योजन चौडे समुद्र को लांघ सीता को देखने की इच्छा से ढूंढता हुआ मैं उस के पास पहुंचा । दुरात्मा रावण की लङ्का नाम नगरी दक्षिण समुद्र के दक्षिण तीर पर स्थित है । वहां मैंने सीता

राक्षसीभिर्विरूपाभी रक्षिता प्रमदावने ।
दुःखमाप्यते देवी त्वया वीर सुखोचिता १३
रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता ।
एकवेणीधरा दीना त्वयि चिन्तापरायणा १४
अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ।
रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया १५
देवी कथंचित्काकुत्स्थ त्वन्मना मार्गिता मया ।
इक्ष्वाकुवंशविख्यातिं शनैः कीर्तयतानघ १६
सा मया नरशार्दूल शनैर्विश्वासिता तदा ।
ततः संभाषिता देवी सर्वमर्थं च दर्शिता १७
रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा हर्षमुपागता ।
नियतः समुदाचारो भक्तिश्चास्याः सदा त्वयि १८
एवं मया महाभाग दृष्टा जनकनन्दिनी ।
उग्रेण तपसा युक्ता त्वद्भक्त्या पुरुषर्षभ १९
अभिज्ञानं च मे दत्तं यथावृत्तं तवान्तिके ।
चित्रकूटे महाप्राज्ञ वायसं प्रति राघव २०

को रावण के रनवास में देखा । हे राम ! तुममें मनोरथ लगाये, वह जी रही है । राक्षसियों के बीच प्रमदावनमें उन से रक्षित और बार बार धम-काई हुई सीता को मैंने वहां देखा । दुःख के अनुचित सीता बड़ा दुःख पा रही है । रावणके रनवास में कैद, राक्षसियों से रक्षित, एक वेणी धारे, दीन, तुम में चित्त लगाये, पृथ्वी पर सोनेवाली, शिशिर ऋतु में पद्मिनी के समान विवर्णांगी, रावण से चित्त हटाये, मरने का निश्चय किये हुए उस देवीको मैंने येनकेन प्रकारेण तलाश कर पाया । इक्ष्वाकुवंश का बखान करते हुए मैंने उसे विश्वास कराया । (९-१६)

तब सब समाचार कह, मैंने उससे बातचीत की, रामसुग्रीव की मित्रता को सुन वह बड़ी प्रसन्न हुई । इस प्रकार उग्र तप और आप की भक्ति से युक्त महाभागा सीता को मैंने देखा । एक और अभिज्ञान उन्होंने

विज्ञाप्यः पुनरप्येष रामो वायुसुत त्वया ।
अखिलेन यथा दृष्टमिति मामाह जानकी २१
अयं चास्मै प्रदातव्यो यत्नात्सुपरिरक्षितः ।
ब्रुवता वचनान्येवं सुग्रीवस्योपशृण्वतः २२
एष चूडामणिः श्रीमान्मया ते यत्नरक्षितः ।
मनःशिलायास्तिलकं तत्स्मरस्वेति चाब्रवीत् २३
एष निर्यातितः श्रीमान्मया ते वारिसंभवः ।
एनं दृष्ट्वा प्रमोदिष्ये व्यसने त्वामिवानघ २४
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ।
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं रक्षसां वशमागता २५
इति मामब्रवीत्सीता कृशाङ्गी धर्मचारिणी ।
रावणान्तःपुरे रुद्धा मृगीवोत्फुल्ललोचना २६
एतदेव मयाख्यातं सर्वं राघव यद्यथा ।
सर्वथा सागरजले संतारः प्रविधीयताम् २७
तौ जाताश्वासौ राजपुत्रौ विदित्वा तच्चाभिज्ञानं राघवाय प्रदाय ।

बताया है कि, जिस समय चित्रकूट में तुम्हारे संग बैठी थी, तब एक कौवा आया था । हे वायुसुत! जिस तरह मुझ को देखे जाते हो, वैसे ही राम से वर्णन करना, यह मुझ से सीताने कहा । (१७-२१)

उन्होंने यह भी कहा कि, इस मणि की रक्षा में यत्न से करती रही हूं, सो राम को दे देना और उनसे कहना कि आप मैनसिल के तिलक का स्मरण कीजिये; जल से उत्पन्न यह मणि तुम्हारे पास भेजती हूं । हे अनघ! जब मुझ को बडा कष्ट होता था, तब इसको आप के समान देख अपना दुःख मिटाती थी । हे दशरथपुत्र ! एक मास मैं और प्राण धारण करूंगी, तदुपरान्त राक्षसों के बीच पडी मैं न जीऊंगी । (२२-२५)

रावण के रनवास में कैद हुई कृशांगी धर्मचारिणी सीता मुझ से इस प्रकार कहती रही । हे राघव ! यह मैंने सब वृत्तान्त आप से कह दिया, अब समुद्र के पार उतरने का यत्न कीजिये । उन दोनों राजपुत्रों को

देव्या चाख्यातं सर्वमेवानुपूर्व्याद्वाचा संपूर्णं वायुपुत्रः शशंस २८

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५॥

षट्षष्टितमः सर्गः। [२७६५]

एवमुक्तो हनुमता रामो दशरथात्मजः।
तं मणिं हृदये कृत्वा रुरोद सहलक्ष्मणः १
तं तु दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं राघवः शोककर्शितः।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुग्रीवमिदमब्रवीत् २
यथैव धेनुः स्रवति स्नेहाद्वत्सस्य वत्सला।
तथा ममापि हृदयं मणिश्रेष्ठस्य दर्शनात् ३
मणिरत्नमिदं दत्तं वैदेह्याः श्वशुरेण मे।
वधूकाले यथा बद्धमधिकं मूर्ध्नि शोभते ४
अयं हि जलसंभूतो मणिः प्रवरपूजितः।
यज्ञे परमतुष्टेन दत्तः शक्रेण धीमता ५
इमं दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं तथा तातस्य दर्शनम्।
अद्यास्म्यवगतः सौम्य वैदेहस्य तथा विभोः ६

प्रसन्न जान हनुमान् ने सीता का दिया चूडामणि राम को दिया और जो कुछ जानकीने कहा था, वह सब क्रमपूर्वक सुनाया। (२६-२८)

यहाँ पैंसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

हनुमान् के ऐसा कह चुकने पर दशरथपुत्र राम मणि को हृदय से लगा लक्ष्मणसहित रुदन करने लगे। उस मणिको देख शोकार्त राम आंसू भरे नेत्रों से सुग्रीव से बोले- जिस प्रकार स्नेह से बछडे को प्यार करनेवाली गाय द्रवित हो जाती है, उसी प्रकार इस मणिरत्न को देख मेरा हृदय द्रवित हो गया। इस मणिरत्न को मेरे श्वसुरने विवाहसमय सीता को दिया था, इसी से सीता इसे अपने शिर पर धारण किये रहती है। यह परमपूजित मणि समुद्र से उत्पन्न हुआ था और यज्ञ में सन्तुष्ट हो बुद्धिमान् इन्द्र ने इसे मेरे श्वसुर को दिया था। (१-५)

हे सौम्य! यह मणि देख मुझे पिताजी तथा राजा जनक का भी

अयं हि शोभते तस्याः प्रियाया मूर्ध्नि मे मणिः ।
अद्यास्य दर्शनेनाहं प्राप्तां तामिव चिन्तये ७
किमाह सीता वैदेही ब्रूहि सौम्य पुनःपुनः ।
परासुमिव तोयेन सिञ्चन्ती वाक्यवारिणा ८
इतस्तु किं दुःखतरं यमिमं वारिसंभवम् ।
मणिं पश्यामि सौमित्रे वैदेहीमागतं विना ९
चिरं जीवति वैदेही यदि मासं धरिष्यति ।
क्षणं वीर न जीवेयं विना तामसितेक्षणाम् १०
नय मामपि तं देशं यत्र दृष्टा मम प्रिया ।
न तिष्ठेयं क्षणमपि प्रवृत्तिमुपलभ्य च ११
कथं सा मम सुश्रोणी भीरुभीरुः सती तदा ।
भयावहानां घोराणां मध्ये तिष्ठति रक्षसाम् १२
शारदस्तिमिरोन्मुक्तो नूनं चन्द्र इवाम्बुदैः ।
आवृतो वदनं तस्या न विराजति सांप्रतम् १३
किमाह सीता हनुमंस्तत्त्वतः कथयस्व मे ।
एतेन खलु जीविष्ये भेषजेनातुरो यथा १४

स्मरण हो आया । यह मणि मेरी प्यारी की वेणी में शोभित होती थी, इस के दर्शन से मैं ऐसा समझता हूं कि, मानों प्रिया मुझे मिल गई । हे सौम्य ! बार बार कहो कि वाक्यरूप जल से प्यासे की प्यास बुझाती हुईके समान सीताने क्या क्या कहा है ? हे लक्ष्मण ! वैदेहीके आये विना जलसे उत्पन्न मणिको देखता हूं, इससे अधिक दुःख की और क्या बात होगी ? यदि सीता एक मास और जीती रहेगी, तो बहुत काल तक जीती रहेगी, उस श्यामनयना के विना मैं तो एक क्षण भी न जीऊं । (६-१०)

जहां मेरी प्रिया है, वहीं मुझे भी ले चलो, क्योंकि उसका समाचार पाकर मैं एक क्षण भी यहां न ठहरूंगा । भयानक घोर राक्षसों के बीच मेरी प्यारी, अत्यन्त भीरु सती सीता निरन्तर कैसे रहती होगी ? उसका मुख बादलों से ढके शरदृतु के चन्द्रमा के समान अब न शोभित

मधुरा मधुरालापा किमाह मम भामिनी ।
मद्विहीना वरारोहा हनुमन्कथयस्व मे १५
दुःखाद्दुःखतरं प्राप्य कथं जीवति जानकी १६

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुंदरकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः । [२७८१]

एवमुक्तस्तु हनुमान्राघवेण महात्मना ।
सीताया भाषितं सर्वं न्यवेदयत राघवे १
इदमुक्तवती देवी जानकी पुरुषर्षभ ।
पूर्ववृत्तमभिज्ञानं चित्रकूटे यथातथम् २
सुखसुप्ता त्वया सार्धं जानकी पूर्वमुत्थिता ।
वायसः सहसोत्पत्य विददार स्तनान्तरम् ३
पर्यायेण च सुप्तस्त्वं देव्यङ्के भरताग्रज ।
पुनश्च किल पक्षी स देव्या जनयति व्यथाम् ४
ततः पुनरुपागम्य विददार भृशं किल ।
ततस्त्वं बोधितस्तस्याः शोणितेन समुक्षितः ५

होता होगा । हे हनुमन् ! सीता ने क्या कहा है ठीक ठीक बताओ, इस वृत्तान्त को सुन मैं ऐसे जीऊंगा, जैसे औषधि से रोगी । मुझ से अलग की गई मधुरभाषिणी मेरी प्राणप्रियाने क्या कहा है, हे हनुमन् ! मुझ से कहो । वनवास से भी अधिक दुःसह दुःख प्राप्त होकर भी जानकी कैसे जीवित है ? (११-१६)

यहाँ छयासठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

इस तरह राम के कहने पर हनुमान् ने सीता का सब भाषण राम से निवेदन किया । हे पुरुषर्षभ ! सीताने पूर्वसमय का यही वृत्तान्त चिन्ह बताया है कि, वह चित्रकूटपर तुम्हारे साथ सुखपूर्वक सोकर पहले उठी थीं, तब एक काकने उड कर उन के स्तनों के बीच घाव कर दिया था । हे राम ! पर्याय से जब आप जानकी की गोद में सो गए थे, तब उसने फिर आ स्तनों के बीच में चोंच मारी, जब उसने बार बार आ बहुत घाव

वायसेन च तेनैवं सततं बाध्यमानया ।
बोधितः किल देव्या त्वं सुखसुप्तः परन्तप ६
तां च दृष्ट्वा महाबाहो दारितां च स्तनान्तरे ।
आशीविष इव क्रुद्धस्ततो वाक्यं त्वमूचिवान् ७
नखाग्रैः केन ते भीरु रादितं वै स्तनान्तरम् ।
कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना ८
निरीक्षमाणः सहसा वायसं समुदैक्षथाः ।
नखैः सरुधिरैस्तीक्ष्णैस्तामेवाभिमुखं स्थितम् ९
सुतः किल स शक्रस्य वायसः पततां वरः ।
धरान्तरगतः शीघ्रं पवनस्य गतौ समः १०
ततस्तस्मिन्महाबाहो कोपसंवर्तितेक्षणः ।
वायसे त्वं व्यधाः क्रूरां मतिं मतिमतां वर ११

किया, तो तुम रुधिर लगने से जाग उठे । हे परन्तप ! आप तो सुख सुख से सो रहे थे, पर जब उस काक ने बार बार पीडित किया, तो उस देवी सीताने आप को जगाया । (१-६)

पश्चात्, हे पराक्रमी और शत्रुओं को परिताप देनेवाले राम, उसे वक्षः-स्थल पर खुरचने के कारण घावों से युक्त देखकर तुम सर्पवत् आग-बबूले हो उठे और उस से कहने लगे कि, 'हे डरपोक नारी ! तुम्हारी छातीपर किसने भला नाखूनों के अगले भाग से उरेहना शुरू किया था ? भला किसकी ऐसी मजाल कि आपे से बाहर हुए पाँच मुखवाले साँप से अठखेलियाँ शुरु करें ? ऐसा कहकर जब तुम इधर उधर देखने लगे, तो अचानक एक कौआ तुम्हें दीख पडा, जिस के तीक्ष्ण नाखून लहू से भर गए थे और जो उस के ठीक सामने खडा था । वह पंछियों में श्रेष्ठ कौआ, जो इन्द्र का पुत्र था, हलचल करने में वायु के समान होने से, बहुत ही जल्द पाताल में जा घुसा । (७-१०)

इसपर, हे महा बुद्धिवान्, तथा बडे पराक्रमी वीर ! उस कौएके बारे में तुम्हारे दिल में क्रूर विचार उठ खडा हुआ और दर्भ के फैलाए हुए

स दर्भसंस्तरादृह्य ब्रह्मास्त्रेण न्ययोजयः।
स दीप्त इव कालाग्निर्जज्वालाभिमुखं खगम् १२
स त्वं प्रदीप्तं चिक्षेप दर्भं तं वायसं प्रति।
ततस्तु वायसं दीप्तः स दर्भोनुजगाम ह १३
भीतैश्च संपरित्यक्तः सुरैः सर्वैश्च वायसः।
त्रीँल्लोकान्संपरिक्रम्य त्रातारं नाधिगच्छति १४
पुनरप्यागतस्तत्र त्वत्सकाशमरिन्दम।
त्वं तं निपतितं भूमौ धरण्यां शरणागतम् १५
वधार्हमपि काकुत्स्थ कृपया परिपालयः।
मोघमस्त्रं न शक्यं तु कर्तुमित्येव राघव १६
ततस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्ति स्म स दक्षिणम्।
वायसस्त्वां नमस्कृत्य राज्ञो दशरथस्य च १७
विसृष्टस्तु तदा काकः प्रतिपेदे स्वमालयम्।

आसन में से एक तिनका उठाकर तथा ब्रह्मास्त्र से उस का आवाहन करके तुमने उस पर छोड दिया। वह ब्रह्मास्त्र से जुडा हुआ तिनका उस पंछी के सामने ही प्रलयकाल के धधकते हुए अग्निके जैसे प्रदीप्त हो जलने लगा; वह प्रज्वलित तिनका, तुम्हारे उस पंछी पर छोड देने के पश्चात्, जलता हुआ उस पक्षी के पीछे पीछे जाने लगा। (११-१३)

यह देखकर सभी देवतागण आश्रय पाने के लिए आए हुए उस पंछी का परित्याग कर चुके और इस ढंग से तीनों लोकों में घूमनेपर भी उस पक्षीको कोई संरक्षण करनेवाला न मिला। तब हे शत्रुदल को दबानेवाले! वह फिर तुम्हारे पास आया, उस अपने समीप आए हुए और वध करने-योग्य पर—शरणार्थी तथा भूमिपर गिरे हुए को भी हे ककुत्स्थ परिवार-भूषण राम! तुमने दयालुता प्रदर्शित कर सुरक्षित रखा। हे रघुवंशोत्पन्न राम! तुम्हारा छोडा हुआ अस्त्र व्यर्थ नहीं होगा, इसीलिए उस कौएकी दाहिनी आँख अस्त्रद्वारा विनष्ट की गयी। तुम से छुट्टी पाकर वह कौआ

एवमस्त्रविदां श्रेष्ठः सत्त्ववाञ्छीलवानपि १८
किमर्थमस्त्रं रक्षःसु न योजयसि राघव ।
न दानवा न गन्धर्वा नासुरा न मरुद्गणाः १९
तव राम रणे शक्तास्तथा प्रतिसमासितुम् ।
तव वीर्यवतः कच्चिन्मयि यद्यस्ति संभ्रमः २०
क्षिप्रं सुनियतैर्बाणैर्हन्यतां युधि रावणः ।
भ्रातुरादेशमाज्ञाय लक्ष्मणो वा परन्तपः २१
स किमर्थं नरवरो न मां रक्षति राघवः ।
शक्तौ तौ पुरुषव्याघ्रौ वाय्वग्निसमतेजसौ २२
सुराणामपि दुर्धर्षौ किमर्थं मामुपेक्षतः ।
ममैव दुष्कृतं किंचिन्महदस्ति न संशयः २३
समर्थौ सहितौ यन्मां न रक्षेते परन्तपौ ।

तुम्हें तथा नरेश दशरथ को प्रणाम कर अपने निवास स्थान को चला गया । (१४-१८)

अगर मैं थोडे में कह दूँ तो, तुम इस भाँति अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ, धैर्य-युक्त तथा शीलवान् हो तो भी हे राम ! राक्षसोंपर तुम अस्त्र-प्रयोग क्योंकर नहीं करते हो ? दानव, गन्धर्व, असुर तथा मरुत् एक भी रणांगण में तुम्हारे साथ जूझनेमें क्षमता नहीं रखता है । तुम जैसे वीर-पुरुषके मनमें यदि मेरे संबंधमें कुछ भी चिंता हो, तो अच्छे अच्छे और निष्फल न होनेवाले बाणोंसे युद्धस्थलमें रावण का वध करो । मेरे भाईकी यह आज्ञा है, ऐसा समझकर वह श्रेष्ठ पुरुष तथा रघुवंशमें उत्पन्न हो शत्रुओंको पीडा पहुँचाने-वाला लक्ष्मण भी मेरी रक्षा भला क्योंकर नहीं करता है ? (१८-२२)

वे दोनों पुरुषों में बाघ जैसे पराक्रमी तथा तेजस्विता में वायु एवं अग्नि के समकक्ष हैं और मेरी रक्षा करने की पूरी क्षमता रखनेवाले होकर भी क्यों भला मेरी उपेक्षा करते हैं ? वे तो देवों से भी पराजित होनेवाले नहीं हैं । शायद मेरा ही कुछ पापकर्म होगा, इसी वजहसे वे दोनों शत्रुको पीडा देनेवाले तथा क्षमता रखनेवाले होकर भी मेरी रक्षा नहीं करते हैं ।

वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साधुभाषितम् २४
पुनरप्यहमार्यां तामिदं वचनमब्रुवम्।
त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे २५
रामे दुःखाभिभूते च लक्ष्मणः परितप्यते।
कथंचिद्भवती दृष्टा न कालः परिशोचितुम् २६
इदं मुहूर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि।
तावुभौ नरशार्दूलौ राजपुत्रौ परन्तपौ २७
त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः
हत्वा च समरे रौद्रं रावणं सहबान्धवम् २८
राघवस्त्वां वरारोहे स्वपुरीं नयिता ध्रुवम्।
यत्तु रामो विजानीयादभिज्ञानमनिन्दिते २९
प्रीतिसंजननं तस्य प्रदातुं तत्त्वमर्हसि।

वह मेरा पापकृत्य बहुत ही बडा है, इस में सन्देह नहीं है। (२२-२४)

सीता का दुःखपूर्ण और अच्छे ढंग से किया हुआ यह भाषण सुनकर मैं उस सती से फिर बोला- हे देवि ! मैं शपथ खाकर तुम से सच बात कहना चाहता हूँ कि, तुम्हारे बिछोह के कारण शोकाकुल हो रामचंद्रजी कुछ भी नहीं सूझता है, ऐसा बर्ताव करते हैं। सिर्फ राम ही दुःखी है, सो बात नहीं, पर राम को दुःखभार से दबे हुए देखकर लक्ष्मण बहुत व्याकुल हो जाता है। लेकिन अब आगे चलकर शोक के मारे हाथपर हाथ धरे बैठे रहने की कोई आवश्यकता नहीं है; किसी न किसी तरह मैं तुझे देख सका हूँ। हे अबले ! तुम इसी क्षण में दुःखों का समाप्तिकाल समीप आता हुआ देख लोगी। (२४-२७)

तुम्हारा दर्शन पाने के लिए उत्सुकता एवं उमंग से परिपूर्ण हो, वे दोनों शत्रु को कष्ट पहुँचानेवाले और श्रेष्ठ पुरुष तथा राजकुमार लंका को आग लगाकर जला देंगे। अवश्य ही युद्धभूमि में भयप्रद रावण को बांधवों-सहित मार डालनेपर, हे सुन्दरी ! रामचंद्रजी तुम्हें अपनी राजधानी ले चलेंगे। हे अनिंदनीय नारी ! जिससे रामचंद्रजी को पहचानने में सुगमता

साभिवीक्ष्य दिशः सर्वा वेण्युद्ग्रथनमुत्तमम् ३०
मुक्त्वा वस्त्राद्ददौ मह्यं मणिमेतं महाबल ।
प्रतिगृह्य मणिं दोर्भ्यां तव हेतो रघुप्रिय ३१
शिरसा संप्रणम्यैनामहमागमने त्वरे ।
गमने च कृतोत्साहमवेक्ष्य वरवर्णिनी ३२
विवर्धमानं च हि मामुवाच जनकात्मजा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना बाष्पगद्गदभाषिणी ३३
ममोत्पतनसंभ्रान्ता शोकवेगसमाहता ।
मामुवाच ततः सीता सभाग्योऽसि महाकपे ३४
यद्द्रक्ष्यसि महाबाहुं रामं कमललोचनम् ।
लक्ष्मणं च महाबाहुं देवरं मे यशस्विनम् ३५

हो और उसके हृदय को हर्ष प्रदान करे, ऐसा कोई चिह्न तुम मुझे दे दो। (२६-३०)

ऐसा कह चुकनेपर, चारों ओर निगाह डालकर चोटी में गूँथनेयोग्य यह श्रेष्ठ रत्न सीताने अपने वस्त्र की गाँठ में से छुडाकर हे बलवान् राम ! मुझे दे दिया। हे रघुवंश के प्यारे राम ! तुम्हारे लिए वह रत्न मैंने हाथ में रख और सिर से प्रणाम कर ले लिया और यहाँपर लौट आने के लिए शीघ्रता करने लगा। लौटने के लिए अतीव उत्कंठित हो बढने लगा और वह सुन्दर, जनक की बेटी आँखों में आँसू भर मुझ से बोली। नेत्रों में आँसू उमड आए थे और गला रुंध जाने के कारण मुँह से शब्द निकलना दूभर हो गया। काँपनेवाली आवाज में वह मेरे छिनभर में उड जाने के कारण (अर्थात् मैं निमिषमात्र में उड जाऊँगा, इस डर से) सहमी हुई और बडे भारी दुःख के मारे शोकाकुल हो कहने लगी- हे महान् वानर ! तू सचमुच बडभागी है, क्योंकि अब तू कमलसम नेत्रवाले राम को और मेरे देवर लक्ष्मण को, जो यशस्वी तथा पराक्रमी है, शीघ्रही देखनेवाला है। (३०-३५)

*

सीतयाप्येवमुक्तोऽहमब्रुवं मैथिलीं तथा।
पृष्ठमारोह मे देवि क्षिप्रं जनकनन्दिनि ३६
यावत्ते दर्शयाम्यद्य ससुग्रीवं सलक्ष्मणम्।
राघवं च महाभागे भर्तारमसितेक्षणे ३७
साब्रवीन्मां ततो देवी नैष धर्मो महाकपे।
यत्ते पृष्ठं सिषेवेऽहं स्ववशा हरिपुङ्गव ३८
पुरा च यदहं वीर स्पृष्टा गात्रेषु रक्षसा।
तत्राहं किं करिष्यामि कालेनोपनिपीडिता ३९
गच्छ त्वं कपिशार्दूल यत्र तौ नृपतेः सुतौ।
इत्येवं सा समाभाष्य भूयः संदेष्टुमास्थिता ४०
हनूमन्सिंहसंकाशौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ।
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान्ब्रूया अनामयम् ४१
यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः।
अस्माद् दुःखाम्बुसंरोधात्तत्त्वमाख्यातुमर्हसि ४२

सीता के यों कहनेपर मैं सीता से कहने लगा– 'हे देवि! तू मेरी पीठपर बैठ तो जाओ सही, तो मैं तुझ भाग्यशालिनी को शीघ्र ही सुग्रीव एवं लक्ष्मण के साथ बैठे रामचंद्रजी को आज ही दिखलाऊँगा। वह देवी उसपर मुझ से बोली– मैं स्वतंत्र हो तुम्हारे पीठपर चढ जाऊँ यह मेरा सचमुच कर्तव्यकर्म नहीं है। पहले मेरा स्पर्श राक्षस से हो चुका था, पर मैं प्रबल दैव के चँगुल में फँस गयी थी, मैं क्या कर सकती थी? (३६-४०)

ऐसा कह वह फिर भी अपना सन्देश कहने को तैयार हुई और बोली– हनुमन्! मेरी ओर से तू सिंहवत् राम तथा लक्ष्मण और सचिवोंसहित सुग्रीव को कुशल प्रश्न पूछ अभिनंदन कर। जिस ढंग से वह बडा पराक्रमी रघुवंशोत्पन्न राम मुझे इस दुःखमहोदधि से छुडा लेगा, वैसे तुम मेरे समूचे वृत्तान्त को ब्यौरेवार कह दो। हे श्रेष्ठ वानर! राम के निकट पहुँचकर तुम मेरे तीव्र शोकावेग को तथा इन राक्षसों से होनेवाली धौंस को

इदं च तीव्रं मम शोकवेगं रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च ।
ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर ४३
एतत्त्ववार्या नृप संयता सा सीता वचः प्राह विषादपूर्वम् ।
एतच्च बुद्ध्वा गदितो यथा त्वं श्रद्धस्व सीतां कुशलां समग्राम्॥४४

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः॥४७॥

अष्टषष्टितमः सर्गः । [२८२५]

अथाहमुत्तरं देव्या पुनरुक्तः ससंभ्रमम् ।
तव स्नेहान्नरव्याघ्र सौहार्दादनुमान्य च १
एवं बहुविधं वाच्यो रामो दाशरथिस्त्वया ।
यथा मां प्राप्नुयाच्छीघ्रं हत्वा रावणमाहवे २
यदि वा मन्यसे वीर वसैकाहमरिन्दम ।
कस्मिंश्चित्संवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ३
मम चाप्यल्पभाग्यायाः सान्निध्यात्तव वानर ।
अस्य शोकविपाकस्य मुहूर्तं स्याद्विमोक्षणम् ४

उन से कह दो । हे श्रेष्ठ वानर ! तेरा मार्ग सुखप्रद एवं हितकारक प्रतीत होवे ! हे राजन् ! शुद्ध आचरणवाली वह सीता दुःखपूर्वक इतना ही सन्देशा भेज चुकी है । यह समझकर तुम सोच लो और मेरे इस कथनपर तुम विश्वास रखो कि सीता पूर्णरूप से सकुशल है । (४०-४४)

यहाँ सैंसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

हे श्रेष्ठ पुरुष ! फिर से वह देवी, मुझे लौट जाने की आज्ञा दे तुमपर असीम प्रेम रखने के कारण शीघ्रतापूर्वक मुझ से कहने लगी । दशरथ के पुत्र राम को, तुम इस भाँति सभी बातों से खूब कहकर परिचित करो ताकि वह शीघ्र लडाई में रावण का वध करके मुझे प्राप्त करें । हे शत्रु को नष्ट करनेवाले ! यदि तुम चाहो तो एक दिन तुम यहाँ रह सकते हो, किसी सुरक्षित एवं अज्ञात स्थान में तुम रहो, कल यहाँ से प्रस्थान करो । मुझ जैसी अभागिनी का प्रचंड शोक, तुम्हारे इधर रहने से एक छिनभर

गते हि त्वयि विक्रान्त पुनरागमनाय वै ।
प्राणानामपि संदेहो मम स्यान्नात्र संशयः ५
तवादर्शनजं चापि भयं मां परितापयेत् ।
दुःखाद् दुःखपराभूतां दुर्गतां दुःखभागिनीम् ६
अयं च वीर संदेहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः ।
सुमहांस्त्वत्सहायेन हर्यृक्षेषु असंशयः ७
कथं नु खलु दुष्पारं तरिष्यन्ति महोदधिम् ।
तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ ८
त्रयाणामेव भूतानां सागरस्येह लङ्घने ।
शक्तिः स्याद्वैनतेयस्य वायोर्वा तव चानघ ९
तदस्मिन्कार्यनिर्योगे वीरैवं दुरतिक्रमे ।
किं पश्यसि समाधानं ब्रूहि वाक्यविदां वर १०
काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने ।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते बलोदयः ११

ही क्यों न सही लेकिन, जरूर घट जायेगा। नहीं तो तुम्हारे इधर से निकल जानेपर मुझे शक है कि क्या मेरे प्राण तुम्हारे लौट आनेतक शरीर में टिक सकेंगे या नहीं। (१-५)

तुम्हारा दर्शन नहीं होता इसलिए भय के मारे मुझ जैसी एक दुःख से छूटकर दूसरे दुःख को पानेवाली अतएव दुर्दशा में फँसी हुई नारी की हालत बहुत बुरी होगी। हे वीर ! तुम्हारी सहायता पानेपर भी उन रीछों तथा वानरों के सम्बंध में एक बड़ी भारी शंका मेरे सामने खड़ी हुई है। इस आशंका के बारे में मुझे सचाई प्रतीत होती है। इस महान् समुद्र को तैरना राजकुमारों तथा वानरसेना को कैसे भला संभव है ? समुन्दर को तैरकर यहाँ आना बड़ा कठिन कर्म है। इस संसार में गरुड, वायु और तुम केवल तीनों ही समुद्र को लाँघने की क्षमता रखते हैं। (६-१०)

ऐसे इस अतिविकट अवसर पर क्या तुम्हें कोई उपाय सूझता है ? तुम तो बहुत चतुर एवं विद्वान् हो। तुम शत्रुदल को नष्ट करनेवाले हो और

बलैः समग्रैर्यदि मां हत्वा रावणमाहवे ।
विजयी स्वपुरीं रामो नयेत्तत्स्याद्यशस्करम् १२
यथाहं तस्य वीरस्य वनादुपधिना हृता ।
रक्षसा तद्भयादेव तथा नार्हति राघवः १३
बलैस्तु संकुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः ।
मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत् १४
तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः ।
भवत्याहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय १५
तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् ।
निशम्याहं ततः शेषं वाक्यमुत्तरमब्रुवम् १६

तुम्हारा बल सराहनीय है, अतः तुम अकेले ही इस कार्य को सफलतापूर्वक समाप्त करने में पूर्ण क्षमता रखते हो । तिसपर भी, यदि राम सभी सेनाओं के साथ इधर आकर युद्ध में रावण का वध करके विजयी बनकर मुझे अपने साथ राजधानी ले चले, तो बड़ा ही अच्छा होगा । उसमें यश पर्याप्त मात्रा में मिलेगा । जैसे रावण ने छल कपट या धोखेबाजीसे मुझे उस वीर के साथ वन में रहते समय अपहरण करके यहाँ ला रखा वैसे ही अगर राम राक्षसों के डरके मारे मुझे छिपे छिपे ढंग से ले जायँ, तो वह राम के लिए शोभाजनक बात नहीं होगी । (१०-१३)

शत्रुओंकी सेना को मटियामेट करनेवाले और ककुत्स्थपरिवार में उत्पन्न रामचंद्रजी यदि मुझे, अपनी सेनाओं से लंका में खूब खलबली मचाकर, प्राप्त कर के यहाँ से ले चले, तो यह घटना उन की कीर्ति को बढ़ानेवाली और उन जैसे वीर पुरुष के लिए उचित होगी । अतः तुम ऐसा कोई प्रबन्ध करो कि जिस से उन रणबाँकुरे तथा महान् पुरुष के अनुकूल एवं कीर्तिवर्धक ढंग पर कोई पराक्रमपूर्ण कार्य सम्पन्न हो जाय । (१४-१५)

उस अत्यन्त अर्थपूर्ण तथा ध्यान देनेयोग्य और विनय भरे भाषण को सुन मैंने उत्तर के स्वरूप में अपना अन्तिम निवेदन उस से कह दिया ।

देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः ।
सुग्रीवः सत्त्वसंपन्नस्त्वदर्थे कृतनिश्चयः १७
तस्य विक्रमसंपन्नाः सत्त्ववन्तो महाबलाः ।
मनःसंकल्पसदृशा निदेशे हरयः स्थिताः १८
येषां नोपरि नाधस्तान्न तिर्यक्सज्जते गतिः ।
न च कर्मसु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसः १९
असकृत्तैर्महाभागैर्वानरैर्बलसंयुतैः ।
प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमार्गानुसारिभिः २०
मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः ।
मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसंनिधौ २१
अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः ।
न हि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः २२

हे देवि ! वानरसेनापति और धैर्ययुक्त सुग्रीव तुम्हारे लिए उचित कार्य-वाही करने में सुदृढ निश्चय कर बैठा है और उस की आज्ञा में रह पराक्रमी, धीरज से कार्य करनेवाले, महाबलिष्ठ तथा मन के समान शीघ्रगामी वानर कार्य करनेवाले हैं । ऊपर, नीचे तथा चारों ओर कहीं भी जिन की गति में रुकावट नहीं होती है और बडे बडे प्रचंड कार्य सामने आ पडे हों, तो भी जिन असीम धीरज एवं तेज धरनेवालों का उत्साह घट नहीं जाता है, ऐसे उन बलिष्ठ तथा भाग्यवान वानरोंने वायुपथ से कई बार समूची पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर डाली है । (१६-२०)

मेरे समान तथा मुझ से अत्यधिक ही वानर उधर हैं और मुझ से अपेक्षाकृत कनिष्ठ एवं घटिया वानर सुग्रीव के निकट नहीं है । अब देखिए, अगर मुझ जैसा एक नगण्य वानर यहाँ तक आ पहुँचा है, तो फिर उन महाबलाढ्य वानरों की तो बात ही कौनसी है ? छोटेछोटे कार्यों के लिए उच्च कोटि के लोग नहीं भेजे जाते हैं, साधारण योग्यता के लोग सेवक की हैसियत से ऐसे कार्य पूरा करने के लिए अवश्य भेजे जाते हैं ।

तदलं परितापेन देवि मन्युरपैतु ते ।
एकोत्पातेन ते लङ्कामेष्यन्ति हरियूथपाः २३
मम पृष्ठगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ ।
त्वत्सकाशं महाभागे नृसिंहावागमिष्यतः २४
अरिघ्नं सिंहसंकाशं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् ।
लक्ष्मणं च धनुष्मन्तं लङ्काद्वारमुपागतम् २५
नखदंष्ट्रायुधान्वीरान्सिंहशार्दूलविक्रमान् ।
वानरान्वारणेन्द्राभान्क्षिप्रं द्रक्ष्यसि संगतान् २६
शैलाम्बुदनिकाशानां लङ्कामलयसानुषु ।
नर्दतां कपिमुख्यानां न चिराच्छ्रोष्यसे स्वनम् २७
निवृत्तवनवासं च त्वया सार्धमरिन्दमम् ।
अभिषिक्तमयोध्यायां क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् २८

इसलिए हे देवि ! तुम्हें चिंता एवं अनुताप करने का कोई कारण नहीं है, तू शोक करना छोड दे । ध्यान में रख, एक ही छलाँग के साथ वे वानरों के झुंड के अधिपति लंका पधारेंगे और मेरी पीठ पर अधिष्ठित होनेवाले तथा चंद्रमा एवं सूर्यवत् सुहानेवाले राम तथा लक्ष्मण, जो मानवों में सिंहसदृश पराक्रमी हैं, तुम्हारे समीप आ जायेंगे । शेर जैसे वीर और शत्रु को मारनेवाले रामचन्द्रजी को तथा हाथ में धनुष्य धारण करनेवाले लक्ष्मण को भी लंका के दरवाजे पर आ उपस्थित तुम शीघ्र देख लोगी । (२१-२५)

अपने नाखून और दाँतों को हथियार के समान काम में लानेवाले, गजराजवत् सुहानेवाले तथा शेर एवं बाघ जैसे विक्रम कर दिखानेवाले वानर वीर इकट्ठे हो इधर आने पर तुम्हें दीख पडेंगे । बहुत जल्द पर्वत एवं मेघसदृश प्रमुख वानरों की गर्जना को तुम लङ्का के टीलों पर सुन लोगी । वनवास का निश्चित समय बीत जाने के कारण शत्रुदल को कुचलनेवाले राम को तुम अपने साथ ही अयोध्यानगरी में शीघ्र ही अभिषिक्त होते हुए देखोगी । इस प्रकार मैंने अभीष्ट तथा हितकारक

ततो मया वाग्भिरदीनभाषिणी शिवाभिरिष्टाभिरभिप्रसादिता ।
उवाह शान्तिं मम मैथिलात्मजा तवातिशोकेन तथातिपीडिता २९

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टषष्टितमः सर्गः ॥६८॥

[२८५४]

॥ इति श्रीरामायणे सुन्दरकाण्डं समाप्तम् ॥ ५ ॥

भाषणों से सान्त्वना करने पर, तुम से बिछुडने की वजह से गुरुतर शोक-भार वहन करनेवाली सीता शोकरहित वाणी से बोलती हुई, शांत एवं प्रकृतिस्थ हुई । (२६-२९)

यहाँ अडसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

॥ यहाँ सुन्दरकाण्ड समाप्त हुआ ॥

श्रीवाल्मीकि–रामायणान्तर्गत

सुन्दरकाण्डका

निरीक्षण ।

रावण की लंका ।

रावणकी लंका जिस भूविभाग पर अवस्थित थी, वह कौनसा है ? इस सम्बन्ध में आज कल अनेक धारणाएँ जनता के सम्मुख प्रस्तुत हैं। आस्ट्रेलिया ही उस समय लंका नाम से विख्यात थी, ऐसी कुछ लोगों की राय है। अन्य कोई कहते हैं कि, मध्य–भारत में ही लंका रही होगी और पुरातन विचारधारा के लोग वर्तमानकाल में जो सिलोन नामक द्वीप है, उसे ही लंका मानते हैं। आधुनिक काल में इस प्रकार लंका की अवस्थिति के बारे में ऐसे तीन दल अस्तित्व में पाये जाते हैं।

सिलोन ' लंका ' ।

सिलोन को लंका समझनेवाला दल परम्परागत धारणा पर निर्भर है। रामेश्वरम् के निकट धनुष्कोटी बंदरगाह से सिलोन जानेके लिए आजकल अग्निनौकाएँ निकला करती हैं। सभी लोग इस राह से भली भाँति परिचित हैं। भारत का अंतिम छोर धनुष्कोटी छोडने पर लंका के तट पर उपस्थित रहने के लिए चौबीस घंटों की भी आवश्यकता नहीं रहती है। इन दिनों में अनेक लोग रामेश्वरम्, धनुष्कोटी तथा सीलोन की यात्रा करनेवाले पाये जाते हैं और चूँकि ये सभी लोग सीलोन को ही लंका मान लेते हैं, अतः इन लोगों की धारणा के सम्बन्ध में अधिक कुछ लिखने का कोई प्रयोजन नहीं दीख पडता है।

भारत के दक्षिण में सीलोन, सिंहलद्वीप अथवा लंका पाई जाती है और मानचित्र देख लेने से ठीक दक्षिण में इसकी अवस्थिति दीख पडती

है। रामेश्वरम् के सेतु को काशी में तथा काशी की गंगानदी को रामेश्वरम् में पहुँचा देने की प्रथा बहुत प्राचीन काल से अस्तित्व में आयी है। अब हमें देखना चाहिए कि किन प्रमाणों के बलबूते पर आस्ट्रेलिया को लंका माननेवाले अपनी धारणा को खडी कर देते हैं।

आस्ट्रेलिया– लंका।

श्रीयुत दिवानबहादुर सी. एन्. मेहता, सेवानिवृत्त डिस्ट्रिक्ट न्यायाधीश नडियाद, जो आजकल अहमदाबाद में निवास करते हैं, हालही में अँग्रेजी भाषा में एक पुस्तक प्रकाशित कर चुके हैं, जिसमें वाल्मीकि रामायण से प्रमाण देकर सिद्ध करने की चेष्टा की है कि आस्ट्रेलिया महाद्वीप ही लंका है। ३५० पृष्ठवाली यह पुस्तक अँग्रेजी जाननेवाले पाठकों को अवश्य पढनी चाहिए। इस पुस्तक में पाँच मानचित्र भी दिये हैं और एक नक्शे में दर्शाया है कि हनुमान् किस राह से चला गया था। श्री मेहताजी की राय में हनुमानजी सुग्रीव की विमान-वाहिनी का प्रमुख अधिनायक था और वह मलयगिरी से वायुयान में बैठ ऊँची उडान लेकर आस्ट्रेलिया के दक्षिणी छोर पर उतर पडा। इसलिये, समुद्र पर से जाते समय उस की अर्थात् उसके वायुयान की छाया समुन्दर के पृष्ठभाग पर दिखाई देती थी, ऐसा जो वर्णन सुन्दरकाण्ड में पाया जाता है, वह उचित है। ग्रन्थ का आकार कुछ बडा है और यहाँ पर लेखकमहोदय के कथन का सारांश पाठकों के लिए उद्धृत करते हैं—

"जब हम रामायण में लंका, किष्किन्धा अथवा अयोध्यानगरियों का वर्णन पढने लगते हैं, तब ऐसा प्रतीत होने लगता है कि केवल भूमि पर संचार करते समय इन नगरियों का जो दृश्य देखना संभव था, उसी को चित्रित करने का प्रयत्न नहीं किया, किन्तु वायुयान में बैठकर नगरों के ऊपर संचार करनेसे जैसे आँखों को दीख पडता था, वही बतलाने की चेष्टा इन वर्णनों में की गयी है। मन में यह ख्याल करना चाहिए कि पैरिस या लंडन जैसी किसी भी आधुनिक नगरी का दृश्य विमान से कैसे दीखने लगेगा। उन दिनों में भी वायुयान में बैठकर यात्रा की

जाती थी, ऐसा जान पडता है। रामायण में लंकानगरी का वर्णन कैसे किया है, सो देखिए-

स नगाग्रे स्थितां लंकां ददर्श पवनात्मजः। (सुं. २।८)
ततस्तु संप्राप्य समुद्रतीरं समीक्ष्य लंकां गिरिवर्यमूर्ध्नि।
(सुं. १।२०३)

पर्वतके शिखर पर लंका को हनुमान् ने देखा, अतः वह नगरी पहाडों पर बसाई गयी थी, ऐसा जान पडता है। उसने देखा कि लंकाद्वीप में अत्यंत उपजाऊ भूविभाग थे और उसमें वृक्षों तथा वनस्पतियों की भरमार थी, एवं बगीचे भी विद्यमान थे-

योजनानां शतस्यान्ते वनराजीं ददर्श सः ॥ १९४ ॥
ददर्श च पतन्नेव विविधद्रुमभूषितम्।
द्वीपं शाखामृगश्रेष्ठो मलयोपवनानि च ॥ १९५ ॥ (सुं.१)

सौ योजनों का अन्तर तै कर चुकने पर उसे वनों की सुषमा दीख पडी। उडान लेते समय उसे भाँति भाँति के वृक्षों से सुहानेवाला तथा पर्याप्त उपवनों से भरा हुआ द्वीप दीख पडा। जो कोई पानी में से तैरकर आया हो, वह ऐसा दृश्य देख सकेगा, यह असंभव है। उसे महान् सागर के तट पर लंकानगरी अत्यन्त सुशोभित स्वरूप में दीख पडी। लंका कैसे थी, सो सुनिए—

निपत्य तीरे च महोदधेस्तदा ददर्श लंकां अमरावतीमिव।
(सुं. १।२०४)

(निपत्य) ऊपर से नीचे उतरते समय सागर के तट पर देवों की अमरावतीसदृश दृश्यमान लंकानगरी उसके दृष्टिपथ में अवतीर्ण हुई।

चूँकि यहाँ पर 'निपत्य' शब्द प्रयुक्त हुआ है, अतः कहना पडता है कि जब वह आकाश में से नीचे उतर रहा था, तब उसे लंका दीख पडी। इस नगरी में बगीचे, झील एवं कुएँ उसे दीख पडे थे। अगर वह भूमिपर रहता, तो भला वह कैसे इन्हें देख सकता? केवल आकाशपथ से

संचार करने पर ही नगरी के विविध विभागों को एक ही समय देख लेना संभव है, सो कैसे देखिए-

पादपान् विहगाकीर्णान् पवनाधूतमस्तकान्।
पुष्पभारनिबद्धांश्च तथा मुकुलितानपि ॥ ११ ॥
... ... वापीः पद्मोत्पलावृताः।
आक्रीडान् विविधान् रम्यान् विविधांश्च जलाशयान् ॥१२॥
उद्यानानि च रम्याणि ददर्श कपिकुञ्जरः ॥ १३ ॥
(सुंदर० २)

वहाँ पर बगीचे, कूप, छोटे बड़े तालाब एवं भाँति भाँति के उपवन, मनोरम खेलने की जगहें, झीलें, बड़े बड़े वृक्ष जिन पर पुष्पसमृद्धि दिखाई देती थी, तथा कलियों की बहार आयी थी, प्रचुर मात्रा में पाये थे। यह दृश्य हनुमान् के सम्मुख उपस्थित हुआ।

समुद्र में से तैरकर जानेवाला ऐसा दृश्य देख नहीं सकता है। जो विमान में चढ़कर किसी नगरपर दृष्टिपात करेगा, वही इस भाँति विहंगमावलोकन कर सकेगा। उसी प्रकार-

... ... लंकां रावणपालिताम्।
परिखाभिः सपद्माभिः सोत्पलाभिरलंकृताम् ॥ १४ ॥
काञ्चनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम्।
गृहैश्च गिरिसंकाशैः शारदाम्बुदसन्निभैः ॥ १६ ॥
पाण्डुराभिः प्रतोलीभिरुच्चाभिरभिसंवृताम्।
अट्टालकशताकीर्णां पताकाध्वजशोभिताम् ॥ १७ ॥
तोरणैः काञ्चनैर्दिव्यैर्लतापङ्क्तिविराजितैः ॥ १८ ॥
गिरिमूर्ध्नि स्थितां लंकां पाण्डुरैर्भवनैः शुभैः ॥ १९ ॥
प्लवमानामिवाकाशे ददर्श हनुमान् कपिः ॥ २० ॥
वप्रप्राकारजघनां विपुलाम्बुवनाम्बराम्।
शतघ्नीशूलकेशान्तां अट्टालकवतंसकाम् ॥ २१ ॥
(सुं० २)

दूर से लंकानगरी कैसे दीख पडती थी, इसका बडा ही सजीव वर्णन इन श्लोकों में दिया गया है । जिस लंका के पालन की बागडोर रावण के हाथ में थी, वहाँ पर चारों ओर प्राचीर बने हुए थे और जल-पूर्ण खाइयाँ बनी थीं, जिन में कमलपुष्प खिलते थे । संरक्षणार्थ बनायी हुई दीवार सोने की थी और अन्दर ऊँचे ऊँचे तथा श्वेतवर्णवाले महल थे । सफेद और ऊँची अट्टालिकाओं से एवं सडकों से लंका घिरी हुई थी । इनकी संख्या सैकडों तक पहुँचती थी । पताकाओं के कारण लंका सुहाती थी और ऊँचे पर्वत-शिखर पर अवस्थित होने के कारण तथा सौवर्ण तोरणों एवं लताओं से विभूषित होने के कारण वह मानों आस्मान में तैरती हुईसी जान पडती थी । जलाशयों तथा उपवनोंकी कोई न्यूनता नहीं थी, वे बडे विशाल दीख पडते थे । जगह जगह पर तोपें एवं तीक्ष्ण हथियार रखे हुए थे । इस तरह की लंका हनुमान् के सम्मुख मनोमुग्धकारी स्वरूप में अवस्थित थी ।

लंका का उत्तर दरवाजा बडा ऊँचा था और वह इतना बडा था कि कई ऊँचे महल वहाँपर समाये गए थे ।

द्वारमुत्तरमासाद्य ... कैलासनिलयप्रख्यम् ।
आलिखन्तमिवाम्बरम् ।
ध्रियमाणमिवाकाशं उच्छ्रितैर्भवनोत्तमैः ॥ (सुं. २।२२-२३)

कैलासपर्वत जैसे दीखनेवाले प्रासादों की अपेक्षा यह दरवाजा अतीव ऊँचा था । मानों आकाश इसीके सहारे टिका हुआ हो, ऐसा प्रतीत होता था ।

इस भाँति के वर्णन पढ लेनेपर मन में यह विचार सहजही में पैदा हो जाता है कि आकाशमार्ग से यात्रा करते समय नगरी को निहार कर ऐसे वर्णन किए हुए हों, अन्यथा प्राकार खाइयाँ इत्यादि विभिन्न विभाग एक ही समय दर्शक को देख लेना सुतरां असंभव है । इस से उपर्युक्त धारणाकी पुष्टि होती है कि प्रायः हनुमान् ने लंकातककी यात्रा वायुयान में से की हो और इसी कारणसे सुन्दरकाण्डमें जो स्थानस्थानपर यह उल्लेख

मिलता है कि, समुद्रोल्लंघन के मौकेपर जलपर उस की छाँह गिर पडी थी, वह उचित ही है।

सुंदरकाण्ड के 'सुन्दर' शब्द का अभिप्राय। सुन्दरकाण्ड अथवा सुन्द-काण्ड ?

इस कांड को पढते समय एक ऐसी समस्या उठ खडी होती है कि इस काण्डको 'सुन्दर' नाम क्योंकर मिला? कारण कि, हनुमान्ने जो सीता का अन्वेषण किया, वह मनोरमता के स्थानपर करुणरस से पूर्ण है। हनुमान् को जो संकट झेलने पडे थे, सीता की जो दयनीय दशा हुई थी और रामचंद्रजी को इस का जो समाचार मिला था, सभी इतना करुणोत्पादक है कि आरंभ में हठात् ऐसा मानने की प्रवृत्ति होती है कि, किसी अक्षम्य भूल से 'सुन्दर' नाम इस काण्ड को मिला हो।

पर जब हम देखते हैं कि विभिन्न काण्डों के नाम रखने में कविने एक विशिष्ट प्रणाली का अनुसरण किया है, तब हमें पता लगता है कि स्थान के महत्त्वपूर्ण होने से या विषय की महत्ता को ध्यान में रखने के कारण कविने नामकरण प्रथा बना डाली थी। उदाहरणार्थ, बाल-काण्ड में कविने रामचन्द्रजी की बाल्यावस्था में हुई घटनाओं का वर्णन किया है और अयोध्याकाण्ड, अरण्यकांड एवं किष्किन्धाकाण्ड में उस उस स्थान पर घटित वृत्तान्तों का चित्रण किया है। युद्धकांड में महा समर की घटनाओं का वर्णन है, पर 'सुन्दरकांड' नाम न स्थानवाचक है और न प्रसंगों का वर्णन करता है तथा कारुण्योत्पादक भावों का भी चित्रण नहीं करता है। काव्यमय सौंदर्य तो समूचे कांड में है, तो भला इसी कांडको 'सुन्दर' नाम क्यों दिया होगा? इन बातों को ध्यान में रखते हुए मेरी यह राय है कि कवि का अभिप्राय 'सुन्द-काण्ड शीर्षक बना डालने से था, क्योंकि इसमें वर्णित घटनाएँ सुन्द द्वीप-समूह में अस्तित्व में आ चुकी थीं, पर आगे चलकर अज्ञानवश या असावधानी के कारण कुछ

लेखकों ने 'सुन्द' शब्द को 'सुन्दर' शब्द में परिवर्तित किया था और वही आगे प्रचलित हुआ। रामायणमें 'सुन्द' राक्षसका उल्लेख पाया जाता है।

शायद ऐसा भी हो कि उस द्वीप-समूह के प्रबल अधिपति 'सुन्द' का नाम संस्कृत भाषा के अनुकूल 'सुन्दर' लिखा गया हो। सुन्दद्वीप सुन्द राक्षसके अधीन था। ऐसा मान लेने पर यह समझ में नहीं आता कि रामायणमें अन्य जगह सुन्दनरेशके सम्बन्धमें जो दन्तकथाएँ दी गयी हैं, वहाँ सुन्द नाम ज्योंका त्यों क्यों रखा गया। वास्तवमें वहाँ पर भी 'सुन्दर' यह परिवर्तित नाम ही देनेयोग्य है। कुछ भी हो, निस्सन्देह ऐसा प्रतिपादित किया जा सकता है कि, सुन्दर-काण्ड में कवि का ध्यान 'सुन्द' द्वीपसमूह पर केन्द्रित हो चुका था और ऐसा मान लेने से हमें आस्ट्रेलिया को रावण की लंका के रूप में मानना पडेगा। क्योंकि सुन्दद्वीप वहाँ जाने की राह पर अवस्थित है।

पिछली बातों का अवलोकन।

ऐसा जान पडता है कि सुग्रीव ने जो अंगद आदि वानर सीता को ढूँढने के लिए दक्षिण दिशा में भेजे थे, वे दक्षिण-भारत में त्रावन्कोर या मंगलोर तक ठीक दखन की ओर चले गये थे, लेकिन उन्हें वहाँ पर सीता या रावण का कुछ भी पता न मिला। उल्टे स्वयंप्रभाने उन्हें विंध्यपर्वत श्रेणी की ओर भेज दिया और उस के आग्नेयी भाग में समुद्रतटपर संपाति से मुलाकात हुई। संपातिने उन से कहा कि वे विझगापटम के समीप स्थित महेंद्रगिरि से अभिजिदभिमुखा दिशा की ओर चलें। अर्थात् उस की ओर जो लगभग पूर्व से २० या २५ कोणपर था। अब हमें ध्यानमें रखना चाहिए कि भूगोल में इस महेंद्रगिरि के बारे में कौनसा ब्यौरेवार वर्णन किया है।

यह ५९२० फीट ऊँचा है। इस तट से अन्दमान एवं निकोबार द्वीपसमूह करीब ८०० से १००० मील दूर पर है और मलाक्काकी सामुद्रधुनी

था जलडमरुमध्य जहाँपर सिंगापूरका विख्यात नाविक एवं वायुयानीय अड्डा था, सुमात्रा तथा जावा द्वीपविभाग जहाँपर ज्वालामुखीपर्वत हैं, बाली, सुम्बव, सुम्ब तथा टिमोर द्वीपसमूह जिन्हें सामुदायिक रूप में 'सुन्द-द्वीपसमूह' नाम दिया गया है, सुन्दसमुद्र, टिमोरसमुद्र तथा अरा-फुरासमुद्र और न्यू गिनी का द्वीप जिस की आकृति गोधा के समान है, न्यू गिनी और आस्ट्रेलिया के मध्य विद्यमान टारेस सामुद्रधुनी, आस्ट्रे-लिया महाद्वीप में विद्यमान सुदीर्घ पर्वतश्रेणी जिसे The Great Dividing Range of Mountains नाम मिला (शायद लंबगिरी पर्वत?) और जिसके मध्य में माउन्ट मार्गन (सुवर्ण का पर्वत) है। वहाँ पर झीलों में खूब सोना मिलता है। अच्छा होगा कि इस वर्णन से हम सुन्दरकांड के प्रथम सर्ग में दिये हुए हनुमान् के उल्लंघित द्वीप एवं देश के वर्णन की तुलना करें और निश्चित करें कि दोनों वर्णनों में कितना आश्चर्यजनक साम्य है। इन स्थलोंमें सुन्दर झील, श्रेष्ठ कुंज तथा सुन्दरकांड में वर्णित दृश्यों के समान दृश्य विपुलतया पाये जाते हैं।

यहाँ सोचना चाहिए कि, मैनाकपर्वत, जो समुद्र में डूब चुका था और हनुमान् का स्वागत करने के लिए ऊपर उठ चुका था, कहाँ पर था। ऐसा प्रतीत होता है कि अन्दमान-निकोबार द्वीपसमूह कोही मैनाक नाम मिला होगा और इसके लिए निम्नलिखित कारण देखिए-

(१) बंगाल के दक्षिण में लगभग ८०० से १००० मील दूर समुद्र में रहे होंगे और यह करीब १०० योजनों का अंतर है, (क्रमतो योजनशतम्)।

(२) अंदामन् तथा निकोबार शब्दों से प्रारंभिक और अंतिम दो अक्षर उडा दें, तो 'मन् + निको' शेष रहता है। 'मनिको' तथा 'मैनाक' के मध्य ध्वनिसाम्य देखनेयोग्य है।

(३) वर्तमानकाल के बहुत से भूगोलशास्त्रज्ञ और भूस्तरशास्त्र-वेत्ताओं की राय है कि समुद्र में पर्वतों के डूबने से अन्दमान-निकोबार द्वीपसमूह की सृष्टि हुई।

(४) मलय प्रायद्वीप तथा सुमात्रा के बीच मलाक्काकी सामुद्रधुनी है और यह संभव है कि मैनाक का अपभ्रंश ही मलाका हुआ हो। हाँ, एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि मलय प्रायद्वीप के पश्चिमी तट पर मलाका नामक एक नगर है, जिसके कारण सामुद्रधुनी को यह, नाम मिला होगा। परन्तु यह नगर पुराना मैनाक नहीं हो सकता है क्योंकि रामायण में मैनाक का जो वर्णन पाया जाता है, वह अन्दमान-निकोबार द्वीपसमूह के वर्णन से मेल खाता है। यह संभव है कि अन्दमान-निकोबार के कारण मलाका (मैनाक) सामुद्रधुनी को यह नाम मिला होगा और उस सामुद्रधुनी की बदौलत नगर को मलाका कहने लगे।

(५) अन्दमान-निकोबार की स्थिति और विशेषतया मलाका की सामुद्रधुनी की अवस्थिति ठीक भू-मध्यरेखा पर है। मानचित्र पर देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि, निम्नस्थलवासियों को उत्तरी भूगोलार्ध में आने के लिए यह सामुद्रधुनी मानों प्रवेश द्वार ही है। उस द्वार पर परिघ जैसे अन्दमान-निकोबार द्वीप दीख पड़ते हैं। यदि अन्दमान में मैनाक की जगह हो तो आगे आस्ट्रेलिया को लंका मानना चाहिए।

(६) सुमात्रा में इन्द्रपुर नामक एक नगर है और इन्द्रगिरी नामक पर्वत भी है। इन नामों से ऐसी सूचना मिलती है कि अति पुरातन काल में यक्ष, गन्धर्व, नाग तथा अन्य भी अधूरे देव वहाँपर निवास करते हों और उनके नरेश को इन्द्र कहते थे।

(७) सेलेबीस द्वीपसमूह के (The Celebes Islands) दक्षिण पश्चिम छोरपर मन्दर नामक भूशिर तथा मन्दर खाडी है। यह अधिक संभव है कि, पुराणों में वर्णित मन्दर पर्वत, जिस से समुद्र का मन्थन किया गया था, यही हो। यह ठीक भूमध्य रेखापर दक्षिणी एवं उत्तरी गोलार्धों के बीच खडा है। उत्तरी गोलार्ध में देवों के उपनिवेश थे और दक्षिणी गोलार्ध में दानव रहा करते थे। इन सभी द्वीपों में

औषधियों वनस्पतियों की यथेष्ट मात्रा में उपलब्धि होती है। संभव है कि, इसी केन्द्रस्थान में देव, दानव एवं नाग एकत्रित हुए और परस्पर विचारविनिमय कर चुकनेपर रासायनिक विश्लेषणद्वारा विभिन्न औषधियों की जाँच करवायी, जिसके फलस्वरूप आयुर्वेद की प्रस्थापना हुई और अमृत नामक मूल्यवान् औषधि का आविष्कार हुआ।

सुरसा कौन है ?

लंका जाते समय सुरसाने हनुमान् को रोका, तब उसने उसके मुँह में घुसकर आगे गमन किया, ऐसी कथा सुन्दरकांड में पाई जाती है। अतः सुरसा का निश्चित स्वरूप जानना उचित है। सुमात्रा और जावाद्वीप ज्वालामुखी पहाडों की मालिकासे परिपूर्ण हैं। सुमात्रा की अपेक्षा जावामें ऐसे पहाडों की ऊँचाई अत्यधिक है। सुमात्रा के दक्षिणी छोरपर अवस्थित पर्वतशिखर सुमेरु नाम से प्रसिद्ध है और सूरबाया नामक विख्यात बंदरगाह के निकट है। इस की ऊँचाई १२००० फीट है। जावा में प्रारम्भकाल से ही हिन्दुजाति के उपनिवेश थे और इस समय भी वहाँ पर एक महान् हिन्दु मंदिर है। सुरसा, जो नागमाता कहलायी जाती थी, आगे चलकर सुरसामाता नाम से विख्यात हुयी। यही शब्द पश्चात् अपभ्रंश होते होते सुरसामैया, सुरसाबया या सूरबाया हो गया। रामायण से विदित होता है कि जावा में नागजातिके लोग रहा करते थे, जो वहाँ के प्रचण्ड ज्वालामुखी पहाड को सुरसामाता समझ, उस की पूजा करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि हनुमानजी सुमात्रा में विद्यमान और विशेष रूप से जावा की ज्वालामुखी पर्वतश्रेणी को लाँघकर चले गये थे और कविने आलंकारिक भाषा में यों वर्णन किया है कि नागोंने सुरसा से हनुमान् के बल की जाँच करने के लिए कहा, जिस पर उसने ज्वालामुखी रूप धारण कर के हनुमान् से कहा कि, 'वह उस के मुँहमें से निकल चला जाए।'

ज्वालामुखी का विवर या मुख खुला रहता है। सुरसाने अपना मुँह

फैलाकर हनुमान् को अपने जबड़े में धर दिया, इस का अभिप्राय इतना ही है कि ज्वालामुखी के सूराख में हनुमान् घुस गये और अगली राह से बाहर निकल पड़े। ज्वालामुखी के शांत हो जाने पर वहाँ इस भाँति गड्ढे या खोखली जगहें दीख पड़ती हैं, जिन में से एक छोर से दूसरे छोर तक जाने के लिए सड़कसी बन जाती है। मारुति की यात्रा की राह में ज्वालामुखी ऊँचा पर्वत मानों एक बड़ा भारी रोड़ासा अटक गया था, भारी रुकावट उपस्थित हुई थी। उपर्युक्त ढंग से उसने उस उलझन को सुलझाया, ऐसा प्रतीत होता है।

इस प्रकार सुरसा एवं सूरबाया का सम्बन्ध प्रस्थापित होने के कारण और चूँकि यह स्थान आस्ट्रेलिया महाद्वीप पहुँचने के मार्ग पर है, इसलिए इस महाद्वीप को लंका मानने में कोई आपत्ति नहीं।

ऐसा जान पड़ता है कि, अंदमान-निकोबार द्वीपों से आगे निकल चुकने पर, जो कि पाताल-निवासियों के द्वारपर लगाने की शृंखला के समान थी, हनुमान्जी सुमात्रा एवं जावा द्वीपों पर से जाने लगे। रामायण में इस का जो वर्णन है, वह निर्जीव वस्तुओं को प्राणयुक्त समझ कर किया गया है। यह अभी तक भारत में 'Animism' के नाम से विख्यात प्रथा है।

सुन्दरकांड के प्रथम सर्ग के श्लोक १५३ से १५९ तक पढ़कर यदि उस काव्यमय एवं अलंकारिक वर्णन पर विचार करें कि, सुरसा अपना मुँह अत्यधिक मात्रा में फैलाती है, तो उधर हनुमान् भी अपने शरीर को बृहदाकार कर डालते हैं और इस तरह की होड़ में हनुमान्जी सुरसा के मुँह में प्रविष्ट हो, क्षणमात्र में अविकल रूप से बाहर निकल आते हैं। इस का वास्तविक अर्थ क्या है ? भूगोल के मानचित्र पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होगा कि, सुमात्रा एवं जावा में ज्वालामुखी पर्वतों की अखण्ड मालिका लगभग १००० मील लम्बी है। ज्ञात होता है कि, कविने ज्वालामुखी पहाड़ों के मुखों को सुरसामाता के विस्तृत एवं धधकते मुख

से तुकना की हो और उत्तरी गोलार्ध से दक्षिणी गोलार्ध में जाते समय उन से हो गुजरना पडता है। इसे ही शायद कविने यों बतलाया होगा कि, सुरसा को इस भाँति सृष्टिकर्ताने वर दिया था। पाठक सोचें कि यह चित्रण कितना वास्तविक एवं हृदयंगम है।

सिंहिका।

सुरसा से अपना पिंड छुडाकर आगे बढने पर हनुमान् को सिंहिका से मुठभेड करनी पडी। सिंहिका के बारे में जो वर्णन है, वह चुम्बकमणि से युक्त द्वीपों के परिणाम से मिलताजुलता है। प्राचीन काल में यह धारणा प्रचलित थी कि, किसी अतिमानवशक्ति की प्रेरणा से ऐसी घटनाएँ हुआ करती हैं।

किष्किन्धाकांड के ४१ वे सर्ग में सिंहिका को 'अंगारका' नाम दिया गया है। यह न्यू गिनी (New Guinea) नामक द्वीप हो सकता है, जिस का आकार गोह के समान है। इस का आकार मानों एक भीषण जन्तु मार कर समुद्र में डाला हो, ऐसा है। इस के पैर काटे गये हैं, ऐसा प्रतीत होता है। वायुयान में से जाते समय हनुमान् को वह स्थान गोह जैसा दीख पडा हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

सिंहिका या न्यू गिनी द्वीप को पीछे छोड, आगे जाते ही हनुमान् की यात्रा पूर्ण हुई और वह लम्बगिरी की ओर देखने लगा। वहाँ उसे एक वनराजी दीख पडी।

प्राप्तभूयिष्ठपारस्तु... ... ...
योजनानां शतस्यान्ते वनराजिं ददर्श सः ॥ १९४ ॥
(सुन्दर १)

दक्षिण समुद्र में लंका बसाई गयी थी, यह निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है।

कामं मध्ये समुद्रस्य लंकेयं दुष्प्रधर्षणा।
(सुन्दर सर्ग २६, श्लो० १३).

आस्ट्रेलिया का मानचित्र देख लेने पर ज्ञात होगा कि, समुद्र में कई नदियाँ जा गिर रही हैं और वृक्षपूर्ण वनों की लंबी मालिका भी दीख रही है। यही बात अगले श्लोक में बतलायी है–

सागरं सागरानूपान् सागरानूपजान्द्रुमान्।
सागरस्य च पत्नीनां मुखान्यपि विलोकयन्॥ १९६॥
(सर्ग १)

लंकानगरी समुद्र-तट के अंतिम छोर पर उस पार बसाई हुई थी। जहाँ इस समय मेलबोर्न नगर है, उसी के समीप आस्ट्रेलियन आल्पस पर्वतश्रेणी से सटकर वह रही होगी।

स चारुनानाविधरूपधारी परं समासाद्य समुद्रतीरं॥२०१॥
(सर्ग १)

इस अनुमान की पुष्टि आगे चलकर हनुमान् ने सर्ग ५८ में जो कहा है–

गत्वा चाहं महाध्वानं पश्यामि नगमंडितम्।
दक्षिणं तीरमुदधेर्लङ्का यत्र च सा पुरी॥ ४३॥

और सर्ग ६५ में जो कहा है–

तत्र लंकेति नगरी रावणस्य दुरात्मनः।
दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे॥ १०॥

उससे होती है। वह कहता है, बहुत दूर चले जाकर दक्षिणसमुद्र के पर्वतों एवं वृक्षों से पूर्ण दक्षिण तट पर लंका का दर्शन हुआ।

"लंबस्य गिरे" (सर्ग १, १०२) शब्द विचार करनेयोग्य हैं। पर्वत उँचा है, ऐसा नहीं कहा, किंतु लंबा है, ऐसा प्रतिपादन किया है। मानचित्र पर निगाह डालने से ज्ञात होगा, यह कितना सयुक्तिक वर्णन है। आस्ट्रेलिया के The Great Dividing Range एक सुदीर्घ पर्वतमालिका है। इसमें तीन ऊँचे शिखर पाये जाते हैं। यही प्रायः रामायण का त्रिकूटपर्वत हो सकता है। इसी पर लंका की स्थिति होगी।

हनुमान् का वायुपथ।

ऊपर जो कहा जा चुका है, उससे यह बात निश्चित होती है कि सीता को ढूँढने के लिए हनुमान् भारत से लंका तक जिस मार्ग से चला गया था, वह यों था।

वह महेन्द्रगिरि से निकला, जो गंजाम जिले में पुरी एवं विझागापटम् के मध्य था और शायद वह एक बडे युद्धोपयोगी विमान में बैठा था (Fighter monoplane), जिस में बम आदि ज्वालाग्राही शस्त्रास्त्र पूर्ण मात्रा में रखे गये थे। बंगाल की खाडी पर कुछ काल उडता रहा और मैनाक के शिखर तक पहुँच गया, जिसे अंदमान निकोबार द्वीपसमूह कहना चाहिए। पश्चात् निर्भयतापूर्वक वह सुमात्रा एवं जावा के धधकते हुए ज्वालामुखी पर्वतों की श्रेणि को लाँघकर आगे बढने लगा। सूरबाया बन्दरगाह तक यही दशा रही। तदुपरान्त वह बाली, सुम्ब, सुम्बव, टिमोर आदि द्वीपों पर उडने लगा, जहाँ संभवतः उन दिनों यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, चारण एवं नागसदृश प्रगतिशील मानवी संघ रहा करते थे। अनावर्य समुद्र को (Arafura Sea) लाँघकर न्यूगिनी (सिंहिका, अंगारिका) द्वीपवासी भीषण एवं वन्य जातियों से मुठभेड करके सफलता पायी। पश्चात् वह लंबगिरि के ऊपर उडने लगा, जो अर्थात् ही आस्ट्रेलिया की प्रसिद्ध (The great Dividing Range नामक) सुदीर्घ पर्वतमालिका है। बडी वृक्षराजियों से युक्त एवं बडी नदियों से सुशोभित वह स्थान प्रेक्षणीय था।

हनूमान् जब लंका की ओर चले जा रहे थे, तब उसकी बडी भारी छाया समुद्र पर दिखाई दे रही थी, इसलिए ऐसा कहना ठीक जँचता है कि, वह वायुयान में से जा रहा था।"

इस प्रकार श्री. मेहताजी इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि, वर्तमान काल में विख्यात आस्ट्रेलिया महाद्वीप का दक्षिणी छोर प्राचीन काल में लंका-नाम से विश्रुत था। पाठक उसे पढकर अधिक विचार करें।

मद्रास के श्री परमाशिव ऐयर महोदयजी की धारणा है कि, मध्य भारत में जबलपूर के निकटवर्ती स्थान में लंका बसी हुई थी। उनका प्रतिपादन संक्षेप में यों है–

लंकानगरी कहाँ है ?

"संसार के इतिहासमें जो विख्यात लडाइयाँ हुई हैं, उदाहरणार्थ महाभारतका युद्ध, यूनानका ट्रोजनयुद्ध, राम एवं रावणके मध्य भीषण युद्ध, उनमें पहले दो युद्धों का स्थल निश्चित करना सुगम है, पर जिस लंकानगरी में रामने रावण को परास्त किया, वह कौनसा स्थान है ? उपर्युक्त दो युद्धस्थलों का निर्णय लगभग हो पाया है, पर समुद्र से घिरी हुई, त्रिकूटपर्वत के शिखरपर अवस्थित और चार महाद्वारों से युक्त लंकानगरी की जगह कौनसी है ? और वह किष्किंधानगरी भी कहाँ है, जो पर्वतों में तंग राह से चले जानेपर मिलनेवाली बडी गुहा थी ? इस का अन्वेषण करना दुरूह तथा अभीष्ट है।

अनेक शताब्दियों से चली आयी दन्तकथा के अनुसार लंका राम–निर्मित सेतु के परे है और यह पुल केवल रामेश्वरद्वीप तथा मनार के द्वीप के मध्य रेतके टीलों की एक शृंखलासी है। इस की लंबाई ३० मीलसे कुछ अधिक ही है और पश्चिम–वायव्य, पूर्व–आग्नेयी की ओर चली जाती है। समुद्र से घिरी रहने के कारण राम को उसपर पुल बँधवाना पडा, जिसकी लंबाई १०० योजन थी और जो उत्तर में महेंद्रगिरि के तल से सीधे दक्षिण में सुवेलाचल तक चला गया था। १०० योजन का अर्थ लगभग ग्यारह और आध मील है। पृष्ठसंख्या ३८ देखिए।

यद्यपि यह एक सर्वसाधारण धारणा है, तो भी लंका को सीलोन या सिंहलद्वीप समझना भूल है। रामायणमें लंका का उल्लेख पर्वतशिखरारूढ नगरी ऐसा है। सिंहलद्वीप कोई नगरी नहीं है तथा पर्वतशिखरपर बसाई हुई कोई भी नगरी वहाँपर नहीं है।

ऐसा सिद्ध किया जा सकता है कि, वाल्मीकि पक्षपातरहित भाव से

इतिहास तथा स्थानिक वर्णन लिखनेवाला है और वह सचाई को बहुत चाहता था। भौगोलिक वर्णन में अतिशयोक्ति नहीं के बराबर है। रामचंद्रजीने अयोध्या से वत्सदेशतक जो यात्रा की थी, उस का ठीक ठीक वर्णन वाल्मीकिने किया है। भौगोलिक वर्णन की दृष्टि से देखनेपर ऐसा कहने में कोई आपत्ति नहीं कि, पर्वतशृंगपर की और समुद्रवेष्टित लंकानगरी का वर्णन जो वाल्मीकिने किया है, वह वास्तविक है, निरी कल्पना से उद्भूत वह नहीं। नगरी का विनाश भले ही हो जाय, पर त्रिकूट तथा सुवेलपर्वत, यदि वे मनगढंत न हों, तो अवश्य ही खोज करनेपर मिल जाने चाहिए।

संस्कृतसाहित्य में लंका का अर्थ है रावण की राजधानी जो, त्रिकूटपर्वत के शिखरपर बसाई गयी थी, और समुद्र से घिरी थी। नदियों के झील-सदृश विस्तार होनेपर जो द्वीप बन जाते हैं, उन्हें बहुधा लंका नाम दिया गया है। पर संस्कृत साहित्य में ऐसा नहीं किया गया है।

रामायण पढने से ज्ञात होता है कि, वाल्मीकि सतर्कतापूर्वक प्रकृति का निरीक्षण करता था और ऐतिहासिक एवं भौगोलिक सत्यों के वर्णन में विवेक एवं सचाई से काम लेता था। अब सुवेल एवं त्रिकूट पर्वतों की जगह निश्चित कर पंपासरोवर के उत्तरी तटतक का मार्ग निश्चित करना चाहिए। पंपासरोवर के आरपार, ऋष्यमूकपर्वत के समीप से और महेंद्रगिरी की घाटी में से त्रिकूट को मार्ग चला जाता था। लंका जानेके लिए यही साधारण मार्ग था, ऐसा वाल्मीकिके वर्णन से सिद्ध है। यदि पंपा और त्रिकूट के स्थान (Topo maps पर) निश्चित किये जा सकें और यदि ये रामायण के वर्णन के अनुकूल दीख पडें, तो निस्सन्देह कहा जा सकता है कि, रामायण इतिहासात्मक काव्य है और रामायण के वर्णन में वास्तविकता पाई जाती है।

इन्द्रान पर्वत, जो १९३२ फीट ऊँचा है और जिस के तीनों ओर बडी हिरन नदी बहती है, त्रिकूटपर्वत है। हवेलीनामक एक ऊँची सतह का मैदान है और यहीं ६५० फीट ऊँची जगह पर उस का उद्गम है, तथा

नर्मदा एवं हिरन नदियों की विस्तृत घाटियाँ हैं। लंका के बारे में कहा है कि, वह त्रिकूटके शिखर पर अवस्थित है, (सागरेण परिक्षिप्ता निविष्टा गिरिमूर्धनि। अरण्य, ४७-२१)। हिरन नदी के दक्षिणी तट पर और इन्द्रान की विरुद्ध दिशा में सिंगलदीप है। यहां सागर शब्द से वह मध्य भारत का भाग लेना चाहिये, जो इस समय भी 'सागर' कहलाता है।

जबलपूर गैजेटियर में कहा है, 'वर्षाऋतु के दिनों में यह हवेली मैदान एक अति विस्तृत झील या तालाब जैसा दीख पडता है और बीच में केवल पानी ही रहने से समतल भूमि से अचानक ही विन्ध्याचल का दर्शन हो जाता है।' सागर जिले में पहले पानी का भारी संग्रह जम जाता था। अतः नाम में सार्थकता है। इसी सागर का निर्देश ऊपर किया है।

इस स्थान में गोन्डजाति का प्राबल्य है और ये मध्यप्रांत में रावणवंशी नाम से प्रसिद्ध हैं। त्रिकूटपर्वत में वृक्षराजियों से पूर्ण वन बहुत पाये जाते थे। सभी वन अतीव रमणीय प्रतीत होते हैं।

यदि रामायण में वास्तविक भौगोलिक बातों का वर्णन हो, तो जहाँ पर कविने वर्णन किया है कि, हनुमान् तथा अंगद के नेतृत्व में वानरोंने सफलतापूर्वक सीता की खोज की थी, वहीं पर लंका का अवस्थान ढूँढना चाहिए। किष्किन्धा और प्रस्रवण के दक्षिण में इन्हें खोज करनी पडी। किष्किन्धा के बिलकुल निकट ही प्रस्रवणगिरी था। राम एवं सुग्रीव का विश्वास था कि, किष्किन्धा के दक्षिण में रावण का निवास था और दक्षिण की ओर जानेवाले वानरोंसे सुग्रीवने यों कहा कि, 'सहस्र मस्तकवाले विन्ध्य तथा दुर्गम नर्मदा नदी को ढूँढो।' अब विन्ध्याद्रि तथा नर्मदा नदी दोनों विख्यात हैं, पर हनुमान्जी को लंका जाते समय नर्मदा पार नहीं करनी पडी और नाहीं रामचंद्रजी को वानरसेना के नेता बनकर लंका पर धावा करते समय नर्मदा लाँघने की आवश्यकता प्रतीत हुई। नर्मदा इतनी बडी तथा महत्वपूर्ण नदी है कि, अगर यह

राम या हनुमान् के मार्ग में आ जाती, तो वाल्मीकि अवश्य इस का उल्लेख कर देते। अतः स्पष्टतया कहा जा सकता है कि, शिखरस्थ लंका-नगरी के साथ त्रिकूटपर्वत विन्ध्य तथा नर्मदा के मध्य ही खडा था।

किष्किन्धाकांड के सर्ग ४८ तथा ४९ से ज्ञात होता है, विन्ध्याचल-तक ही खोज करने का कार्य सीमित था। क्योंकि वानरों की अपेक्षा थी कि, रावण का गृह विन्ध्य के आसपास ही होगा। सुग्रीव के कथनानुसार विन्ध्य से ही खोज करनी शुरू हुई। वानरोंने समूचे विन्ध्याचल की तलाश कर दी और एक छोरसे दूसरे छोर तक वे चले गये। विन्ध्य को ढूँढते समय ग्रामों, नगरों या मानवी उपनिवेशों का भी उल्लेख नहीं है और केवल जलप्रपात, पर्वत की उपत्यकाएँ तथा गुहाएँ, पहुँचने में कठिन नदियों के उद्गमस्थान, सघन कुंजों तथा बडी बडी चट्टानों की यथेष्ट खोज हुई। महेंद्रगिरि का जो वर्णन दिया है और 'जबलपूर गझेटीर' में जो उस स्थान का वर्णन मिलता है, दोनों में बहुत ही विलक्षण साम्य है।

जबलपूर से दमोहतक, जो ६६ मील दूर है, जो मोटर की सडक है, उस पर जनस्थान से ले लंका तक सभी महत्त्वपूर्ण स्थान पाये जाते हैं। पहला स्थान कटंगी है, जो जबलपूर से २४ मील दूर पर है। और कैमूर की घाटी के समीप है, जिसे वाल्मीकि ने महेन्द्रपर्वत कहा है। लंका जबलपूर से उत्तर में १५ मील अन्तर पर है। लंका से आगे ९ मील दूर चले जाने पर जगन्नाथ का देवालय मिलता है, जिसका उल्लेख राम-चन्द्रजी ने किया है (आराधय जगन्नाथं उत्तर. स. १०८, ३०)। यदि और भी आगे ८ मील यात्रा की जाय, तो ऋष्यमूक तथा प्रस्रवण तक पहुँच सकते हैं।"

श्री. टी. परमशिव ऐयर महोदय ने अँग्रेजीमें "रामायण और लंका" नामक पुस्तक, जिसकी पृष्ठसंख्या १५२ तथा मूल्य ४) है, दो विभागों में लिखी है, जिसमें लंबी भूमिका के साथ और अनेक अवतरण उद्धृत करते हुए वे सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि, विन्ध्याचल और नर्मदा

के मध्य किसी स्थान पर रावण की लंका बसी हुई थी । निस्सन्देह पुस्तक लिखने में ऐयर महोदय ने यथेष्ट परिश्रम तथा अन्वेषण करने में कोई कसर न उठा रखी है । ' The Poona Orientalist ' के अप्रैल –जूलै १९४१ के अंक में इस पुस्तक की पठनीय समालोचना की हुई है । बँगलोर–प्रेस, बँगलोर–नगर से यह पुस्तक मिलती है । पूना के ' The Oriental Book Agency ' के संचालक डॉक्टर एन्. जी. सरदेसाईजी ने पुस्तक में निर्दिष्ट स्थानों में भ्रमण करके कम से कम तीन स्थानों की सचाई के बारे में ' चक्षुर्वै सत्यं ' निश्चय प्राप्त कर लिया है । यदि जबलपूर के अन्वेषणकर्ता अधिक उत्खनन आदि करके नयी गवेषणा शुरू करेंगे, तो संभव है, प्राचीन काल के सम्बन्ध में बहुत कुछ जाननेयोग्य बातों पर अधिक प्रकाशरेखा पड जायगी । लेखक का कथन है कि, लंका का ' सिंहल–द्वीप ' नाम बौद्ध काल में पडा था ।

रामचन्द्रजीने अथवा हनुमान् आदि वानरों ने भी नर्मदा नदी को उल्लंघित कर आगे गमन किया, ऐसा उल्लेख नहीं पाया जाता है, यह एक प्रबल प्रमाण है, जिसका विचार होना चाहिए । इस पुस्तक के साथ ही एक बडा मानचित्र तथा कुछ छोटे नक्शे भी दिये हैं ।

ऊपर अति संक्षिप्त विवरण दिया है । गवेषणा में दिलचस्पी लेनेवाले पाठक इस पुस्तक को साथ ले स्वयं इस प्रांत में जाकर सूक्ष्मेक्षिका से ज्यादह खोज कर लें ।

समालोचना ।

इस भाँति श्री परम शिव ऐयर महोदयजी ने सागर जिले में पाई जानेवाली एक ऊँची चट्टान या पर्वतस्थली पर लंका का होना सिद्ध किया है । श्री. मेहताजी इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि, आस्ट्रेलिया महाद्वीप में विद्यमान सुदीर्घ पर्वतश्रेणी पर मेलबोर्न नगरी के समीपही कहीं लंका रही होगी और वहाँ तक पहुँचने में हनुमान् ने वायुयान में बम आदि अस्त्रों से लैस हो बैठकर यात्रा की थी, तो दूसरी ओर श्री

ऐयर महोदयजी सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि, मध्यभारत में ही लंका बसी थी और हनुमान् तथा रामचन्द्रजी को नर्मदा नदी पार कर जाने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई।

असंशय दोनों प्रगाढ पंडित हैं और अपने अपने कथन की पुष्ट्यर्थ पर्याप्त प्रमाण नितान्त गवेषणा एवं अथक परिश्रम से उद्धृत कर दिखाये हैं। वर्णन से जान पडता है कि, हनुमान् समुद्र पार कर गये, उनकी छाँह समुद्र पर गिर पडी थी और वे आकाशमार्ग से चले जा रहे थे। परन्तु इस प्रचुर काव्यमय वर्णन के सहारे यों बतलाने की चेष्टा करना कि, हनुमान् ने विमान से यात्रा की थी, अधिक सफलताप्रद नहीं है। आगे चलकर सुन्दरकाण्ड में ही प्रसंग आया है कि, हनुमान् स्वयं अपनी पीठ पर सीता को बिठलाकर अशोकवन में से ले जाना चाहता था, तब सीता का कथन है कि, वह शायद उस की पीठ परसे पैर फिसल कर समुद्र में जा गिरेगी। तथा उसका वेग अपने अर्थात् सीता के लिए असह्य हो उठेगा। यदि हनुमान् के समीप विमान रहता और अगर वह स्वयं ही उसे चलाता रहे, तो सीता को इस भाँति भय या आशंका दर्शाने का कोई कारण नहीं था, क्योंकि विमान के एक कमरे में यदि सीता बैठ जाती और हनुमान् विमान का संचालन करते, तो न नीचे गिर जाने की आशंका रहती और न परपुरुष के स्पर्श हो जाने का भय सीता के मन में उठता। इस प्रकार के अनेक वर्णन पढने से प्रतीत होता है कि, आस्ट्रेलियासदृश सुदूरवर्ती प्रदेश में हनुमान्जी विमान में बैठकर नहीं गये थे और भारत से आस्ट्रेलिया तक तैरकर जाना असंभव ही है। इसी कारण यद्यपि कुछ भ्रमोत्पादक वर्णन पाये जाते हैं, तो भी आस्ट्रेलिया को ही लंका मानने के लिए पर्याप्त तथा प्रबल प्रमाण उपलब्ध नहीं हुए हैं। काव्यमय वर्णनों में ऐसी सामग्री को ढूंढना निरर्थकही होगा।

श्री. ऐयरमहोदयजी का दावा है कि, सागर जिले के अन्तर्गत लंका रहनी चाहिए और इस के लिए बलवत्तर प्रमाण है कि, नर्मदा नदी पार

कर जाने का उल्लेख रामायण में नहीं, तथा उस जिले की हिरन नदी के प्रवाहपथ में लंका की स्थिति है, एवं लंका के निकटवर्ती स्थान हैं। सच है कि, अन्वेषणकर्ताने बड़ी चतुराई से इन स्थानों का प्रमाण उपस्थित किया है, पर ऋष्यमूकपर्वत से लगभग २५ या ३० मील के फासले पर यह लंका है। प्रश्न इतना ही है कि, साधारणतया ३० मील दूर विद्यमान् एक छोटेसे ग्राम के निवासी तथा वन्य एवं असंस्कृत भिल्ल या गोंडपरिवार में उत्पन्न रावण की अपहृता सीता ढूंढने के लिए सुग्रीव के अन्वेषकों को इतना घोर परिश्रम क्यों भला उठाना पड़ा।

निस्सन्देह सागर जिले में इनके निर्दिष्ट स्थान मिलते हैं, पर इस बात का स्पष्टीकरण यों किया जा सकता है कि, सर्वसाधारणतया जो स्थान विशेष प्रिय लगते हों, उन का नामकरण प्रिय नामों से ही किया जाता है। जिस प्रकार घरघर में जो बालकों के नाम रखना हो, तो प्राचीन पुण्यश्लोक एवं विख्यात पुरुषों के ही नाम चुने जाते हैं, तथा उन के रिश्तेदारों के नामों से भी सहायता ली जाती है। जैसे, जिस पुरुष का नाम राम हो, वह अपनी पत्नीका नाम सीता रखता है, तथा शंकर नामक मनुष्य अपनी स्त्री का नाम पार्वती रख देता है। उसी प्रकार, यदि पाँच न्यग्रोध या बड के झाड हों, तो उस जगह को बहुधा पंचवटी कहते हैं और घर के समीप अगर कोई बहनेवाली नदी मिल जाय, तो गंगा नाम से उसे पुकारते हैं। सम्भव है कि, सागर जिले के किसी अज्ञात पर विख्यात पुरुषने परिस्थिति की समानता पाने के कारण इन स्थानों के वैसे नाम रखे हों। चूँकि नामों में समानता पाई जाती है, तथा परिस्थिति भी समान है, इस कारण से उसी जगह को निश्चयपूर्वक लंका कहना असंभव प्रतीत होता है। रामचन्द्रजी तथा लक्ष्मण और वानरोंने जिस प्रदेश की खोज की थी, एवं जो परिश्रम उठाया था, वह केवल १० मील के अन्तर्गत स्थानविशेष तक सीमित था, ऐसा प्रतिपादन करने पर उसपर विश्वास रखना कठिन है।

औंध ग्राम के निकट पंचवटी, केदार ऐसे नामवाले स्थान पाये जाते हैं

और जैसे यहाँ के प्रसिद्ध पुरुषोंने ये नाम रख दिये, इसलिए प्रचलित हुए। उसी प्रकार सागर जिले के इन स्थानों के सम्बन्ध में समझना ठीक है।

नर्मदा नदी का उल्लेख नहीं, यह विचार करनेयोग्य बात है, पर अनुल्लेख कदापि पूर्णतया विश्वासार्ह प्रमाण नहीं हो सकता है।

एक बात और है। सागर जिले के एक टीले या पहाड से ले ऑस्ट्रेलिया तक लंका की अवस्थिति मानना हो, तो सिंहलद्वीप को वैसे मान लेने पर क्या हर्ज है? हमारी राय ऐसी है कि, अनादिकाल से जो धार्मिक आचार सेतु, रामेश्वरम्, धनुष्कोटी आदि स्थानों में प्रचलित होते आये हैं, उन्हें झूठ समझ कर अन्यत्र लंका की जगह मानने के लिए जबर्दस्त प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। पर अन्त में हम ऐसा स्पष्टतया कहना चाहते हैं कि, इन विद्वानोंने जो यह महान् परिश्रम किया है वह अवश्यमेव सराहनीय है और उन के निष्कर्षों पर अधिक विचार तथा गवेषणा करनी चाहिए। अनुसंधान जितना भी हो, उतना अल्प ही है।

अन्वेषणकर्ता अनुसंधान करते रहें और नूतन स्थानों पर लंका की खोज करें। ऐसा करनेसे अगर सचमुच सीलोन लंका न हो, तो ढूँढते ढूँढते परिश्रमों के फलस्वरूप लंका का स्थान निश्चित होगा। उस समय तक हम सिंहलद्वीप या सीलोन को ही लंका मान लें, तो कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि समूचे भारतवर्ष में प्रसृत हिन्दूजाति के अन्तस्तलपर सुदृढ रूप से अंकित धार्मिक भावरूपी अटल नींवपर यह स्थान अवस्थित है, अतः सिंहलद्वीप-सीलोन लंका का स्थान अडिग है।

हनुमान् के चित्त में इस विचार का प्रादुर्भाव हुआ कि, इस लंका में जाकर वहाँ पर सीता का अन्वेषण किया जाय। फलतः वह निकल पड़ा। जब हनुमान् ने प्रस्थान करना आरम्भ किया, तब उसकी उड़ान के परिणामस्वरूप वहाँ पर कैसी खलबली हुई तथा कैसा तहलका मचने लगा, इसका वर्णन देखिए।

विद्याधरोंमें खलबली।

त्रस्ता विद्याधरास्तस्मादुत्पेतुः स्त्रीगणैः सह ॥ २२ ॥
पानभूमिगतं हित्वा हैममासनभाजनम्।
पात्राणि च महार्हाणि करकांश्च हिरण्मयान् ॥ २३ ॥
लेह्यानुच्चावचान् भक्ष्यान् मांसानि विविधानि च।
आर्षभाणि च चर्माणि खड्गांश्च कनकत्सरून् ॥ २४ ॥
कृतकण्ठगुणाः क्षीबा रक्तमाल्यानुलेपनाः।
रक्ताक्षाः पुष्कराक्षाश्च गगनं प्रतिपेदिरे ॥ २५ ॥
हारनूपुरकेयूरपरिहार्यधराः स्त्रियः।
विस्मिताः सस्मितास्तस्थुराकाशे रमणैः सह ॥ २६ ॥
इति विद्याधरा वाचः श्रुत्वा तेषां तपस्विनाम्।
तमप्रमेयं ददृशुः पर्वते वानरर्षभम् ॥ २९ ॥

(सुंदर० सर्ग १)

'ज्योंही मारुतिने आकाशपथ में उड्डान करना शुरू किया, चारों ओर जो बडी भारी ध्वनि प्रसृत हुई, उसकी वजह से अपनी प्रेमिकाओं तथा स्त्रियों के साथ विद्याधरों का वर्ग उस महेंद्रपर्वत पर से निकल आकाश की राह चला गया। उस पर्वतपर विद्यमान प्रमोदगृह में रखी हुई वस्तुएँ जैसे कीमती बर्तन, आसन, सुवर्ण के बनाये हुए पात्र एवं जल रखने के बर्तन, भाँतिभाँति की खानेपीने की चीजें, आमिष, ढाल, तलवार आदि सभी जहाँ के वहाँ छोडकर उन्हें वहाँ से निकल भागना पडा। मालाओं से अपना कंठ विभूषित करनेवाले तथा शरीरपर चित्रविचित्र पुष्प एवं अनुलेपन धारण करनेवाले, कमलसदृश विशाल आँखोंवाले प्रबल विद्याधर आकाशपथ से जल्दबाजीपूर्वक गमन करने लगे। उनकी स्त्रियाँ भी, जो हँसमुख थीं और विभिन्न आभूषणों से सुहाती थीं, अचंभे में आकर अपने प्रेमियों के निकट जाकर खडी हुईं। ... ... वहाँ के तपोनिरत लोगोंने जो भाषण किए थे, उन्हें सुनकर वे विद्याधर जब नीचे देखने लगे

तब उन्होंने देखा कि एक बड़े शरीर से युक्त वानर चला जा रहा है।'

यहाँपर स्पष्ट दिखाई देता है कि, विद्याधर अपनी रमणियोंसहित किस तरह विहार एवं विवाद करते थे। खाना, पीना और ऐशआराम से दिन बिताना ही उन के कार्यक्रम में अन्तर्भूत किया गया था। अन्य कुछ भी नहीं, यही बात स्पष्ट होती है। बम बरसने शुरू होते ही युवक एवं युवतियाँ भ्रांतचित्त हो, 'लकी रेस्टोराँ' सदृश बृहदाकार होटल में से अपने जीवित की सुरक्षा करने के लिए इधर उधर भाग रहे हैं, ऐसा ही कुछ दृश्य विद्याधरों अर्थात् उपाधि-धारियों-शिक्षित श्रेणी के लोगों के संबंध में यहाँ दीख पड़ता है। इन उच्चशिक्षासंपन्न लोगों की विलासिता का अनुमान करना कोई कठिन बात नहीं, क्योंकि सुवर्णमय आसन एवं पात्रों की न्यूनता नहीं थी।

रामेश्वरम् और लंका।

हनुमानजीने रामेश्वरम् से प्रस्थान किया और बीचबीच में पाये जानेवाले टीलों तथा उच्च स्थलोंपर आराम करते हुए वे लंका पहुँच गए। १०० योजन का अन्तर था। कविने कहा है-

योजनानां शतं चापि कपिरेष खमाप्लुतः।
तव सानुषु विश्रान्तः शेषं प्रक्रमतामिति ॥ १०८ ॥
(सुंदर० १)

'सौ योजन अन्तरवाले समुद्रके पार चले जानेके लिए हनुमान् ने यह उड़ान ली है। मैनाकपर्वतपर विद्यमान विभिन्न शिखरोंपर कुछ देर बैठ कर आराम करता हुआ, वह धीरेधीरे यह अन्तर तै कर लेगा।'

मैनाकपर्वत के कई शिखर थे और इस पहाड़ की ये चोटियाँ लंका तथा भारत के मध्य समुद्र के पृष्ठभागपर कुछ अंश में दिखाई देती थीं। हनुमानजी समय समयपर इन पार्वतीय शृंगोंपर ठहरे और वहाँपर तनिक आराम ले चुकनेपर अधिक उमंग पाकर आगे बढ़ना शुरू किया। इस भाँति हनुमान् ने समुद्र का उल्लंघन किया।

वर्तमान काल में बीस-पच्चीस मील तैरकर जानेवाले लोग पाये जाते हैं। अतः कोई कारण नहीं कि मारुति की इस समुद्रोल्लंघनयात्रा को असंभव मान लिया जाय। इंग्लिश चैनेल, जो २२ मील लंबा है, पार करने में कई नारियों को सफलता मिल चुकी है। सिवाय इसके योगासनों-द्वारा पानी की सतहपर दो दों या तीन तीन घंटे आराम कर सकने की क्षमता रखनेवाले लोग हमने स्वयं देख लिए हैं। ऐसे लोग आसनों की सहायता से जलके ऊपर तैरते रहते और ध्यान भी कर लेते। यहाँपर विचार करनेयोग्य बात है कि, मत्स्यासन जैसे आसनों के फलस्वरूप पानी के पृष्ठपर घंटे दो घंटे विश्रांति पाना संभव है।

उपर्युक्त वर्णन के आधार से कह सकते हैं कि, लंका जाते समय हनुमान् को कुछ भूविभाग ऐसे दीख पडे, जो समुद्र की सतह से अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे थे और योगासनों के द्वारा भी जलपृष्ठपर तैरते रहकर आराम लेना संभव है। इस कारण से समय समयपर आराम लेकर और ऊँचे टीलोंपर कुछ देर खडे रहकर समूचा समुद्र तैरना संभव है। हाँ, इतना सच है कि, इस कार्यके लिए पर्याप्त तथा अत्यधिक सामर्थ्य की आवश्यकता है।

मैनाकपर्वतपर रहनेवाले लोगोंने हनुमान् का सुस्वागत करने के लिए बडी भारी आयोजना तैयार कर रखी थी, जिसे देखकर हनुमान् उन से कहता है–

प्रीतोऽस्मि, कृतमातिथ्यं, मन्युरेषोऽपनीयताम् ॥ १२४ ॥
त्वरते कार्यकालो मे अहश्चाप्यतिवर्तते।
प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा ॥ १२५ ॥
इत्युक्त्वा पाणिना शैलं आलंभ्य हरिपुंगवः।
जगामाकाशमाविश्य वीर्यवान् प्रहसन्निव ॥ १२६ ॥
(सुंदर० १)

'तुम्हारे इस आदरपूर्वक सत्कार के कारण मुझे संतोष हुआ है। तुमने अपने अतिथिसत्कार का कार्य पूरी तरह निभाया है। तुम्हारे कथन के

अनुसार मैं यहाँपर अधिक समयतक ठहरने में अक्षम हूँ, इसलिए आप क्रोध न करें। मेरे लिए बहुत थोडा समय शेष रहा है। दिन बीत रहा है और मैं ऐसी प्रतिज्ञा भी कर चुका हूँ कि, बीच में कहीं भी मैं नहीं ठहरूँगा।' ऐसा कहकर हनुमान्ने हाथ से छूने का किंचित् अभिनय किया और हँसते हँसते राहपर आगे चलना शुरू किया।

यदि कार्य करनेवाले स्वयंसेवक ऐसे हों, तोही कार्य की निर्विघ्न समाप्ति हो जाती है। जो सच्चे स्वयंसेवक होते हैं, उनका ध्यान विश्रांति या आराम करने की ओर आकर्षित नहीं होता, अपितु कार्य के पूरा करनेपर ही वह सारा का सारा केन्द्रित हो जाता है। ऐसे स्वयंस्फूर्ति से कार्य करनेवाले सेवकों को जितना भी धन्यवाद दिया जाय थोडा ही है।

सिंहिका राक्षसी का वध।

छायाग्राहि महावीर्यं तदिदं नात्र संशयः।
स तां बुध्वार्थतत्त्वेन सिंहिकां मतिमान् कपिः ॥१८१॥
ततस्तस्या नखैस्तीक्ष्णैर्मर्माण्युत्कृत्य वानरः ॥१८७॥
हृतहृत्सा हनुमता पपात विधुराम्भसि ॥१८९॥
(सुंदर० १)

'वह बडा भारी जल में संचार करनेवाला जन्तु था, जो छाँह को पकडकर उस से आकर्षित करने की क्षमता रखता था। उसे सिंहिका समझकर हनुमान् ने नाखूनों से उस के मर्मस्थल को चीरकर फेफडों को बाहर निकाल दिया, तब वह गतप्राण हो पानी में गिर पडी।'

यहाँपर सिंहिका को 'छायाग्राहि' नाम दिया गया है। हनुमान् की छाया पानीपर गिर गयी थी और इस राक्षसीने उसे पकडकर हनुमान् को अपनी ओर खींच लिया। यह तो निरी कवि कल्पना है। इस बृहदाकार सिंहिका सदृश जन्तु को पकड के केवल नाखूनों की सहायता से उसे मर्माहत कर यमपुर भेजा। ऐसा करने के लिए बडी प्रचण्ड शक्ति की आवश्यकता है। यदि विदेश अकेले चले जाने का अवसर आ जाय, तो इस तरह अत्यंत प्रबल होना अनिवार्य है।

अथक यात्रा करने की क्षमता।

स सागरमनाधृष्यमतिक्रम्य महाबलः।
त्रिकूटस्य तटे लंकां स्थितः स्वस्थो ददर्श ह ॥ १ ॥
योजनानां शतं श्रीमांस्तीर्त्वाप्युत्तमविक्रमः।
अनिःश्वसन् कपिस्तत्र न ग्लानिमधिगच्छति ॥ ३ ॥
(सुंदर० २)

'सौ योजन लंबे समुद्र को पार करके हनुमान् लंका पहुँच गये और त्रिकूटपर्वतपर बसाई हुई लंका को उसने देखा। इतना बडा महासागर तैरनेपर भी (अनिःश्वसन्) वह हाँफने नहीं लगा और उसे थकावट भी प्रतीत नहीं हुई। इतना ही नहीं किंतु (स्वस्थः) तैरने के पहले जैसे वह था, वैसे ही अब भी स्वस्थ प्रकृति का बना रहा। इतने घोर परिश्रम कर लेनेपर भी थकावट उसे छूतक न गयी।'

इस वर्णन से ज्ञात होता है कि, किस तरह विदेश में महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए जानेवालों में शक्ति एवं सामर्थ्य की आवश्यकता रहती है। शक्ति तथा युक्ति दोनों की बडी जरूरत रहती है।

लंका--नगरी।

हनुमान् के अंतस्तल में चिन्ता का प्रादुर्भाव।

ददर्श स कपिः श्रीमान् पुरीं आकाशगां इव ॥ १९ ॥
पालितां राक्षसेन्द्रेण निर्मितां विश्वकर्मणा ॥ २० ॥
वप्रप्राकारजघनां विपुलांबुवनाम्बराम्।
शतघ्नीशूलकेशान्तां अट्टालकवतंसकाम् ॥ २१ ॥
तस्याश्च महतीं गुप्तिं सागरं च निरीक्ष्य सः।
रावणं च रिपुं घोरं चिन्तयामास वानरः ॥ २४ ॥
आगत्यापीह हरयो भविष्यन्ति निरर्थकाः।
न हि युद्धेन वै लंका शक्या जेतुं सुरैरपि ॥ २५ ॥

इमां त्वविषमां लंकां दुर्गां रावणपालिताम्।
प्राप्यापि सुमहाबाहुः किं करिष्यति राघवः ॥ २६ ॥
अवकाशो न साम्नस्तु राक्षसेष्वधिगम्यते।
न दानस्य न भेदस्य नैव युद्धस्य दृश्यते ॥ २७ ॥
(सुंदर० २)

'लंका के निकट पहुँच जानेपर आकाश को मानों छूने जा रहीसी वह नगरी उसे दीख पडी, क्योंकि उस नगरी की नींव पर्वतपर ही पडी थी। उसके सृजन का सूत्रपात विश्वकर्मा के हाथों हुआ था और रावण का राज्य वहींपर चलता था। उस लंका के चतुर्दिक बडे बडे प्राचीर एवं परकोटे बने हुए थे और उसके बाहर बडी बडी जलप्रपूर्ण खाइयाँ विद्यमान थीं। बीच बीच में बुर्ज की रचना की गयी थी, जिनपर तोपें तथा सभी शस्त्रास्त्र सुसज्ज कर रखे थे। महान् वन एवं यथेष्ट जल वहाँपर पाये जाते थे। कुछ जगहोंपर दूर से शत्रुसंचार को निहारने की व्यवस्था की गयी थी। चारों ओर रक्षा का प्रबंध बडी सतर्कतापूर्वक कर रखा था। नगरी की संरक्षक योजनामें लेशमात्र भी त्रुटि नहीं दिखाई पडती थी। यह सब कुछ देख लेनेपर हनूमान् बडी चिंता एवं दुविधा में पड गए।'

ध्यान में रहे कि हनुमान् सुग्रीव के प्रमुख सेनापतिपदपर विराजमान थे और रावण को हराकर कैद करनेवाले वाली के साथ रहकर अनेक बार वह विजयी भी बन चुका था। तिसपर भी लंका की सुरक्षा का कौशलपूर्ण सुप्रबंध देखकर वह विचलित तथा व्यथितहृदय बन गया और सोचने लगा कि 'अगर वानरसेना यदि यहाँपर आ जाय, तो भला वह क्या कर सकेगी? यहाँ की संरक्षणयोजना देखते हुए मुझे जान पडता है कि, देवतागण भी विफल प्रयत्न हुए बिना न रहेगा। वानरों की तो बात ही और है। मैं कल्पना नहीं कर पाता कि, उनकी क्या दशा होगी। यहाँ पहुँचनेपर भी भला रामचंद्रजी कैसे इस रावण को परास्त कर पायेंगे। पहले तो यहाँ आना ही महाकठिन कर्म है (दुः- गां) और रावण के इस प्रबंध के कारण उसे परास्त एवं धराशायी करना तो उस से

अधिक बीहड कार्य है। अपने में विद्यमान पर्याप्त शक्ति के कारण राक्षसों के गर्व की कोई सीमा नहीं है, इसलिए सामोपचार से कार्य नहीं चल सकता है और वे धनाढ्य हैं, इस कारण से प्रचुर मात्रा में धन आदि देन देने से वे वशीभूत होंगे, यह आशा व्यर्थ है। चूँकि उन में एकता पाई जाती है, अतएव (भेदः) उन में फूट डालने की चेष्टा करने में सफलता नहीं होगी। अन्ततो गत्वा युद्ध छेडकर उन्हें जीतना चाहें, तो उन की अच्छी व्यवस्था के कारण यहाँ भी निराशही होना पडता है। युद्ध ठाननेकी कल्पना सुतरां दूरापास्त है।'

राक्षसों तथा वानरों के राज्य के मध्य धन, ऐश्वर्य, सजधज एवं सुप्रबंध के बारे में इतनी भारी भिन्नता थी। लंका का असीम वैभव तथा अपार संपत्ति का अवलोकन कर चुकने पर हनुमान् के चित्त की जो दशा हुई तथा वह जिस अनुपात में प्रभावित हुआ, वह प्रेक्षणीय है। चिरकाल से अभ्यस्त वीर को भी विचलित एवं भ्रांत कर डालने की क्षमता राक्षसों के बाह्य दिखावे में थी। पाठक देखें कि, कैसे वानरों का एक प्रमुख सचिव तथा कुशल सेनापति भी कुछ कालतक स्तिमित एवं किंकर्तव्यमूढ बन बैठा है।

भेस बदलकर नगरी में घुस जाना।

लंका में घुसते समय हनुमान्ने वेशपरिवर्तन किया था, देखिए–

अनेन रूपेण मया न शक्या रक्षसां पुरी।
प्रवेष्टुं राक्षसैर्गुप्ता क्रूरैर्बलसमन्वितैः ॥ ३१ ॥
महौजसो महावीर्या बलवन्तश्च राक्षसाः।
वञ्चनीया मया सर्वे जानकीं परिमार्गता ॥ ३२ ॥
(सुंदर० २)

' यदि मैं इसी वेश को धारण करूँ, तो मुझे लंका में प्रवेश मिलना सम्भव नहीं। यहाँ सुरक्षा का (गुप्त) प्रबन्ध बडी सावधानतापूर्वक किया गया है और राक्षस भी नितांत निर्दयी हैं। इन राक्षसों को भुलावे

में डालकर (वंचनीयाः) मुझे लंका के भीतर जाना चाहिए और वहाँ सीता के स्थान की खोज करनी चाहिए। '

ऐसा प्रतीत होता है कि, पहनावा बदल कर और पहरेदारों को धोखा देकर हनुमान् लंका में चले गये, देखिए-

लक्ष्यालक्ष्येण रूपेण रात्रौ लंकापुरी मया।
प्राप्तकालं प्रवेष्टुं मे कृत्यं साधयितुं महत् ॥ ३३ ॥

हनुमान् ने ठान लिया कि, लंकानगरी में इस भाँति प्रवेश करना चाहिए कि, यदि कोई देख ले, तो भी वह पहचान न सके और दीख पडने का मौका आ जाने पर भी किसी के ध्यान में वह बात न आ जाय, याने किसी के दिल में सन्देह पैदा न हो, ऐसा रूप धारण करके तथा पहचानने में अशक्य ऐसा वेष धारण कर के रात्री के समय लंकाप्रवेश करना ठीक है! ऐसा सोचकर रात्री की वेला में पहरेदारों के ध्यान में न आ जाय, इस तरह लंका में प्रवेश किया। हनुमान् के विचार देखिए-

अदृष्टो राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना।
केनोपायेन पश्येयं मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥ ३५ ॥
न विनश्येत् कथं कार्यं रामस्य विदितात्मनः।
एकामेकस्तु पश्येयं रहिते जनकात्मजाम् ॥ ३६ ॥
भृताश्चार्था विनश्यन्ति देशकालविरोधिताः।
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥ ३७ ॥
अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते।
घातयन्तीह कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ॥ ३८ ॥
न विनश्येत्कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं भवेत्।
लंघनं च समुद्रस्य कथं नु न भवेद्वृथा ॥ ३९ ॥
मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदितात्मनः।
भवेद्व्यर्थमिदं कार्यं रावणानर्थमिच्छतः ॥ ४० ॥

न हि शक्यं क्वचित् स्थातुं अविज्ञातेन राक्षसैः।
अपि राक्षसवेषेण किमुतान्येन केनचित् ॥ ४१ ॥
वायुरप्यत्र नाज्ञातश्चरेदिति मतिर्मम।
न ह्यत्राविदितं किंचिद्रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ ४२ ॥
(सुंदर० २)

'मुझे ऐसा कोई उपाय ढूँढ लेना चाहिए, जिससे राक्षस मुझे पहचान न सकें और मैं एकांतस्थल में सीता को देख सकूँ। अगर कहीं राक्षस मुझे पकड लें, तो रामचन्द्रजी का यह कार्य अधूरा ही रह जायगा। देश तथा काल के विरुद्ध यदि कोई कार्य दूत कर बैठें, तो किये कराए कार्य पर पानी फेर जायगा। जो दूत गर्वभरे होते हैं, वे अपने स्वामी के कार्यों में बिगाड पैदा कर देते हैं। कहीं मुझ से वैसा न होने पाय, समुद्रोल्लंघन-कार्य फलीभूत होवे और रामचंद्रजी का कार्य पूरा हो जाय, ऐसी योजना ढूँढ कर कार्यान्वित करनी चाहिए। अगर राक्षस मुझे पहचान लें, तो सारा काम विनष्ट एवं मटियामेट हो जायगा। यहाँ की व्यवस्था इतनी चतुराई से तथा कडाई से की जाती है कि, अनजाने वायु तक इधर से उधर नहीं चल सकेगा। राक्षसों का वेष भी अगर धारण किया जाय, तो भी मैं नहीं समझता, बिना पहचाने गये कोई यहाँ रह सकेगा। ऐसी दशा में वानरवेश या अन्य किसी भेसका ग्रहण मैं कर लूँ, तब तो तुरन्त मुझे पहचानकर पकड लेंगे। सभी मानवों के अखिल व्यवहारोंपर राक्षसों की देखभाल अत्यंत सतर्कतापूर्वक होती है। अतः इनके न देखते हुए भला मैं कैसे यहाँ रह सकूँ?'

हनुमान् के मनमें इस भाँति विचारतरंग उठने लगे। हनुमान् की उपर्युक्त विचारधारा से विदित होगा कि, लंकामें सुरक्षा का प्रबंध किस चरम कोटितक पहुँचा था। पर्यवेक्षण एवं रक्षा के कार्यपर नियुक्त पुरुष हरेकपर सूक्ष्म निगाह डालते थे। कौन नया मनुष्य आया है, वह किस तरह का बर्ताव रखता है, कहाँ निवास करता है, किसलिए आया है, क्या करने की इच्छा रखता है, कितने दिन रहनेवाला है आदि

सभी बातों की जाँच राक्षसों से हुआ करती थी, इसलिए हनुमान् के लिए यह असंभव था कि, वह अज्ञात रूपसे लंका में रहने पाय। राक्षसों का वेश धारण करनेपर भी हनुमान् को भय था कि, शायद वे कहीं पकडे न जायँ। तो फिर वानरवेष को ज्यों का त्यों धारण करके सडकोंपर संचार करते हुए हनुमान् को कोई देख पाता, तो बेशक वह तुरन्त ही पकड लिया जाता।

यह सब कुछ देख लेनेपर तथा रात्री का प्रारंभ होनेपर पहरेदारों के आँखों में धूल फेंककर गुप्त रूप से हनुमान् ने लंका में लुकछिपकर प्रवेश किया। अँधेरा चारों ओर फैल रहा था।

लंका के प्राचीर के भीतर चले जाते ही लंकानगरी की जो सुषमा हनुमान् के दृष्टिपथ में अवतीर्ण हुई, वह सचमुच अवर्णनीय थी। विशाल एवं चौडे उच्च कोटि के राजमार्ग दीख पडते थे, आठ आठ मंजिलवाले तथा आकाश को छूनेवाले प्रासादों की मालिका मार्ग के दोनों ओर दीख पडती थी। चूना लगवानेके कारण महल शुभ्र वर्णवाले थे, जिनपर स्वर्ण-शिखर जगमगाते हुए दीख पडते थे। जिधर देखें उधर धनिकता तथा विलासिताकी मानों बाढसी आयी थी। स्वर्ण, रत्न तथा अपार वैभव आँखों को चौंधिया देते थे। इस सुसंपन्नता को देखकर हनुमान् कुछ कालतक स्तिमित हो गए। ऐसी बृहत्तर नगरी में किस ढंग से सीता का अन्वेषण किया जाय, यह चिंता उसके मनमें प्रादुर्भूत हुई, जिस के फल-स्वरूप वह तनिक हतोत्साह तथा निराश बन गया।

सूर्य के डूब जानेपर शीघ्रही हनुमान् लंका में प्रविष्ट हुए और लगभग घंटा डेढ घंटा बीत चुकनेपर चंद्रमा का उदय हुआ, जिससे सुफेद चाँदनी सर्वत्र छिटक पडी। उस चंद्रिका आलोक में गगनचुम्बी अट्टालिकाओं की छाँह भूमिपर पडी थी, अतः होनेवाली अँधियारी के बदौलत हनुमान् को चलना फिरना सुगम हुआ। इस तरह चंद्रमा भी मानों रामचंद्रजी के कार्य में सहायता पहुँचा रहा था (चंद्रोऽपि साचिव्यं कुर्वन्। २।५५)

शायद कृष्णपक्ष की द्वितीया का समीपवर्ती यह दिन हो सकता है, क्योंकि इसी दिन सूर्यास्तमन के उपरान्त अँधेरा फैल जाता है और थोडी ही देर में चंद्रमा का उदय हो जाता है। वर्णन के अनुसार चंद्रमाका उजाला धीमा नहीं था, किन्तु पर्याप्त मात्रा में उजेला उपलब्ध होता था। इस कारण ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि वह तृतीया या चतुर्थी के दिन हनुमान् ने लंका में प्रवेश किया हो।

निशाचर।

ऐसा प्रतीत होता है कि, रात्रि के समय कार्य कर चुकनेपर दिन को निद्रा पाना निशाचरों का साधारण-कार्यक्रम था। रात को ढाई तीन बजनेतक ये काम में निरत हुआ करते तथा सभाओं के अधिवेशन भी तभी संपन्न हुआ करते। इस कारण से ३ या चार बजे अत्यधिक देर हो चुकनेपर सो जानेके कारण दुपहर को ११-१२ बजे ये बिस्तरा छोड देते। रात्री की वेला में ही इनका प्रमुख भोजन समाप्त हो जाता। यदि ये जल्द उठ भी जाते, तो ९-१० बजने के पहले कदापि नहीं। इस भाँति इनकी दिनचर्या रहनेके कारण तथा रात्रीमें ही अधिकांश व्यवहार संचालित करने के कारण जान पडता है कि, निशाचर, क्षपाचर, रात्रिंचर ऐसे नामों से ये पहचाने जाते थे।

समूची रात को दिये प्रज्वलित हुआ करते। चूँकि यों प्रथासी पड गयी थी कि, सभी कार्य रात्रीमें ही प्रचलित किये जायँ, इस कारण यह नितान्त स्वाभाविक प्रतीत होता है, दीपक रातभर प्रज्वलित दशा में रखे जाते थे।

रात्री के समय लंकानगरी का वर्णन।

तां रत्नवसनोपेतां गोष्ठागारावतंसिकाम्।
यंत्रागारस्तनीमृद्धां प्रमदामिव भूषिताम् ॥ १८ ॥
तां नष्टतिमिरां दीपैर्भास्वरैश्च महाग्रहैः ॥ १९ ॥

(सुंदर० ३)

... ... पुरीं रम्यां प्रविभक्तमहापथाम् ॥४८॥
प्रासादमालावितता स्तम्भैः काञ्चनसन्निभैः।
शातकुम्भनिभैर्जालैर्गन्धर्वनगरोपमाम् ॥४९॥
सप्तभौमाष्टभौमैश्च स ददर्श महापुरीम्।
स्थलैः स्फटिकसंकीर्णैः कार्तस्वरविभूषितैः। ॥५१॥
काञ्चनानि विचित्राणि तोरणानि च रक्षसाम्।
लङ्कामुद्योतयामासुः सर्वतः समलङ्कृताम् ॥५२॥
स पांडुराविद्धविमानमालिनीं महार्हजाम्बूनदजालतोरणाम्॥५४॥
अचिन्त्यामद्भुताकारां दृष्ट्वा लंकां महाकपिः। ॥५३॥
(सुन्दर० सर्ग २)

रम्यकाननतोयाढ्यां पुरीं ... ... ॥ २ ॥
शारदाम्बुधरप्रख्यैर्भवनैरुपशोभिताम्।
... ... सागरानिलसेविताम् ॥ ३ ॥
शातकुम्भेन महता प्राकारेणाभिसंवृताम् ॥ ६ ॥
जाम्बूनदमयैर्द्वारैर्वैदूर्यकृतवैदिकैः। ॥ ८ ॥
मणिस्फटिकमुक्ताभिर्मणिकुट्टिमभूषितैः ॥ ९ ॥
रक्षिता रावणबलैरुद्यतायुधपाणिभिः ॥ १४ ॥
... ... अभिगुप्ता समंततः ॥ २४ ॥
(सुन्दर० सर्ग ३)

'वह लंकानगरी रमणीय थी, क्योंकि इसकी बडी बडी सडकें ठीक तरहसे बनायी हुई थीं, जिन पर बडे बडे प्रासादों की मालिकासी लगी हुई थी। सुवर्ण के बनाये हुए खंभे तथा जाले स्थानस्थानपर दीख पडते थे। वहाँ पर सात सात, आठआठ मंजिलवाले घर विद्यमान थे। फर्शपर रत्न एवं सुवर्ण से पच्चीकारी की गयी थी और सुनहले तोरण लगाये गये थे। इसलिए वह नगरी बहुत नयनमनोरम दिखाई देती थी। सफेद महल, सुन्दर बन एवं जलाशय, सुनहली दीवार, रत्नों तथा सुवर्ण की कारीगरी से वह नगरी सुशोभित थी, जहाँ समुद्रपर से बहनेवाली वायु पाई जाती

थी और रात्री के समय जगमगाते दीपकों एवं प्रकाशपुंजों से वहाँका अँधेरा विनष्ट हो गया था। ऐसी नगरी की रक्षा हाथ में हथियार धारण करनेवाले रावण के बलिष्ठ सैनिक कर लिया करते थे। समूची लंकानगरी बनी-ठनी स्त्री के समान दीख पडती थी।'

उस नगरी में रात के समय गायन वादन तथा नृत्यादि कार्यक्रम प्रचलित हुआ करते थे।

शुश्राव रुचिरं गीतं त्रिस्थानस्वरभूषितम् ॥ १० ॥
स्त्रीणां मदनविद्धानां दिवि चाप्सरसामिव।
शुश्राव कांचीनिनदं नूपुराणां च निःस्वनम् ॥११॥
तन्त्रीस्वराः कर्णसुखाः प्रवृत्ताः ... ... (सुन्दर० स. ५)

हनुमान्ने ऐसी सुन्दर लंकानगरी का दर्शन प्राप्त किया। वहाँ पर समूची रात्रि की समाप्ति तक दीपकमाला के घरों तथा सडकों पर प्रज्वलित रहने के कारण सारी नगरी मानों प्रदीप्त हुईसी जान पडती थी। पाठक यदि युद्धपूर्व लण्डन या न्यूयॉर्क नगरी की कल्पना कर लें, तो प्रतीत होगा, वर्णन में कितनी सजीवता पाई जाती है।

ऐसी नगरी में प्रवेश करते ही एक महिला द्वारसंरक्षिकाने हनुमान् को मार्ग में ही रोकने की चेष्टा की, तथा उससे भाँति भाँति के प्रश्न पूछना आरम्भ किया—

कस्त्वं, केन कार्येण इह प्राप्तो वनालय ?।
कथयस्वेह यत्तत्त्वं यावत्प्राणा धरान्ति ते ॥ २३ ॥
(सुंदर० ३)

वह पूछने लगी- 'तू कौन है ? किसलिए तू यहाँ पर आया है ? अरे जंगल में रहनेवाले ! जल्द बोल, नहीं तो तुम्हारे प्राण चले जायेंगे।'

इस नारी की नियुक्ति नगरसंरक्षकदल के प्रमुख अधिकारी के पदपर हुई थी। इससे प्रतीत होता है कि, उन दिनों राक्षसों के राज्य में स्त्रियों को नगरसंरक्षणकार्य में (Civil Guards) भाग लेने की स्वतन्त्रता

प्राप्त थी। यह महिला निडर बन रात्री के समय पर्यवेक्षण का कार्य करती हुई संचार करती थी और इसके अधीन समूची लंकानगरी थी अर्थात् समूचे नगरसंरक्षक दल की देखभाल करना इस के सुपुर्द था।

हनुमान् को लंका में प्रविष्ट हुए शायद पूरे दो घंटे भी नहीं बीते, इतने में नगरसंरक्षकदल की प्रमुख नेत्री महिलाने उसे टोका और डाँटते हुए पूछा कि, 'तू कौन है?' इधर हनुमान् ने भेस बदलकर भरसक चेष्टा की थी कि, वह गुप्त तथा अपरिचित एवं अज्ञात रहे और दबे पाँव वह लंका में घुस गया था। तथापि लंका का प्रबन्ध इस तरह किया गया था कि, वह सिर्फ दो घंटे तक भी अज्ञात रूप से रहने में असफल ही बना रहा। उस प्रमुख महिला तथा हनुमान् के मध्य जो वार्तालाप हुआ, वह प्रेक्षणीय है।

संरक्षक महिला- (कस्त्वं, केन कार्येण इह प्राप्तः?) तू कौन है और यहाँ पर किसलिए आया है? यदि तू ठीक उत्तर न देगा, तो तुरन्त तेरे प्राण-पखेरू उड जायेंगे।

हनुमान्- (का त्वं विरूपनयना पुरद्वारेऽवतिष्ठसे?) अरी बदसूरत आँखोंवाली नारी! मैं तेरे प्रश्नों का जवाब दूँगा, लेकिन पहले तो यह कह दे कि, इस दरवाजे पर खडी रहनेवाली तू भला कौन है? और इस भाँति मार्ग में रुकावट डालकर तू क्यों खडी है?

लंका की संरक्षिका- (क्रोधपूर्वक) महामति रावणकी ओरसे नियुक्त हुई मैं लंकानगरी का संरक्षण करती हूँ और नगरसंरक्षणदल के मुख्य अधिकारपदपर विराजमान हूँ। मेरी उपेक्षा करके तू, याद रख, जिंदा नहीं रह सकता है। (दुर्धर्षाऽहं इमां नगरीं रक्षामि। मामवज्ञाय नगरीं प्रवेष्टुं न शक्यं। मया निहतः अद्यैव प्राणैः परित्यक्तः स्वप्स्यसे।) मुझे यह अधिकार प्राप्त है कि, जो सन्देह पैदा करनेवाला मनुष्य मिल जाय, तो मैं तुरन्त उसे यमसदन भेज सकती हूँ, यह बात ध्यान में रख और इस भाँति मतवाले बन बातें न कर।

हनुमान्- अरी नारी! मेरा यही उद्देश्य है कि, मैं इस रमणीय नगरी

का अवलोकन कर लूँ। अतः मैं यहाँ आया हूँ। मेरा दूसरा कोई उद्देश्य नहीं है। उपवन एवं मनोहर प्रासाद देखकर मैं लौट जाऊँगा। (द्रक्ष्यामि नगरीं लंकां साट्टप्राकारतोरणाम्। इत्यर्थमिह संप्राप्तः परं कौतूहलं हि मे।)

लंका- मेरी अनुमति के सिवा तू लंका में घुस नहीं पायेगा। (मामनिर्जित्य न शक्यं द्रष्टुं नगरम्।)

हनूमान्- हे भद्र नारी! अच्छा मुझे सम्मति तो दीजिए मैं नगरी को निहार लौट जाऊँगा। (भद्रे! दृष्ट्वा पुरीं पुनर्यास्ये यथागतम्।)

अभी इतनी बातचीत पूरी भी न होने पायी कि, उस नारी ने झल्लाकर हनुमान् को एक चपत जमा दी। वह भी तैयार ही था, बस, वैसे ही चिल्लाकर उसने उस पर वज्रमुष्टि का प्रहार किया। उस आघात के परिणामस्वरूप वह वहीं पर तुरन्त ही चकराती हुई गिर पडी। हाँ, अपने हाथ से नारीहत्या न हो, इसलिए हनूमान् ने कुछ हल्कासा प्रहार किया, नहीं तो उस अबला के प्राण-पखेरू तत्काल उड जाते। (कृपां चकार तेजस्वी मन्यमानः स्त्रियं च ताम्।)

होश में आने पर उस महिलाने हनूमान् से कहा- मैंने ऐसा पुरुष आजतक नहीं देखा। तुम नगरी में प्रवेश करके जो कुछ करना हो सो कर लो और जब चाहो लौट जाओ (पुरीं प्रविश्य सर्वकार्याणि विधत्स्व)। अब तुम्हें स्वतन्त्रता मिल गयी है। मैं जानती हूँ कि, रावण सीता को चुरा लाया है, अतः विपत्ति के बादल इस नगरी पर शीघ्र ही मँडरानेवाले हैं और राक्षस मटियामेट होनेवाले हैं। (सुंदर० सर्ग ३)

इस भाँति हनुमान् की लंका के संरक्षकदल की प्रमुख अधिष्ठात्री देवी से मुलाकात पहले पहल हुई। ध्यान में रहे कि, इस देवी को यह अधिकार प्राप्त था कि, वह किसी भी सन्देहास्पद मानव को तुरन्त मार डाले। इसी के अन्तर्भूत गिरफ्तार करना, चेतावनी देकर छोड देना आदि बातें आ गयीं। हनूमान्सदृश वीर को चपत जमा देने का साहस करनेवाली

यह नारी अबला या सुकुमार महिला तो सुतरां नहीं थी, अपितु प्रबल स्त्री अवश्यमेव थी । यह कह नहीं सकते कि इसके दल में कितनी महिलाएँ थीं अथवा कितने पुरुष ही थे, पर इतना तो बेशक कहा जा सकता है कि, सारी नगरी का संरक्षण भली भाँति हो सके, इसलिए पर्याप्त तथा सुसज्जित दल इस प्रबल महिला के नेतृत्व में रखा गया था और वह कार्य कर रहा था ।

अ–पथ से नगरी में प्रवेश ।

इस ढंग से लंका की स्त्री अधिष्ठात्री को हरा चुकने पर (निर्जित्य लंकां विक्रमेण अद्वारेण विवेश । सुन्दर. ४।१–२) सर्वसाधारण मार्ग को छोडकर हनुमान् ने किसी दूसरे ही राह से लंका में प्रवेश कर लिया । प्रथम उसने अपना बायाँ पैर लंका में रखा (सव्यं पादं शत्रूणां मूर्धनि चक्रे) क्योंकि यह एक प्रथा है कि–

प्रयाणकाले स्वगृहप्रवेशे विवाहकालेऽपि च दक्षिणांघ्रिम् ।
कृत्वाग्रतः शत्रुगृहप्रवेशे वामं निदध्यात् चरणं नृपालः ॥

यदि किसी ग्राम में जाना हो, अपने घर में प्रवेश करना हो, तथा ब्याह में जाना हो, तो पहले दाहिना पाँव आगे धरना चाहिए, लेकिन शत्रु के नगर में घुसते समय वहाँ की भूमि पर प्रथम बार बायाँ चरण रख देना चाहिए । इस प्रणाली के अनुसार हनुमान् ने रावण की लंका में अपना वाम पद रख दिया । मन में विद्यमान वैरभाव, घृणा तथा तीव्र विद्रोह को व्यक्त करने का यह अच्छा उपाय है, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझना चाहिए ।

लंका के गृह ।

लंका में गृहों की रचना सुदृढ तथा सुचारु रूप से की गयी थी और

कुछ घरोंपर वज्र एवं अंकुशके चिह्न चित्रित किये थे, तथा उनकी खिडकियों पर वज्र की जालियाँ लगायी गयी थीं। (वज्रांकुशनिकाशैः वज्र-जालविभूषितैः गृहमेधैः)। जैसे उत्तर भारत में पत्थर की जालियाँ पाई जाती हैं, वैसे ही खिडकियों में लगानेयोग्य जालियों को 'वज्रजाल' नाम दिया गया हो। पद्म, स्वस्तिक, तथा वर्धमान नाम घरों की विभिन्न रचनाओं के द्योतक हैं। लंका प्रजज्वाल अर्थात् लंका मानों अग्नि की लपटों से व्याप्त हुईसी हनुमान् को दीख पडी। उस नगरी में दियोंका प्रचुर मात्रामें जलते रहना इससे सूचित होता है। यदि भारतके देहातका कोई मनुष्य यूरप एवं अमरीका में विद्यमान बडेबडे नगरोंमें चला जाए, तो जैसे उसके अंतस्तल की दशा हो जाय, बहुत कुछ वैसी ही स्थिति हनुमान् के दिल की इस समय हुई थी, ऐसा प्रतीत होता है। हनुमान् बडाही कार्यकुशल एवं रणबाँकुरा सेनापति था, इसलिए वह सिर्फ देखता ही न रह गया, तथापि प्रारंभ में अवश्य ही वह चंद मिनिटों तक उदासीनसा बन गया, इतना उस नगरी के बाह्य आडंबरका उसके चित्त पर प्रभाव पडा था।

लंका में प्रवेश कर चुकनेपर हनुमान् कहीं गली-कूचियोंमें से तो कहीं एक घर परसे दूसरे घर के ऊपर छलाँग मारकर जैसे हो सका, वैसे घूमता चला गया। जिन्होंने उत्तरभारत में विद्यमान विशेषतया लाहौर तथा अमृतसर के घर देखे हों, वे आसानीसे कल्पना कर सकेंगे कि एक मकान पर चढा हुआ आदमी किस तरह कूदते कूदते समूचे नगर में भ्रमण कर सकता है। बंबई के कुछ स्थानों में ही ऐसा करना संभव है, परन्तु उत्तर भारत के घरों परसे इस भाँति कूदते कूदते गमन करना बडाही सुगम कृत्य है, लेशमात्र भी कठिनाईका अनुभव नहीं होगा।

लंका में वेदघोष प्रचलित था।

जिस समय हनुमान् लंकानगरी में संचार कर रहा था, तब उसे वहाँ पर नारियोंके आभूषणों के शब्द सुनाई दिए (कांचीनिनादं, नूपुराणां

निःस्वनं शुश्राव। सुंदर. ४।११) (सोपानानिनादान्) सीढियोंपर ऊपरनीचे जाते आते समय होनेवाली आवाज उसने सुन ली और वैसे ही (आस्फोटितनिनादान्, क्ष्वेडितान्) करतलध्वनियाँ एवं राक्षसों की चिल्लाहट भी उसके कानोंतक पहुँची। इसी के साथ वह सुनने लगा कि–

शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान् रक्षोगृहेषु वै।
स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान् ददर्श सः॥ (सुंदर० ४–१३)

' राक्षसगण मंत्रों का जप करते थे, घरों से वेदध्वनि निकल आती थी, तथा वेद का स्वाध्याय प्रचलित था। ' इस वर्णन से प्रतीत होता है कि, राक्षसजाति में वेदपाठी पाये जाते थे और ये राक्षस शायद वैदिक धर्मके अनुयायी हों। उसी प्रकार देखिए–

लंकामें सीता का अन्वेषण करते करते हनुमान् घूम रहे थे। (किंचित् शेषा निशाऽभवत्। सुं० १८।१) शीघ्रही प्रातःकाल होनेवाला था। तब—

षडंगवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम्।
शुश्राव ब्रह्मघोषान् स विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम्॥
(सुं. १८।२)

' वेद के छहः अंगोंका पठन करनेवाले तथा यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले राक्षसजात्यन्तर्गत ब्राह्मणों का वेदघोष हनुमान् ने सुन लिया। '

इस प्रकार पहले दिन हनुमान्को सारी रात जागृत दशा में ही बितानी पडी और उसने प्रारंभ में तथा अन्त में अर्थात् रात्री के शुरु होते ही और उषःकाल में राक्षसों से उद्भूत वेदध्वनि सुन ली।

इस से स्पष्ट है कि, रामरावणयुद्ध दो वैदिक धर्मानुयायी राष्ट्रों के मध्य हुआ था। जिस प्रकार आधुनिक योरपीय महासमर दो ईसाई राष्ट्रों-द्वारा ही संचालित होता है, वैसे ही रामायण में वर्णित महायुद्ध भी वैदिकधर्मी दो राष्ट्रों के ही बीच हो चुका था।

चौराहोंपर राक्षसगण।

लंका में चौराहों पर गुट्ट बनाकर राक्षससमुदाय पहरा देने का कार्य करते थे।

राजमार्गं समावृत्य स्थितं रक्षोगणं महत् ॥ १४ ॥
ददर्श मध्यमे गुल्मे राक्षसस्य चरान् बहून्।
दीक्षितान् जटिलान् मुण्डान् गोजिनाम्बरवाससः॥ १५ ॥
दर्भमुष्टिप्रहरणान् अग्निकुण्डायुधांस्तथा। (सुंदर० ४)

'सुविशाल राजपथपर पाये जानेवाले चौराहोंपर राक्षसों के झुंड खडे थे। बीच के एक बृहदाकार चौकपर राक्षसों के दूत अवस्थित थे। उनमें कुछ नौसिखिए, कुछ केशों के जटाजूट रखे हुए, कुछ सफाचट मुंडन किये हुए तथा कुछ जानवरों की खाल ओढे हुए दीख पडते थे। कुछ लोगों के हाथ में दर्भ जैसे हथियार पाये जाते थे, तो कुछ अपने हाथोंमें अग्निकुण्ड-सदृश शस्त्र धारण कर रहे थे, कई लोगों के निकट धनुष्य, खड्ग तथा अन्य आयुध विद्यमान थे और कुछ ऊँचे तो कुछ नाटे, कुछ मोटे तथा कुछ पतले, कुछ गौर वर्णवाले तो कुछ काले एवं कुछ सुन्दर शकलवाले तो कुछ बदसूरत भी थे।' इस भाँति के संरक्षक वहाँपर पाये जाते थे। देखिए सुन्दरकांड सर्ग ४, श्लोकसंख्या १४ से २४ तक।

रावण का शयनगृह।

रावण जिस कमरे में सोया करता था, उसे पानेके लिए हनुमान् को बहुत दूर नहीं जाना पडा। अनेक बलिष्ठ राक्षस उसकी रक्षा में निरत थे। रनिवास के संरक्षणकार्य में नियुक्त राक्षस तो अत्यधिक सतर्क बने हुए थे। सहस्रों की संख्या में पहरेदार वहाँपर उपस्थित थे। रावण के रनिवास के बाहर दृश्यमान प्राचीर को घेर कर जो खाई बनायी जा चुकी थी, उसमें श्वेतकमल खिलकर झूम रहे थे। चतुर्दिक् रक्षा का बडा ही अच्छा एवं त्रुटिरहित प्रबंध कर रखा था। वह स्थान भीतर से हाथी, घोडे, वाहन, पालकियाँ, उपवन तथा उसमें रहनेवाले पशु एवं पंछियों के कारण

अतीव सुषमामय तथा सुहावना प्रतीत होता था। कहीं भी किसी बात की त्रुटि या न्यूनता नहीं उपलब्ध होती थी। जिधर भी निगाह डाली जाय, उधर ही हीरा, मोती, अमोलिक रत्नराशि, चन्दन एवं कृष्णागुरु की शोभा एवं सजधज आँखों के सामने उपस्थित हुआ करती थी। सुंदर-कांड में चतुर्थ सर्ग की श्लोकसंख्या २३ से ३० तक देखनेयोग्य है।

(लाघवेन समन्वितः कपिर्लङ्कां विचचार) हनुमान् ने धीमी चाल से लंका में चलना शुरु किया। अभीतक उस का भेद किसीपर प्रकट नहीं हुआ था और इस तरह वह रावण के प्रासादके निकट पहुँच गया था। (राक्षसेन्द्रनिवेशनम्। सुन्दर. ६।२,१०) उसके आगे उसने रावण के सर्दारों के मकान देख लिए।

रावण का बगीचा।

लंका में दृश्यमान सुषमा का कैसे वर्णन किया जाय? समूची नगरीमें जिधर भी दृष्टिपात किया जाय, वहाँपर वैभव, शोभा, रमणीयता एवं चारुता पर्याप्त मात्रामें दृष्टिगोचर हो रही थी। न्यूनताका कहीं भी लेशमात्र संभव नहीं था। (लतागृहाणि) उपवनोंमें लताओंके ही मकान बनवाये गए थे, (चित्रशालागृहाणि) कहीं कहीं अजायबघर एवं चित्रसंग्रहालय विद्यमान थे। (क्रीडागृहाणि) खेलने एवं आमोदप्रमोदके लिए उचित गृह पाये जाते थे जहाँपर चाहे जिस मौसम में अभीष्ट खेल खेलने की आयोजना बनायी हुई थी। (दारुपर्वतकाणि) लकडी के छोटे छोटे कृत्रिम पहाड या टीले बनाये हुए थे। (कामस्य गृहकं, दिवागृहकं) सुखोपभोग तथा विलासिता एवं शृंगारमय जीवन बिताने के लिए और दिन के समय क्रीडासक्त हो जाने के लिए अतीव उपयुक्त विभिन्न घर पाये जाते थे। उपवन में मयूर तथा अन्य पशुपंछी बहुतायत से दीख पडते थे और उन विविध जन्तु, पशु एवं पक्षियों के लिए सर्वत्र समुचित सुव्यवस्था की गयी थी।

रावण के आलीशान एवं प्रासादतुल्य भवन में तो सभी चीजें सुवर्ण की

बनायी हुई, उपलब्ध होती थीं, (जाम्बूनदमयानि शयनासनानि भाजनानि) क्या आसन, क्या पलंग एवं बर्तन आदि अन्य वस्तुएँ सभी स्वर्णमय तथा वज्रमुक्ताविभूषित दशा में पाई जाती थीं।

आसव, मद्य एवं सुरा रखने के लिए चित्रविचित्र बर्तन भी अतिमूल्यवान् थे। रावण के इस शयनागार में सैकड़ों की संख्या में लावण्ययुक्त युवतियाँ शोभायमान दीख पड़ती थीं। ऐसे वैभवशाली रावणगृह में हनुमान् प्रविष्ट हुए। सुन्दर. ६ सर्गमें यह वर्णन आ चुका है।

इस समूचे ऐश्वर्य एवं वैभव का अवलोकन कर चुकने पर हनुमान् सोचने लगा कि, क्या स्वर्ग ही वास्तव में भूमण्डल पै उतर आया हो, (महीतले स्वर्गम्। सुन्दर. ७)

रावण के प्रासाद की लम्बाई एक योजनतक फैल गयी थी और चौड़ाई भी आधे योजन से कम नहीं थी। उस महल के इर्दगिर्द अनेक (बहुप्रासादसंकुलम्) महल तथा कोठियाँ थीं। समीप ही पुष्पक-विमान था, जिस के भीतर बहुत से कमरे थे और वे सभी उजाले से पूर्ण थे। (कूटागारैः शुभागारैः) उस में कुछ कमरे, तो नवागत के लिए उलझन में डालनेवाले थे, तथा कुछ क्रीडायोग्य सुन्दर कमरे भी थे। अति सुषमा के कारण यह वायुयान (प्रदीप्तं इव श्रिया) मानों आभा से जगमगातासा प्रतीत होता था।

रावण के रनिवास में (सहस्रं वरनारीणां) सहस्रों की संख्या में लावण्यमयी तथा श्रेष्ठ महिलाएँ विद्यमान थीं। उन के वैभव से मानों आँखें चौंधिया जाती थीं। खान, पान, क्रीडा एवं विलासिता की मानों बाढसी आ गयी थी। ऐशआराम एवं विलासिता की सामग्री यत्रतत्र विपुलतया पायी जाती थी।

रावण की स्त्रियाँ।

उस सुविशाल एवं बृहदाकार भवन में स्त्रियाँ अत्यन्त अव्यवस्थित रूप

से जहाँ जगह मिली, उधर किसी न किसी तरह गाढ निद्रा में मग्न हुई थीं। उन स्त्रियों को उधर कैसे प्रवेश मिला, सो सुनिए—

राजर्षिविप्रदैत्यानां गंधर्वाणां च योषितः।
रक्षसां चाभवन् कन्यास्तस्य कामवशं गताः ॥ ६८ ॥
युद्धकामेन ताः सर्वा रावणेन हृताः स्त्रियः।
समदा मदनेनैव मोहिताः काश्चिदागताः ॥ ६९ ॥

न तत्र काश्चित् प्रमदाः प्रसह्य
वीर्योपपन्नेन गुणेन लब्धाः।
न चान्यकामापि न चान्यपूर्वा
विना वरार्हां जनकात्मजां तु ॥ ७० ॥
(सुंदर० ९)

'उच्च कोटि के क्षत्रिय, ब्राह्मण, दैत्य, राक्षस तथा गन्धर्वों की कन्याएँ स्वयं ही रावण पर मुग्ध हो, उस की पत्नी के पदपर विराजमान हुईं। कुछ स्त्रियाँ ऐसी थीं कि, रावण युद्ध में उन्हें जीत लाया था। रावण पर आसक्त होकर भी कुछ नारियाँ वहाँ आ चुकी थीं। यद्यपि रावण में असीम बल था, तो भी हठात् और जबर्दस्तीसे वह उन्हें नहीं लाया था।' अधिकांश में बहुतसी नारियाँ उस की ओर प्रबलतया आकृष्ट होने के कारण ही उस के निवास में प्रविष्ट हो चुकी थीं। वहाँ पर एक भी ऐसी स्त्री नहीं थी कि, जिस का पाणिग्रहण दूसरे के साथ हुआ हो, या जो दूसरे पुरुष से प्रेम करती हो। हाँ, केवल सीता ही ऐसी नारी थी, जो अन्य पुरुष पर आसक्त थी, तथा जिस का परिणय दूसरे से हो चुका था। शेष सभी स्त्रियाँ रावण के गुणों पर लुब्ध तथा अनुरक्त होकर ही वहाँ पर उस के समीप निवास करती थीं।

शत्रु को पराजित कर चुकने पर रावण उस की बहूबेटियाँ अपने यहाँ लाया था। शायद उन दिनों शत्रु को इस भाँति परास्त कर उस परिवार की सुन्दर नारियाँ अपहृत कर लाना दूषणीय कृत्य न माना जाता हो।

शेष स्त्रियाँ तो उस पर आसक्त होकर ही आ चुकी थीं और वे सहर्ष रावण के साथ रहना चाहती थीं। कहने का अभिप्राय सिर्फ इतना ही है कि, उस समय लंका में सीता ही ऐसी नारी थी, जो इच्छा के विरुद्ध बलात्कार से रावण के रनिवास में रखी गयी थी। अन्य महिलाएँ स्वेच्छा से रावण की रानियाँ बन चुकी थीं, इसलिए कविका यों आशय दीख पडता है कि, अगर अधिक पत्नीकरत्वका दोष छोड दिया जाय, तो स्त्रीजाति पर बलात्कार करने का आरोप रावण के मत्थे नहीं मढा जा सकता है।

सचमुच सीता को चुरा कर लाने में रावणने एक अतीव दूषित कार्य किया था, लेकिन यह उस का पहलाही अपराध था। दूसरी एक भी नारी को वह इस भाँति चुरा नहीं लाया था। सीता को चुराकर अपहृत करने में बडा अपराध रावण से हुआ था, सच है, पर शक्ति के रहने पर भी सीता पर उसने बलात्कार नहीं किया, उल्टे सीता के अन्तस्तल को अपनी ओर प्रवृत्त एवं आकर्षित करने के लिए वह अदम्य चेष्टा करता रहा। उसने यह धौंस जरूर दी थी कि, अगर सीता कुछ नियत काल के उपरांत रावण के कथन से सहमत न हो जाय, तो वह 'उसे सुबह के नाश्ते के लिए टुकडे टुकडे कर देगा,' पर उसने यों डाँटडपट नहीं बतलायी कि, अबला पर वह मनमानी बलात्कार करने से न चूकेगा, अर्थात् ही रावण के पापकृत्य की भी तनिकसी मर्यादा थी। इसी रावण की मर्यादाशीलता के कारण सीता रावण के चंगुल में फँस कर भी विशुद्ध रह सकी। आज दिन भी नारी-चौर्य करवाले कुछ कम नहीं हैं, पर ये आधुनिक रावण पूर्ववर्ती रावण की अपेक्षा अत्यधिक मात्रा में अधःपतन की चरम सीमा पहुँच गये हैं, ऐसा कहे बिना नहीं रहा जाता है।

रावण का छत्र।

रावण के स्वर्णजटित पलंग पर उस का अतिशुभ्रवर्णवाला छाता (पाडुरं छत्रम्) सुहाता था। उस चिह्न को देखकर हनुमान् पहचान सका कि, यह मंच रावण का ही है। (सुन्दर० १०)

समीप ही एक पलंग पड़ा था, जिस पर मंदोदरी शयन कर रही थी। वह बड़ी लावण्यवती तथा गौरवर्णवाली एवं सुवर्ण के समान उज्ज्वल कांति से युक्त थी (गौरीं कनकवर्णाभाम्)। उसे देखते ही हनुमान् को भ्रम हो गया कि, वही सीता होगी (सुं० १०-५०-५४)। मन में यह ख्याल आते ही वह बड़ा दुःखी हुआ। शीघ्र ही वह सोचने लगा कि, सीतासदृश साध्वी कभी परपुरुष के वश न होगी, तथा—

न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी।
न भोक्तुं नाप्यलंकर्तुं न पानमुपसेवितुम्॥ २॥ (सुं० ११)

'रामचन्द्रजी से बिछुड़ी हुई सीता भला कैसे निद्रावश हो जायेगी? वह खानपान का कभी अंगीकार न करेगी और शुभ गहने पहन कर परपुरुष के साथ रहना, तो उस के लिए नितांत असम्भव है।'

इस भाँति ख्याल करने पर हनुमान् की यह पहली भ्रांति दूर हुई। रावण के इस अन्तःपुर में लगभग दो सहस्र नारियाँ निवास करती थीं। (सुं० ११।७, ९)। परन्तु यहाँ पर सीता सुतरां नहीं है, उस का यहाँ पर होना दूभर है, क्योंकि ये सभी स्त्रियाँ बड़े सुखपूर्वक सोयी हुई हैं, प्रसन्नचित्त दीख रही हैं, तथा हृष्टपुष्ट प्रतीत होती हैं। हनुमान् के ध्यान में यह बात ठीक तरह आ गयी कि, उन सुखी महिलाओं के समुदाय में सीता को देख पाना कदापि सम्भव नहीं।

इस से ज्ञात होता है कि, साध्वी सीता के सम्बन्ध में हनुमान् के दिल में कितना भारी विश्वास था। उस के अन्तस्तल में लेशमात्र भी सन्देह न था कि, अगर सीता यहीं पर कहीं होगी, तो वह अवश्यमेव उपवास के मारे दुबलीपतली, निद्रानाश के कारण अलसाई हुई आँखोंवाली, स्वच्छता न रख सकने के फलस्वरूप मैलीकुचैली बनी हुई, तथा शोकावेग की वजह से दुखिया तथापि रामचन्द्रजी पर निष्ठा रखने से और मुख पर आत्मिक तेज की झलक एवं अटल मनोनिग्रह से दर्शकों को प्रभावित करनेवाली ही होगी। हनुमान् ऐसी महिला को ढूँढता था।

सीता के बारे में हनुमान् की यह धारणा बिलकुल सच थी और आगे चल कर ऐसी ही सीता का दर्शन उसे हुआ था। रावण के रनिवास में जो महिलाएँ थीं, वे केवलमात्र अबलाएँ ही थीं।

एक धार्मिक सन्देह का आविर्भाव।

रावण के रनिवास में घुस जाने जाने पर हनुमान् ने देखा कि सहस्रों स्त्रियाँ अव्यवस्थित रूप से सोई पडी हैं, तथा उनके अन्यथा अदर्शनीय अंगोपांग एवं अवयव उसे दीख पडे। परनारियों को ऐसी दशा में देख लेना परपुरुष के लिए सुतरां परिहरणीय है और विशेषतया हनुमान्सदृश ब्रह्मचारी को तो ऐसी निद्रा में निस्संकोच भाव से पडी हुई नारियों को निरखना कदापि उचित न था। इसी हेतु से उस के चित्त में संशय का प्रादुर्भाव हुआ—

परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति ॥ ३९ ॥
न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी ॥ ४० ॥
न तु मे मनसा किंचिद्वैकृत्यमुपपद्यते ॥ ४२ ॥
मनो हि हेतुः सर्वेषां इंद्रियाणां प्रवर्तने।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥ ४३ ॥
नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम्।
स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा संपरिमार्गणे ॥ ४४ ॥
न शक्यं प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम्।
तदिदं मार्गितं तावत् शुद्धेन मनसा मया ॥ ४५ ॥

(सुंदर० ११)

हनुमान् सोचता है- 'चूँकि मैं इस रनवास में इतनी निद्रित नारियाँ देख चुका हूँ, इसलिए मेरे ब्रह्मचर्यरूपी धर्म को धक्का शायद न लगे, क्योंकि परस्त्रियाँ सोयी हुई हैं, ऐसी दशा में उन का निरीक्षण करना अनुचित ही है। परन्तु इन्हें देखते समय मेरे चित्त में विषयलिप्सा का

पूर्ण अभावही रहा। फलतः मेरी निगाह निर्दोष थी। कलुषित विचारधारा से मेरा मन कोसों दूर रहा है। धर्म एवं अधर्म की जड में मनोभाव ही तो रहते हैं और मेरे मनोभाव पूर्ण रूपेण विशुद्ध हैं। अजी! यदि इन स्त्रियों के मध्य सीता की तलाश न की जाय, तो भला क्या हिरनियों के झुंड में उसे ढूँढ लेना उचित ठहरता? स्त्रियों को पाना तो हमेशा स्त्री-समुदाय में ही संभव है। इसलिए विशुद्ध मन से मैंने जो यह कार्य किया, उससे मेरे धर्म या कर्तव्य कर्म की तनिक भी क्षति न होगी।'

हनुमान् के अन्तस्तल में यौवनसम्बन्धी कुविचारों का लेशमात्र भी आविर्भाव नहीं हुआ था, वह तो विशुद्ध मन से अपने कर्तव्यकर्म की पूर्ति में लगा रहा था, इसी से उसकी निर्दोषता सिद्ध हुई।

क्या सीता अब इस संसार में नहीं रही?

सभी प्रासाद, मकान, उपवन, सडक आदि ढूँढने पर जब सीता का पता न चला, तो हनुमान् सोचने लगा कि प्रायः-

स्वशीलसंरक्षणतत्परा सती
हता भवेत् आर्यपथे परे स्थिता॥ ३॥ (सुंदर. १२)

'अपने चारित्र्य की रक्षा करने में अत्यधिक सतर्क होने के कारण तथा रावण के अनुकूल न होने के कारण भी राक्षसों के हाथ उसका वध हुआ हो।' उसके मनमें यह भी ख्याल आया कि (सुतीक्ष्णदंडो बलवान् च वानरः) सुग्रीव बलवान् तथा कडी सजा देने के लिए विख्यात है, अतः सीता का उचित समाचार पाये बिना अगर मैं लौट जाऊँ, तो वह अवश्य मुझे कठोर दण्ड देगा।

कडा सैनिक अनुशासन।

हनुमान् के इस विचार से विदित होता है कि, वानरों के राज्यप्रबन्ध में सैनिक अनुशासन का कडापन किस दर्जे का था। इसी दृढ अनुशासन के फलस्वरूप वानरों का राज्य अतिप्रबल हो गया था और इसी वजह से रावण भी वाली से भयभीत रहा करता था। ध्यान में रहे कि वानरों

का ही एक सेनापति स्वयं इस तीव्र एवं अनिवार्य अनुशासन का उल्लेख कर रहा है। जो राष्ट्र उन्नति के पथ पर अग्रसर बनना चाहते हों, उन्हें ऐसे कडे अनुशासन की अनिवार्य आवश्यकता रहती है।

सीता की क्या दशा हुई होगी ?

१. रावण से भयभीत होकर ही उसके प्राणपखेरू उड गये हों,

२. रावण की गति अत्यन्त तीव्र होने के कारण सीता के लिए वह असह्य हुआ, फलतः उसने प्राणत्याग किया हो,

३. बीच में ही वह रावण के फंदे से अपने को छुडाकर कहीं पर गायब हो मौत के शिकार बन चुकी हो,

४. समुद्र में ही प्रायः वह डूब गयी हो,

५. शायद रावण उसे खा गया हो, या

६. रावण की स्त्रियों ने उसे खा लिया होगा, अथवा

७. वह कहीं पर (भृशं लालप्यते वाला) 'राम राम' कहती बैठी होगी। (सुन्दर० १३)

'यदि उसका सचमुच ही नाश हुआ हो, तो मैं भला लौटकर क्या कहूँ? इस समाचार को पहुँचाने में भी बुराई है और छिपाने में भी बुराई है। सीता का कोई बुरा संवाद यदि मैं रामचन्द्रजी से कह दूँ, तो उनकी मृत्यु अवश्यंभावी है, तथा उसके उपरान्त लक्ष्मण और सुग्रीव आदि जनों की भी मौत हो जायेगी। उधर कौसल्या एवं सुमित्रा इत्यादिकों को भी दुःख के मारे प्राण धारण करना असंभव होगा। (घोरमारोदनं मन्ये गते मयि भविष्यति।) यदि मैं असफल ही उधर चला जाऊँ, तो अति भीषण बिलखना शुरु होगा और उन सब की मौत मेरी वजह होगी। अतः यही अच्छा प्रतीत होता है कि, मैं इधर ही अन्नजल का त्याग करके जीवनको छोड दूँ।' हनुमान् का लगभग इस भाँति निर्धार हो चुका था।

सन्ध्योपासना के लिये सीता आयेगी।

अशोकवन में एक नदी प्रवाहित होती थी। उसे देखने पर हनुमान् को एक बात सूझी। यकायक एक कल्पना सूझ पड़ी कि–

संध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वरवर्णिनी ॥ ४९ ॥
यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना।
आगमिष्यति सावश्यं इमां शीतजलां नदीम् ॥ ५१ ॥

(सुंदर० १४)

जीवित रहने पर सीता अवश्य ही संध्योपासना करने की इच्छा से प्रेरित हो, इस नदी पर आयेगी। हनुमान् इस बात से अपरिचित था कि सीता संध्या कर लेती थी या नहीं, पर वह इतना जानता था कि, आर्य-स्त्रियाँ सन्ध्या कर लेती थीं और सीता साध्वी, सदाचारसम्पन्न एवं धार्मिक मनोवृत्तिवाली है, इसलिए जरूर वह सन्ध्या करने के लिए यहाँ पर आयेगी। यह हनुमान् की राय है। इसी से यही अनुमान निकाला जा सकता है कि, उस समय द्विजों की नारियाँ प्रातः तथा सायं सन्ध्योपासना में निरत हुआ करती थीं। इस सम्बन्ध में अधिक अनुसन्धान करना चाहिए। हनुमान् स्वयं वेदवेदांगपारंगत था और अवश्यही उसे विदित होना चाहिए था कि, स्त्रियों के लिए संध्योपासना विहित थी या नहीं। प्रमाण की दृष्टि से यह वचन अति महत्त्वपूर्ण है।

उत्साह की बुनियादपर यशोमन्दिर खडा किया जाता है।

अनिर्वेदः श्रियो मूलं अनिर्वेदः परं सुखम्।
भूयस्तत्र विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः ॥ १० ॥

अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः ।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः ॥ ११ ॥
(सुंदर० १२)

' सब प्रकार के यशकी जडमें उत्साह है और सुख का सृजन भी उत्साह से ही होता है । उमंग के होने पर ही सभी कार्य निष्पन्न हुआ करते हैं, तथा मानवी जीवन की भी सफलता होती है । इसीलिए निराश न बनकर अब तक जहाँ जहाँ खोज नहीं हुई, उधर उधर ढूँढते फिरूँगा । '

इस भाँति निर्धार कर लेने पर हनुमान् पुनः एक बार फूलों के गृह, लताकुंज, अजायबघर, खेलकूद के स्थान, भूमि के अन्दर बनाये घर, चैत्यगृह (देवल या ऊँचे मकान), घरों के ऊपर बाँधे हुए छोटेछोटे घर (गृहातिगृहकानपि) आदि सभी स्थान, जिन्हें वह अभी तक ढूँढ नहीं पाया था, तथा जो प्रेक्षणीय स्थान थे, उसने देख लिए। हर स्थान पर उसने अपनी दृष्टि दौडायी ।

सीता कैसे दीख पडी ?

(मलीनसंवीता) मैलेकुचैले कपडे पहनी हुई, (राक्षसीभिः समावृता) राक्षसियों से घिरी हुई, (उपवासकृशा) अन्नजल का ग्रहण न करने से दुबलीपतली, (दीना) दुःखिनी, (पुनः पुनः निश्वसंती) बारबार ठंडी साँस लेती हुई, (अश्रुपूर्णमुखी) आँसू भरे नेत्रों से इधरउधर देखती हुई, (शोकध्यानपरा) बिछोह के मारे शोकाकुल हो राम का ध्यान करती हुई, (नित्यं दुःखपरायणा) हमेशा अकुलाती हुई, (वेण्या जघनं गतैकया) जाँघोंतक लम्बी एक वेणी धारण करती हुई, एक अबला हनुमान् को अशोकवन में दीख पडी । उस महिला की वह दयनीय दशा अवलोकन कर के हनुमान्ने ठान लिया कि, वही सीता है, क्योंकि उस की स्थिति से साफसाफ झलक रहा था कि, वही साध्वी रमणी होगी । विशेषतया जिस लंका में हर कोई सुखोपभोग तथा विलासितामें निरत हो, कालयापन कर रहा हो, उधर यही एक

दुःखिनी नारी भला सीता के सिवा और कौन हो सकती है? दूसरी एक, बात यह थी कि, पहले एक बार जब कि, रावण सीता का अपहरण कर उसे ले जा रहा था, हनुमान्ने सीता देख ली थी।

यथारूपा हि सा दृष्टा तथारूपेयमंगना ॥ २८ ॥

'उस समय उसका जैसा रूप था, ठीक उसी तरह यह दिखाई दे रही है, अतः यही सीता है,' ऐसे निर्णय पर हनुमान् पहुँचा। हनुमान् का कथन सुनिए-

इदं चिरगृहीतत्वाद् वसनं क्लिष्टवत्तरम्।
तथाप्यनूनं तद्वर्णं तथा श्रीमद् यथेतरत् ॥ ४७ ॥

(सुंदर. १५)

'यह जो कपडा पहनी हुई है, वह चिरकाल से पहनने के कारण बहुत ही मलीन हो चुका है, यह सच है, तो भी हमें जो इस का दूसरा वस्त्र प्राप्त हुआ था, उस के वर्ण से इस का रंग मेल खाता है।'

इयं कनकवर्णांगी। (सुं. १५।४८)
नवहेमाभाम्। (सुं. १६।६)

सीता सुवर्ण के समान आभा से युक्त है। रावण से अपहृत स्त्रीका वर्ण भी इसी तरह का था, अतः यही सीता है। राम इस पर अनुरक्त है और इस का चित्त भी राम के लिए लालायित हो उठा है। ऐसी दशा में भी रामचन्द्रजी प्राणधारण कर रहे हैं, यह सचमुच आश्चर्यकी बात है।

दुष्करं कृतवान् रामो हीनो यदनया प्रभुः।
धारयत्यात्मनो देहं न शोकेनावसीदति ॥

(सुं० १५।५३; १६।२७)

'इस भाँति सीता से बिछुडने पर रामचन्द्रजी बिछोह का दुःखभार उठाते हुए जीवित हैं, यह निस्सन्देह अति दुर्घट कार्य है।' ऐसे महान् लोगों को भी इस प्रकार भीषण कष्ट उठाने पडते हैं, अतः कहना पडता है कि, 'कालो हि दुरतिक्रमः।' (१६।३) कालके आघातसे छुटकारा पाना महा कठिन एवं असम्भव कर्म है।

चक्रवाकी ।

सीता का दर्शन किस दशा में हुआ था, इस का वर्णन करते समय हनुमान् कहते हैं—

सहचररहितेव चक्रवाकी ॥ ३० ॥

(सुं. १६)

सदैव साथ रहनेवाले चकवा पंछी से विछोह हो जाने पर चकवी जैसे दीख पडे, वैसे ही सीता दीख पडी। अथर्ववेद में भी यही उपमा दंपती के लिए दी गयी है।

इहेमौ इन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ॥

(अथर्व० १४।२।६४)

'हे प्रभो! इन पतिपत्नी को चक्रवाकयुगल के समान रहने के लिए (इह सं नुद) इस स्थानमें तू प्रेरणा कर। इन्हें अच्छी संतान हो जाय, अच्छे मकान में रहते हुए इन्हें पूर्ण एवं दीर्घायुष्य की प्राप्ति हो।'

अथर्ववेद में नवविवाहित पतिपत्नी के लिए प्रयुक्त उपमा ही ज्योंकि-त्यों सुन्दरकांड में पाई जाती है।

एक वेणी ।

लंका में रहते समय सीता केवल एक ही वेणी धारण कर लेती थी।

एकया दीर्घया वेण्या शोभमानां ०।

(सुंदर० १९।१९)

'पीठ पर एक लम्बी वेणी लटक रही थी, जिससे सीता सुहाती थी।' एक वेणी का अभिप्राय इतना ही दीखता है कि, इतने दिनों में बाल सँवार कर दूसरी चोटी डाली ही नहीं। सिर्फ वेणी थी, बालों का जूडा नहीं था। केश सँवारती हुई कंघी-चोटी स्त्रियाँ स्वयं ही कर सकती हैं, लेकिन सँवारने या चोटी डालने के लिए कंघी की आवश्यकता होती है।

सीता को कंघी मिल सकती थी, पर वह उसे रावण के यहाँ स्वीकार कर बनाव-सिंगार कर लेना नहीं चाहती थी। इसी कारण से पहले दिन जो जैसी चोटी बना रखी थी, वैसी ही उसने अन्ततक रख दी। यदि रामचन्द्रजी विजयी बने और अपनी यहाँ से रिहाई हो जाय, तो ही बनाव-सिंगार अथवा सँवारना आदि कार्यकलाप निभा लूँगी, नहीं तो आगे चाहे जो स्थिति आ जाय, देखा जायगा, ऐसा सीता का निर्धार हो चुका था। यह निश्चय सती के लिए उचित ही था और वह उसे सुहाता था।

एकवेणी अधःशय्या ध्यानं मलिनं अंबरम्।
अस्थानेऽप्युपवासश्च नैतान्यौपयिकानि ते॥ (सुं० २०।८)

एकवेणीधरा। (सुं०५८।६०)

'एक वेणी धारण करके ही संतुष्ट होना, भूमिपर सो जाना, चिंतामें डूबी रहना, मैले कपडे पहनकर रहना, बिना किसी कारण के अन्नत्याग करना आदि बातों से तुम्हें कुछ भी लाभ नहीं होगा।'

रावण इस तरह सीता से कह रहा है। वह उसे सूचित करना चाहता है कि, रावण के कहने के मुताबिक चलना ही हितकर होगा, तो भी सीता उधर तनिक भी ध्यान देनेको तैयार नहीं। अपनी इच्छाके अनुकूल सीता बर्ताव रखे, इसलिए रावण ने भाँति भाँतिकी आयोजनाएँ ढूँढ निकालीं, जैसे उसे डराया, उसके सामने अपने वैभव का मोहक चित्रण कर रखा, रामसे संगत होना असंभव है, ऐसा बतलाया, पर इसपर भी वह अपने अनुकूल भाव नहीं दर्शाती है, ऐसा देखकर वह साफसाफ कहने लगा कि, हम जैसे राक्षसों का यही धर्म है और मैं अपने धर्म के अनुकूल ही यह सब कुछ कर रहा हूँ।

राक्षसों का धर्म।

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वदैव न संशयः।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं संप्रमथ्य वा॥५॥

एवं त्वं अकामां त्वां न च स्पृक्ष्यामि मैथिलि।
कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम् ॥ ६ ॥ (सुं० २०)

रावण बडे तडके उठकर अशोकवन में आकर सीता के सामने उपस्थित हुआ। साथ में बहुतसी नारियाँ भी थीं। अपने असीम वैभव एवं सजधज का यथेष्ट प्रदर्शन करने की तैयारी तो थी ही। उधर हनुमान् भी देख रहा था कि, रावण समीप आ पहुँचा है। इस अवसरपर सीता को समझाने बुझाने की चेष्टा करता हुआ रावण उस से कह रहा है–

'हे सीता! परनारी से समागम करना तथा परस्त्रियों का अपहरण करना राक्षसों के धर्म में समाविष्ट है, ऐसा माना जाता है। राक्षसजाति तो हमेशा से ऐसा कार्य करती आयी है, पर हे सीता! जबतक तेरा मन मेरे प्रति अनुकूल न होगा, मैं तेरा स्पर्श तक न करूँगा। मैं कामविकारसे भले ही पीडित होऊँ, लेकिन तेरी इच्छा के खिलाफ मैं तेरे निकट न आऊँगा।'

ध्यान में रहे कि असीम बल तथा सामर्थ्य के रहनेपर भी रावण इस भाँति कह रहा है। इस से यही अनुमान निकाला जा सकता है कि, पुलस्त्य ऋषि के आश्रम में रहते समय बाल्यावस्था में जो शुभ संस्कार उसके मनपर हुए थे, वे सर्वथैव विनष्ट नहीं हुए। रावण के निवास में पाई जानेवाली नारियाँ, केवल वे उसपर अनुरक्त हुई थीं, इसी कारण से रावण ने अपने अन्तःपुर में रख दीं। पर सीताने रावण से प्रभावित हो जाने का लेशमात्र भी लक्षण प्रकट नहीं किया था, अतः उसे उद्यान की एक जगह रहने को मिली थी। अपने घरमें भी रावण ने उसे नहीं रखा। यह विचार करनेयोग्य बात है।

वास्तव में अधर्म करते हुए भी कुछ अंशतक धर्मानुकूल आचरण रखने की मनोवृत्ति का यह एक उदाहरण है। अन्यथा रावणसदृश को किसी नारी पर बलात्कार करना कोई असंभव बात नहीं थी। पर उसका एक नियम निश्चित हो चुका था और उसने यह प्रथासी बना डाली कि बिना अनुरक्त

हुए किसी भी नारी को रनिवास में न रहने दिया जाय। इसीलिए तो उसने सीता को उपवनमें रख दिया, ताकि कोई यह न कह सके कि, रावण के घर में सीता निवास करती है। पापाचरण करते हुए भी पापभीरुता दर्शाना इसे ही कहते हैं।

रावण भरसक चेष्टा करता कि, सीता का दिल अपनी ओर खींच जाय, उसके सामने अपना अपार वैभव रख देता, सुखोपभोग का प्रलोभन दिलाता, रामचंद्रजी से मिलना असंभव है, यों उसे विश्वास दिलाता, तथा अन्य स्त्रियों की सहायता से उसे समझाने का यत्न करता। इतना सब कुछ करनेपर भी वह एक विशिष्ट सीमातक ही चला जाता, उस मर्यादा का उल्लंघन कभी नहीं करता और सीता से कुछ दूरीपर ही रावण खडा रहता था। वह सीता के अत्यन्त निकट न आता और यद्यपि वह उसे डाँटता कि, वश में न आनेपर सीता को काट खायेगा, तो भी समीप आकर सीता का स्पर्श करनेका साहस रावण ने कभी नहीं किया। रावन ने कुछ अंशतक नियत मर्यादा का पालन किया था और उसके अधर्माचरण तथा दुष्टता सीमित थी। प्रायः अन्य राक्षस इस भाँति सीमोल्लंघन करने में न झिझकते। केवल रावण में ही यह पापभीरुत्व पाया जाता था, क्योंकि उसका बचपन ऋषियों के आश्रम में बीत चुका था। कहा जाता है कि छुटपन में जो संस्कार कोमल मनोभूमिका में किये जाते हैं, वे यकायक विलुप्त नहीं होते हैं और वह कथन यहाँ पर सच प्रतीत होता है।

आजकल भी कई सम्प्रदायों में यह प्रथा प्रचलित है कि, परनारी को जबर्दस्ती उठा ले जाकर अपने जनानखाने में भर्ती किया जाय। इस पंथ के अनुयायी हरदिन स्वधर्म समझकर ही स्त्रियों को भगा ले जाने का कार्य कर लेते हैं। पर यों प्रतीत होता है कि, इनकी अपेक्षा रावण अत्यधिक अच्छा था।

सीता को समझाने की चेष्टा।

इदं ते चारुसंजातं यौवनं ह्यतिवर्तते।
यदतीतं पुनर्नैति स्रोतः स्रोतस्विनामिव ॥ १२ ॥

नहि रूपोपमा ह्यन्या तवास्ति शुभदर्शने ॥ १३ ॥
बह्वीनां उत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव ॥ १६ ॥
इच्छ मां क्रियतामद्य प्रतिकर्म तवोत्तमम् ॥ २१ ॥
भुंक्ष्व भोगान् यथाकामं पिब भीरु रमस्व च।
निक्षिप्तविजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः।
व्रती स्थण्डिलशायी च शंके जीवति वा न वा ॥ २६ ॥
(सुंदर० २०)

'हे सीताजी! यह तुम्हारी अनुपम सुन्दरता तथा तुम्हारा नवयौवन व्यर्थ चला जा रहा है। जो यौवनकाल बीत चुका हो, वह फिर से उपभोगने के लिए नहीं मिलेगा। मेरी जो उत्कृष्ट स्त्रियाँ हैं, उनमें तुम पट्टरानी के पदपर विराजमान हो। मेरी इच्छा के अनुकूल तुम कार्य करो और मुझ पर आसक्ति दर्शाओ। उसके पश्चात् तुम मन चाहे भोग प्राप्त कर लो और येथेष्ट पानभोजनादिका सुख लो। वह तेरा राम तपस्वी बनकर वनों में भटक रहा है। कौन कह सकता कि, वह अभीतक जीवित है या नहीं।'

इस भाँति रावण सीता को अपनी ओर प्रवर्तित करने की चेष्टा कर रहा है। ध्यान में रहे, वह बलात्कार नहीं कर रहा है। किसी न किसी तरह विवश हो वह वश में आ जाय, यही रावण का हेतु है। यद्यपि यह पापहेतु है, तो भी उसकी हद है। राक्षस-राज्य में जो कुछ भी वैदिक धर्म जीवित एवं प्रचलित था, उसी के फलस्वरूप पापी रावण में भी तनिक मर्यादा या हदका सृजन हुआ था।

कम से कम इतना तो सच है, वह किसी न किसी से भयभीत हो उठता था और इसी डर के मारे वह नारियों पर बलात्कार करने में हिचकिचाहट दर्शाता था। अति बलिष्ठ लोगों में भी अंधविश्वास कुछ अंशतक पाये जाते हैं, उसी तरह वह रावण में भी शायद हो। हाँ, इतनी बात सच है कि, इस अन्धविश्वास के कारण सीता को लाभ ही हुआ।

*

परन्तु वर्तमान काल के रावण किसी से डरते नहीं हैं। रावण के राज्य में भी शायद ऐसे अन्य राक्षस हों, जो पराई स्त्रियों पर अत्याचार करते थे। पर यहाँ पर केवल रावण के आचरण का ही विचार करना है और वह स्त्री को वशीभूत किये बिना उस पर हाथ नहीं डालता था। रावण का यह गुण असंशय सराहनीय है।

रावण को सीता का प्रत्युत्तर।

सती नारियाँ पराये पुरुष से वार्तालाप नहीं करती हैं। बीच में किसी तिसरे को रखकर परपुरुष से बोल लेती हैं। अब यहाँ पर तो सीता की तरफ से बोलनेवाला कोई उपस्थित न था, अतः शास्त्रमर्यादा के अनुसार—

तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता।
निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रीयतां मनः॥ २॥
(सुं० २१)

बीच में एक तिनका रखकर मानों उससे कह रही हो, इस ढंग से सीता रावण से बोल रही है कि, 'वह उस पर आसक्त न बने, पर अपनी स्त्रियों पर मनका प्रेम व्यक्त करे।'

किसी भी स्थान में नारियाँ पराये पुरुष से न वार्तालाप ही करें तथा न हँसीखेल एवं विहार अथवा आमोदप्रमोद में दिलचस्पी ही दर्शायें। न केवल मकान के एकान्त में ही अपितु उपवन में, वननिकुंज में तथा खुले मैदान में भी परपुरुष से बातचीत करते समय कोई न कोई तीसरा वहाँ पर अवश्य उपस्थित रहे। जिस दशा में सीता अपने को पा रही थी, उसमें सिर्फ आपद्धर्म के तौर पर तिनका उसे धारण करना पड़ा। यह सीता के लिए बड़े भाग्य की बात थी कि हनुमान् सीता के पीछे खड़े रहकर गुप्त ढंग से सब कुछ देख रहा था। सीता यह बात नहीं जानती थी, पर अगर रावण कुछ अधिक उच्छृंखल बर्ताव करने का साहस कर लेता, तो हनुमान् तुरन्त उसका प्रतिकार किये बिना न रहता।

शायद वह रावण को मार भी डालता। पर रावण तथा सीता दोनों इस विषय में अनभिज्ञ ही रहे।

लुकछिप कर हनुमान् ने रावण तथा सीता के बीच जो भाषण हो रहा था, वह सब सुन लिया। यह उचित ही हुआ, क्योंकि सीता को पहचाननेमें हनुमान् को अब कोई कठिनाई नहीं रही।

पराये पुरुष की चाहे जितनी जानपहचान हो, लेकिन यदि मकान पर स्त्री अकेली रहे, तो उस घर में वह पुरुष सहसा नहीं रहता और उसके वहाँ पर सो जाना तो अत्यन्त असंभव है। उपवनादिकों में भी परपुरुष के साथ गपशप करना आर्य नारी के लिए नियमबाह्य है। यहाँ पर तो रावण के सम्बन्ध में सीता के हृदय में केवलमात्र घृणा के भाव जाग्रत थे और वह उसे तुच्छ, हेच एवं नगण्य समझती थी, अतः दोनों के मध्य किसी अति लघु वस्तु के द्वारा मर्यादा-रेखा खींच लेना अनिवार्य ही था।

तिनका बीच में रख, इतना कह चुकने पर सीता ने रावण से मुँह फेर लिया और आगे कहना शुरु किया।

रावणं पृष्ठतः कृत्वा भूयो वचनमब्रवीत्। (सुं. २१।५)

'तू ध्यान में रख कि मैं तेरी धर्मपत्नी नहीं हूँ, पर नारी हूँ, पतिव्रता हूँ। अच्छे लोगों के समान तू अपना आचरण रख। जैसे अपनी स्त्रियों की रक्षा होनी चाहिए, ऐसी तेरी इच्छा है, उसी प्रकार दूसरों की स्त्रियों का संरक्षण करना तेरे लिए उचित है। सत्य धर्म का उपदेश करनेवाले इधर कोई नहीं हैं, या शायद तू ही उनके कथन की ओर ध्यान न देता होगा। परन्तु तेरे इस भाँति बर्ताव करने के कारण अवश्यमेव समूची राक्षसजाति का विनाश होगा, तथा ऐसा दुराचरण करने के फलस्वरूप तेरा यह राज्य इस रूप में चिर काल तक टिक नहीं सकता। वैभव के दिखावे से या अन्य किसी साधन से मेरा मन परावृत्त नहीं होगा, यह सत्य है। उस विश्व के प्रभु श्रीरामचन्द्रजी की मैं धर्मपत्नी हूँ, इस लिये मुझे उनके निकट शीघ्र पहुंचा दो। इसी में तुम्हारा कल्याण

है। जिस समय तू रामचन्द्रजी के धनुष्य की आवाज सुन लेगा, तब अन्य सभी राक्षसों के साथ तेरा विध्वंस हो जायगा।' (सुं. २१)

सीताका यह अभिभाषण सुन कर रावण आगबबूला हो उठा और झुँझला कर बोला- 'हे सीता! मनुष्य जैसे जैसे स्त्रियों से शांततापूर्वक सुजनता से बर्ताव रखने का प्रयत्न करता है, वैसे वैसे नारियाँ अधिकाधिक गर्वित हो उठती हैं। तुम्हें देख मेरे मन में कामविकार ज्यादह तीव्र हो गया है, इसलिए मैं तुझे मेरे सम्मुख ढिठाई से बोलने पर भी मृत्युदण्ड देना नहीं चाहता। अन्यथा तुम्हारे इस प्रत्येक वाक्य के लिए तुम्हें मौतकी सजा देना ठीक समझता हूँ। पर मैं तनिक देर ठहरना चाहता हूँ। तुम्हारे मनः-परिवर्तन के लिए दो महिनों की अवधि मैंने दे रखी है। चूँकि मैं पहले ही कह चुका हूँ, इस कारण से अभी तुम्हारा वध करना ठीक नहीं, पर ध्यानमें रख यदि दो माह बीत चुकने पर भी तू स्वेच्छासे मुझपर आसक्ति न दर्शायेगी, तो प्रातःकालीन अल्पोपहार के लिए तेरे टुकडे टुकडे किये जायेंगे।'

रावण की यह धौंस सुनकर समीप खडी हुई देवगंधर्व आदि कन्याओं को बहुत बुरा लगा। पर वे बेचारी क्या कर सकती थीं? तिस पर भी सहानुभूतिपूर्वक सीता को तसल्ली देने के लिए हाथ तथा आँखों से संकेत कर के उन्होंने भरसक प्रयत्न किया।

इससे स्पष्ट हुआ कि, रावण के रनिवासमें ही सीता की वर्तमान दुःखद दशा में सहानुभूति प्रकट करनेवाली नारियाँ विद्यमान थीं। स्त्री के निर्मल चरित्र एवं पवित्रता पर अगर कहीं आक्रमण होने लगे, तो कोई अबला उसे मनःपूर्वक सहन नहीं कर सकती है। अतएव सीता की दयनीय दशा देखकर उसे सहानुभूति दर्शानेवाली नारियाँ रावण के रनिवास में हों, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। ऐसी सहानुभूति यदि बढने लगे, तो अवश्यमेव रावण का बल घट जाय, इस में तनिक भी सन्देह नहीं।

अन्तःपुर में रहनेवाली नारियों का जो मत हो, वह धीरेधीरे नगर में फैलने लगता है, जिस के परिणामस्वरूप नागरिकों के चित्त में राजा के

विषय में घृणा के भाव पैदा हो जाते हैं। इस ढंग से नरेश की शक्ति न्यूनातिन्यून होने लगती है। ज्ञात होता है कि, रावण की प्रभावशालिता तथा शक्ति का क्षेत्र संकुचित होता जा रहा था। रावण की महिलाओंने समवेदना प्रकट करने के लिए जो चेष्टा की थी, उस से सीता को तनिक ढाढस प्रतीत हुआ और वह पश्चात् रावण के सम्मुख अपने मनोभाव व्यक्त करने लगी—

'अरे जघन्य राक्षस! तेजस्वी रामचंद्रजीकी साध्वी अर्धांगिनीसे तू यों कहने की ढिठाई करता है, पर रामचंद्रजी के इधर आ चुकने पर कौन भला तेरी रक्षा कर सकेगा? मतवाले गजराज के सामने ज्यों खरगोश की हालत होती है, वैसे ही तेरी दशा राम के सम्मुखीन होने पर होगी। तुम्हारे इस व्यौहार के फलस्वरूप मुझे दीख पडता है कि, तेरे विनाश की वेला समीप आ ही चुकी है।

रामस्य दास्येऽपि न युज्यसे। (सुं० ५८।७३)

'हे रावण! तुझ में राम के नौकर तक बन जानेकी योग्यता नहीं है।

सीता का यह चुभनेवाला अभिभाषण सुनकर रावण के क्रोध की सीमा न रही और वहाँ पर उपस्थित राक्षस-महिलाओं से उसने कहा कि, वे इस तरह प्रयत्न करें कि, सीता शीघ्र ही रावण के अनुकूल हो जाय। तदुपरान्त वह वहाँ से निकल पडा।

चूँकि रावण का सारा ध्यान सीता पर ही केन्द्रित हो गया था, अतः यह स्वाभाविक था कि, अपने निवास में रहनेवाली स्त्रियों की ओर से वह उदासीन रहे। इस उदासीनता का परिणाम यह हुआ है कि, अगर सीता यहाँ से चली जाय, तो ठीक होगा, ऐसी धारणा उन अबलाओं में प्रबल हो, वे सीतासे सहृदयतापूर्वक व्यवहार करने लगीं। कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि, इतने दिनों के पश्चात् अन्तःपुरमें तथा कुछ अंशतक नागरिक जनता में भी सीता के अनुकूल भावों तथा सहानुभूतिपूर्ण वायुमण्डल का सृजन हुआ हो। रावणने चुराकर सीता का अपहरण किया, यह घटना कुछ स्त्रियों को तथा अन्य कुछ लोगों को अच्छी न लगी, यह बात

यहाँ पर स्पष्ट होती है। शायद यही कारण हो कि, बिभीषण भी डिठाई से रावण का निषेध करने में झिझकता न था। आगे चलकर यह स्पष्ट होगा। लंका के नागरिकों में इस विषय पर यथेष्ट बहस हुई होगी, जिस के फलस्वरूप रावण के खिलाफ एक जबर्दस्त जन-मत तैयार हुआ हो। रावण की तथा राक्षसजाति की हार आगे चलकर क्यों हुई, इस का निदान यहाँ पर पाया जाता है। लंका के इस प्रतिपल वर्धिष्णु असंतोष में ही भावी विनाश का बीज छिपा पड़ा था।

निकुम्भिला देवी।

मानुषं मांसमासाद्य नृत्यामोऽथ निकुम्भिलाम्। (सुं०२४।४७)

'इस सीता का मांस सेवन करके तथा (पेयमानीयताम्) मद्यपान करके हम निकुंभिला देवताके आगे यथेष्ट नृत्य करें,' ऐसा सीताके संरक्षणार्थ रखी हुई राक्षसी नारियों कह रही है। रावण भी कहता है कि, प्रातःकाल के नाश्ते या जलपान के लिए सीता का मांस काम में आयेगा। शायद यह अत्युक्तिपूर्ण अथवा आलंकारिक वर्णन हो। पर ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि, कुछ राक्षस तो नरमांसभोजी होंगे। रावण का कथन अतिरंजित है, ऐसा माना जा सकता है, पर 'नरमांस खा चुकनेपर मद्य पीकर कुलदैवत के आगे नाच लेंगे' ऐसा जो ये संरक्षक राक्षस अबलाएँ कह रही हैं, वह अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं प्रतीत होता है, पर राक्षसों की प्रथा यों थी, ऐसा कह सकते हैं।

राक्षस आमिषभोजी थे और यद्यपि सभी राक्षस नरमांसभोजी नहीं थे, तथापि उनमें निम्न कोटि के लोग शायद नरमांस खाने के आदी थे, ऐसा जान पड़ता है।

सीता का अंतिम उत्तर।

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं निशाचरम्॥८॥

छिन्ना भिन्ना प्रभिन्ना वा दीप्ता वाग्नौ प्रदीपिता।
रावणं नोपतिष्ठेयं किं प्रलापेन वश्चिरम् ॥ १० ॥ (सुंदर० २६)

'अरी राक्षसनारियाँ! मैं तो रावण को बायें चरण से भी छूनेवाली नहीं हूँ, तो फिर उस से प्रेम करने की बात ही कहाँ रही? अगर तुम मुझे काट डालने, तोडने एवं टुकडे करने लगो तो भी, धधकती हुई अग्नि में झोंकने लगो तो भी, मैं रावण को फूटे आँखों देखना पसंद न करूँगी। ऐसी दशा में तुम्हारी इस लंबीचौडी बातचीतका भला क्या उपयोग?'

इस प्रकार साफसाफ बतलानेपर राक्षसियों को निराश होना पडा। राक्षसियों के चुँगल में फँस जानेपर तथा रातदिन उनकी देखभाल में दिन बितानेपर भी सीताने जब दर्शाया कि पातिव्रत का तेज कितना प्रखर रहता है, तब उन्हें पता लगा कि, सीता का निर्धार किस धात का बना हुआ है।

रावण सीताको मारने दौडता है।

हनुमान् कृतकार्य हो, जब लौट आया, तब वह अंगद, जाम्बुवान् आदि वानरवीरों से अपनी लंकायात्रा का संक्षिप्त वृत्तान्त कहने लगा। इस विवरण में बखान किया है, सीता रावण को कोसती हुई कहती है–

न त्वं रामस्य सदृशो दास्येऽप्यस्य न युज्यसे।
(सुंदर. ५८।७३)

'तू रामके गुलाम तक बननेकी योग्यता नहीं रखता है।' यह सुनते ही रावण झल्लाया और–

विवृत्य नयने क्रूरे मुष्टिमुद्यम्य दक्षिणम्।
मैथिलीं हन्तुमारब्धः स्त्रीभिर्हाहाकृतं तदा ॥
(सुं. ५८।७५–७६)

'आँखें लालपीली करके और दाहिने हाथकी मुष्टि ऊपर उठाकर रावण सीता को मारने दौडा, तब रावण की स्त्रियोंने हाहाकार मचाया और उसे रोक दिया।' रावण की पत्नी मंदोदरीने आगे बढ उसे समझाया कि वह

अपनी स्त्रियों में रममाण होवे, इस सीता में कौनसी विशेषता है ? ऐसा समझा बुझाकर–

उत्थाप्य सहसा नीतो भवनं स्वं निशाचरः।

(सुं. ५८।८०)

'उसे वहाँ से उठाकर स्त्रियाँ अपने घर में ले चलीं।'

हनुमान् के वर्णनमें यह भाग अधिक पाया जाता है। इस 'उत्थाप्य' पद से शंका उठ खडी होती है कि, क्या रावण मद्य पीकर नशे में चूर हो पडा था ? सर्ग २० से २२ तक लंका की घटना का वर्णन पाया जाता है, जो कुछ अंश में इस कथन से विभिन्न प्रतीत होता है। देखिए– (सुन्दर २२।४।५) जहाँपर रावण सीता से कहता है– 'हे सीता! जिस व्यक्ति को देखकर कामविकार उद्दीप्त हो जाता है, उस के बारे में दयालुता मन में पैदा हो जाती है। यदि मेरे दिल में तुम्हें देखकर कामवेग न पैदा हुआ होता, तो तेरे इस प्रत्येक कठोर वाक्य के लिए मैं तुझे यमनगरी भेज देता।' सीता की मारमीट या हत्या न करनेका कारण बतलानेवाला रावण ही यहाँ कहता है कि, 'जिस तरह सारथी घोडों पर नियंत्रण डालता है, उसी तरह तुम्हें देखकर उत्पन्न हुआ काम मुझपर दबाव डाल देता है।' (सुं० २२।३)। यही रावण क्रोध के मारे आँखें लालपीली करके बडे तैश में आकर सीता को पीटने के लिए दौडा, ऐसा हनुमान् कह रहा है (सुं० ५८।७५–७६)। सर्ग २२ श्लोक ३१ में रावण सीता से कहता है कि, चूँकि वह हद के बाहर जाकर बोल रही है, इसलिए वह उस का विनाश करनेवाला है। इतना कहकर वह सीता की देखभाल करनेवाली राक्षसियों की ओर झुककर कहता है कि, वे ऐसा यत्न कर लें कि सीता शीघ्रही रावण के अन्तःपुर में प्रविष्ट होने के लिए तैयार हो जाय (सुं० २२।३७–३८)। इसके पश्चात् धान्यमालिनी राक्षसीने आगे बढकर रावणसे विनती की– 'तुम मुझसे रममाण हो, इस मानुषी सीता में कौनसी विशेषता है ?' बाद में रावण अपने महल की ओर जाने लगा, ऐसा वर्णन है। लेकिन हनुमान् के वर्णन में आया है कि, मंदोदरीने उसे

परावृत्त किया था ।

यहाँपर शायद रावण की स्त्रियों के नामों के संबंध में हनुमान् ने भूल की हो, तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि सिर्फ दो दिनों के लिए ही हनुमान् लंका में रह चुका था और उतने थोडे समय में सब के नामों से परिचित होना उसे संभव नहीं था । पर उसने इतना तो देख लिया था कि, रावण ने क्या सचमुच सीता को घूँसा मारने की चेष्टा या अभिनय किया था या नहीं । उसके कथन में शायद अत्युक्ति न हो ।

नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः संध्यामिवौजसा ।

(सुंदर. २२।३१)

' सूरज जिस तरह सुबह दीखनेवाली उषा की लालिमा को शीघ्र विलुप्त कर देता है, उसी तरह मैं तुझे विनष्ट करा दूँगा । ' ऐसा कहते समय उसने अपना हाथ उठाकर शायद एकाध पग आगे रखा हो और उस का वर्णन कविने बाईसवें सर्ग में न करके सर्ग ५८ में हनुमान् के वर्णन में किया हो । इतना सच है कि, घूँसा लगा देने का अभिनय करने की अपेक्षा रावण ने अधिक कुछ भी नहीं किया था । यद्यपि ' मैथिलीं हन्तुं आरब्धः ' ऐसा कविका प्रयोग है, तो भी वह सिर्फ रावणके दिखावे के अभिनय को सूचित करनेके लिए है, न कि वास्तविक घटना का उल्लेख है । सीता के अतिनिकट वह पहुँच नहीं पाया था और यदि कहीं रावण सीता को घूँसा लगाने का प्रयत्न ही करता, तो हनुमान् चुपचाप कभी न बैठते । सिर्फ वाचिक कलहको हनुमान् सुनता बैठा था सो ठीक, पर रावण अगर सचमुच सीता पर अपना हाथ चलाता, तो हनुमान् तुरन्त रावण को धराशायी कर देता । अतः यह निस्सन्देह स्पष्ट है, सीतापर किसी प्रकारका आघात नहीं हो पाया था ।

स्वप्नपर विश्वास ।

जान पडता है राक्षसलोग स्वप्नोंपर विश्वास रखते थे । जिस वक्त राक्षसियाँ सीता को खूब खरीखोटी सुनाने लगीं, उस समय त्रिजटा नामक

एक वृद्ध एवं विचारशील राक्षसी उन डाँटडपट देनेवाली स्त्रियों को उपदेश देने एवं समझाने बुझाने लगी।

'अरी राक्षस महिलाओं! सीता को इस तरह धौंस न दो। अभी मुझे स्वप्न में राक्षसों के भावी विनाश का बड़ा ही भीषण दृश्य दीख पड़ा है; यदि तुम उस डरावने स्वप्न के बखान को सुन लोगी, तो तुम्हारे रोंगटे खड़े हो जायेंगे। एक सुन्दर रथ में बैठकर रामचंद्रजी पधारे थे और साथ में लक्ष्मण भी थे। सुफेद वस्त्र पहनकर सीता राम से जा मिली, यह दृश्य मैंने कल रात के स्वप्न में देखा है। मुझे यह भी देखने मिला कि, रावण को परास्त करके रामचंद्रजी सीता को साथ ले पुष्पकविमान में से उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े थे। उसी प्रकार रावण को तेल में डुबोकर और उस के गले में रक्तवर्णवाले फूलों की मालिका डालकर सजाया गया था, तथा वह तेल पीते पीते गदहेपर चढकर दक्षिण दिशा में कहीं चला जा रहा था। मुझे स्वप्न में रावण के सिर कट जाना भी देखने मिला। कुम्भकर्ण की हालत भी ठीक उसी तरह हुई थी। समूची लंका का विध्वंस हो चुका है, तथा राक्षस भी मटियामेट हुए थे। मेरा स्वप्न इस भाँति अति अशुभसूचक है। अतः मैं कहती हूँ, तुम सब मिलकर सीता को कुछ भी कष्ट न दो, अपि तु उस के शरण में जाकर अपनी रक्षा हो, इसलिए उससे प्रार्थना करो। अगर सीता के मन में दया के भाव उत्पन्न हों, तोही इस आगामी भीषण संकट से तुम्हारी रक्षा होगी। सीताको अच्छे शकुनों का अनुभव हो रहा है और हमारे सगुन तो बहुत ही बुरे हो रहे हैं, तथा बुरे स्वप्न भी एकाध हो जाते हैं। मुझे तो ऐसे लक्षण देखने से जान पड़ता है, राक्षसों का विध्वंस निकट भविष्य में ही होनेवाला है।'

प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा॥
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात्।
ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता॥
अवोचद्यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः॥

(सुं. २७।४०; ४८; सुं. ५८।९०-९२)

यह भाषण सुननेपर सीता को अच्छा लगा और वह कहने लगी, 'यदि तुम्हारे कथन के अनुसार घटना हो जाय, तो मैं तुम्हें बचाऊँगी।'

लंका में इस भाँति एकाध स्वप्न हो जाया करते। जो बात मन में छिपी पड़ी रहती है, उसी का स्वप्न में पुनः दर्शन हुआ करता है, इस नियम के अनुसार यह स्वप्न इस बात की सूचना देता है कि, लंका में चतुर्दिक् रावण के दुराचरण का घोर निषेध हो रहा था और सब लोग चिंतामग्न हो गये थे कि, हो न हो इस बुरे कृत्य के परिणामस्वरूप शीघ्र ही इस नगरी पर विपत्ति के बादल मँडराने लगेंगे, तथा नागरिकों को भीषण संकट से मुठभेड करनी पडेगी। चारों ओर जब इस तरह शंकाकुल वायुमण्डल का सृजन होता है, तब ही दुर्बल मनवाले लोग भयभीत हो उठते हैं। भीतिग्रस्त जीवन बिताने से अवश्यमेव दुःस्वप्नों की अनुभूति होने लगती है। कहने का मतलब यही है कि, साधारण जनता में भय, संदेह एवं आशङ्कायुक्त विचारधारा जब प्रबल वेग से प्रवर्तित होने लगती है, तब ऐसे कुस्वप्न बारबार होने लगते हैं, जिन के परिणामस्वरूप नागरिक व्यथितहृदय एवं अति अस्वस्थ हो उठते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि, इस की परिणति कैसे भीषण एवं परितापजनक हो जाती है।

यद्यपि रावण के सम्मुख प्रतिवाद करने का साहस किसी में न था, तथापि परस्पर जो वार्तालाप हुआ करता, वही कमजोर दिलवाले लोगों में स्वप्नरूप से व्यक्त हो जाता। इस स्वप्न के वर्णन से ऐसा निस्संदेह कह सकते हैं कि, उस समय कुछ लोग और अत्यधिकतया राक्षसों की अबलाएँ बहुत ही सहमी गयी थीं और आगामी संकट के ख्याल से उन के हाथपाँव फूल गये थे।

यदि जनता में आगेपीछे कोई विशेष विचारधारा अधिक मात्रा में प्रवर्तित न हो, तो यह सुतरां असम्भव है कि, यकायक एक वृद्धा नारी के स्वप्न में ऐसे डरावने नजारे देखने में आ जायँ। सामुदायिक-मन पर बारबार ऐसे आघात हों और फलतः वह यदि अधिक व्यथित तथा विच-

लित बन जाय, तो ही ऐसा स्वप्न होना सम्भव है। जो लोग सामुदायिक-मन के बारे में कुछ जानकारी रखते हों, उन्हें अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं। यह समझना कि, लंका में सीता के अनुकूल तथा रावणके प्रतिकूल जनमत कहाँ तक तैयार हो पाया था, अधिक कठिन नहीं।

सीता प्राणों का त्याग करने तैयार हो जाती है।

राक्षसियोंद्वारा होनेवाली पीडा एवं यातना तथा धौंस की वजह से सीता को अतीव कष्ट पहुँच रहा था। अन्नजल का त्याग, जमीन पर पडी रहना, राक्षसियों से पाई जानेवाली यातना, सांत्वना देनेवाला कोई समीप नहीं, तथा राम से मिल जाने की आशा दूरापास्त होना, आदि बातोंसे ऊबकर सीता सोचने लगी कि, 'ऐसी दशामें कै दिन किस ढंगसे बिताऊं, अच्छा तो यही होगा कि पेड की शाखा में अपने को लटकाकर प्राणत्याग किया जाय।'

उद्बध्य वेण्युद्ग्रथनेन शीघ्रं अहं गमिष्यामि यमस्य मूलं।
(सुं. २८।१७)

तीव्र घबराहट तथा व्याकुलता के कारण अकस्मात् सीता के मन में एक संशयपिशाच का कुछ क्षणों तक प्रादुर्भाव हुआ कि, शायद रामचंद्रजी अन्य स्त्रियों में दिल बहलाते होंगे, (स्त्रीभिः मन्ये संरंस्यते रामः। सुं० २८।१४) अत्यन्त निराशा होने से यह विचार उसे सूझा। रामचन्द्रजी एकपत्नीव्रत का पालन अति दृढतापूर्वक कर रहे हैं, यह सीता को भली भाँति विदित था, तथापि रामचंद्रजी के बारे में यह शक उस के दिल में पैदा हुआ, इस का कारण मानवी स्वभाव की दुर्बलता है। मन निराशा की चरम सीता तक पहुँच जाय और परिवर्तन या छुटकारा पानेकी तनिक भी आशा न रहने पाय, तो अपने अत्यन्त प्राणप्रिय निकटवर्ती जनों के बारे में भी ऐसे निराधार तथा उल्टे ख्यालात मन में आ जाते हैं।

अच्छे शकुन।

इधर सीता सोच रही थी कि, पेड की डाल में अपने को बाँधकर श्वासा-

वरोध से आत्महत्या करनी चाहिए। इतने में कुछ अच्छे लक्षण उसे प्रतीत होने लगे, जैसे कुछ समय पहले त्रिजटा का स्वप्नवर्णन सुनते वक्त बायें अंग फडकने लगे थे, पर अब सभी सुचिह्न साफ तौर पर प्रकट होने लगे। वाम चक्षु, वाम बाहु स्फुरित होने लगे, पैर में फडकन हुई। उसे प्रतीत हुआ, मानों साक्षात् प्रभु रामचंद्रजीही सामने खडे हों। (सुं० २९।१-८)

ऐसे शुभ शकुन होने लगे, इसलिए सीता का प्राण देने का विचार दूर हुआ, तथा मन भी कुछ उल्लसित हुआ।

ध्यानमें रहे कि, बिना किसी कारण के यह सब नहीं हुआ था। हनुमान् तो ऊपर ही वृक्ष पर सीता का हित करने के लिए वहीं पर चढ बैठा था। उस के विशुद्ध मन की तरङ्ग सीता के दिल में शुभ प्रेरणा करने के लिए आंदोलित हो उठी थीं, जिन के परिणामस्वरूप सीता का मानस-सागर स्पन्दित हो रहा था। एक के मन में उठनेवाले विचारों का प्रभाव दूसरे के मन पर पडता है और तब ऐसे चिन्हों का प्रादुर्भाव होता है।

प्रातःकाल की शुभ वेला में पहलेपहल सीता तथा हनुमान् की मुलाकात हुई थी। (रात्रिशेषेण। सुं० ३०।१२)

हनुमान् के विचार।

रावण का आगमन, सीता से बातचीत, सीता को दी हुई धुडकियाँ, सीता का रावण को कोसना, सीता का मन बदलने के लिए राक्षसियों की हुई अथक चेष्टाएँ, त्रिजटा का स्वप्ननिवेदन, राक्षसियों का यह निर्धार कि, सीता की शरण में जाना चाहिए, सीता का उन्हें आश्वासन देना, सीता का देहपात करने का विचार, पर शीघ्र ही शुभ लक्षणों का आविर्भाव आदि सभी घटनाएँ हनुमान् के सामने ही हो चुकी थीं। समूची घटनाओं की 'चक्षुर्वै सत्यं' अनुभूति उसे प्राप्त थी, तथा उसने स्वयं घटनास्थल में उपस्थित हो, सारी बातें देख लीं और सुन लीं। अतः सीता की पवित्रता के बारे में उस के अन्तःकरण में तनिक भी संदेह न रहा और वह सोचने लगा कि, यथासम्भव शीघ्र ही अपने आने का समाचार सीता

से कह देना चाहिए, नहीं तो उस की दशा बड़ी विकट हो जायेगी और वह कुछ न कुछ बुरा-भला कर बैठेगी। अब हनुमान् के सामने एक जटिल समस्या उठ खड़ी हुई कि, किस ढंग से सीता को अपना परिचय दिया जाय और उस के विश्वासपात्र बन कर रामचंद्रजी से कहने के लिए उसका सन्देश कैसे प्राप्त किया जाय ?

भाषा का प्रश्न।

प्रथम हनुमान् भाषाविषयक प्रश्न पर सोचने लगा। किस भाषा में कहने पर सीता अपने कथन को विश्वसनीय मानेगी, ऐसा ख्याल हनुमान् को हुआ, जिस से ज्ञात होता है कि, वह अनेक भाषाकोविद रहा हो। चूँकि वह वेदवेदांगपारंगत था, अतः उच्च कोटि की एवं अलंकारप्रचुर तथा साहित्यिक संस्कृत भाषा से वह ठीक तरह से परिचित था। साधारण जनता में प्रयुक्त संस्कृत भाषा भी वह जानता था और इस के अतिरिक्त 'मनुष्यवाणी' अर्थात् ग्रामीण जनता की बोली का भी ज्ञान उसे था। वानरों एवं राक्षसों की भाषा उसे ज्ञात थी। इसलिए वह सोचता है कि-

वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् ॥ १७ ॥
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ॥ १८ ॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ॥ १९ ॥
(सुंदर० ३०)

'यदि मैं अच्छी तथा उच्च कोटि की संस्कृत भाषा में कह दूँ, तो रावण की वही भाषा है, इसलिए वह मुझे रावण समझ लेगी और अधिक ही सहम जायेगी। अतः जनसाधारण की भाषा में ही जो कुछ मुझे बतलाना है, सो कहूँगा। यही मुझे ठीक जँचता है और दूसरा तो कोई उपाय नहीं सूझता है।'

रावण भेस बदल देने में बड़ा ही चतुर है, इस कारण से अति प्रौढ

संस्कृत भाषा में बातचीत करना शुरु करने पर सीता का विश्वास बैठना तो दूर ही रहा, उल्टे वह मुझे रावण मानकर ज्यादह भयभीत हो उठेगी।' यह विचार हनुमान् को सूझा, इसलिए ऐसा मान लेने में कोई आपत्ति नहीं कि, रावण उच्च कोटि की संस्कृत भाषा में संभाषण करने की पूर्ण क्षमता रखता था। थोडीही देर पहले रावण वहाँ पर आ चुका था और हनुमान् ने स्वयं देख लिया था कि, वह कैसे उत्कृष्ट संस्कृत भाषा में बोल सकता है। यही कारण था कि, उसने विद्वत्ताप्रचुर संस्कृत भाषा में बोलना छोड दिया

शायद वानरों की भाषा समझना सीता को असंभव हो और राक्षसों की बोली को भी वह भली भाँति न जानती हो, क्योंकि उसे लंका में आये थोडे ही दिन बीत चुके थे। इसी कारण से हनुमान् का यह निर्धार कि, जो कुछ कहना हो, वह लौकिक आर्य भाषा में कह देना चाहिए, बिलकुल ठीक था, क्योंकि उसका तो यह प्रथम कर्तव्य था कि किसी तरह सीता उसे रावण न समझ बैठे और लौकिक भाषा से ही उस में सफलता पाना संभव था।

दूतकार्य ।

भूताश्चार्था विरुध्यन्ति देशकालविरोधिताः ।
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥ ३७ ॥
अर्थानर्थान्तरे बुद्धिः निश्चितापि न शोभते ।
घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ॥ ३८ ॥

(सुंदर० ३०)

'यदि दूत मूर्खतापूर्ण आचरण कर बैठे और स्थल तथा काल के विरुद्ध कार्यवाही का सूत्रपात कर दे, तो यद्यपि कार्यकलाप सफलता के अति निकट आ चुका हो, तो भी सारा काम चौपट हो जाता है। अतः दूत को स्थान एवं समय के विरुद्ध कुछ भी नहीं करना चाहिए। मालिक ने यद्यपि ठीक ठीक तरीके से सब कुछ कर्तव्य कर्म बतलाये हों, तथापि

दूत अगर अयोग्य ठहरे तो समूचा कार्य बिगाड देता है। इसलिए गर्विष्ठ दूत अच्छे नहीं हैं।' हनुमानजी की यह तीव्र लालसा थी कि, उस से रामचन्द्रजी के अभीष्ट कार्य में लेशमात्र भी विकृति न होने पाय।

इस सदिच्छावश वह सीता से संभाषण का प्रारम्भ करने के पहले अनुकूल एवं प्रतिकूल अनेक बातों का पर्याप्त विचार करता रहा। अपने अंगीकृत कार्य में सफलता मिल जाय, लेकिन उसमें अणुमात्र भी त्रुटि एवं धोखा खा जाने की संभावना न रहने पाय, इसलिए जितनी सतर्कता तथा सावधानी रखना आवश्यक था, उतना करने की तैयारी हनुमानजी कर रहे थे।

हनुमान् के कार्य का प्रारम्भ।

उसने निश्चय किया कि, जनसाधारण की भाषा में बोलने का सिलसिला शुरु किया जाय और तदनुसार वृक्ष पर बैठेबैठे सीता भली भाँति सुन सके, इस ढंग से रामचन्द्रजी के जीवनवृत्तान्त का संक्षिप्त विवरण प्रारम्भ से करना आरम्भ किया (सुं. ३१)। उस मिठासभरे बखान को सुनकर सीता को बडी प्रसन्नता हुई और वह इधरउधर निहारने लगी। ऊपर की ओर दृष्टिपात करते ही श्वेत वस्त्रधारी तथा पेड की पत्तियोंमें छिपकर बैठे हुए हनुमान् का दर्शन उसे हुआ। परन्तु (शाखामृगः शास्त्रगणैर्निषिद्धः। सुं. ३२-१०) सभी शास्त्र बन्दर का दर्शन अशुभ मानते हैं, लेकिन आज उषःवेला में ही इस वानर को देखना मेरे भाग्य में लिखा है! कौन जाने किस आगामी विपदाकी चेतावनी यह है, इस ख्याल से और भय के मारे सीता फूटफूटकर बिलखने लगी। वह परमात्मा से करुण प्रार्थना करने लगी कि, 'राम एवं लक्ष्मण का भला होवे।'

मैं जान सकूँ, इसलिए यह वानर जानपदभाषा में साफ साफ कह रहा है (सुव्यक्तरूपश्च वदत्ययं माम्। सुं. २३।१४) ऐसी उसकी राय बनी और सन्देह हुआ कि, शायद रावण ही भेस बदलकर वहाँ पर

आया हो । इसी आशंका के मारे भयभीत हो, वह रोने लगी ।

इतने में हनुमान् पेड पर से नीचे उतर पडा और प्रणाम करके, कुछ समीप आकर तथा हाथ जोडकर (प्रणिपत्य, उपसृत्य, शिरसि अंजलिं आधाय) मधुरिमापूर्ण शब्दों में उससे कहने लगा– 'जनस्थान से रावणद्वारा कपटवेश धारण कर अपहृत तथा रामचन्द्रजी की पट्टराज्ञी सीतादेवी आप ही तो हैं न ?' हनुमान् के ये आस्थापूर्वक उच्चारित शब्द सुनकर इतने दिनों तक प्रिय जनों के बिछोह के मारे प्रिय मधुर वचनकी प्यासी सीता प्रसन्नचित्त हो, उससे वार्तालाप करने लगी । अपने विवाह से ले, जो जो घटनाएँ अब तक हो चुकी थीं, सब का जिक्र सीता ने हनुमान् से किया और कहा कि, 'अब सिर्फ दोही महीने शेष रह चुके हैं, इस अवधि के समाप्त होने के अन्दर ही राम इधर आ जाँय और मुझे यहाँ से छुडाकर ले चलें ।' सीता का यह निवेदन बडा ही हृदयस्पर्शी है । (सुं. ३३)

पश्चात् हनुमान् ने उत्तर दिया– 'हे देवि ! रामचन्द्रजी सकुशल हैं, तथा लक्ष्मण ने भी सिर नवाकर तुम्हें प्रणाम कहा है ।' यह सुन सीता के आनंद की कोई सीमा न रही और उसके मुँह से निकल पडा ।

एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ।

(सुं. ३४।६)

'जीवित रहने पर मानव को चिरकाल के उपरान्त ही क्यों न सही, पर आनन्द अवश्य मिलता है, इसीलिए आत्महत्या अनुचित है, ऐसा जो कहा जाता है, वह ठीक है । स्वप्न में वानर का दर्शन होने पर मानव का अभ्युदय रुक जाता है, पर यह वानर आनन्ददायक समाचार लाया है ।' (सुं. ३४।२२)

सीता का भाषण सुन कर हनुमान् ने रामचन्द्रजी का समूचा वर्णन किया और कहा कि ऐसे महान् पुरुष रामचन्द्रजी ने सीता के कुशल समाचार की पूछताछ की है । स्वयं रावण के, जो कि दुरात्मा है, मस्तक

पर पैर रखकर यहाँ तक सिर्फ सीता के दर्शनार्थ आया हूँ, ऐसा भी उसने कह दिया।

यह सुनकर (नराणां वानराणां च कथं समागमः। सुं. ३५।२) सीताने पूछा कि, मानवों तथा वानरों की मित्रता कब से हुई ?

उत्तर में हनुमान् ने समूचा वृत्तान्त कह सुनाया।

रामचन्द्रजी का वर्णन।

सुन्दरकांड के ३५ वे सर्ग में हनुमान् ने रामचन्द्रजी का बडाही उत्कृष्ट वर्णन किया है। तदनुसार हनुमान् का कथन है कि-

ज्ञानवान् शीलसंपन्नो विनीतश्च परंतपः ॥ १३ ॥
यजुर्वेदविनीतश्च वेदविद्भिः सुपूजितः।
धनुर्वेदे च वेदे च वेदांगेषु च निष्ठितः ॥ १४ ॥

(सुंदर. ३५)

' रामचन्द्रजी ज्ञानसंपन्न, शीलगुणोपेत, विनम्र, तपस्वी, यजुर्वेद का स्वाध्याय करनेवाला, वेदवेत्ताओं से सत्कृत बननेयोग्य, धनुर्विद्या, वेद तथा वेदांगों में पारंगत हैं। '

प्रायः शुक्ल यजुर्वेद का वर्णन यहाँ पर किया हो, पर यह निश्चित करना कि वह काण्व था या वाजसनेय था, असंभव है। कण्वों के आश्रम में शकुंतला का संवर्धन हो चुका था, अतः सूर्यवंश से काण्वों का सम्बन्ध प्रस्थापित था, ऐसा दीख पडता है। पर वाजसनेयी संहिता सूर्य से प्राप्त हुई थी, इस परंपरा का सूर्यवंश से क्या सरोकार है, कह नहीं सकते। हाँ, अयोध्याकांड के सर्ग ३२ में श्लोक १५ में कहा है कि, राम की माता कौसल्या तैत्तिरीय शाखावाले ब्राह्मण को आश्रय देती थी, अर्थात् राममाता के निकट तैत्तिरीयों का आचार्य रहा करता था। यदि मान लिया जाय कि, राम शुक्लयजुर्वेदी था, तो यह कौसल्या का वर्णन विरुद्ध-सा प्रतीत होता है। राम ने जो अपना सारा धन जिन जिन शाखाओं के ब्राह्मणों में बाँट दिया था, वे सभी अपनी माता के निकट विद्यमान

तैत्तिरीय शाखा के आचार्य एवं 'कठ' तथा 'कलाप' यजुः-शाखाके ब्राह्मण थे। यहाँ वाजसनेयी या काण्व का उल्लेख नहीं पाया जाता है। इससे ऐसा भी कहा जा सकता है कि, रामचन्द्रजी शुक्ल यजुर्वेदी नहीं थे। यह खोज करनेयोग्य बात है कि, उत्तर में तैत्तिरीयों की प्रबलता किस काल में थी। वर्तमानकाल में दाक्षिणात्यों में तैत्तिरीयशाखा पाई जाती है और शुक्ल यजुः उत्तर भाग में प्रचलित है। हो सकता है कि, रामचन्द्रजी के काल में उत्तर में भी तैत्तिरीय शाखा का प्रचलन हो। इस विषय में पूर्ण अन्वेषण करना चाहिए। अतः अब ही इसका निर्णय करना असंभव है।

हनुमान् का परिचय।

राम तथा लक्ष्मण के बारे में जो कुछ कहना था, सो हनुमान् ने बतला दिया। दक्षिण में आगमन कैसे हुआ, तथा लंका में प्रवेश कैसे हुआ, सभी बातों का स्पष्टीकरण करके उसने कहा कि अपना आगमन निष्फल नहीं हुआ। इस पर सीता के नेत्रों से आनन्द तथा हर्ष के आँसू चूपडे। (सुं. ३५)

आगे चलकर 'मैं राम का भेजा हुआ दूत हूँ और यह उनकी दी हुई अँगूठी ले लो' यों कहकर हनुमान् ने सीता के हाथ में रामचन्द्रजी का दिया हुआ अंगुलीयक रख दिया और ऐसा भी कहा कि, 'अब तुम्हारा दुःख समाप्त होनेवाला है।'

यह सुन सीता को बडा आनन्द हुआ और हनुमान् को धन्यवाद देकर भूरि भूरि प्रशंसा की। उसे बडा ही आश्चर्य हुआ कि वह अकेले ही राक्षसों के इस राष्ट्र में कैसे आ गया। इस भाँति असीम साहस प्रकट करनेके कारण हनुमान् के सम्बन्धमें आदर तथा गौरव शतगुणित हुआ।

राजनैतिक समस्याएँ।

जब सीता को यह दृढ विश्वास हुआ कि, रामचंद्रजी का एलची बन कर ही हनुमान् इधर आ चुका है, तब रामचंद्रजी के राजनैतिक हलचलों के

बारे में जानकारी मिल जाय, इसलिए हनुमान् से विविध प्रश्न पूछना शुरू किया। ये प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण हैं, इसलिए उन का संक्षिप्त विवेचन करना उपयुक्त जान पड़ता है।

कच्चिन्न व्यथते रामः कच्चिन्न परितप्यते।
उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुरुषोत्तमः ॥ १५ ॥

'कहीं रामचंद्रजी बड़े दुःख में तो चूर नहीं हो गये हैं? क्या उन्हें भारी परिताप तो नहीं हुआ है? अर्थात् दुःख तथा परिताप के मारे दबकर वे निराश तो नहीं हो बैठे हैं? संकट उन के मुँहबाँये खड़ा हुआ है, उसे दूर करने के लिए क्या वे मनोनीत ढंग से आवश्यक कार्यवाही कर रहे हैं अथवा नहीं?'

कच्चिन्न दीनः संभ्रान्तः कार्येषु च न मुह्यति।
कच्चित्पुरुषकार्याणि कुरुते नृपतेः सुतः ॥१६॥

'अति दैन्यवश शायद रामचंद्रजी तो किंकर्तव्यविमूढ न बने हों, कुछ भी सूझता नहीं, भला क्या किया जाय, ऐसी विचारधारा तो उस के मन में उत्पन्न न हुई होगी। वीर पुरुषों के करयोग्य जो उचित कार्यकलाप हों, उन्हें वे कर रहे हैं, या नहीं?'

द्विविधं त्रिविधोपायं उपायमपि सेवते।
विजिगीषुसुहृत्कच्चित् मित्रेषु च परंतपः ॥१७॥

'(द्विविधं) सौम्य एवं तीक्ष्ण दोनों उपायों का अवलम्ब कर के (त्रिविधोपायं) धर्म, अर्थ तथा काम तीनों पुरुषार्थों को पाने की चेष्टा क्या वे कर रहे हैं? उसी प्रकार शत्रुदल का विध्वंस करने के लिए क्या वे साम, दान, दंड तथा भेद जैसी युक्तियों का सहारा लेते हैं? क्या उन की मित्रमण्डली में जय पाने के लिए लालायित सुहृत् हैं और क्या उन मित्रों के लिए रामचंद्रजी आनन्दपूर्वक कष्ट उठा रहे हैं?'

कच्चिन्मित्राणि लभते मित्रैश्चाप्यभिगम्यते।
कच्चित्कल्याणमित्रश्च मित्रैश्चापि पुरस्कृतः ॥१८॥

'क्या वे अपने मित्रों को पाने में सफलता पा रहे हैं? मित्रमण्डली में क्या उन का समुचित आदर किया जाता है और क्या उन के मित्र रामचंद्रजी के कल्याण की सिद्धि करने में तत्पर हैं? अपने मित्रों में क्या वे नेतृत्वपदपर अधिष्ठित होते हैं?'

कच्चिदाशास्ति देवानां प्रसादं पार्थिवात्मजः।
कच्चित् पुरुषकारं च दैवं च प्रतिपद्यते॥ १९॥

'क्या राजकुमार रामचंद्रजी देवों की कृपा एवं प्रसन्नता पाने के लिए सचेष्ट तो हैं? अदम्य अध्यवसाय तथा अदृष्ट दोनों का यथोचित स्वीकार क्या वे कर रहे हैं?'

कच्चिन्न विगतस्नेहो विवासान्मयि राघवः।
कच्चिन्मां व्यसनादस्मान्मोक्षयिष्यति राघवः॥ २०॥

'मैं आँखों से ओझल हो चुकी हूँ, इस कारणसे क्या उनका जो पहले मुझपर प्रेम था, सो घट तो नहीं गया? और क्या वे मुझे इस घोर संकट से छुडा लेंगे?'

इस तरह प्रश्नों की झडी लगाने में सीता का यह उद्देश्य स्पष्ट हो रहा है कि, रामचंद्रजी का बल एवं सामर्थ्य बढ रहा है या नहीं, सो जान लेना चाहिए। जो लोग स्वराज्य प्राप्त कर लेनेके इच्छुक हों, वे इन सवालों का अधिक विचार कर लिया करें। सतर्कतापूर्वक उपर्युक्त प्रश्नोंपर सोच लेने से अपने बल की वृद्धि अथवा न्यूनता का सच्चा सच्चा ज्ञान हो जायगा। इसके आगे निम्नलिखित प्रश्न भी सीताने पूछे हैं-

'दुःख के मारे वह उदासीन तो नहीं हो बैठा है? कौसल्या तथा सुमित्रा का शुभ समाचार उसे मिलता है या नहीं? क्या वह अन्य किसी पर आसक्त तो नहीं हुआ है (कच्चिन्नान्यमनाः रामः?) भरतजी अक्षौहिणी सेना भिजवाकर कौनसी सहायता देनेवाले हैं? अपनी सेना साथ ले क्या सुग्रीवमहोदय आनेवाले हैं? लक्ष्मण तो अवश्य ही सहायता करेंगे, पर क्या यह दृश्य मुझे शीघ्र ही देखने मिलेगा कि, रामचंद्रजीने बाँधवोंसह विद्यमान रावण का वध कर डाला है?'

सीता यह देख चुकी थी कि, रावणकी शक्ति कितनी है। वह भली भाँति जानती थी कि, यदि रामचंद्रजी अच्छी तैयारी करके आयेंगे, तोही उन्हें स्पृहणीय सफलता मिलेगी, अन्यथा नहीं। वह सदैव इस बात के लिए लालायित रहा करती कि, रामकी शक्ति बढ जाय, रामको सफलता मिल जाय और उस के पराक्रम तथा अथक एवं अदम्य अध्यवसाय के फल-स्वरूप अपना छुटकारा हो जाए। वह चाहती थी कि, रामचंद्रजी अपना बल बढाकर लंका पधारें और राक्षसों की शक्ति को मटियामेट कर के रावण को धराशायी कर चुकनेपर पहले किए हुए अपमान का पूर्ण रूपेण प्रतिशोध लेवें।

उपरिलिखित प्रश्नमालिका में से व्यक्तिगत बात अलग कर दें, तो जो शेष सर्वसाधारण सवाल रहते हैं, वे सुतरां मननीय हैं और जयिष्णु तथा वर्धिष्णु वीर इन प्रश्नों की सहायता से अपनी चेष्टाकी जाँच कर लें। ये प्रश्न अतीव महत्त्वपूर्ण हैं, इस कारण से यहाँपर कुछ अधिक विस्तारपूर्वक इन प्रश्नों का विवेचन किया गया है।

सीता के ये प्रश्न सुन हनुमान् ने स्पष्टतया बतलाया कि, रामचंद्रजी की तैयारी कैसे हो रही है, तथा सुग्रीव की कितनी बडी एवं पर्याप्त रूप से सुसज्जित सेनाकी सहायता रामचंद्रजी को प्राप्त हुई है। शीघ्रही रामचंद्रजी दलबलसमन्वित हो लंका पधारेंगे और सीता को वहां से छुडायेंगे, यह भी आश्वासन सीता को हनुमान् से मिला। (सुं० ३६)

रामचंद्रजी आमिषभोजी नहीं थे।

रामचंद्रजी के व्यवहारका बखान करते समय हनुमान् कहता है कि, राम मांस तथा मद्य का सेवन नहीं करता है (न मांसं भुङ्क्ते, न मधु सेवते) और सायंकालके समय कुछ थोडासा भात खा लेता है। (भक्तं अश्नाति पंचमं। सुं० ३६।४१)

यहाँ पर कहा है कि, रामचंद्रजी न मांसाहार करते थे और न मद्य ही पीते थे। यदि यह वर्णन सत्य हो, तो मानना पडेगा कि, सीताहरण के

पहले वे मांस एवं मद्य का ग्रहण करते थे। परन्तु उन की प्रथम प्रतिज्ञा के अनुसार जान पड़ता है कि, इन का त्याग ही उन्होंने किया था। इस विषय पर अयोध्याकांड प्रथम विभाग में पृष्ठ ५३२–५३८ पर किया हुआ, विवेचन पाठक अवश्य देख लें।

हनुमान् का अभिप्राय इतना ही है कि, प्राणप्रिय पत्नी के बिछोह के मारे रामने मांसहार का त्याग किया है, अर्थात् यथासम्भव विलासिता एवं सुखोपभोग के पदार्थों से वह दूर रहता है। रामचंद्रजी विरक्त जैसा जीवन बिता रहे थे। रामचंद्रजी आमिषभोजी थे। ऐसा मानने पर रावण के मांसाहारी होने के सम्बन्धमें शंका के लिए जगह नहीं, पर सन्देह इतना ही है कि, क्या वह नरमांसभोजी था? 'सीता के प्रातःकालीन अल्पाहार के लिए टुकडे किये जायेंगे,' इस धौंस के अतिरिक्त समूचे रामायण में दूसरा कोई प्रमाण रावण के नरमांसाशन के सम्बन्ध में नहीं पाया जाता है।

बिभीषण का प्रयत्न।

ऐसा प्रतीत होता है कि, लंकानिवासी जनता पर्याप्त रूप से रावण के सीताहरणरूपी दौरात्म्यपूर्ण कार्य का निषेध करती थी। बिभीषण तो सीता की रिहाई के लिए रावण को यथाशक्ति समझाता रहा और प्रायः अन्य विचारशील राक्षस भी रावण को पापकृत्य से परावृत्त करने के लिए सचेष्ट थे। इस का समाचार सीता को भी मिल चुका था, अतः सम्भव है कि, रावण के विरुद्ध प्रतिक्रिया पर्याप्त मात्रा में प्रबल हो उठी थी, क्योंकि सीता की देखभाल उस समय बड़ी सख्त थी। तिस पर भी ये संवाद सीतातक पहुँचे थे, अतः अनुमान किया जा सकता है कि, रावण के अनभिलषणीय कार्य की चर्चा कितने बड़े अनुपात में लंकानिवासी जनसमुदाय में प्रचलित हुई होगी। सीता हनुमान् से कहती है–

'राक्षसों का वध तथा रावण का पराजय कर के शीघ्रही मेरा छुटकारा हो जाय, ऐसा कार्य रामचंद्रजी के सामने खड़ा है और अब बहुत समय

शेष नहीं है। अधिक से अधिक दो मास बचे हैं। इतने अल्प समय में ही यह कार्य सफलतापूर्वक समाप्त होना चाहिए। यदि इस से अधिक समय लग जाए, तो कह नहीं सकती कि, मैं जीवित रहूँगी या नहीं।

वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवंगम।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम ॥ ८ ॥
बिभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनं प्रति।
अनुनीतः प्रयत्नेन न च तत् कुरुते मतिम् ॥ ९ ॥
मम प्रतिप्रदानं हि रावणस्य न रोचते ॥ १० ॥
ज्येष्ठा कन्या कला नाम बिभीषणसुता कपे।
तया ममैतदाख्यातं मात्रा प्रहितया स्वयम् ॥ ११ ॥
अविन्ध्यो नाम मेधावी विद्वान् राक्षसपुंगवः।
धृतिमान् शीलवान् वृद्धो रावणस्य सुसंमतो ॥ १२ ॥
रामक्षयमनुप्राप्तं रक्षसां प्रत्यचोदयत्।
न च तस्य स दुष्टात्मा शृणोति वचनं हितम् ॥ १३ ॥

(सुंदर. ३७)

'हनुमन्! यह दसवाँ महीना चल रहा है और अब केवल दोही महीने शेष रहे हैं। यदि दो मासके भीतर मेरी रिहाई नहीं हुई, तो रावण मुझे काट खायेगा। यहाँपर बिभीषण नामक रावण का एक भाई बडा ही सज्जन है और उसने मुझे यहाँ से छुडाने के लिए रावण को समझाने की खूब चेष्टा की है, पर रावण उधर तनिक भी ध्यान नहीं देता है। एक बार अपहरण करनेपर मुझे फिर से रामके अधीन करने में तथा उन के निकट पहुँचा देने में रावण को आत्मगौरव की क्षति प्रतीत होती है। इसी बिभीषण की ज्येष्ठ पुत्री कला मुझ से कभी कभी मुलाकात करने आती है। उसकी माता अर्थात् बिभीषणकी पत्नी उसे मेरे निकट एकाध बार भेज देती है। विभीषण यों प्रयत्न करने में लगा है, यह समाचार मुझे कला-वतीसे विदित हुआ है। उसी प्रकार अविन्ध्य नामक एक अति विद्वान्,

शीलवान् तथा धार्मिक वृद्ध राक्षस है। रावण की निगाह में उसे गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। वह भी रावणके हृदयपरिवर्तन के लिए प्रयत्नशील है। इस अनुभवी तथा वृद्ध अविंध्यने यूँ भी रावण को बतलाया है कि, सीताको छुडा देने के लिए बडी सेना साथ ले रामचंद्रजी आयेंगे, जिस के फल-स्वरूप राक्षसों को बडी भारी क्षति उठानी पडेगी और उन का महान् संहार हो जायगा। अतः उचित तो यही है कि, सीता ज्योंकि त्यों लौटा दी जाय। पर दुरात्मा रावण इसपर अणुमात्र भी ध्यान नहीं दे रहा है।'

ऐसा कह कर सीता रोने लगी। सीता के इस कथन से स्पष्ट होता है कि, दो महान् राक्षस अर्थात् बिभीषण तथा अविन्ध्य सीताके गुरुतर दुःख-भार को हटाने के लिए सचेष्ट तथा सतर्क थे। बिभीषण की पत्नी एवं कन्या सुस्वभावी थीं और सीता को मनःपूर्वक सहायता दे देती थीं, तथा चाहती थीं कि, सीता शीघ्र ही दुःखमुक्त हो जाए। अब तनिक विचार करने से स्पष्ट होगा कि, ये महान् स्त्रियाँ एवं पुरुष कदापि अकेले नहीं थे, अपितु इनके पीछे अनुयायी यथेष्ट थे। हर एकके सुहृद्गण तथा समान ख्यालात के लोग सैकडों की संख्या में हों, तो आश्चर्य की बात नहीं है। यदि देखा जाय, तो रियासतों में नृपबंधु तथा उनके निकट-वर्ती रिश्तेदारों की संख्या बडी प्रचंड रहा करती है, अतः ऐसा कहनेपर कि बिभीषण एवं उस की कन्या तथा पत्नी सीताके अनुकूल थे, यह अनुमान करना कि, उनकी विचारसरणी से सहमत होनेवाले लोगोंकी संख्या लंका में कमसे कम ५०० से १००० तक होगी, कोई अतिरंजित बात सुतरां नहीं।

लंका में इस विषय या घटना के बारे में इतनी गरमागरम बहस हुई थी, इसलिए मृदु अन्तःकरणवाली त्रिजटा जैसी वयोवृद्ध राक्षसी को स्वप्न में राक्षसों का विनाश, रावण की मौत, रामचन्द्रजी का विजय, रावण के परास्त होनेपर रामचन्द्रजी का सीताको पुष्पकविमान में बिठा ले जाना, आदि बातें दीखने लगीं। यदि बिभीषण के प्रयत्न खास उन्हींतक सीमित होते और अविन्ध्य के ख्यालात सिर्फ उसके मनमें ही उठ खडे होते, तो

कोई कारण न था कि, त्रिजटासदृश राक्षसी को इस भाँति स्वप्न देखने मिलते।

जनता के अन्तस्तल में खलबली हो रही थी, छिपे छिपे ढंग से ही सही, लेकिन साधारण जन सच्चे दिलसे रावण का निषेध करने को उद्यत होते थे, स्त्रियाँ तथा पुरुष अपने मन में विद्यमान असंतोष को बाहर निकलने न देते और चौराहोंपर लोग कहने लगते कि, 'यद्यपि विभीषण तथा अविंध्यने यथासंभव चेष्टा की भी, लेकिन रावण ने उन की एक भी न सुनी।' रावणसे अविंध्यने जो यह बात कह दी थी कि, इस घटनाके परिणामस्वरूप राक्षसजाति का विनाश होगा, सो बात भी जनसाधारण में फैल चुकी थी और आपस में बातचीत करते समय इस बात की चर्चा छिड जाती थी। फलतः हरकोई दबी जबान से कहता कि, 'भाई लो, अब राक्षसों का भविष्य हमें उज्ज्वल नहीं दीख पडता है।' हाँ, संभव है कि, रावण की धाक के मारे खुल्लमखुल्ला यों कहने का साहस शायद ही एकाध में हो, पर छुपे ढंग से मन ही मन यह असंतोष एवं घृणा का ज्वालामुखी फूट निकलता और जनसाधारण का मन अत्यधिक मात्रा में भयग्रस्त हो चुका था।

नागरिकों के मन में इस भाँति विचारतरंग उठ खडे होते थे, इसीलिए त्रिजटासदृश एक भोलीभाली नारी को स्वप्न में रोंगटे खडे करनेवाले तथा दिल को दहलानेवाले दृश्य दिखाई देते। जनमन की अन्तर्निगूढ विचारधारा को समझ लेना कोई कठिन बात नहीं है, क्योंकि ऐसे स्वप्न उसी के प्रतिबिम्बस्वरूप हैं।

बिभीषण तो खुद रावण के सगे भ्राता थे और उस की कन्या कला को सभी घटनाओं की जानकारी पाने में कठिनाई नहीं प्रतीत होती थी। कडे प्रतिबंध में से निकलकर सीता से मुलाकात करना कला के लिए साधारणसी बात थी; भला कौन ऐसी देखभाल करनेवाली स्त्री होगी, जो बिभीषण की दुहिता को सीतासे मिलकर बातचीत करने से रोक दे?

बिभीषण पुत्री को तो उधर जाने का स्वाभाविक अधिकार ही था। अतः उस से सीता को इन बातों की जानकारी मिला करती थी, जिस से कुछ अंशतक उसे सांत्वना मिल जाया करती थी।

बिभीषण की धर्मपत्नी जानबूझकर अपनी पुत्री को कई बार सीता के निकट भेजा करती और पर्याप्त सहायता भी पहुँचा देती थी।

हनुमान् की तैयारी।

बिदा होते समय हनुमान् ने सीता से कहा कि, यदि वह उस की पीठपर बैठ जायगी, तो वह शीघ्र उसे रामचंद्रजी के निकट पहुँचा देगा। परन्तु साध्वी सीताने इस सूचनाका स्वीकार नहीं किया। 'अन्य पुरुष का स्पर्श' तक करना सतीके लिए सर्वथैव अनुचित है (सुं० ३७।६२-६३)। यह प्रमुख कारण सीताने इनकार करते समय हनुमान् के सामने पेश किया। सीताने उल्टे सूचित किया कि, राम उधर आ जाय, रावणसे लडकर उसे परास्त करे, तथा राक्षसों के छक्के छुडाकर सीताकी मुक्तता कर उसे साथ ले चले, ताकि रामके यशकी वृद्धि हो जायगी (सुं० ३७।६४)। सीता की इस सूचना से उस का सतीत्वतेज द्विगुणित हो जाता है।

हनुमान् यदि सीता को उन्मुक्त कर ले चलता, तो रामचंद्रजीके पौरुष की क्या दशा होगी? अतः यही उचित जँचता कि राम स्वयं अपनी असीम वीरता दर्शाकर सीता को संकटपाश से मुक्त कर दे, ताकि उस की यशस्विता अत्यधिक उज्ज्वल हो उठेगी। साध्वी नारी अपने पतिदेव की सफलता तथा कीर्तिमत्ता की वृद्धि करने में कितनी लगन एवं तत्परता दर्शाती है, सो भलीभाँति व्यक्त हुआ है और यही आदर्शमय विचारधारा अतीव प्रेक्षणीय है।

सीता का सन्देश।

सीता ने अपने निकट विद्यमान चूडामणि को हनुमान् के हाथ सौंप दिया, ताकि रामचंद्रजी को पहचानने में कोई कठिनता न हो जाए और उसी उद्देश्य से कौए की एक घटना का भी हाल सुना दिया। रामके लिए

हनुमान् से सिर्फ यही सन्देशा कहला भेजा कि, वह रावण का वध करके और राक्षस-समुदाय को पराजित करके सीता को जल्द छुड़ा दे। (सुं० ३९।१-१६)

हनुमान् को देखकर और राम का समाचार पाकर सीता मारे हर्ष के फूली न समाती थी। किसी प्रिय मनुष्य का दर्शन उसे दूभर हो गया था और ऐसी दशा में राम के दूत हनुमान् से उसकी मुलाकात हुई थी। अतः सीता उस से कहती है कि, (वस एकाहं, विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि। सुं० ३९।२०;५६।३) वह एक दिन वहाँ रहे और थकावट दूर होनेपर दूसरे दिन यात्राका प्रारंभ करे, उस जैसी अभागिनी नारीको थोड़ी देर के लिए ही सही पर दुःख भूल जाने की अनुभूति मिलेगी। सीता के ऐसा आग्रह करनेपर भी, चूँकि शीघ्र लौटकर राम को सीताके कुशल समाचार सुनाने की अत्यंत आवश्यकता है, इसलिए हनुमान् ने, जल्द ही वानरसेना तथा श्रीरामचंद्रजी के साथ वापिस आ जाऊँगा, ऐसा कहकर सीता से विदा लिया।

कुछ न कुछ पराक्रम कर दिखलाना चाहिए।

सीता को बतलानेयोग्य बातों की पूर्ति होनेपर हनुमान् प्रस्थान करने का ख्याल करने लगा। सहसा उसे सूझा कि, 'अगर बिना कुछ विशेष वीरता के कार्य दिखलाये तथा रावण से मुलाकात किये बिना मैं इधर से चला जाऊँ, तो अच्छा नहीं होगा।' इसलिए वह सोचने लगा—

न साम रक्षःसु गुणाय कल्पते
न दानमर्थोपचितेषु युज्यते।
न भेदसाध्या बलदर्पिता जनाः
पराक्रमस्त्वेष ममेह रोचते॥ (सुं. ४१।३)

अवकाशो न साम्नस्तु राक्षसेष्वधिगम्यते।
न दानस्य न भेदस्य नैव युद्धस्य दृश्यते॥
(सुं. २।२७)

'सामोपचारद्वारा राक्षसों पर कुछ अधिक प्रभाव पडेगा, यह आशा व्यर्थ है; वे वैभवशाली हैं तथा असीम धनवाले हैं। अतः संपत्ति का प्रलोभन देनेसे कोई लाभ नहीं होगा और अत्यधिक बलवाले एवं घमंडी राक्षसों पर भेदनीति का प्रयोग करना व्यर्थ है, अतएव पर्याप्त वीरता प्रकट करके ही इन्हें प्रभावित करना मुझे उचित जँचता है।'

ऐसा सोच लेनेपर हनुमान् ने ठान लिया कि किसी न किसी तरह राक्षसों से झगडा मोल लेना चाहिए और उसके लिए रावण का प्यारा उपवन ऊजाड तथा वीरान करना चाहिए।

बगीचा विध्वस्त हो जाता है।

मनमें विचार उत्पन्न होते ही हनुमान् देर क्यों करता, तुरंत काम में जुट जाता। जिस बगीचे को रावण बहुत चाहता था, उसीमें पदार्पण करके उसने महान् विध्वंस का सूत्रपात किया और इस विनाशकारी लीला को समाप्त होते देर न लगी। जब हनुमान् सदृश अति बलिष्ठ वीर उमंगभरे दिल से उपवन को तहसनहस करने लगे, तो बात की बात में समूचा वह सुन्दर बगीचा उजड एवं छिन्न-विछिन्न हो जाय, तो कौन आश्चर्य की बात है?

यह विध्वंसकारी लीला अवलोकन कर देखभाल करनेवाली राक्षसियाँ सीतासे पूछने लगीं, 'देवि! आज प्रातःकाल तुमसे वार्तालाप करनेवाला वानर बगीचे में विनाश करता जा रहा है, भला वह कौन है?' (सुं० ४२।५-६)

सीताने इस पर जवाब दिया- 'भला मैं क्या जानूँ? साँप ही तो साँप के पैर जानता है (अहिरेव अहेः पादान् विजानाति। ४२।९) शायद वह कोई राक्षस ही होगा। मुझे उसके संबंधमें कुछ भी जानकारी नहीं है।'

सीता के कथन से उन्हें संतोष नहीं हुआ और कुछ राक्षसियाँ वहाँ से उठकर रावण के निकट चली गयीं। वानर ने सारा बगीचा उजाड कर डाला ऐसा समाचार उन्हों ने रावण को पहुँचा दिया। वे कहने लगीं-

'राक्षसाधीश! आज सुबह एक वानर सीताके समीप आया और उसने उस से यथेष्ट वार्तालाप किया। सीता उसे ठीक जानती है, पर हमारे पूछनेपर उसने अपना अज्ञान ही प्रकट किया। जिस वृक्षके नीचे सीता बैठ गयी थी, उसे छोड कर और ज्योंका त्यों रखकर शेष समूचा उपवन उस वानरने विध्वस्त कर डाला है। अब महाराज! आप ही इसका उचित प्रबंध करें। (सुं० ४२।१०-२०)

यह समाचार पाकर रावण आगबबूला हो उठा और मारे क्रोध के झल्लाने लगा। अपने किंकर नामधारी राक्षस-समुदाय को तुरंत वानर को पकडनेके लिए भेज दिया। (किं-कर) चाहे जो करनेके लिए कहा जाय, तो बिना कुछ भी सोचविचार किये आज्ञानुसार काम करनेवाले किंकर कहलाते हैं। आज्ञा पाते ही वे उसी क्षण हनुमान् पर धावा करने लगे। (स्वामी-सन्देशनिःशंकाः। सुं० ४२।३८)

हनुमान् से जूझने पर उन्हें स्वर्ग सिधारने में कुछ भी देर न लगी। इसके पश्चात्, रावण ने जिन जिन वीरों को भेज दिया, उन्हें धराशायी करके हनुमान् घनघोर गर्जना करने लगा- 'राक्षसों, ध्यानमें रखो, मेरेसदृश सहस्रों वानर इधर पधारेंगे और इस नगरी का, तुम्हारा और रावणका भी विनाश लीलयैव कर देंगे।'

यह घोषणा सुनते ही लंकानिवासियों के पेट में चूहे कूदने लगे और वे अत्यधिक भयभीत, व्याकुल एवं व्यथितचित्त हो उठे। ऐसी घोषणा करनेमें हनुमान् का उद्देश्य इतना ही था कि जनता को रावण से पृथक् कर दिया जाय, ताकि रावण को जनता का आधार यथासंभव न मिले और वह अकेला तथा निराधार रह जाए। हनुमान् को इस उद्देश्य में बहुत कुछ सफलता मिली।

रावण ने अधिकाधिक सैनिक भेजने का सिलसिला जारी रखा, ताकि वे हनुमान् से लडकर उसे पकडने पायँ, पर वे बराबर असफल रहे। हनुमान् को पकडना तो दूर रहा, लेकिन वे खुद ही क्षतविक्षत हो, धराशायी हो

गए। यह संवाद पाकर अब रावण के अन्तस्तल में भी भय का प्रादुर्भाव हुआ। रावण को कभी यह अनुभव न मिला था कि, उसकी सेना शिकस्त खाए। सचमुच रावण की कुछ ऐसी धाक बैठ गयी थी कि, वह अकेला ही चला जाता और विजयी बन लौट आता। बिना लडाई छेडे ही वह कई राज्य हडपा गया था, क्योंकि किसी के स्वप्न में भी यह बात न आयी थी कि, रावण का पराभव हो सकता है। रावण के आने का समाचार पाते ही लोगों के हाथ-पाँव फूल जाते और वे अणुमात्र भी प्रतिकार न करके रावण की हाँ में हाँ मिलाते थे। रावण का आतंक इतना व्यापक तथा सर्वंकष बन चुका था।

केवल अपने वैयक्तिक आतंक के बलबूतेपर रावण हर जगह विजयी बन जाता था, इस कारण से प्रारंभकाल में जो दोचार लडाईयाँ हुई थीं, उन का ही अनुभव उस सेना को प्राप्त था और यह बहुत वर्ष पहले की बात थी। अतः सेना का युद्धानुभव अत्यंत सीमित था, क्योंकि आगे चलकर उन्हें लडने के मौके बहुत ही कम मिलते थे। सेनापति तथा सैनिकों का अनुभव तथा रणचातुरी पुरानी एवं जीर्ण बन चुकी थी। अगर लडाई के मौके बार बार न आ जायँ, तो युद्धकौशल्य क्षीण एवं अप्रभावी बने बिना न रहेगा। ऐसी दशा में रावण के सेनापति तथा अन्य योद्धागण सिर्फ अपने बल के अभिमान में अन्य आवश्यक बातों को तुच्छ तथा नगण्य मानने के अभ्यस्त बन चुके थे। प्रत्यक्ष लडने का अवसर आ जानेपर उनकी कलई खुलना कोई असंभव या कठिन बात नहीं थी। चूँकि बरसों तक शांततामय एवं विलासितापूर्ण जीवन बिता देने के कारण उन का युद्धानुभव नहीं के बराबर था, अतः हनुमान् जैसे रणबाँकुरे एवं सफलताजन्य उत्साह से लबालब भरे हुए वीर के सम्मुख उन की दाल भला कैसे गलने पाती?

रावण के सैनिक केवल यही डींग मारते कि, ५० साल पहले हमने युद्धभूमि में यों वीरता दर्शायी थी, इस ढंग से हमने विरोधी दल के दाँत खट्टे किए थे; बस आगे और कुछ था नहीं। राजनीति की घटनाओं

या नित नई लडाइयों का लेशमात्र भी ज्ञान या अनुभव नहीं। लंका-निवासी राक्षस योद्धाओं की ऐसी अकर्मण्यतापूर्ण दशा होने के कारण लंकानगरी में यत्रतत्र शिथिलता एवं निरुत्साह का ही बाजार गर्म था।

लंका की समुचित रक्षा करनेके अति उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य पर महिलाओंकी नियुक्ति हो गयी थी। इस गुरुतर कार्यभारको उठानेके लिए पुरुषवर्ग प्रायः आगे आने में झिझकता था, या उनकी वैसी कोई अनिवार्य आवश्यकता प्रतीत नहीं होती थी। राक्षसियों की भी धाक इस पैमानेपर फैल चुकी थी कि त्राटिका या ताडका अकेले ही भारत में आकर अपनी इच्छा के अनुसार विशाल भूविभाग पर अपना अधिकार प्रस्थापित कर सकती थी। विरोध करनेवाला या राह में रोडे अटकानेवाला कोई शायद था ही नहीं। इसका परिणाम यही हुआ कि राक्षसजाति के वीरों तथा योद्धाओं के गर्व एवं वृथा अभिमान की कोई सीमा न रही। फलतः समूचे शासन-प्रबंध में अतीव शिथिलता एवं उदासीनता व्यक्त हो रही थी।

इधर वानरों के राज्य में बात यह थी कि युद्धशास्त्र में वानर युवक नित नई प्रणालियों एवं आविष्कारों का सृजन करने में तल्लीन रहते थे। इतनाही नहीं अपितु, वैयक्तिक सामर्थ्य चरम सीमातक पहुंचाने में वानरों के वीर युवक सफलितप्रयत्न हो चुके थे। सिंहोंको उठाकर पटक देना, हाथियों को भालों से छिन्नविछिन्न कर डालना, वृक्षोंको उखाडना, शत्रु-सेनापर टीलोंकी बौछार करना, आदि आदि नूतन युद्ध प्रकार वानरों ने प्रचलित कर रखे थे। हाँ, इसके लिए असीम बल एवं अतुलनीय उत्साह तथा अनवरत अध्यवसायशीलता और अथक परिश्रम करने की क्षमता आदि गुणों की आवश्यकता थी, पर वानर-जाति के उदीयमान वीरों तथा युवकों में ये गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थे, तथा विकसित भी हो चुके थे।

पर वहाँपर रावण के सैनिकों की क्या दशा थी? अति विलासिता एवं अति सुखोपभोग का त्याग करना उनके लिए दूभर था। वानर-जाति के

योद्धा कष्टसहिष्णु तथा अतिसामर्थ्यवान् थे। इस भाँति जब इन दोनों दलों में इतनी विषमता एवं विभिन्नता अस्तित्व में आ चुकी थी, तब राक्षसजाति के वीर इस से सुतरां अपरिचित ही रहे। यही कारण था कि वानरों तथा राक्षसों के मध्य युद्ध छिडते ही प्रारंभ से ले अंततक रावणके सैनिकों तथा योद्धाओं को बराबर पीछे ही पग धरने पडे और पराजयों का एक ताँतासा उनके पीछे लगाही था। कहीं एकाध विजय पाई तो बहुत। वानरों को परास्त करने में राक्षस योद्धाओं को तनिक भी सफलता नहीं मिली।

हनुमान् ने पेडों की जडें उखाडकर पहलेपहल रावण के किंकरों को खूब पीटा और उन्हें यमसदन भेज दिया। शायद उन राक्षसयोद्धाओं के स्वप्नमें भी यह बात न आयी होगी कि, कोई वृक्षों के ठूँठ उखाडकर तथा चतुर्दिक् घुमा कर उन पर आघात करेगा।

राक्षसों तथा वानरों के मध्य जो मारपीट तथा कशमकश हुई थी, उस में किसने कब किसपर किससे आघात किया और उस प्रहार का नतीजा क्या निकला, इसका ब्यौरेवार वर्णन करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता है। हमें इतनाही देखना चाहिए कि, जब एक ओर विलासी, गर्विष्ठ तथा वृथा अभिमान भरे सैनिकों की सेना में भरमार होती है और यह सेना उस दूसरे दलवालों की सेना से जूझती रहे कि, जिस में प्राणपण से विजयी बनने के लिए योद्धा एवं सैनिक प्रयत्नों की पराकाष्ठा करने में अणुमात्र भी त्रुटि नहीं करते हैं, उस समय कैसी चमत्कृतिजनक घटना हुआ करती है, दुर्भेद्य महागढ तथा दुर्गों पर सुगमता से शत्रुदल की पताकाएँ फहराने लगती हैं, तथा अभीतक अपराजित माने जानेवाले सैनिक एवं सिपाही थडल्ले से पराजित हो रणभूमिसे मुँह फेर भाग निकलते हैं! इतिहास के पन्ने ऐसी घटनाओं से पूर्ण हैं और लंकामें जो यह घटना हुई, वह भी कुछ इसी प्रकार की थी।

यदि ऊपरऊपर निगाह डाली जाए, तो जान पडता था कि रावणके राज्य

में सुप्रबंध चरम कोटितक पहुंच चुका है, पर नगरी के द्वारपार ही संरक्षक-दलके सर्वोच्च पदपर अधिष्ठित महिला हनुमान् से पूछती है कि, 'तुम कौन हो,' बिना इजाजत के वह भीतर घुस जाता है और थोडी देर तक बातचीत होते ही तथा उस महिला के एक चपत जमाते ही वह मुष्टि-प्रहार से उसे अधमरी कर डालता है। इतना होनेपर भी कोई आगे चल कर हनुमान् के पथ में रुकावट नहीं उपस्थित करता है और न उसे गिरफ्तार करनेका ही साहस करता है।

तदुपरांत चंद्रिकाधौत धवल निशामें लुकछिपकर हनुमान् समूचे शहरमें घूमता है और यद्यपि पहरेदार एवं सिपाही नगरभर में स्थान स्थान पर दिखाई देते हैं, तथापि वे सभी मद्यका सेवन कर मतवाले बने रहते हैं, तथा पर्याप्त धींगाधींगी करते हुए भी हनुमान् को टोकनेका ख्यालतक नहीं करते हैं।

अब आगे और बढकर देखिए, रावण के रनिवास में सैकडों की संख्या में पहरेदार रक्षा के कार्यपर नियुक्त हुए हैं, पर सभी अभिमान के नशे में चूर हैं। हनुमान् रावण के समूचे रनवास को ढूँढ लेता है, पर उसे रोकने-वाला कोई नहीं है।

इस से यही अनुमान निकलता है कि, सिर्फ ऊपरी दिखलावे के लिए ही रावण का प्रबंध बना रखा था, उस में वास्तविक सतर्कता लेशमात्र भी नहीं पाई जाती थी। इतिहास के पढनेवाले इस बात से भली भाँति परिचित हैं कि, विलासिता में दिनरात डूबे हुए, मतवाले, गर्विष्ठ, अतीत-काल के विजयों से ऐंठू बने हुए तथा तानाशाह जैसे ब्यौहार करनेवाले लोग ऐन समय पर निकम्मे ही ठहरते हैं।

अल्प संख्यावाले महाराष्ट्र सैनिकोंने देहली के अधिपति मुगलों के लक्षावधि सिपाहियों के ३० वर्षों तक दाँत खट्टे किए थे। शिवाजी के उत्तरकालीन यह इतिहास देख लेनेपर तदुपरांत पेशवाओं के सहस्रावधि योद्धाओं को अँग्रेजी सेनाके कुछ ही कवायद की शिक्षा प्राप्त किए सैनिकों

ने पेशवाकालीन शासन के उत्तरार्ध में किस भाँति पराभूत किया था, सो भी देखना चाहिए और उसी प्रकार ब्रिटिशोंने बगैर किसी बडी लडाई के ब्रह्मदेश को कैसे जीत लिया, यह भी ध्यान में रखना चाहिए, ताकि सुगमता से ज्ञात होवे कि, रावण के योद्धा तथा सैनिक कैसे इतने जल्द हार गए और एकाध वानरवीर से लडने का अवसर आते ही कैसे बुरी तरह से उन्हें मुँह की खानी पडी।

एक ही आदमी भी सिंह को उठाकर पटक सकता है, यह खड्गसिंहने दर्शाया; अकेला मानव दो सौ सैनिकों से मुठभेड करते करते अपना प्रभाव कैसे प्रस्थापित करता है, सो कीकरसिंगने बतला दिया और तानाजीने सिद्ध किया कि, वीर पुरुष इकलौता होने पर भी तीन हाथियोंको परास्त करता है! इन ऐतिहासिक घटनाओं से विदित होता है कि, जयिष्णु वीर एकाकीपन के रहने पर भी कितना कार्य कर दिखला सकता है। हनुमान् ने लंकानगरी में यही सिद्ध करके दर्शाया।

जनता का मत पहले ही रावण के खिलाफ हो चुका था और रावण के कनिष्ठ भ्राता तथा आचार्य भी विरोधी दल में शामिल थे। स्त्रियाँ भी सीता की सहायता करने उद्यत थीं और अनेक लोगों की यह दृढ धारणा हो गयी थी कि, सीता का लंका में रहना कदापि हितकारक नहीं हो सकता है। अनजान में ही सही, लेकिन इतना बडा वर्ग हनुमान् का पृष्ठपोषक बन चुका था। यही कारण था कि, लंकानिवासी लोग उसके विरुद्ध बौखलाकर नहीं उठे। हाँ, कुछ वेतनभोगी सैनिक तथा भाडे के टट्टू थे ही, वे हनुमान् से लडने लगे अतिरिक्त विलासितामय जीवन बिताने के कारण प्रमाथी तथा अदम्य अध्यवसायशील हनुमान् के सम्मुख उनका टिकना असंभव हो गया।

शत्रुदल का ही क्यों न हो, पर सन्देशवाहक दूत के नाते हनुमान् के सम्मुख कोई प्राणसंकट नहीं उठ खडा हुआ था, क्योंकि राष्ट्रान्तरीय युद्धनीति के नियमानुसार शत्रु का सन्देसा लाया हुआ एलची मृत्युदंड के

भय से उन्मुक्त रहता है। अतः हनुमान् का जीवित खतरे में नहीं था। लंका की शासनप्रणाली में ढीलापन पाया जाता था, सभी लोक विलासी, घमंड से भरे, मारे अभिमान के ऐंठू प्रकृति के, बिना कुछ परिश्रम किये चुपचाप बैठकर खानेवाले बन चुके थे। यदि हनुमान् सदृश अति सतर्कता-पूर्वक तैयार किया हुआ वीर उन का पराभव कर दे, तो कौन बडे आश्चर्य की बात है?

समुचित शिक्षा देकर वानरजाति के वीर पूर्ण रूपेण तैयार कर रखे थे और उन वानर नवयुवकोंके सम्मुख (दशग्रीव-वधोद्यताः। बालकांड १७।१८) एक ही आदर्श भली भाँति रखा गया था कि, रावण का पराभव किसी न किसी तरह करना चाहिए। इस एकमेव ध्येय से वे सभी प्रभावित हो गए थे। राक्षसों को देखते ही उन में असीम स्फूर्ति का विद्युत्-संचार हो जाता था। केवल सीता के संबंध में जानकारी मिले, इसीलिए हनुमान् ने लंका की यात्रा की थी और सीता की वास्तविक दशा से परिचित होते ही उसे लौट जाना चाहिए था। परन्तु वैसा न करते हुए उसने उपवन को धूल में मिला दिया और यद्यपि उसने दिखाने के लिए यों कहा कि, मैं सुग्रीव का सन्देशवाहक दूत हूँ, तथापि उसे वैसा कोई खास सन्देश नहीं मिला था। वास्तविक बात ऐसी हुई कि, हनुमान्-सदृश अति वीर एवं पूर्णरूपेण तैयार सेनापति को जब ज्ञात हुआ कि, लंका के प्रबंध में सावधानता एवं सतर्कता का पूर्णतया अभाव है और लोक भी बडे विलासी हैं, तब उसमें आत्मविश्वास पर्याप्तरूपसे बढ गया, जिस के फलस्वरूप अगले कार्यक्रम की रूपरेखा उसने स्वयं ही निर्धारित की, दूतके नाते आने का अभिनय मात्र किया, आत्मरक्षणका निमित्त करके इतने लोगों का वध कर दिया। रावण के सामने इस का अंगीकार किया और लंकानगरी में आग लगा दी। रावण की यह आज्ञा कि, पूँछमें चीथडें लगाकर आग लगा देनी चाहिए, सरासर अन्यायपूर्ण थी। क्योंकि दूत से इस तरह बर्ताव करना उसे कभी न सुहाता। पर जलती दूम से समूची लंकानगरी में अग्निकांड मचा देने में तथा गोब्राह्मण एवं बालक

और नारियों को भस्मीभूत करने में हनुमान् ने सतर्कतापूर्वक थोडे ही दूतधर्म का पालन किया था। दर असल, सीता का अपहरण करके रावण ने ही प्रथमतः युद्ध का बीजारोपण किया और 'अविख्यापित युद्ध' या बगैर युद्धघोषणा के युद्ध का सूत्रपात हो ही चुका था, तो फिर हनुमान् उस से पूर्ण लाभ क्यों न उठाये ?

शिवाजी अकेला ही मुगल सम्राट् अवरंगजेब के दरबार में जा उपस्थित हुआ और वैसे ही उस के कारागृह से छूटकर सुरक्षित ढंग से अपने स्वराज्य में वापिस चला आया। पहले सैनिकों को छुट्टी देकर पश्चात् अपने छोटे बालक के साथ आग्रा से निकल भाग जाना कितना बीहड तथा साहसपूर्ण कार्य है। शिवाजीने जिस मानसिक सामर्थ्य के बित्ते पर इस अतिकठिन कार्यमें सफलता पाई थी, उसी के सहारे एकाकी हनुमान्ने लंकानगरी को भस्मीभूत कर के बिना किसी क्षति के स्वदेशको गमन किया !!

यद्यपि ब्यौरेवार वर्णन लिखते समय काव्यमय भाषा एवं अतिरंजित भाग पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है, तो भी उधर अधिक ध्यान देने का कोई कारण नहीं। हमें यहाँ पर इतना ही देखना चाहिए कि, साधारणतया घटनाएँ किस ढंग से अस्तित्व में आ गयीं और उस विहंगमावलोकन के जरिये तुलना करनी चाहिए कि, वानरों तथा राक्षसों में किन सामाजिक तथा राष्ट्रीय विचारधाराओं एवं आंदोलनों का प्रचलन अल्पाधिक मात्रा में था। इस भाँति तौलनिक अध्ययन करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि, राक्षसजाति का साम्राज्य धीरेधीरे अधःपतन की ओर प्रवृत्त हुआ था और इधर आर्य तथा वानर--राष्ट्रों में नवयौवन तथा नव उत्साह अधिकाधिक मात्रा में बढता जा रहा था। आर्यराष्ट्र तथा वानरराष्ट्र प्रगतिपथ पर आगे बढ रहे थे। अतएव इन दो जातियों में अर्थात् राक्षस और आर्यवानर में विभिन्नता प्रतिदिन बढती ही जा रही थी, जो आगे चलकर हर प्रतिद्वन्द्वितापूर्ण कार्य में प्रभावपूर्ण ढंग से प्रकट होने लगी।

रावण के मन में शंका के लिए स्थान था।

रावण इस बात से परिचित था कि, विष्णु, यम, इंद्र, वैश्रवणकुबेर, वरुण आदि देवों के प्रमुख अपने खिलाफ षड्यंत्र का सृजन करने में तत्पर हैं और उन की बडी इच्छा इतनी ही है कि, रावण के साम्राज्य को किसी न किसी तरह धूल में मिला देना चाहिए (सुं० ५०।३०, ९।१०)। सिर्फ वह इतना ही नहीं जानता था कि, उस अन्तर्निगूढ षड्यंत्र की परिधि किस बडे पैमाने पर विस्तृत हुई होगी। ये सभी देवों के अग्रगंता अपने विरुद्ध बगावत करने की चेष्टा में लगे हुए हैं, यह बात रावण को विदित थी। रावण को ख्याल आया कि, इन्हीं विप्लववादियों या विद्रोहियोंने किसी को वानरजाति का लिबास देकर इधर भेज दिया हो। अपने विरुद्ध चतुर्दिक चलाई हुई कारवाइयों की जानकारी रावण को भली भाँति थी। चहुँ ओर रावण के विरुद्ध विद्रोह एवं असंतोष की प्रचंड आग धधक रही थी, यह सुतरां सत्य है, क्योंकि इसी कारण से देव, आर्य, ऋषि तथा वानर बहुत दिनों से गुप्त षड्यंत्र का सृजन करने में लगे थे और लगभग चालीस वर्षों से रावण के साम्राज्य को मटियामेट करने के लिए अदम्य अध्यवसाय एवं तीव्र लगन से वे अविरत चेष्टा कर रहे थे। परन्तु रावण वृथा अभिमान एवं घमंड में निरत था, अतः उसने उस आंदोलन की ओर तनिक भी ध्यान न दिया। यही कारण था कि, अन्ततोगत्वा उसे हार के पीछे हार उठानी पडी और विजयी से विजित बन युद्धभूमि में बुरी तरह मुँह की खानी पडी, तथा वह प्राणों से भी हाथ धो बैठा।

हनुमान् का रावण से मिलना तथा बातचीत करना।

हनुमान् ने उपवन वीरान कर दिये, तब कुछ पहरेदार उस पर हमला करने दौडे, पर वीर वानरने वे सभी राक्षस धाराशायी कर डाले। पश्चात् अनेक राक्षस उसे पकडने के लिए दौडे, पर उन की भी हत्या हुई और अन्त में रावण के पुत्र इन्द्रजित्जीने ब्रह्मपाशद्वारा हनुमान् को बाँध रखा।

ब्रह्माजी से हनुमान् को शिक्षा मिली थी कि, किस ढंग से ब्रह्मपाश से छुटकारा पाना सम्भव है, (पितामहानुग्रहं। सुं० ४८।४३) पर मुक्तता पाने के लिए वैसा कोई प्रयत्न न करके उसने राक्षसों को यों दर्शाया कि, मानों वह सचमुच निश्चेष्ट हो पडा है, क्योंकि रावण से मिलने की इच्छा हनुमान् के मन में थी। बाँध कर रावण के सामने ले जाने पर अनायास ही आमनेसामने बातचीत करने का मौका मिलेगा। इसी कारण से उसने टाल लिया कि, बँधे हुए रहने का दिखावा करना ही ठीक है। इंद्रजितने उसे बँधवाकर रावण के सामने खडा कर दिया। कुछ काल तक हनुमान् से रावण के सचिव एवं रावण की बातचीत हुई और अन्त में राम का सन्देश सुनाने के लिए हनुमान्ने इस तरह भाषण करना आरम्भ किया।

हनुमान् का अभिभाषण।

मैं वानराधीश सुग्रीवमहाराज की आज्ञा पाकर आप के समीप आ पहुँचा हूँ। आप के भ्राता के समान सुग्रीव आप के कुशल वृत्तांत के बारे में पूछताछ कर रहे हैं और उनका वह सन्देश सुन लीजिएगा। एक अति-विख्यात नरेश दशरथ नाम के हुए और उन की आज्ञा से उन के ज्येष्ठ-पुत्र दण्डकारण्य चले आये। साथ में अर्धांगिनी सीता तथा भाई लक्ष्मण वन में रहने के लिए आये थे। जनस्थान में निवास करते समय राम की धर्मपत्नी सीताका अपहरण हुआ। राम तथा लक्ष्मण ढूँढते ढूँढते ऋष्यमूक पर्वत पहुँचे, जहाँ पर सुग्रीव से मित्रता हुई।

आगे चलकर रामने एकही बाण से वाली का वध कर डाला। आप वाली से भली प्रकार परिचित हैं। इन्हीं को यमपुर भेज कर रामने सुग्रीव को राज्यपद पर बिठाया। इसके पश्चात् सुग्रीव ने सीता का अन्वेषण करने के लिए सहस्रों की संख्या में वानर चहुँ ओर भेज दिये। मैं उन्हीं खोजने-वाले वानरोंमें से एक हूँ और समुन्दर को लाँघकर इस लंकानगरी में पदार्पण करने में सफलता मुझे मिली है। सीता को मैंने देख लिया है। आप जैसे विचारशील पुरुषों को परनारी का अपहरण करना तनिक भी

शोभा नहीं देता। आप यह बात ठीकठीक ध्यान में रखें कि रामसे शत्रुता मोल लेकर जीवित रहना असंभव है।

राक्षसाधीश! आपने बडी भारी तपश्चर्या करके यथेष्ट शक्ति प्राप्त कर रखी है और आपसे प्रार्थना है कि आप उसे इस घोर पापकर्म से नष्ट न कीजिए। सुग्रीवसदृश वानर और राम जैसे मानव के सामने कौन भला आपकी रक्षा करेगा?

आप यही देखिए न, जनस्थान में जो आपकी सेना रखी हुई थी उसे रामने पूर्णतया तहस नहस कर दिया है। वाली को भी उसने जीवित न रहने दिया और अब तो सुग्रीव से भी मित्रता जोड ली है। ऐसी दशामें आप सोचिए कि, आपका हित किसमें है? बिना किसीसे सहायता लिये मैं अकेला ही आपकी इस लंका को मटियामेट कर सकता हूँ, अतः सोचिए तो सही कि जब अपनी सारी सेना साथ लिए रामचंद्रजी इधर पधारेंगे, तो किस की मजाल है कि वह आपकी रक्षा करने आ जाए? (सुं. ५१)

हनुमान् का यह भाषण सुन रावण आगबबूला हो उठा और तुरन्त आज्ञा दे दी कि, हनुमान् का वध किया जाय।

हनुमान्ने भी अपने भाषण में जानबूझकर ऐसी वाक्यरचना का उल्लेख या प्रयोग किया कि, जो रावणके दिल को भडका दे, जैसे वाली को तुम जानते हो और उसी तुम्हारे परिचित का वध सिर्फ एक ही बाण से रामने कर दिखलाया। यह वाक्य रावण को बहुत ही बुरा लगा होगा, क्योंकि एक समय वालीने रावणको पराभूत कर अपने कारागृह में रखा था। इस अरुचिकर घटना का उल्लेख खुल्लमखुल्ला भरी परिषद में करने से अभिमान से परिपूर्ण रावण को वह असह्य प्रतीत हुआ, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

हनुमान् के इस कथन का कि, जनस्थान में रखी हुई सेना का पराजय एवं वध रामने किया, इतना ही मतलब था- आर्य तथा वानरों के मध्य एकता या संगठन का कोई सूत्रपात्र न होने पाय, इस कारण से

प्रभावित हो, रावणने जो राक्षससेना दो राष्ट्रों के सीमाप्रदेश पर रखी थी, वह अकृतकार्य हो, रामचंद्रजी की असीम तथा अद्‌भुत वीरता के सामने टिक न सकी और आर्यजाति तथा वानरजाति एकता के सूत्र में पिरोयी जा चुकी है, एवं दोनों का दृढ संगठन फलीभूत हुआ है। इस घटना के फलस्वरूप राक्षस एवं वानरों के मध्य जो मित्रता थी, सो नष्ट हुई और आगे चलकर राक्षसजाति वानरों की सहायता से वंचित रहेगी। हनुमान् की इच्छा थी कि, ये दोनों बातें भली भाँति रावण के मन में पैठ जायँ।

इस वस्तुस्थिति को ठीक प्रकार हृदयंगम करने के लिए तनिक पिछली घटनाओं की ओर मुडकर देखना उचित होगा। उत्तर भारत में आर्यराष्ट्र प्रबल बन चुका था और दक्षिण भारत में वानरराष्ट्र कुछ कम उपेक्षणीय न था। पर रावणने वानरपति वाली से मित्रतापूर्ण समझौता कर के आक्रमण न करने के पत्रपर हस्ताक्षर किया था और इस भाँति चतुराई से दो राष्ट्रों ने सीमाप्रदेश में अर्थात् जनस्थान में चौदह सहस्र राक्षसों का एक गणसैन्य रखा था। रावण की मनीषा केवल इतनी ही थी कि, आर्य एवं वानरराष्ट्रों के किसी भी तरह के समझौते को जगह न मिले। दो राष्ट्रों के बीच पृथकता का वायुमण्डल इस प्रकार पनपने से यह संभव न था कि, दोनों जातियाँ परस्पर संगठन करें। अतः रावण बिना किसी आशंका के अपना प्रभावक्षेत्र विस्तृत कर सका।

दक्षिण भूविभाग में निवास करने का मौका प्राप्त होते ही रामचंद्रजीने प्रथम इस प्रबल राक्षससेना को अपदस्थ किया, जिस का परिणाम यह हुआ कि, आर्य तथा वानरों में परस्पर मिलाप एवं संगठन होने में कोई रुकावट नहीं रही। हाँ, अब एक ही कठिनाई राह में थी कि, रावण का मित्र वाली आर्यों के वानरों से मिल कर संयुक्त मोर्चा प्रस्थापित करने में रोडा अटकाये, क्योंकि उसने तो रावण से समझौता कर सहायता करने की तैयारी दर्शायी थी। यदि राक्षस युद्ध छेड देते, तो वाली अवश्य ही उन्हें मदद पहुँचाता। पर अब तो वाली का वध कर के रामचंद्रजीने उस

समस्या को भी हल कर दिया और वानरों के राज्यपर सुग्रीव को बिठाकर उस से संधि कर वानरों की मित्रता अपने दलवालों को उपलब्ध करा दी।

इस तरह रामचंद्रजीने रावण के एक मित्र को यमसदन भिजवाकर रावण की आधी शक्ति विनष्ट कर दी और आर्यों एवं वानरों के मध्य मित्रता प्रस्थापित कर आर्यजाति को अजेय बना दिया।

रावणको यह राजनैतिक हलचल भली प्रकार ज्ञात हो, इस हेतु हनुमान् ने रावण को बतलाया कि जनस्थान में रखी हुई राक्षससेना रामचंद्रजी के सामने हतबल तथा परास्त हुई और वाली को भी प्राणों से हाथ धो बैठना पडा। रावण को भी कैद करने की क्षमता रखनेवाले वाली को रामचंद्रजी के एकही बाण से धराशायी होना पडा, इस घटना से रावण को इतनी तो सूचना मिली कि, रामचंद्रजी की शक्ति कितनी अपार, अद्भुत एवं असीम है। कहने की आवश्यकता नहीं कि हनुमान् का यह अभिभाषण रावणको नितान्त बुरा लगा। रावण अब आगे यह बरदाश्त नहीं कर सकता था।

पाठक सोच लें कि यहाँपर हनुमान् ने अपनी वक्तृतामें कितनी चतुराई दर्शायी है। इसी बेर हनुमान् ने ऐसा भी कहा कि 'राम मानव है और सुग्रीव वानर है, कोई भी देव, यक्ष या राक्षसश्रेणी में परिगणित नहीं है।' (सुं. ५१।२७) ऐसा कहनेमें हनुमान् का यही मतलब था कि, रावण यह तो समझ ले कि वरदान की बदौलत यद्यपि देव, यक्ष एवं राक्षस रावण का कुछ भी नहीं बिगाड सकते थे, तथापि अन्य जाति के लोग रावण को पर्याप्त क्षति पहुँचाने की क्षमता रखते थे। हनुमान् सभा के संपूर्ण अधिवेशन के मौकेपर इस महत्त्वपूर्ण बात की चेतावनी दे चुका और इसी बजह से रावणके अंतस्तल में यह अभिभाषण बुरी तरह खटकने लगा।

यहाँ पर स्पष्ट रूप से बतलाया है कि, (मानुषो राघवः। न देवः सुं० ५१।२७) अतः रामायण पढते समय रामको मानव मानना ही उचित है। रामचंद्रजी को देवता समझ कर रामायण पढना ठीक नहीं,

क्योंकि मूल ग्रन्थ में ही साफसाफ कहा है, (राघवः न देवः) राम देवता नहीं है।

हनुमान् के कथन से रावण को बडा क्रोध आया और हनुमान् के वध की आज्ञा देने में उसे तनिक भी झिझक नहीं हुई।

दूत का वध करना ठीक नहीं।

हनुमान् का भाषण सुन रावण आपेसे बाहर हुआ, क्योंकि दिल को चुभनेवाले शब्द एवं वाक्य पर्याप्त मात्रा में हनुमान्ने प्रयुक्त किये। इसलिए क्रोधांध हो, झल्लाकर तुरन्त उसे प्राणदंड देने की घोषणा की। यद्यपि ऐसा करना राष्ट्रान्तरीय कानून के खिलाफ था। मौत की सजा दी गयी, ऐसा देख बिभीषण नम्रतापूर्वक रावण को समझाने लगा–

राक्षसाधीश ! मुझे क्षमा कीजिए और मैं जो कुछ कहूँगा, उस पर तनिक विचार कीजिए। विचारशील महीपाल दूत का, भले ही वह शत्रु से आया हो, लेकिन वध नहीं करते हैं। इस का कारण केवल इतना ही है, दूत का वध करना किसी भी दशा में निषिद्ध है। अगर आप जैसे समझदार लोग भी क्रोध के मारे शास्त्रविरुद्ध आचरण करने में झिझक नहीं महसूस करते, तो भला शास्त्र सीखने की उपयोगिता कहाँ रही ? भले प्रकार शास्त्र देखकर दूत को जो कुछ भी कमज्यादह शारीरिक दण्ड देना हो सो देना ठीक है, लेकिन मौत की सजा कभी न पानेयोग्य दूतकी हत्या न की जाय। (सुं० ५२।१-९)

रावण इतना सुन बोला– जो पापकर्म कर चुके हों, उन को प्राणदंड देने में कुछ भी आपत्ति नहीं। नियम के विरुद्ध यह भाषण सुन दूत की अवध्यता सदा के लिए प्रस्थापित करने के हेतु बिभीषण पुनः कहने लगा।

राक्षसाधीश ! दूत की हत्या करना हर हालत में प्रतिषिद्ध है। यद्यपि हम पूरा पूरा मानते हैं कि, इस दूतने बहुत ही अनुचित कार्य कर डाले हैं, तो भी वध करने के लिए यह पर्याप्त कारण नहीं हो सकता है। हाँ, अंगविच्छेद, कोडे लगाना, मुण्डन करना या बदन में धधकता कोयला

रखना आदि दण्ड दुरात्मा दूतों के लिए निर्दिष्ट हैं, पर कहीं भी दूत के वध का उल्लेख नहीं पाया जाता है। रावण! आप जैसे वीर, प्रबल तथा विद्वान् इस संसारमें दूसरा कोई नहीं, अतः कम से कम दूतहत्यासदृश घृणित एवं जघन्य कार्य आप से न होने पायँ। भले ही यह दूत दुष्ट प्रकृति का हो, तथापि यहाँ इस का वध करना ठीक नहीं। मान लीजिए, इसे मौत की सजा दी गयी, तो फिर आप का सन्देश राम को पहुँचानेवाला भला इधर कौन दूसरा है? इस कारण वध करने के बजाय यदि इसे छोड दिया जाय, तो यह वहाँ पहुँच कर आप का मंतव्य शत्रुदलको बतायेगा और आपके दुश्मनोंके इधर पधारने पर आपको अपनी वीरता दर्शाने के लिए पर्याप्त मौका भी मिलेगा। (सुं० ५२।१२-२५)

बिभीषण के इस कथन को सुन रावण के ध्यान में यह बात आ गयी कि, दूत को प्राणदण्ड देना अनुचित है, इसलिए अपनी प्रथम आज्ञा वापिस ले, यूं आज्ञा दे रखी कि, चूँकि वानर पुच्छ से बहुत प्रेम रखते हैं, इस कारण दूम पर फटेपुराने कपडे लपेट कर तथा तेल में भिगोकर अग्नि से प्रदीप्त कर देना चाहिए। इस के परिणामस्वरूप हनुमान् बहुत भद्दा एवं बदसूरत दीख पडेगा। कुरूप होने पर हनुमान् की मुक्तता के सम्बंध में कोई सन्देह न रहा।

लंकादहन।

रावण की आज्ञा पाते ही राक्षसोंने चीथडे तथा तेल तैयार कर रखा। हनुमान् को मुक्कों से मारते हुए उन्होंने उसकी दूम वस्त्रवेष्टित कर रखी। उस समय राक्षस मुँह से बिना किसी हिचकिचाहट के बुरे शब्द निकालने तथा गालीगलौज करने लगे। हनुमान् सोचने लगे कि, रामचंद्रजी के कार्य को मन में रख, मुझे यह सारा अपमान बरदाश्त करना चाहिए। (रामस्य प्रियार्थं विषहिष्येऽहमीदृशं। सुं० ५३।१३)

तेल में भिगोये हुए पुराने कपडों के टुकडे दूमपर लपेट दिये और उसे घोषणाके साथ नगरी में घुमाने लगे। (घोषयंति कपिं सर्वे चार इत्येव

राक्षसाः। सु. ५३।२२) चिल्लाचिल्लाकर राक्षस घोषणा करने लगे कि, 'देखो, यह शत्रु का एलची पकडा गया है, अब इस की जो हालत होगी, सो भी देख लेना।'

राक्षसियों से यह समाचार पाकर सीता को बहुत रंज हुआ और वह परमात्मा से प्रार्थना करने लगी। अन्त में लंका में सभी जगह घुमानेपर राक्षसोंने हनुमान् के पुच्छभाग में अग्नि लगा दी। हनुमान् को ख्याल हुआ कि, रात्री के समय लंका में घूमनेपर भी भली भाँति नगरी को देख लेना संभव न था, पर अब शहर का दृश्य देखने मिलेगा और लांगूलपर धधकती हुई आग की लपटों से घरों तथा महलों को भस्मीभूत कर तनिक रामचंद्रजी के कार्य को भी सहायता पहुँचाना सुगम होगा। अभीतक कुछ इनेगिने वीर पुरुष मारे गए, पर अब की बेर लंका का गढ ही अग्नि-सात् करना कुछ कठिन नहीं; (शेषं दुर्गविनाशनं। सुं० ५४।३) यदि लंका का दुर्ग आगमें जल जाए, तो आगे चलकर हमारी सेना बडी आसानी से हमले कर सकेगी। ऐसा सोचकर हनुमान् (गृहाद्गृहं। सुं. ५४।७) राक्षसों के हर मकानपर कूदने लगा। इस का परिणाम यूं हुआ कि, हर जगह आग सुलगने लगी। इधर हवा भी तेज चल रही थी, फिर क्या कहें। आग के फैलने में देर ही क्या?

रावण की सभामें विभीषण ने भाषण करके दूतके वध का घोर निषेध किया और हनुमान् के प्राण बचाये, इसलिए उस के प्रासाद को सुरक्षित स्वरूप में छोडकर हनुमान् अन्य बडे बडे मकानों को जलाने लगा। सीता के अशोकवन की ओर वह चला ही नहीं गया। लंका के शेष विभागों में जो कुछ भी आग में झोंकनेयोग्य था, उसे आग लगाकर वह आगे बढता गया। बहुत शीघ्र जिधर देखें उधर भीषण अग्निकांड मचने लगा।

क्रन्दन्त्यः सहसा पेतुः स्तनन्धयधराः स्त्रियः।
काश्चिदग्निपरीताङ्ग्यो हर्म्येभ्यो मुक्तमूर्धजाः ॥ २६ ॥
पतन्त्यो रेजिरेऽभ्रेभ्यः सौदामिन्य इवाम्बरात्॥ २७ ॥
(सुंदर. ५४)

इस प्रचंड अग्नि में बच्चों को दूध पिलाती हुई स्त्रियाँ चिल्लाती हुई बालकों को गले से लगाकर झुलस गयीं। कुछ नारियाँ मकान के ऊपर के हिस्सों में आगके सुलगने पर धधकते हुए कमरों से आक्रोश करती हुई नीचे गिरने लगीं, मानों मेघ में चमकती हुई बिजली की लकीरेंही हों।

इस तरह लंका में चहुँ ओर हाहाकार मच गया। कोई पिता को पुकार रहा है, तो कुछ लोग बालकों को बुला रहे हैं, कहीं स्त्रियाँ प्रियतम को न पाने से बिलख रही हैं, तो किसी जगह प्यारे दोस्तों को चेतावनी दी जा रही है; इस प्रकार हर जगह काफी हलचल एवं उत्तेजना प्रतिपल बढ़ती हुई दीख पड़ी। रोनेधोने तथा बिलखने की कोई सीमा न रही।

अग्नि को इस प्रकार धधकते हुए देखकर हनुमान्ने अपना पुच्छ समुद्र के उदक में डुबोया, अतः वहाँ की आग बुझ गयी। लंकानगरी अग्नि से विदग्ध हो रही है, यह दृश्य देखकर उसे समाधान हुआ। अगर कोई उस से पूछता कि, रामचंद्रजीने अभीतक रावण के विरुद्ध युद्ध छेड़ने की साफ घोषणा नहीं कि, ऐसी दशा में तुमने लंकादहन का सूत्रपात किया; सो कैसे, तो वह अवश्य यूं जवाब दे देता, "अजी महाशय, जिस समय रावणने सीता का अपहरण किया, उसी क्षण युद्ध की घोषणा हो चुकी है। भला, आप क्यों ऐसा समझते हैं कि, मैंने लंका को आग लगा दी? राक्षसोंने मेरी दूम में अग्नि का प्रज्वालन किया और मैं उसे बुझाने के लिए समुद्र की ओर चला जा रहा था। राह में किसी किसी जगह आग लगी हो, तो उस का उत्तरदायित्व राक्षसों पर है, मुझ पर नहीं। मेरी तो यह इच्छा नहीं थी कि, मैं लंका में आग लगवा दूँ।"

लंका भस्मीभूत हुई, ऐसा देखकर सिद्ध, चारण, ऋषि तथा देव संतुष्ट हुए (सुं० ५५।२८-३५)। क्योंकि ये सभी रावण के अत्याचारों से बड़े दुःखी हुए थे। अतः प्रतिशोध लिया गया, इस घटना से इन्हें समाधान मिला और उन्होंने हनुमान् को बधाई दी!!

हुताशन की वे उत्ताल लपटें देख हनुमान् को भ्रम हुआ कि, शायद

अशोकवन भी, जहाँ पर सीता रहा करती थी, झुलस गया हो और सीता सुरक्षित बच जाय, यह कैसे सम्भव है ? पर आगे चलकर यह धारणा निर्मूल सिद्ध हुई। आनेजानेवाले लोगों की बातचीत से विदित हुआ कि, सीता को किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुँची तथा अशोकवन भी ज्यों का त्यों खडा है। इस पर हनुमान् को बडी प्रसन्नता हुई और सीता के निकट जाकर अभिवादन कर के जाने की आज्ञा माँगने लगा। सीताने उस से कहा कि, यदि हो सके, तो वह एक दिन और भी रहे, तथा कुछ आराम पाकर दूसरे दिन प्रस्थान करे। सीता के ऐसे कथन का तात्पर्य यही था कि, वहाँ पर सहानुभूतिपूर्वक बोलनेवाला दूसरा कोई भी नहीं था। ऐसी दशा में अगर सीता को हनुमान् का एक और दिन वहाँ निवास करना अच्छा लगे, तो यह तो बिलकुल स्वाभाविक था।

कुछ धारणाएँ।

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

पुण्य घट जाने पर स्वर्ग से तारकाओं का अधःपतन होने लगता है—

क्षीणपुण्यां च्युतां भूमौ तारां निपतितामिव।

(सुं० १७।१९)

पुण्य का अगर यथेष्ट संचय किया गया हो, तो स्वर्ग में निवास प्राप्त होता है या नक्षत्रलोक में प्रवेश मिलता है। तारकागण जहाँपर जगमगाता है, वह आकाशविभाग ही स्वर्ग है और पुण्य का पर्याप्त अर्जन जो कर चुके हों, वे नक्षत्ररूप धारण कर उस स्थान में रहते हैं। जिन के पुण्यसंभार में न्यूनता आ गयी हो, उन्हें इन्द्र नीचे भूतलपर ढकेल देता है। रात्री के समय उल्काओं का पतन होता हुआ कभी कभी दीख पडता है और पुण्य की पूँजी समाप्त होनेपर द्युलोकनिवासी लोग वैसा रूप धर पृथ्वीमंडल पर आ गिरते हैं, अतः पतन होनेवाली तारकाओं का दर्शन ठीक

नहीं क्योंकि पुण्यवान् आत्माओं का अधःपतन नहीं देखना चाहिए। उस समय लोगों की धारणा बहुत कुछ इस ढंग की थी। पर आधुनिक कालमें, कोई भी आकाश को स्वर्ग मानने में तैयार नहीं और कह नहीं सकते कितने लोगों की ऐसी धारणा हो कि, पुण्य का क्षय होने से नीचे गिरनेवाले जीवात्मा उल्का का रूप धारण करते हैं। उपरिलिखित कल्पना एक समय कुछ पंथों तथा मन्तव्यों या सम्प्रदायों में रूढ थी, पर आगे चलकर वेदांतज्ञान का प्रसार होनेपर उस कल्पना का महत्त्व घट गया।

बेशक गीता यों कहती है 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति।' (गी० ९।२१) पर देखने योग्य है कि, (पतितां तारकां) उल्काके पतन से इस का कुछ भी संबंध नहीं दर्शाती है।

पाँच मुँहवाले सर्प।

तस्याम्बरगतौ बाहू ददृशाते प्रसारितौ।
पर्वताग्राद्विनिष्क्रान्तौ पञ्चास्याविव पन्नगौ ॥ ५४ ॥
(सुंदर. १)

उडान लेते समय हनुमान् के दोनों हाथ आस्मान में फैल गए थे और ऐसा भ्रम पैदा करते थे कि, मानों वे पहाड की चोटियों से निकले हुए दो पाँच मुख से युक्त साँप ही हों।

यहाँपर हनुमान् का बृहदाकार शरीर पर्वततुल्य दीख पडता था। दो बाहु सर्पवत् तथा पाँच अंगुलियाँ मुखके समान दिखाई देने लगीं।

पता नहीं कि क्या सचमुच लोग पाँच मुखवाले सर्पों के अस्तित्व में विश्वास रखते थे या यह निरी कविकल्पना ही है। रामायण में कई बार पंचमुख सर्पों का उल्लेख पाया जाता है।

नारियों के अंगों तथा अवयवों का वर्णन।

आजकल स्त्रियों से बातचीत करते समय, उसके अंगों का वर्णन या

निर्देश करते हुए बोलने की प्रथा नहीं है। अगर वैसा कोई करे, तो ऐसा माना जाता है, यह तो अत्यन्त असभ्यतापूर्ण तथा सदभिरुचि से रहित व्यौहार है। पर यदि हम रामायण एवं महाभारत के युगपर दृष्टिपात करें, तो दीख पड़ता है कि, स्त्रियों के सामने या उन के परोक्ष बातचीत करते वक्त विभिन्न अंगोपांगों का उल्लेख या वर्णन करते हुए बोलने की प्रथा आजकल के समान अनुचित या घृणित नहीं मानी जाती थी। इतनाही नहीं अपितु समाज की सभी श्रेणियों के लोग नारी या पुरुष से वार्तालाप करते हुए शरीर के विभिन्न अंगों का वर्णन करते थे और संभाषण में अवयवों का बखान अवश्य आ जाता था। इस सम्बन्ध में बानगी के तौर पर निम्नलिखित अवतरण देखनेयोग्य हैं।

(१) केशकलाप का बखान।

सुकेशी (सुं० २९।२; ३१।१६), वक्रकेशांता (सुं० ३१।१६)। अशोकवन में हनुमान् को सीता कैसे दीख पडी, सो बतलाते हुए कविने इन शब्दों का प्रयोग किया है।

(२) मुख का वर्णन।

शुभानना (अयो. ७।३१), कवि कैकेयी का वर्णन करता है।

विमलेन्दुसम (अयो. ९।४३), कैकेयी मंथरा का वर्णन करती है।

पूर्णचन्द्रानना (सुंदर १५।२८), पूर्णचन्द्रनिभानना (सुं० ३०।७, ३७।१), वरानना (सुं. ३३।६) हनुमान् सीता का वर्णन करता है। स्वयं सीता को संबोधित करता हुआ हनुमान् 'वरानने' शब्द का प्रयोग करता है।

(३) आँखों का वर्णन।

विशालाक्षी (बाल. ११।३०) कवि शांता का वर्णन करता है। अयो. ६।१ में सीता का वर्णन है। अयो. ९।५५ में कवि कैकेयी का वर्णन करता है। सुंदरकांड के २४।१९, २७।१६, २७।४१, ३०।२१

तथा ३५।८७ में सीता का वर्णन करते हुए यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। प्रथम तथा अन्तिम प्रयोग कवि का है। दूसरा एवं तीसरा प्रयोग त्रिजटा ने किया हुआ है और चतुर्थ प्रयोग हनुमान् ने सीता से भाषण करते समय किया है।

कमलपत्राक्षी (अयो. १०।२७) कैकेयी के लिए कविने यह शब्द प्रयुक्त किया है और सुंदरकांड में ३५।६, ५८।५७ में हनुमान् सीता के सम्मुख संबोधन के रूप में प्रयुक्त करता है।

शुभलोचना (अयो. १२।२४) और '**आयतलोचना**' (अयो. ३६।१३) शब्दों का प्रयोग दशरथ कैकेयी से वार्तालाप करते समय करता है।

प्रफुल्लनयना (अयो. ३८।८) दशरथ सीता के बारे में कहता हुआ, प्रयुक्त करता है, अपनी पुत्रवधू को लक्ष्य में रख कहता है।

शुभापांगा (अयो. ३०।३४) रामचंद्रजी सीता को संबोधित करता है।

सुभ्रू (सुं. १५।२८, २९।६) हनुमान् सीता के बारे में कहता है। **हरिणलोचना** (सुं. ४२।१४), **मदिरेक्षणा** (सुं. २४।३६), **हरिणशावाक्षी** (सुं. २४।४०) इन शब्दों से राक्षसियाँ सीता का वर्णन करती हैं। **कमललोचना** (सुं. २७।१५) त्रिजटा सीता का वर्णन करती है; **अतुलाक्षी** (सुं. २९।५) कवि सीता का वर्णन करता है। **मृगशावाक्षी** (सुं. ५८।६१) यह शब्द हनुमान् के सीतावर्णन में आया है। **विशालनेत्रा** (सुं. ३२।९) सीता का वर्णन करते हुए कविने प्रयुक्त किया है। **पद्मपत्रविशालाक्षी** (सुं. ३७।४१), **पद्मपलाशाक्षी** सुं. ३३।३) विशेषणों का उपयोग कवि के वर्णन तथा हनुमान् के भाषण में हुआ है। **असितेक्षणा** (सुं. ३३।८) सीता के सम्बोधन में हनुमान् ने प्रयुक्त किया है।

(४) दांतों का वर्णन।

सितशुक्लदंष्ट्रं मुखं (सुं. २९।७) सीता का वर्णन कविने किया है।

(५) होठों का वर्णन।

बिम्बोष्ठी (१५।२९) **बिम्बफलोपमोष्ठं** (सुं. २९।७) सीता का वर्णन कवि का किया हुआ है।

(६) गले का वर्णन।

नीलकंठी (१७।२९) कविने सीता का वर्णन किया है।

(७) स्तनों का वर्णन।

सुपीनौ पयोधरौ (अयो. ९।४२) कैकेयी अपनी दासी का वर्णन करती है।

चारुवृत्तपयोधरा (सुं. १५।२८) कवि वर्णन करता है कि, सीता हनुमान् को कैसे दीख पडी।

(८) कमर का वर्णन।

सुमध्यमा (बाल. २१।१५) वसिष्ठ जया एवं सुप्रभा का वर्णन करते हुए कहते हैं। (बाल. ३५।१४) विश्वामित्र मेना का वर्णन करते हैं। (बाल. ७७।१०) कवि कैकेयी का वर्णन करता है। (सुं.१५।२९; ३०।१३) कवि बखान करता है कि, हनुमान् को सीता का दर्शन किस दशा में हुआ। (सुं. ३३।९) सीता के लिए हनुमान् का संबोधन।

(९) जाँघ का वर्णन।

सुश्रोणी (बाल. ४८।२२) सीता का संबोधन इन्द्र करता है। **वरारोहा** (बाल. ६३।७) अप्सरा का वर्णन कविने किया है। (सुं. ३३।६; ३५।६७, ५६।१८; ५८।६६) सीता का संबोधन हनुमान् करता है। **शुभश्रेणी** (अयो. ३०।४२) राम का सीता के प्रति संबोधन।

इन वर्णनों में कविकृत वर्णनों का विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि प्रसिद्ध है 'निरंकुशाः हि कवयः' और पतिने अपनी धर्मपत्नी

के संबंध में जो कुछ कहा है, वह भी बहुत कुछ इसी श्रेणी में आता है। यद्यपि यह सच है कि वर्तमानकाल में पतिदेव अपनी अर्धांगिनियों का इस तरह बखान करते हुए बोलते नहीं, तो भी कहा जा सकता है कि, कुछ अंशतक पतिदेव का इस तरह कहना क्षम्य माना जा सकता है और पति को यों कहने का अधिकार प्राप्त है। इसलिए पतिदेव के वर्णनों की ओर ध्यान देना ठीक नहीं, परन्तु हनुमान् खुद अपनी परमपूज्य महाराज्ञी के साथ, जो प्रभुरामचंद्रजी की अत्यंत प्रिय एवं पूजनीय सती एवं धर्म-पत्नी सीतादेवी थीं, जो वार्तालाप करता है, उस का कुछ ज्यादह विचार करना उचित जँचता है। हनुमान् सुग्रीव का सेनापति और रामचंद्रजी का भक्त तथा सेवक एवं सीता और रामचंद्रजी को परमपूज्य माननेवाला था। अतः यह कदापि संभव न था कि, वह जानबूझकर सीता का अपमान कर लेता। इस भाँति हनुमान् के अन्तस्तल में सीता के प्रति अति पूज्य भावों के रहनेपर भी जब वह सीता के सामने संभाषण करता है, तब संबोधन के तौरपर इन वचनों का प्रयोग करता है—

का त्वं ··· वरारोहे वरानने ? (सुं. ३३।६)
त्वां आहु स वरारोहे। (सुं. ३५।६७)
को नु भर्ता ते सुमध्यमे ? (सुं. ३३।९)
भर्तारं असितेक्षणे। (सुं. ३३।८)
का त्वं पद्मपलाशाक्षी ? (सुं. ३३।३)
त्वां आदाय वरारोहे स्वां पुरीं प्रति यास्यति। (५६।१८)
भर्तुः कमलपत्राक्षी··· विशालाक्षी शृणु। (सुं. ३५।५-७)
वरारोहा सीता। (सुं. ५८।६६)

इन शब्दप्रयोगों को अपने भाषण में बिखेरकर हनुमान् सीतासे वार्तालाप करता है, तथा दूसरों से उसके संबंध में ज्ञातव्य बातें कहता है। आजकल कोई भी पराया पुरुष स्वप्नमें भी परनारी से संभाषण करते समय,

'हे सुन्दर मुँहवाली नारी! हे सूक्ष्म कमर से युक्त अबले! हे खूबसूरत आँखोंवाली देवी! हे (वरारोहे) श्रेष्ठ जाँघों से विभूषित स्त्री!' ऐसे विशेषणों का प्रयोग करने का साहस नहीं कर सकता है और जानपहचान-वाला पुरुष भी यकायक ऐसे विशेषणों से परिपूर्ण भाषा का उपयोग नहीं कर सकता है। क्या सेवक रानी से बोलते समय ऐसी भाषा का प्रयोग करेगा? कभी नहीं। लेकिन एक अपरिचित पुरुष की हैसियत से बोलते हुए भी उपर्युक्त विशेषणों का प्रयोग बिना किसी झिझक के हनुमान् ने किया है और ऐसी भाषा सुननेपर सीता को कोई संकोच या हिचकिचाहट प्रतीत हुई हो, ऐसा नहीं दीख पड़ता है। इससे इतना स्पष्ट है कि, उस समय महिलाओं के संबंध में वार्तालाप करते समय स्त्रियों के समक्ष उपर्युक्त शब्दों का प्रयोग करना असभ्यताका दर्शक नहीं माना जाता था।

हे देवी! आप की कमर सिंह के समान पतली है, आप की आँखें देखकर कमल की भ्रांति उत्पन्न होती है, कभी एकाध बार हरन की याद हठात् हो आती है, ऐसी भाषा का प्रयोग यदि कोई पराया आदमी करने लगे, तो किसी भी नारी को इन दिनों में वह अच्छा नहीं लगेगा। ध्यान में रहे कि, हनुमान् तथा सीता का यह प्रथम मिलन है और इसी पहली मुलाकात के मौके पर ही हनुमान् इस भाँति के शब्दों का निस्संकोच उपयोग कर रहा है।

इन सभी विशेषणों तथा शब्दों में यदि कोई अधिक विचार करनेयोग्य शब्द हो, तो वह 'वरारोहे' शब्द है। वर + आरोहा का अर्थ स्पष्ट-तया श्रेष्ठ या सुन्दर जघनविभाग से युक्त महिला इतना ही है। आरु-ह्यते इति आरोहः इस शब्दमें जो मूलभाव छिपा पड़ा है, उससे इतना तो प्रतीत होता है कि, ब्रह्मचारी हनुमान् सीता का संबोधन करने के लिए इस शब्द से बने विशेषण का प्रयोग न करता, तो अच्छा।

हाँ, अनन्त काल के प्रवाह में शब्द के मूल अर्थ विलुप्त से हो जाते हैं, प्रारम्भ में जिस अर्थ में शब्द का उपयोग हुआ करता, वह अर्थ आगे

चलकर पीछे पडता है और नये अर्थ उस शब्द से जा चिपकते हैं। अतः सम्भव है कि आज हमें इस शब्द से जिस अर्थ की प्रतीति होती है, वह शायद वाल्मीकि के समय अज्ञात रहा हो और अन्यही कोई उच्च अर्थ इस से ध्वनित किया जाता हो। अन्यथा महर्षि वाल्मीकि, ब्रह्मचारी हनुमान् के मुख से, सीता जैसी साध्वी देवीका संबोधन करनेके हेतु 'वरारोहे' शब्द का प्रयोग न करवाता। निस्संदेह, ऐसे शब्द-प्रयोग से तनिक आश्चर्य ही हो जाता है। यदि शब्द किसी अन्य उदात्त अर्थ को सूचित करता तो या शब्द का अर्थ परिवर्तित हुआ तो, ऐसा होना असम्भवनीय नहीं माना जा सकता है।

उदाहरण के लिए 'कुशल' शब्द को लीजिए। इस का अर्थ प्रारम्भ में (कुश+ल) दर्भ काटनेवाला इतना ही था, पर यह अर्थ अब लुप्त हुआ है और चतुराई (Skilful) को ध्वनित करता है। कुशल शब्द का अर्थ किसी के ध्यान में आज बिलकुल नहीं आता है, इतना वह विलुप्त हो गया है। शायद 'घर+आरोहा' शब्द की यही हालत हुई हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। वास्तव में संस्कृतभाषा का एक ऐसा कोष बने कि, जिस में उदाहरणों के साथ ऐसे शब्दों के अर्थ विभिन्न कालखंडों में कैसे बदलते रहे, सो दिखलाना चाहिए। इस तरहके कोषमें ही ऐतिहासिक अर्थांतर का यथावत् दिग्दर्शन हो सकता है। तबतक इस संबंध में किसी निर्णयपर पहुँचना असंभवसा प्रतीत होता है।

ऊपर दर्शाये हुए शब्दों से ऐसा जान पडता है कि, रामायण-महाभारत के काल में या (Classical) संस्कृत साहित्य के प्रारंभकाल में स्त्री-पुरुषों के सुगठित एवं लावण्ययुक्त अवयव तथा शरीर को निहारनेपर सराहना करने की तथा उस से प्रतीयमान विधाता की चतुराई को बधाई देने की मनोवृत्ति अधिक मात्रा में रूढ थी। परमात्माने जो रचनाकौशल्य व्यक्त किया हो, सो देख उस का अभिनंदन करने की ओर जनताकी मनोवृत्ति उस कालमें झुक जाती थी। पर आगे चलकर लज्जा और शालीनता

तथा शिष्टता की बेहद वृद्धि हुई, अतः उसी अनुपात में शरीर का बखान करना बिलकुल छूटसा गया या अशिष्ट एवं घृणित माना जाने लगा। आधुनिक भारत में प्रचलित यह शालीनतापूर्ण प्रथा ठीक है, या प्राचीन भारत में प्ररूढ प्रणाली उचित है, इस का विचार करने की यहाँ आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह विषय अप्रासंगिक है।

वर्त्तमान युग में यूरप एवं अमेरिका के लोगों में इस तरह अंगों का वर्णन करते हुए परस्पर वार्तालाप करने की प्रथा प्रचलित है; न केवल ग्रन्थों में ही अपितु सीधे बातचीत में भी है। ऐसी ही प्रथा शायद प्राचीन भारत में रूढ होगी। प्रकृति में उपलब्ध लावण्य तथा चारुता को निरख कर बखान करना उस काल के लोगों को उचित जँचता था। पर अर्वाचीन भारत में यह लज्जास्पद माना जाता है। यदि इस तरह बोलना आज कोई शुरु कर दे, तो मारपीट की नौबत आने में कुछ देर न लगेगी, इस में कोई सन्देह नहीं।

हनुमान् ने जो सीताका वर्णन किया है, वह यौन भावोंसे सर्वथा रहित था। पहले, हनुमान् संयमी तथा ब्रह्मचारी था और दूसरे, सीता भी उस के प्रभु रामचंद्रकी साध्वी धर्मपत्नी थी। ऐसी दशा में वैषयिक या यौन-विचार हनुमान् को भला कैसे सूझते? इसलिए हनुमान् के उद्गार या वर्णन एवं कथन विषयलिप्सासे कोसों दूर था।

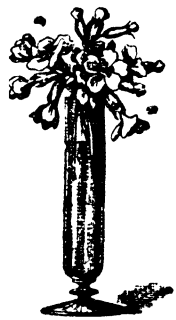

वाल्मीकि के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य बातें।

अतीत काल में सुमति नाम से विख्यात एक ब्राह्मण था और उसकी पत्नी का नाम कौशिकी था। उस परिवार में अग्निशर्मानामक एक बालक उत्पन्न हुआ, जिसने अपने पिता के वेद के स्वाध्याय करने के उपदेश की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। पिताने उसे समझाने की खूब चेष्टा की, लेकिन कुछ भी उपयोग न हुआ। अन्त में अपने पुत्रकी उदासीनता से ऊबकर दोनों पतिपत्नी वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश कर जंगलों में रहने लगे। इधर अग्निशर्मा भीलजाति के सम्पर्क में आकर चौर्यकर्म में प्रवीण हुआ। एक समय सात ऋषियों से मुलाकात करने का सुअवसर अग्निशर्मा को प्राप्त हुआ, जब उसने उनसे डाँटकर कहा कि 'जो कुछ तुम्हारे निकट हो, जल्द इधर मेरे सामने धर दो, नहीं तो मैं तुम्हें जीता न छोड़ूँगा।' पश्चात् अत्रि ऋषिने प्रश्न पूछने का साहस किया 'हे अग्निशर्मन्! जिनके लिए तू इस भाँति घोर अनुचित कार्य करनेमें लगा है, क्या वे इस तेरे पापमें अपना हिस्सा स्वयं उठाने को तैयार हैं? उनके लिए तू ऐसे पापपूर्ण कार्यों से धन बटोर रहा है, तो क्या वे तेरे पापके बोझ को उठा लेनेको तैयार हैं?

इस समस्या को हल करने के लिए अग्निशर्मा अपना घर चला गया और अपने पत्नी एवं पुत्रों से पूछने लगा 'अच्छा, यह बतलाओ तो सही, कि मैं जो इधर पापकृत्य करके तुम्हारी आजीविका चला रहा हूँ, तो क्या तुम लोग उस पाप के बोझ को उठाने में सहायता न करोगे? यह प्रश्न सुनकर उसके परिवार के लोग एक स्वर से बोल उठे 'पापसे हमारा कुछ भी सरोकार न रहे, यही हमारी लालसा है; अच्छा होगा कि तुम्ही इस पाप को उठा लो।' इस भाँति उत्तर पाते ही अग्निशर्मा को भारी पश्चात्ताप होने लगा और वह ऋषियों के निकट आकर कहने लगा कि, 'मैं चाहता हूँ कि मैंने जो भी कुछ पापकृत्य किये हों, उनकी क्षमा की जाय।

तुम्हारे उपदेश से मेरी आँखें खुल गयीं और अब मुझे सत्य ज्ञानकी झलक मिल गयी है। मैं आजसे तुम्हारे कथनानुसार कार्यवाही करने तैयार हूँ। मुझपर अनुग्रह कर मुझे आत्मोद्धार की राहपर ले चलने की कृपा करें।' इसपर अन्य छहः ऋषि अत्रि से कहने लगे कि, चूँकि वह उसके उपदेशसे पश्चात्तापदग्ध हुआ, अतएव ठीक यही होगा, वह अग्निशर्मा उसी के शिष्यत्व का अंगीकार कर पवित्र बने। ऋषि अत्रि ने कहा 'तथास्तु' और उसने अग्निशर्मा से कह दिया कि, वह उनके उधर लौट आने तक वहीं पर वृक्षके नीचे बैठ कर 'राम' नाम का जप कर लिया करे। पश्चात् ऋषिगण वहाँ से चला गया। इधर अग्निशर्मा 'राम' नामका जप करनेमें इतना तल्लीन हो गया कि, शरीरपर दीपक चढने लगी, लेकिन उसे उसका पता कहाँ? अनेक वर्ष इस भाँति राम नाम का जप करने में बिता देनेपर एक बार किसी कारण वहाँ सप्तर्षि उसी जगह पधारे, जहाँ पर अग्निशर्मा की तपस्या प्रचलित थी। राम नाम की पवित्र ध्वनि से मुखरित उस प्रदेश में उन्हों ने दीमक की ढेर अलग कर देखा, तो अग्निशर्माजी बाहर निकल आये। अग्निशर्मा अभिवादनपूर्वक सप्तर्षियों से कहने लगा 'आप की कृपासे मैंने पापोंसे छुटकारा पाया है और मुझे ज्ञानकी आलोक-रेखा प्राप्त हुई है।' ऋषियों ने उत्तर दिया, 'तू अब दीमकों के संघात या ढेरसे बाहर निकल आया है, इसलिये यह मानों तेरा दूसरा जन्म है और आगे चलकर संसार में तू वाल्मीकि नाम से विख्यात होगा।' पश्चात् वाल्मीकि ने शंकरकी उपासना कर चुकने पर रामायणनामक महाकाव्य का सृजन किया। कुशस्थली नामक जिस जगह उसने शंकरजी की उपासना चलायी, वह स्थान वाल्मीकेश्वर नामसे विख्यात हुआ और उसकी पूजा करनेवाले लोग मुक्तता पाने में सफलित मनोरथ होने लगे। देखो स्कंद-पुराण ५।१।२४;७।१।२७८।

स्कंदपुराण में ही इस के बारेमें एक दूसरी भी कथा यों पाई जाती है, सो देखिए—

प्राचीन युग में कणुनामक एक ब्राह्मणने यथेष्ट तपश्चर्या की। तपकी

पूर्णता होनेपर उसे अपनी स्त्रीकी याद हो आयी, जिससे उसका रेतस्खलन हुआ। एक वनचरीने इस रेतका निगलन किया, अतः उसे एक पुत्र हुआ। महर्षि के प्रसादसे उसे ब्राह्मणत्व मिला और वाल्मीकि नाम से प्रसिद्ध हुआ। ऋषियों की श्रेणी में इसे जगह मिली। तमसा नदी के तटपर एक आश्रम की स्थापना करके इन्होंने वहाँपर अध्यापनकार्य सुचारुरूप से निभाया। इनके निकट शिष्य पर्याप्त मात्रा में पढने आया करते। उनमें भरद्वाज का स्थान प्रमुख था। एक बार उस शिष्य के साथ वह नदी से स्नान करके लौट रहा था कि, उसे सहसा यह दीख पडा, एक क्रौंच पंछी का जोडा अभी अभी विहार कर रहा था, पर एक शिकारीने बाण मारकर एक पंछी को घायल कर डाला है। उसके हृदय में दया का असीम उद्रेक उमड आया, जिसके फलस्वरूप सहसा उस के मुँह से छन्दोबद्ध शापवाणी निकल पडी कि-

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

(वा. रा. बा. २।१५)

यकायक बिना किसी पूर्वसूचना के मुँह से जों शब्द निकल पडे, उन से एक अनुष्टुप् श्लोक बना देख, वह अचंभे में आया। पर शाप दिया, इस लिए मनको बुरा लगा और चिंतित हुआ। इधर वाल्मीकि सोच में पडे थे और उधर ब्रह्माजी आ उपस्थित हुए। वे कहने लगे कि, उस श्लोक से उस की कीर्ति बढ जायेगी। राम का जीवनचरित्र इस भाँति के श्लोक में बना देने को आज्ञा दी, प्रोत्साहन दिया। बाद में २४००० श्लोकों में रामायण का निर्माण कर दिया।

रामचंद्रजीने जब गर्भवती सीतादेवी का त्याग किया, तब वाल्मीकिने उस का परिपालन किया। कुछ कालके उपरान्त सीतादेवी के दो पुत्र कुश और लव नाम के हुए। इसी महर्षिने उन बालकों का संगोपन करा के विद्या पढायी। रामायण भी कंठस्थ कराया।

रामचंद्रजी के अश्वमेधयज्ञ में ये अपने शिष्योंसमेत उपस्थित हुए। एक किस्सा यों है कि, किसी ऋषि से पाखंडवाद करने के कारण ये ब्रह्महत्या-पाप के भागी हुए पर महादेवजी की उपासना से पाप सारा हट गया।

वाल्मीकिश्चाह भगवान् युधिष्ठिरमिदं वचः।
विवादे साग्निमुनिभिर्ब्रह्मघ्नो वै भवानिति ॥ ८ ॥
उक्तः क्षणेन चाविष्टस्तेनाधर्मेण भारत।
सोऽहमीशानमनघममोघं शरणं गतः ॥ ९ ॥
मुक्तश्चास्मि ततः पापैः ततो दुःखविनाशनः।
आह मां त्रिपुरघ्नो वै यशस्तेऽग्र्यं भविष्यति ॥ १० ॥

[म. भा. अ. ४९। ८, ९, १०,]

वाल्मीकि शूद्र जातिके उत्पन्न हुए थे पर आगे चलकर ऋषि की कृपा से ब्राह्मण के पदपर अधिष्ठित हुए। पहले ये वाल्या केवट नाम से जनता को परिचित थे ऐसी जो परम्परागत कथा है वह निराधार है। रामायणमें तो जिधर कहीं भी वाल्मीकि का निर्देश आया है वहाँपर तपस्वी, मुनि-पुंगव, द्विज आदि नामों से विभूषित हुए हैं, अतः निस्संकोच कह सकते हैं कि वे विद्वान ब्राह्मण थे। स्वयं वाल्मीकि का ही कथन सुनिए-

प्राचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनंदन।

(वा. रा. उ. ९६।१८)

पर प्रचेतस ऋषि निर्वंश थे अतः यह दूसरा कोई प्रचेतस होगा। बहुतों की यह धारणा है कि, ब्रह्माजी के वरदान के फलस्वरूप वाल्मीकि राम-जन्मके पहले ही रामायण लिख सके और सभी रामचरित्र पर लिखे ग्रन्थोंमें यही धारणा दुहरायी गयी है इसलिए यह बहुत कुछ अटल सी हो बैठी है। पर उस के लिए कोई आधार नहीं है। देखिए न, रामायण के सभी क्रियापद भूतकाल के वाचक हैं और आगे चलकर राज्य की जो दशा

होनेवाली है उसे दर्शाने के लिए ही भविष्यकालीन प्रयोग किए हैं। यह बहुत कुछ असंभवसा प्रतीत होता है कि, आगे होनेवाले मानवों के कृत्यों का वर्णन भूतकालवाचक शब्दों से किया जाय। शायद वाल्मीकि रामचंद्रजी के समय या उन के पश्चात् जीवित रहे हों। बहुत से समझते हैं कि राम के उत्तरकालीन वाल्मीकि नामधारी पुरुषने रामायण काव्य का सृजन कराके रामके समय विद्यमान वाल्मीकि के नामपर प्रसिद्ध किया, पर इसके पुष्टयर्थ कोई बलवत्तर प्रमाण हमें उपलब्ध नहीं है।

रामायण के सिवा निम्नलिखित ग्रन्थ भी वाल्मीकि-रचित माने जाते हैं। वाल्मीकि-सूत्र, वाल्मीकिशिक्षा, वाल्मीकिहृदय तथा गंगाष्टक। ब्रह्माजी भरद्वाज के साथ आये और रामायण समाप्त कर डालने की सूचना दे डाली। योगवासिष्ठ में यह उल्लेख पाया जाता है-

इत्युक्त्वा स भरद्वाजं परमेष्ठी मदाश्रमम्।
अभ्यागच्छत् समं तेन भरद्वाजेन भूतकृत्॥

[यो. वा. २--११]

वैवस्वत मन्वन्तर में अबतक २८ युगों के जो २८ व्यास हुए उन में २४ वे युग में विष्णुपुराण की फेहरिस्त के अनुसार वाल्मीकि या ऋक्ष भार्गव हुए ऐसा निर्देश पाया जाता है। इसी प्रकार विसर्गसंधि के बारेमें नियम बतलानेवाला एक आचार्य भी वाल्मीकि नाम से विख्यात है।